राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

ओ. पी. सैनी I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क 182

महाकवि विश्वनाथप्रणीत

शत्रुशल्यचरितमहाकाव्य

भाग - 2

(13-22 सर्ग)

(गंगासहायशिशु विरचित संस्कृत 'प्रकाशिका टीका' सहित)

सम्पादक

डा० भोलाशंकर व्यास

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1996

मूल्य 105/- रु.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक

ओ. पी. सैनी I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क 182

महाकवि विश्वनाथप्रणीत

शत्रुशल्यचरितमहाकाव्य

भाग – 2

(13–22 सर्ग)

(गंगासहायशिशु विरचित संस्कृत 'प्रकाशिका टीका' सहित)

सम्पादक

डा. भोलाशंकर व्यास

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1996

मूल्य 105.00 रु.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक

ओ. पी. सैनी I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क 182

महाकवि विश्वनाथप्रणीत

शत्रुशल्यचरितमहाकाव्य

भाग - 2

(13–22 सर्ग)

(गंगासहायशिशु विरचित संस्कृत 'प्रकाशिका टीका' सहित)

सम्पादक

डा० भोलाशंकर व्यास

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1996 मूल्य 105/- रु.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान प्रदेशीय
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी राजस्थानी आदि भाषा निबद्ध
वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

ओ. पी. सैनी I.A.S.

[निदेशक राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाक 182

शत्रुशल्यचरित—महाकाव्य

भाग – 2

© प्रकाशक

मुद्रक

पंकज प्रिण्टर्स एवं राजस्थान लॉ वीकली प्रेस, जोधपुर

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

RAJASTHAN PURATAN GRANTHAMALA

No. 182

General Editor – O.P. Saini I.A.S.

(Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur)

S'atrus'alya-carita-Mahākāvya

by

MAHĀKAVI-VIŚVANĀTHA

(With Prakasika Commentary by Gangasahaya Sisu)

Editor

Dr. BHOLASHANKAR VYAS
Ex Professor & Head of the Hindi Department
Kashi Hindu University, Varanasi

Published by

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1996 Price Rs. 105-00

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

RAJASTHAN PURATAN GRANTHMALA

Published by the Government of Rajasthan

A series devoted to the publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Hindi & Rajasthani works pertaining to India in General & Rajasthan in particular

General - Editor

O.P Saini I.A.S.

Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

No. 182

S'atrus'alya - Carita - Mahākāvya

(Part - II)

500 Copies

© Publisher

Printers

Pankaj Printers & Rajasthan Law Weekly Jodhpur

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निदेशकीय

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्यों के प्रणयन की परम्परा बाण के हर्षचरित से मानी जाती है। निजाश्रयदाता राजा की प्रशंसा के साथ ही इन काव्यों में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों का यथार्थ निरूपण हुआ है जो तत्कालीन ऐतिहासिक ज्ञान के लिये अत्यन्त उपयोगी स्रोत है।

राजस्थान के पूर्व रियासतों के शासकों यथा मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़, हाड़ौती के राजाओं पर ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गये थे जिनमें से अनेक अभी तक अप्रकाशित हैं।

प्रतिष्ठान की 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में ऐसे शासकों पर काव्यों को प्रकाशित करने की नीति प्रारम्भ से ही रही है, फलस्वरूप ईश्वरविलास–महाकाव्य, हम्मीर–महाकाव्य, राजविनोद महाकाव्य, सूरसिंह वंश-प्रशस्ति आदि अनेक ऐतिहासिक काव्यों का प्रकाशन किया जा चुका है। इसी क्रम में बूंदी के हाडा शासकों से सम्बन्धित प्रस्तुत 'शत्रुशल्यचरित महाकाव्य' का मुद्रण कार्य काफी समय पूर्व प्रारम्भ करवाया गया था। मुझे प्रसन्नता है कि अब यह कार्य पूर्ण होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

चौहानों के इतिहास से सम्बन्धित तीन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। पृथ्वीराज चौहान के विषय में जयानककृत पृथ्वीराज विजय, रणथंभोर के हम्मीर देव पर नयचन्द्रसूरिकृत हम्मीर-महाकाव्य तथा बूंदी के राव सुर्जन पर चन्द्रशेखर कृत सुर्जनचरित महाकाव्य अत्यन्त विश्रुत एवं चर्चित रहे हैं। इसी परम्परा में प्रस्तुत शत्रुशल्य-चरित महाकाव्य चौथा महाकाव्य है। इस क्षेत्र का पाँचवाँ तथा अन्तिम ज्ञात महाकाव्य रामविलास महाकाव्य है। इसे भी सम्पादित कर प्रतिष्ठान को प्रकाशनार्थ देने का वचन डा. भोलाशंकर व्यास ने दिया है जिसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। 22 सर्गों में विभक्त इस काव्य में बादशाह अकबर, जहांगीर एवं शाहजहां कालीन रणथम्भोर, गौंडवाना, गुजरात एवं दक्षिण भारत में लड़े गये युद्धों का यथार्थ निरूपण है। राव रतन एवं शत्रुशल्य द्वारा जो विभिन्न युद्ध बुरहानपुर,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

बलोचपुर और दौलताबाद आदि स्थानों पर लड़े गये उनमें हाडाओं के राजवैद्य होने के नाते कवि विश्वनाथ स्वयम् उपस्थित थे। सन् 1623 में खुर्रम द्वारा अपने पिता के विरुद्ध किये गये विद्रोह का भी इसमें यथार्थ वर्णन प्राप्त होता है। युद्ध की घटनाओं एवं वर्णन के साथ ही महाकाव्य के लक्षणों के निर्वहन हेतु सुरम्य प्रकृति वर्णन आदि का भी अभिराम चित्रण इसमें किया गया है।

प्रस्तुत काव्य को दो भागों में विभक्त कर प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में सर्ग 1 से 12 के साथ सम्पादक की अपनी संस्कृत टीका एवं अंग्रजी भाषानुवाद दिया गया है। द्वितीय भाग में गंगासहाय शिशु विनिर्मित संस्कृत प्रकाशिका टीका दी गई है। विद्वान् सम्पादक डॉ. व्यास ने अपनी आलोचनात्मक भूमिका में काव्य के ऐतिहासिक एवं काव्यशास्त्रीय पक्ष पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

डॉ भोलाशंकर व्यास ने हमारे अनुरोध पर इस सम्पादन कार्य को जिस निष्ठा और तत्परता के साथ पूर्ण कर प्रतिष्ठान को सौंपा उसके लिये हम उनके आभारी हैं। डॉ. व्यास का भविष्य में भी हमें इसी प्रकार का सहयोग मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास है। उनके इस सत्प्रयास को विद्वज्जगत् को सौंपते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है।

ओ. पी. सैनी
निदेशक

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शत्रुशल्यचरितम्

उत्तरार्द्धस्य विषयानुक्रमणिका

सर्गः	विषयः	पृष्ठम्
१३	शत्रुशल्याय: नालिकेरार्पणम्	१-१२
१४	शत्रुशल्यस्य विवाहप्रस्थानवर्णनम्	१३-३०
१५	वरयात्रावर्णनम्	३१-३९
१६	नायिकाङ्गवर्णनम्	४०-६३
१७	विवाहवर्णनम्	६४-७९
१८	वन्दिस्तुतिवर्णनम्	८०-९३
१९	वनविहारषड्ऋतुवर्णनम्	९४-११९
२०	रवीचीदेशग्रहणवर्णनम्	१२०-१३५
२१	शत्रुशल्यस्य राज्याभिषेकवर्णनम्	१३६-१४५
२२	शत्रुशल्यद्वारा देवगिरिग्रहणवर्णनम्	१४६-१५३
	शत्रुशल्यचरित प्रकाशिकाटीका	१५५-३६३

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

अथ शत्रुशल्यचरितमहाकाव्यम्

।। त्रयोदशः सर्गः ।।

आरूढः सदुदयमन्वहं स भास्वान्
स्वीयोद्यत्करविभवप्रकाशिताशः ।
श्रीरत्नक्षितिपनिषिक्तयौवराज्य-
स्तेजांसि व्यजयत तत्क्षणात्परेषाम् ।।१।।

आक्रामन्निजभुजतेजसांऽजसाऽसौ
दुर्वीरान् विदधदपि प्रजासु नीतिम् ।
स्वाधीनामपि वसुधामनीतियुक्ता-
मश्रान्तं रचयति चित्रमुच्चकैस्तत् ।।२।।

यस्यासीत्कालिविकलश्रियः पुनर्भू
संङ्गोऽसौ भवतु नलः कथं नयज्ञः ।
[1]शत्रूणामपि शमयन् पुनर्भुवा यः
संस्पर्शं कथमनयं सहेत भूपः ।।३।।

एतस्मिन् भुवि समवर्तिनि प्रजानां
दुष्टानां दमितरि राज्ञि दण्डधारे ।
अत्युच्चैरपचितचण्डतापसम्पत्-
सम्पन्ना जयति परं हि दक्षिणाशा ।।४।।

नैतस्य श्रुतय इवोल्लसन्निघाताः
काणादोक्तय इव नापि चार्थलुब्धाः ।
गम्भीरा गिर इव नो महाकवीनां
बक्रोक्तिप्रवणतराःप्रजा अभूवन् ।।५।।

सांख्यानामिव नृपतेरमुष्य नीति-
र्नाशास्ते प्रकृतिलयं कदाचनापि ।
नो नैयायिकमतवच्च कार्यजाते
ऽदृष्टं वा प्रथयति साधनं कदापि ।।६।।

एतस्मिन् क्षितिभुजि भोजजैत्रकीर्तौ
दानाम्भःसमुपचिता धुनी धुनिते ।

1 A शत्रूणामपि विनिहन्ति यः पुनर्भूः संस्पर्शं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संस्थास्नुं सुचिरमतिप्रवृद्धमूलं
दारिद्र्यद्रुममुपकूलगं बुधानाम् ।।७।।

वीरेऽस्मिन्नुपदिशति प्रजासु धर्मं
धर्मज्ञे विदधाति नो तपांसि के के ।
अस्याहो यदतिकृशा वने वसन्तो
निःसङ्गा दधति तपस्वितां द्विषोऽपि ।।८।।

राज्ञीह प्रणयति सन्नयं विवस्वा-
नारोहत्यहह तुलां प्रयातकन्यः ।
किञ्चापि प्रतिदिवसे हुताशशुद्धिः
संदृष्टा किल कनके न तु प्रजानाम् ।।९।।

स्वौजोभिर्भुवमकुतोभयाममुष्मिन्
स्तन्वाने दलयति दस्यु सङ्घमाशु ।
अस्याङ्कच्छविरहहाक्ष्य भाति चित्रं
वामाक्षीसुहृदयपश्यतोहरैका ।।१०।।

एतैन स्वकचरितैः सपत्ननाम-
वार्ताया अपि विलये कृते त्रिलोक्याम् ।
नैवासीत् क्वचिदपि विग्रहः प्रजानां
राज्ञोऽस्य प्रविहरतो विना मृगव्यम् ।।११।।

वैशेषी श्रुतिरिव नापवाददोषा
सामान्यं वचनमथोद्धतं द्विषन्ती ।
सत्कर्माचरणलसद्विधानचुञ्चु-
र्वीरेण द्रुतममुना प्रजा व्यधायि ।।१२।।

धर्म्यैतच्चरितत्वयोपदिष्टवर्त्मा
नासत्याश्रितहृदयाऽश्विनीव धन्या ।
सत्कद्रूरिव नकुलद्रुहां विधात्री
वीरेऽस्मिन् नृपतिवरे प्रजा विभाति ।।१३।।

काशीव स्फुरितमहेशचारुसौधा-
ऽयोध्येव प्रवरलसत्सुशीलरामा ।
सद्वृन्दावनधरणीव राजतेऽस्मिन्
संस्फूर्जत्तमपुरुषोत्तमाऽद्य बुन्दी ।।१४।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

एतस्मिन् पिशुननिवारके विचित्रं
सद्बुन्दीवरनगरी गरीयसीयम् ।
सद्रथ्याकलकलसङ्कुलानिशीथे
ऽप्यत्युच्चैरिह कलहं दिवा करोति ॥१५॥

दुःपाटच्चरदरहारिसच्चरित्रैः
सम्राजाद्द्रुतममुना गृहा धरण्याम् ।
रात्रावप्यररयुगापिधानहीनां
Aगीर्वाणा इव विनिमेषिणः प्रणीता[1] ॥१६॥

राज्ञोऽस्य प्रवरनयः प्रजा इवोच्चैः
सद्धर्मे सुकविजनानजिग्रहत्किम् ।
अस्यैषामनुगृणतां गुणान् रसज्ञा
यत्सत्यं श्रुतिरिव न त्यजत्यजस्रम् ॥१७॥

धर्माणामपि स निसर्गजं विरोधं
शत्रूणामिव चरितैरमोचयत् किम् ।
जेताऽयं जयतितमां सुभीमसौम्यैः
शीलैः स्वैर्यदहितदो हितप्रदश्च ॥१८॥

अर्थिभ्यो धनमनिशं दिशन् यथाऽयं
संयच्छत्यतिनिधनं दरिद्रतायै ।
स्वीयानामयमिव साम्प्रतं तथा किं
शत्रूणां निरयमयं दधाति शीघ्रम् ॥१९॥

कीर्तिन्दुद्युतिविमलीकृतार्धभागा
अन्यत्र द्विषदयशोऽन्धकारभाजः ।
वीरोऽयं स बहुतिथास्तिथीरपीशो
विज्ञानां प्रथममतोऽष्टमीं विधत्ते ॥२०॥

सर्वान्तःकरणवशीकृतिप्रतीता
गम्भीरा श्रुतिरिव नीतिरीतिरस्य ।
विश्वासस्थितिरिव सम्प्रहर्षिणीयं
भूदेव्याः सकलनृपान् किलातिशेते ॥२१॥

पाठान्तरम्—

1 A गीर्वाणाइव विनिमेषणाः प्रणीताः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अथ गुणगणमस्यागण्यमाकर्ण्य तूर्णं
नृपदलपतिनामा राष्ट्रधृग्वंशजन्मा ।
कुलगुरुमतिमान्यं वाग्मिनामग्रगण्यं
निजदुहितरमस्मै प्राहिणोदाशु दातुम् ।।२२।।

अतिसमुचितमुच्चैश्चिन्तयँश्चारुचित्तं
नृपदलपतिनाम्नः सत्पुरोधा निदेशम् ।
रयजितपवमानं सोऽश्वमारुह्य मान्यो
विजयिनि सुमुहूर्ते तुष्टचेताःप्रतस्थे ।।२३।।

सरससरसिजास्या सारसारङ्गचक्षु-
र्विकचलकुचचञ्चत्सत्कुचा चारुगात्री ।
तिलककलितभाला तेन बाला सुचैला
पथि पथिक सुसिद्धेः शंसिकातूर्णमैक्षी ।।२४।।

अभिनवनिजवासप्रेमभूम्ना सुभूयो-
विलसदमृतमुग्धा दुग्धधारां स्रवन्ति ।
घनकुचपरिणाहात् स्पन्दमानाऽतिमन्दं
सुरभिरतिसिताङ्गी तस्य दृग्गोचरोऽभूत ।।२५।।

इति पथि कथिताशुप्रार्थितार्थीयसिद्धे
र्व्रजति बत न बुन्दीं यावदेतस्य काम ।
तरलतरसुगत्या खञ्जयन्मारुतीयं
रयमपि हयराजः प्राप तावत्पुरीं ताम् ।।२६।।

तरलतरतरङ्गासङ्गिसद्गन्धवाह-
प्रशमितपरिखेद स्वेदबिन्दुः सुदूरात् ।
अमलकमलकोषामोदमाद्यद्द्विरेफो
दृगतिथिरथ जज्ञे सञ्जयत्सागरोऽस्य[1] ।।२७।।

वरमरकतरत्नाबद्धसोपानमार्ग-
प्रतिफलितमयूखाञ्छैवलव्याजतोऽन्तः ।

---

1. A दृग्गोचराऽऽसीत् This reading is incorrect as गोचरः is पुंल्लिग and does not change its gender even when used as an adjective of a noun with a different gender. (See Sanskrit Commentary on this verse).

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अविरतरतखेदामन्दनिष्यन्दहंसी-
श्रितपरिसरभूमिः सन्ततं यो बिभर्ति ॥२८॥

अतिमहति जयन्ते तत्र कासारसारे
कृतसदभिषवोऽसौ प्राणवायुं निरुध्य ।
रुचिरकरसरोजालम्बिरोलम्बतुल्यां
दधदथ वररुद्राक्षस्रजं सन्निदध्यौ ॥२९॥ (युग्मम्)

अविलसदघमर्षोन्मृष्टतापत्रयोऽसौ
षडधिकदशनाडीसंयतः स्वान्तलीनः ।
निजहृदिसुपवित्रं चारु साविश्रभोजः
सततमथ दधानो मन्त्रपूतो व्यराजत् ॥३०॥

अथ सकल मुषस्येवाह्निकं कर्म कृत्वा
त्रिजगति वरपुर्यां विप्रवर्यः स बुन्द्याम् ।
दृढनियमितचक्षुः शत्रुशल्यीयवीक्षा-
तरलितहृदयोऽपि प्राव्रजन्मन्दमन्दम् ॥३१॥

कलरवमनुगायन्नर्तकीनृत्यनृत्य
न्नयनजनसमूहैः सङ्कुलाःपण्यवीथीः ।
पणिविततसुपण्यागण्यमाणिक्यहीरा-
दिकमणिरमणीया एष पश्यन्न शङ्कम् ॥३२॥

क्वचिदपि पणिपण्यानर्घ्यवस्त्राहृताक्षः
कुहचिदतिमहद्भिर्मन्दिरे मन्दिताक्षः ।
अहमहमिकयोच्चैः क्वापि वादैर्बुधानां
भृशविवशितकर्णोऽभ्यर्णराजालयोऽभूत् ॥३३॥ (युग्मम्)

अथ विततसुनासादारुगारुत्मनीय
च्छविषु तरुणदूर्वाशङ्किकेलीकुरङ्गम् ।
अरुणमणिविराजत्साच्छलांशच्छलेन
च्छुरितधुसृणपङ्कद्वारमुच्चैर्दधानम् ॥३४॥

चरणपतनपातानेकराजन्यमान्य-
द्विरदरथतुरङ्गव्याप्तसद्द्वारदेशम् ।
पटुरटदतिवन्द्यातोद्यवाद्यापदेश
प्रतिपदगदितस्वस्वामिसंस्फीतकीर्तिम् ॥३५॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मदकलकरिवृन्दस्यन्दिदानाम्बुपूरै-
र्विफलितजलसेकप्राङ्गणोदारभूमिम् ।
मदपरिमललुभ्यन्मञ्जुगुञ्जद्द्विरेफ
प्रविततकलरागोत्तुङ्गसङ्गीतरीतिम् ॥३६॥

कनकखचितभित्तिप्रस्फुरत्पिञ्जराभ
प्रसृमरकिरणौघैर्ध्यानयोगादिवोच्चैः ।
नृपमहितनिजेशध्येयपीताम्बरस्य
स्वयमपि कलयन्तं चारु सारूप्यमाशु ॥३७॥

क्वचिदतिसितसौधोत्तुङ्गकुड्योपकार्या
च्छविवलितवलीकोल्लासिगारुत्मतानाम् ।
परिणतशुकभाभिर्भाभिरीशाद्रिशोभां
दधतमिह नितम्बालम्बिकादम्बिनीकाम् ॥३८॥

कृतिकृतकृतकोद्यात्सारकासारचारु-
प्रविततनलिकाग्रप्रोच्छलत्स्वच्छवाराम् ।
अनिलरयविदीर्यद्बिन्दुवृन्देषु मुक्ता-
भ्रममतिविदधानं केलिहंसव्रजस्य ॥३९॥

सितकरकरयोगस्यन्दिनिस्तन्द्रचन्द्रो
पलकलितनलीकप्रस्रुताम्भःप्रणाल्या ।
अतिमहिम-हिमानीमाननीयं भवानी
पितरमनुसरन्तं[1] झर्झरन्निर्झरौघम् ॥४०॥

मणिगणपरिघूर्णत्कान्तिकान्तोपकार्या-
ललितवलभिभागोत्तुङ्गवातायनेषु ।
प्रवरजवनिकानाम्मौक्तिकोदारभासां
मिषत इव हसन्तं वेश्म पौरन्दरन्तत् ॥४१॥

शुकगुरुगरुदश्मद्वासिगारुत्मतौघ-
प्रकटितवरशृङ्गत्तुङ्गपाथोदनीले ।
घनतमसि रजन्यां संस्थितायां सुगौर्या
मृगदृशि जनयन्तं विद्युतो भ्रान्तिमुच्चैः ॥४२॥

---

1. A पंतरमनुहरन्तं । B पतिरमनुसरन्तं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मधुररुचिपुरन्ध्रीस्नानकालावधूत-
प्रवरघुसृणपङ्कीयाङ्गरागाम्बुपीताः ।
परिमलमिलितालिव्रातिनीः सत्प्रणाली-
र्दधतमसितरत्नस्वर्णकुल्या इवोच्चैः ॥४३॥

वरमरकतहीराम्भोजरागादिरत्न-
प्रकरकलितहैमस्तम्भसम्भूतभाभिः ।
विफलितसुविचित्रानर्घ्यसद्रत्नकौघा-
ऽऽस्तृतिविविधविधानं सानु किं रत्नसानोः ॥४४॥

अतिविमलविराजन्सौधसद्भित्तिभाग-
प्रविरचित सुचित्र न्यस्तवस्तुप्रपञ्चम् ।
पुरुषमिव पुराणं नाल्पकल्पान्तकाल-
स्फुरदुदरदरीस्थोदारलोकत्रयीकम् ॥४५॥

अजिरततवितानोदञ्चिवैचित्र्यचित्र-
स्फुरदनिमिषनेत्रप्राणिजातच्छलेन ।
द्युत उपगतमुच्चैर्द्रष्टुमालीयशोभा-
मिव किल कलयन्तं वन्द्यवृन्दारकौघम् ॥४६॥

श्रुतिनिगदितसूक्तस्तोमचञ्चत्सुपञ्चा-
यतनभजनधूपोद्धूतसौरभ्यलुब्धैः ।
अलिभिरलघुनृत्यन्नर्तकस्पर्धयेव-
स्फुटकृतकलगानं बिभ्रतं देवसौधम् ॥४७॥

अमृतमधुरपिष्टक्षीरमांसप्रकार-
प्रकरसुपरिविष्टिश्रान्तसत्सूपकारम् ।
कृतजनभरणत्वात् स्वस्य विश्वम्भरत्वं
वददिव कलयन्तं वेश्म पाकस्य रम्यम् ॥४८॥

दधतमनिशमूर्ध्वं धोरणीनामधोऽपि[1]
द्विरदकुलमनल्पं चारुकारुप्रणीतम् ।
उपपरिसरखेललत्तुङ्गनागं सुविन्ध्या-
चलमिव समपश्यत्स द्विजो राजसौधम् ॥४९॥

(षोडशभिः कुलकम् ।)

---

1. A धारणीनामधोऽपि । B धोरणीनमधोऽपि

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नृपदलपतिवर्याचार्यं उच्चैः सवर्यां
परिषदमुपविष्टः सत्प्रतीहारदिष्टः ।
रुचिविभववयोभिः शत्रुशल्याविशेषान्
क्षणमजनि सुमुग्धस्संविलोक्य क्षितीशान् ॥५०॥

अथ चरणचतुष्काऽऽलम्बिसत्पद्मराग-
प्रकरतरुणरक्ताम्भोजभव्यप्रमाणाम् ।
मिषत इह दधानं शत्रुशल्यीयचञ्चद्-
रुचिरचरिततुष्टक्षोणिचैतोऽनुरागम् ॥५१॥

कनककनदनेकाञ्चञ्चिरत्नोच्चरत्नो
च्चरितरुचिचयेनोद्भासमानं सुदूरात् ।
शिखरमिवसुराद्रेश्चारु सिहासनं तत्
प्रसभमतिशयानं स्वैर्महोभिर्महद्भिः ॥५२॥

दिनकरकुलवञ्चत्कीर्तिदुग्धाब्धिफेनै
रिव कलितमनेकैर्मौक्तिकैः कान्तिमद्भिः ।
तरुणतरणिदीप्तंस्वप्रतापं नु मूर्तं
शिरसि दधतमुच्चैः शातकुम्भातपत्रम् ॥५३॥

त्रिभुवनजयलक्ष्मीचारुगाढाऽङ्कपाली-
विलुलितवरमुक्तास्वच्छगुच्छोपमाभ्याम् ।
द्विगुणितनिजवंश्यस्वच्छकीर्तिस्रवन्ती
युगसुभगझराभ्यां वीजितं चामराभ्याम् ॥५४॥

शिखरमिवे सुराद्रेश्चित्रितं रत्नपुञ्जैः
क्षितिविजयि निधानं क्षात्रधर्मस्य सद्यः ।
धरणिभरणदक्षे ब्रह्मणा हैममण्डं
निहितमिव किरीटं मूर्ध्नि बिभ्राणमुच्चैः ॥५५॥

मुरमथनविराजत्कीर्तिपीयूषपान
व्यतिकरपरिलग्नस्वच्छफेनोपमेन ।
विदधंतममलेन श्रोत्रयोर्मौक्तिकेन
स्वमुखरुचिसमुद्रव्यक्तसच्छुक्तिशोभाम् ॥५६॥

वसिवलपितकम्बुस्पर्धिकण्ठावनद्ध-
स्फुरदसितसुरत्नोरःस्थलस्यांशुलक्ष्यात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रविलसदतसीयस्मेरपुष्पातिनीलं
महह इव महदन्तःसंस्थमुद्भासयन्तम् ।।५७।।

गुणकलितसुवृत्तस्वच्छपीयूषबिन्दु-
प्रतिमललितमुक्ताहारहारिप्रभेण ।
कनकनिकषगौरस्वोरसा स्वर्णशैलं
चिरमतितिरयन्तं चित्रनक्षत्रमालम् ।।५८।।

चतुरुदधिभरार्त्तक्षोणिधुर्यस्वबाहौ
सदरुणमणिचूर्णच्चारुकेयूरकान्त्या ।
परिणतपरवंशारण्यदाहप्रचण्डं
ज्वलितमिव वहन्तं स्वप्रतापाग्निमुच्चैः ।।५९।।

निजभुजयुगसर्पद्दर्पनोऽधंभविष्णु
द्विषदवनिपवृन्दाक्रान्तिविक्रान्तचक्रम् ।
निहितमिव विधात्रा चित्ररत्नं दधानं
कनककनितमुच्चैः[1] कङ्कणं पाणिमूले ।।६०।।

परमधिकरशाखं प्रेङ्खवदुत्सङ्खव्यवज्रा-
ऽरुणमणियुतमुद्रापाटलत्विट् पटल्या ।
अधिनिजकरपद्मं शत्रुजैत्रौ सहोत्थौ
दधतमिव चिरेण प्रौढ कीर्तिप्रतापौ ।।६१।।

प्रवरविबुधवृन्दोदारदारिद्र्यदीर्घ-
ज्वरहरणसुसिद्धां मन्त्रसिद्धिं धुरीणाम् ।
निजजनकृतभद्रां द्राक्प्रविद्राविताम्-
क्षितिपतिकुलनिद्रां चारुमुद्रां दधानम् ।।६२।।

सितरुचिरुचिचञ्चच्चीनचेलीयचोल-
च्छलत इह दधानं स्वीयकीर्त्यङ्गरागम् ।
कनकरचिततन्तूष्णीषनिष्णातशीर्षं
स्फुदुरुतर चित्रोर्णांशुकं प्रोर्णुवानम् ।।६३।।

इति रचितविभूषं भूषणानां स्वलक्ष्म्या
हरमिव परिलूनोत्सर्पिकन्दर्पदर्पम् ।

---

1 A कनककनिकमुच्चौः B कनकरचितमुच्चैः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कविगदितमिवोच्चैश्चारुवृत्ताभिरामं
तरणिमिव महीभृन्मस्तकन्यस्तपादम् ॥६४॥

वनमिव धृतखड्गं तुङ्गवंशाभिरामं
शरभुवमिव नित्यस्वान्तिकस्योग्रशक्तिम्
जलदमिव सदुद्यज्जीवनं सानुगञ्च
त्रिदिवमिव विराजत्काव्यभास्वद्बुधोघम् ॥६५॥

वृकजठरमिवोक्ष्यन्मागधोदारदानं
कुरुपतिमिव तूर्णं कर्णविश्रान्तनेत्रम् ।
सितकरमिव चञ्चत्सत्कलानांकलापैः
कृतकुवलयतोषं वैरिपद्मान्तदञ्च ॥६६॥

भुवनभवनचित्रैः सौम्यभीमैश्चरित्रैः
सुहृदसुहृदमन्दानन्ददानावदातैः ।
सदमृतविषतुल्यैश्चारुशृङ्गारवीर-
द्वयमयमिव रम्यं धीर सम्मर्दमुच्चैः ॥६७॥

अवितुमवनिमेतां दोर्द्वयेनैव कृत्स्नां
पुरुषमिव पुराणं स्वीकृतस्वावतारम् ।
समनिशमनिमेषं स्वस्वसाहस्रमक्ष्णा-
मचकमत स पश्यञ्छत्रुशल्यं द्विजेन्द्रः ॥६८॥

(अष्टादशभिः कुलकम्)

विधिवदथ सपर्यामार्य एषोतिवर्या-
ममुत उचितमासाद्यार्घ्यपाद्यानवद्याम् ।
गुरुरिव विबुधेशाद्वन्द्यवृन्दावतीशा-
द्विजयमवनिपस्याशास्य मस्याशशंसे ॥६९॥

अथ वरतरदिल्ली वल्लभा कीर्तिवल्ली-
प्रविलसितवसन्ती भावुकोदारसारम् ।
नृपतिमुकुटरत्नं रत्नराजं तदम्बा-
मपि परमविलम्बाद्वर्यमापृच्छ्य कार्यम् ॥७०॥

मुखरितसकलाशाचक्रवाले विशाले
स्फुरति परित उच्चैश्चारुवादित्रवाद्ये ।
पठति च शुभमन्त्रान् विप्रवर्गे विचित्रान्
स्तुवति मगधलोके गोत्रवंशादिनाम ॥७१॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्विजवटुमिव चञ्चत्सच्छिखावद्धशीर्षं
सुहृदमिव सदांतःस्निग्धमुद्यद्रसञ्च ।
सुजनमिव सुवृत्तं सत्क्रियावेदकञ्चा-
ऽलिकमिव पतिवत्या मण्डितं कुङ्कुमेन ।।७२।।

फलमिव निजचेतः कामकल्पद्रुमोत्थं
तप इव परिपक्वं श्यामनाम्न्याः कुमार्याः[1] ।
न्यधित विधिवदुच्चैः शत्रुशल्यस्य सद्यो
नृप-दलप-पुरोधा अञ्जलौ नारिकेलम् ।।७३।।

(चतुर्भिः कलापकम्) ।

नृपदलपतिपुत्र्या मूर्त्त एवानुराग[2]-
फलमिदमतिशीघ्रं तस्य राज्ञः पुरस्तात् ।
प्रियमृतमपि कामं शंसतीत्यर्थवतार्थं
ध्रुवमजनि तदानीं नालिकेरं त्रिलोक्याम् ।।७४।।

पुनरगददथाऽयं देव दिष्ट्याऽद्य पुण्यै-
र्नृपदलपतिपुत्री सुन्दरोदारगात्री ।
मलयगिरिसमुत्था ताम्रपर्णीव सिन्धुं
स्वसदृशमिह नाथं त्वामवाप्तुं दुरापम् ।।७५।।

विधिविलसितमेतत् किं न आशीर्विवर्तः[3]
समगुणमहिमा वा यन्मिथःसङ्गतौ वाम् ।
लसदुचितसुहृत्ताजात वैयात्यतो यद्-
विवदिषुरहमस्मि अव्ययमेव त्वया तत् ।।७६।।

दलपतिदुहितेयं शीलसौन्दर्ययुक्ता
पितरमिव चिरं मां वत्सलं संविधत्ते ।
तदिह नृप समौ नौ त्वं तथा कर्तुमर्हः
श्रयति तव यथा यौ मालिनी प्रीतिरद्य ।।७७।।

---

1. A. श्यामनाम्न्याः कुमार्याः B. मेदिनीपालपुत्र्याः ।
2. A. मूर्तमेवानुरागं B. मूर्त एवानुरागः ।
3. A. किं ममाशीर्विवर्तः B. किं नआशीर्विवर्तः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शरदिन्दुसुन्दरमुखीं वररूपां
नवनन्दिनीं[1] दलपतेर्भवतोऽद्य ।
सहचारिणीं विरचयन्नयमुच्चै-
श्चतुराननो वहति नाम यथार्थम् ।।७८।।

इति तं वचनामृतसेकभरैः
परितोटकमात्ममनोदवथोः ।
दलपीयसुताविषमेषुभुवो
विससर्ज गभीरमतिर्नृपतिः ।।७९।।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य सत्-
काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते श्रीनालिकेरार्पणम् ।।८०।।

(इति श्रीविश्वनाथकविकृतमहाकाव्ये शत्रुशल्यचरिते
नालिकेरार्पणं नाम त्रयोदशः सर्गः ।

1. A. ननुनन्दिनीं B. नयनन्दिनीं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ चतुर्दशः सर्गः ॥

श्रीनालिकेरार्पणतो विदन्नयं
तां प्राप्तकल्पामपि लोललोचनाम् ।
तत्प्रीतिमाध्वीकमदेन घूर्णितः
कल्पीयति स्माशु विवाहलग्नकम् ॥१॥

त्रैलोक्यजैत्रैक-चरित्रचित्रितं
तत्रान्तरेऽमुं नृपतिं रतीश्वरः ।
जेतुं वपुःकान्तिजितोऽपि शात्रवा-
दारोहदह्नाय मनोरथं रथम् ॥२॥

आलोक्य कामप्रदचारुलोचनं
सद्भोगिभोगाङ्कितमूर्तिमुच्चकैः ।
ईशं किलामुं मदनः ससाध्वसः
साशङ्कमाधत्त शराञ्शरासने[1] ॥३॥

एतज्जयार्थं सहसास साहसी
भूभृत्सुतां तां शरणं श्रितः किमु ।
जेतुं बतामुं चतुरङ्गशासक
मेकोऽप्यनङ्गोऽप्ययमीहतेऽद्यत् ॥४॥

श्यामाभिधानामबलामपि स्मरः
शक्तिं बलाह्वां किमलम्भि वेधसा ।
भ्रूभङ्गदग्धः स कपालिनोऽप्यहो
अस्य व्यवस्येत्कथमन्यथा जये ॥५॥

उद्यच्छतोऽस्याद्य जये मनोभुवो
वज्रायितं पुष्पमयैरपीषुभिः ।
भेद्यं न कस्यापि विभिद्य भूपते-
र्यैर्धैर्यवर्मापि हृदप्यभिद्यत ॥६॥

मन्ये मनोजो विषचारुवीरुधां
पुष्पप्रणीतैर्विशिखैरमुं नृपम् ।

---

1. A. शराञ्शरासने B. शराञ्छरासने ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विव्याध निर्व्याजमहो महाशयो-
ऽप्येषोऽद्य मुह्यत्यचिरादधीरवत् ॥७॥

आपाण्डुगण्डस्थलमण्डितः क्षिते-
राखण्डलोऽयं स्मरबाणखण्डितः ।
उत्तुङ्गवक्षोजघने विविक्षया
श्यामा हृदि स्वस्य ततान तानवम् ॥८॥

मातिस्म यस्मिन् प्रलयोपसंहृत-
त्रैलोक्य उच्चैर्हृदयेऽस्य माधवः ।
तत्राऽप्यमान्तः पुलकच्छलाद्बहिः
कान्तानुरागाः प्रसभं विनिर्गताः ॥९॥

उष्णे विनिःश्वस्य सुदूनमानसः
नृपःस कान्ताकर पीडनोत्सुक[1] ।
आपृच्छति स्म स्वजनान्पुनः पुनः
पाणिग्रहाहं दलपाङ्गजन्मनः ॥१०॥

तद्देहसौभाग्यमयं यथा यथा
संश्रावितो हन्त रहश्चरैश्चरैः ।
चेतोभुवो बाणविषं तथा तथा
गात्रे बताऽस्य प्रसृतं महीपतेः ॥११॥

वेदप्रसिद्धाज्ज्वलनादपां जनिः
सत्याऽद्य तावत्क्रियतेऽम्बुजन्मभिः ।
चित्रं निमित्तीयगुणानुहारिभि
र्ज्वालायितं यैस्तरसैतदङ्गके ॥१२॥

वामं निकामं बत दक्षिणानिलं
लिप्तं न सारं घनसारमङ्गके ।
चान्द्रीं रुचं द्रागपि वाडवीं शिखां
हारं स भारं मनुते स्म भूपतिः ॥१३॥

---

1. A. कान्ताकरग्राहसमुत्सुकोनृपः । B. नृपः स कान्ताकरपीडनोत्सुकः ॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धीरेण धैर्योपलसेतुना यदा
रोद्धुं रयं नालमभून्मनोभुवः ।
उत्सृष्टसामन्तगणस्तदा जवा-
देकान्तहर्म्यं सखिभिर्नृपोऽव्रजत् ॥१४॥

स्मारं ज्वरं चेतसि बिभ्रतः परं
जाताऽरतिस्तस्य हितेऽपि वस्तुनि ।
मित्रैरथैतस्य सुखं विधित्सुभि-
श्चित्र हि पथ्यद्रुतमन्वमन्यत ॥१५॥

शिक्षाप्रकर्षापरिहीणसंलसत्-
त्रैलोक्यविज्ञानकलेन कारुणा ।
केनापि चित्रं त्रसदेणचक्षुषो
राज्ञः पुरस्तादुपदीकृतं तदा ॥१६॥

लोकत्रयी यौवनकान्तिभिर्जलैः
शृङ्गारमार्द्रीकृतममत्र कज्जलम् ।
कामद्रुमस्याङ्कुरमेव लेखनीं
तच्चित्रनिर्माणविधाववैम्यहम् ॥१७॥

वाष्पाम्बुविप्लावितलोचनश्चिरं
सस्तम्भगात्रः स धृताङ्गवेपथुः ।
स्मारं ज्वरं नूतनमेव संवहँ-
श्चित्रादमुष्मादुदमाद्यदुच्चकैः ॥१८॥

चित्रे चकोरीनयनां विलोकयँ-
श्चाटूनि कुर्वंश्चटुलानिकोटिशः ।
तामब्रुवाणां नृप एष मानिनी-
माशङ्क्य मूर्ध्ना स्पृशति स्म तत्पदे ॥१९॥

मोघक्रियोऽसावुदभूद्यदा स्वयं
तन्मानहाने रिपुमानहानिदः ।
उन्मादमासाद्य तदा विषादवाँ-
श्चित्रार्पितां तां प्रति वाक्यमैरयत् ॥२०॥

मानं प्रिये मुञ्ज मयि प्रसीद च
स्वन्मात्रविश्रामगृहे पदानते ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

किञ्चाद्य सिञ्चाङ्गमनङ्गविप्लवं
वाचां प्रपञ्चेन सुधा मुधाकृता ॥२१॥

आलीव पालीं विपुला कपोलयो-
रापाण्डुता चुम्बति चारु मे चिरम् ।
स्वाधीनकान्तेव नितान्तमन्तिकं
धाराऽपि वारां न दृशोर्विमुञ्चति ॥२२॥

अङ्गान्यनङ्गाग्निशिखा सुखादरा-
त्तुङ्गासमालिङ्गति चाङ्गनेव मे ।
मूर्च्छाऽपि तुच्छेयमहो मुहुर्मुहुः
प्रौढेव गाढं मम गाहते मनः ॥२३॥

एतास्सपत्नीस्तव[1] वेद्यसंशयं
यस्मादकस्मान्मुदिता इमा मया ।
लब्ध्वान्तरं तावकमानसम्भवं
सर्वा रमन्ते सह पश्य साम्प्रतम् ॥२४॥

(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

जाग्रत्यहो पञ्चशरेऽद्य यामिके
स्तेनोद्यमानस्तवचित्तमन्दिरे ।
प्राप्तः कथं यद्वशतस्त्वयि प्रिये
नैव स्थितं मत्करुणाधनाणुना ॥२५॥

बाणी गुणौर्वैश्रवणे कथागणै-
र्नेत्रे भवद्रूपमयैर्हरिन्मुखैः ।
चेतस्त्वया चापहृतं तु मे प्रिये
जानामि तन्माननिदानमण्वपि ॥२६॥

स्वप्नेऽपि याऽऽश्लिष्य तु मानसं मम
त्वद्देहसौन्दर्यमदेन घूर्णितम् ।
हा हन्त सा चेदतिथिर्दृशोर्भवेत्
तन्वङ्गि नन्वद्य शपामि तत्त्वया ॥२७॥

---

1. A. एतास्सपत्न्यस्तव B. एतस्सपत्नीस्तव ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वामं प्रतीपं च यतीऽक्षिसुभ्रुवा
लोके प्रसिद्धं तद्दतं वतत्त्वयि ।
स्वप्नेऽप्यनागस्कृतति मद्दशे जने
वाम्यं प्रतीपत्वमुपैषि यद्दशा ॥२८॥

स्वप्ने शयानेन मनोरथाकृतिः
श्लिष्टासि किं त्वं श्लथबाहुबन्धनम् ।
सम्भाविता वाभिमुखं न किं मया
पार्श्वाभिवृत्तौ कुपिताऽसि यन्मयि ॥२९॥

एतद्भवा गोघनतो मनोधुनी
कालुष्यमुच्चैः श्रयतेऽद्य ते यदि ।
श्लेषेण गाढं कनकोपमे न मे
किन्नाम नैर्मल्यमियं श्रयिष्यते ॥३०॥

इन्यूचिवानेष विसार्य दोर्लते
यावत्समालिङ्गति मोहतः प्रियाम् ।
तावन्न कान्ता ननु चित्रमग्रतः
सख्येतिसाक्षेपमबोधि केनचित् ॥३१॥

उन्मादमाद्यद्द्विरदो महीशितुः
सख्युर्नियन्तुर्वचनाङ्कुशाहतः ।
एतस्य चेतः सरसीप्रदेशतः
कृच्छ्रान्निरक्रामदसौ शनैः शनैः[1] ॥३२॥

अत्रान्तरे तान्त्रिक एत्य पत्रिकां
भूमण्डलीमण्डनमाण्डुरात्पुरात् ।
श्यामाविवाहोत्सवसङ्घशम्भलीं
श्रीशत्रुशल्यस्य करे समार्पयत् ॥३३॥

कान्तावियोगज्वरदूनमुच्चकैः
सा राजहंसस्य किलास्य मानसम् ।

---

1. First Line is blurred in A mss, it is available in B as full text.
2. The variant reading is A 'निरक्रामत मन्दमन्दम्', which is faulty, as the metre here is इन्द्रवंशा and not इन्द्रवज्रा B कृच्छ्रान्निरक्रामदसौ शनैः शनैः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सञ्जीवयन्ती तरणेरिव प्रभा
खेदान्धकारं नचिरादशीशमत् ।।३४।।

निर्मन्दकन्दर्पदवाग्निदारुण–
ज्वालावलीढां सुदृढं वपुर्लताम् ।
आप्लावयन्तीव निपीडनस्रव–
च्चन्द्रांशुपीयूषमये महाह्रदे ।।३५।।

कर्पूरपूरैरिव लोचने चिरा–
दस्याञ्जयन्ती विरहाग्नितापिते ।
सापत्रिकाऽमानि करे धृताऽमुना
पुत्रीव साक्षाद् दलपक्षितीरितुः ।।३६।।

(युग्मम् ।)

देवांशतां स्वस्य वदान्निवेक्षणे
कृत्वाऽनिमेषे नृप एष हर्षतः ।
कान्ताकटाक्षेषु सपत्रितो नु किं
धुन्वञ्छिरो वाचयति स्म पत्रिकाम् ।।३७।।

वृन्दावतीन्द्रं दलपः स्वनामयं
पृष्ट्वाऽद्य विज्ञापयते मुदा युतः ।
आगामिनीतो दिवसे तु सप्तमे
त्वन्त्राकरिष्याम्यहमङ्गजामिति ।।३८।। (युग्मम् ।)

पीयूषपाथोधितुषारशीकरैः
सिक्तो नु रोमाञ्चचयं चयन्नयम् ।
तां वाचितामप्यसकृत्सुपत्रिका-
मानन्दमाध्वीकमदादवाचयत् ।।३९।।

एतन्मनःकैरवखेदकुञ्चिका
सद्यः प्रियाशाप्रसरप्रकाशिका ।
सा कौमुदीवाऽस्य वसुन्धरापते
रागाम्बुधिं वर्धयति स्म तत्क्षणात् ।।४०।।

नाथेन तेनाऽथ भुवो मुदां परं
सीमानमारूढवता नियोजितैः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

व्रज्या सुसज्जासचिवैर्विनिर्ममे
मण्डूरमुद्दिश्य बलस्य भूयसः ।।४१।।

दूराद्वलाह्वानकरप्लुतस्वर-
व्याकर्णनोद्भ्रान्तमनोभिरञ्जसा ।
प्रक्रान्तकार्याणि विहाय हेलया
सैन्यान्यसज्ज्यन्त तदाशु सैनिकैः ।।४२।।

उच्चान् पुरस्ताद्विनतान् परस्तात्
सुगन्धिनिःश्वासयुतायताननान् ।
श्वेतोच्चदन्तान् मधुपिङ्गलाक्षान्
भद्राभिधान् विंशतिसङ्ख्यपाणिजान् ।।४३।।

कूर्मोपमान्नित्यनिमीलिताक्षान्
रक्तान् करेणौ बहुरोमशौष्ठकान् ।
उद्रोमकुम्भांश्च सदैव मत्तान्
धीरान् सुमन्दान् प्रथितान् विशालान् ।।४४।।

त्वक्कर्णपादेषु तनू मुखे च
नीरोमकुम्भानतिदीर्घगात्रान् ।
नात्युच्चपुच्छानपि धावतो द्रुत
त्रस्तान् सदा लोलदृशो मृगाभिधान् ।।४५।।

प्रागुक्तदन्तावलमिश्रलक्षणान्
महत्तमांश्चापि (गलन्मदाननान्) ।
शारीरदैर्घ्येण महीधरैः समान्
मिश्रान् गजांश्चास्य ससज्जिरे जनाः ।।४६।।

भ्रातः पितर्मित्रवरेति पाणिना
साम्ना समाश्वास्य मदोत्कटान् गजान् ।
निर्धूय धूलीमभितोऽथ कौसुम-
स्नेहाम्भसा हस्तिपका अनेनिजुः ।।४७।।

आमुक्तमुक्तौघदुकूलसंलस-
त्पृष्ठा रणत्काञ्चनकिङ्किणीगणाः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सिन्दूरराजच्छिरसोऽथ यन्तृभि
श्चित्राङ्गरागैरुपचस्किरे गजाः ।।४८।।

अङ्गे तथैषां निरमायि यन्तृभि-
श्चित्राङ्गरागस्य निवेशकौशलम् ।
चित्रं विचित्राम्बरसम्वृतिश्रियो
गात्रे यथेभैर्विभराम्बभूविरे ।।४९।।

ते चारुचामीकरमण्डिता गजा-
श्चित्राङ्गरागा मदवारिवर्षिणः ।
धातुद्रवश्रीहरितालशालितं
शैलं लसन्निर्झरमन्वकुर्वत ।।५०।।

केचिच्छिलाश्यामलकायकान्तयो
वंहीयसा बृंहितकेन बन्धुराः ।
ऊर्ध्वं ललत्पीतपताकिका गजा
विद्युद्विलोलाञ्जहसुः पयोमुचः ।।५१।।

उद्यन्मदा अप्यतिसौम्यगामिनः
किञ्चित्समाकुञ्चितपादमञ्जसा ।
भूमौ निषण्णाः सुनिषादिशब्दितैः
पृष्ठेष्वधुः सत्करिणो नृपासनम् ।।५२।।

उत्क्षेपकाग्नेसुयन्त्रयन्त्रणां
तीक्ष्णां सृणिं चाप्यवमत्य दारुणाः
दन्तावलाः केऽपि मदोत्कटा भटा
भीमा इवाऽऽसुर्न वशे निषादिनाम् ।।५३।।

मत्ता इभास्तेऽथ निषादिसज्जिताः
कृच्छ्रात्समुन्मोचितपादबन्धनाः ।
एतैरनीयन्त करेणुमध्यगा
राजप्रतीहारभुवं शनैः शनैः ।।५४।।

---

1. A. The mss has लसन्निर्झरमन्वकुर्वत् i. e. a. परस्मैपदी form, but metre-demands its आत्मनेपदी form i. e. o. 'मन्वकुर्वत' which is the correct reading available is mss. B,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पार्श्वद्वयोल्लोलदुकूलवाससा
संवीतगात्रा बहुधातुरञ्जिताः ।
यान्तः सलीलं करिणो जनैः पुनः
संरूढपक्षा गिरयोऽनुमेनिरे ।।५५।।

याताः पुरोऽनु ज्वलनास्त्रधारिभि-
र्दूरात्समुत्सारितलोकसङ्घकैः ।
विद्रावयामासुरितस्ततो जनान्
रथ्यागतानस्य नृपस्य दन्तिनः ।।५६।।

अल्पायसे किन्ननुभोऽद्य नर्तने
क्रोधादितीव स्वखुरैर्मुहुर्मुहुः ।
लोकत्रयीलङ्घनकर्मकार्मणै-
राकुट्टयन्तोऽतिमहन्महीतलम् ।।५७।।

एते स्वरंहोजितवायुरंहसो
नोड्डीय गच्छेयुरितीव शङ्कया ।
अभ्यर्णलोकेन दृढं नियन्त्रिताः
कौशेयरश्मिप्रकरैः पदद्वये ।।५८।।

आवक्रपुच्छं परिधापितोल्लसत्-
क्षौमीयवस्त्रैरनुजानुलम्बिभिः ।
आलूनपक्षा मुनिनाऽपि तत्क्षणात्
संवृद्धपक्षा इव भाविता जनैः ।।५९।।

स्वीयातिवेगप्रतियोगितां गतौ
बुद्धौ कवीनां बत चित्रमारुतौ ।
देहानुरूपान्नितिलोलवालधि
क्षेपादिवाक्षिप्य विभान्त उच्चकैः ।।६०।।

दिक्चक्रमाक्रान्तवतां तु नःक्रमे
किंनाम तावद्बत मेदिनी भवेत् ।

---

1. A, किन्नतुतोऽ नर्तने । B- किन्ननु भोद्य नर्तने ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

साऽप्यब्दिभिः शङ्खलितेतिविस्मया[1]
दन्तर्हसन्तः सितदन्तभामिषात् ॥६१॥

दिङ्मण्डलीमण्डनलाघवं लघु
ख्यातुं स्वभर्तुः पुरमुत्सुका इव ।
प्रोथाधरोष्ठस्फुरणातिबन्धुरं
संह्रेषमाणा[2] वलितोरुकन्धरम् ॥६२॥

उत्तुङ्गमातङ्गमहीधराऽऽकुल-
प्रत्यर्थिकान्तारविगाहनोद्धुराः ।
सत्कन्धरोद्भासुरकेसरा त्विषा
सैंहीं प्रसह्य प्रतियोगितां गताः ॥६३॥

उत्फुल्लवक्त्राः समसंवृतोष्ठकाः
कुन्दाभदन्ताः परिरक्तकाकुदाः ।
उत्तुङ्गघोणाः सुललाटपट्टिकाः
सम्फुल्लपद्मोपमपक्ष्मलेक्षणाः ॥६४॥

रम्यस्तुका[3]स्तीक्ष्णतरश्रुतिद्वया
मांसोल्लसत्स्कन्धसुतुङ्गकन्धराः ।
पीनोरसो मांसलवृत्तबाहवो
वातायुजङ्घाः सुनिमग्नजानवः ॥६५॥

सुस्तब्धकूर्चाः समचारुकुष्ठिका :
कूर्मोन्नमच्चारुखुरा महाबलाः ।

---

1. The mss A has शृङ्खलितेमिविस्मया O, which is meaningless hence we have replaced it as O तिविस्मया O, possibly. The correct reading also attested by B.
2. A Mss. has सह्रेषमाणाः, but the compounded form of ह्रेषमाणा with सह is incorrect, hence we have taken संह्रेषमाणाः as an adjective of 'the horses (तुरगाः), when सम् is prefixed in संह्रेषमाणाः, meaning 'neighing loudly' Which is also attested by B Mss.
3. Mss has रम्यस्तुवाः which is meaningless; hence we have replaced the reading as रम्यस्तुकाः having beautiful knot or braid of hair on the heads रम्याःस्तुकाः येषांते (तुरगाः) both Mss. A and B like स्तुव reading but Sub. dictionaries have the word स्तुक for braid of hair on the head.'

CC-0. RQRI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संलग्नवंशानतपृष्ठमण्डिताः
पीनोल्लसच्छ्रोणियुता लघूदराः ।।६६।।

रन्ध्रोपरन्ध्रस्थलसम्भृतिश्रिया
प्रदक्षिणावर्तविराजिशुक्तिभिः
सम्पन्नभास्वन्मणिरोचमानकै-
र्लक्ष्मीं दधाना इव चारु सैन्धवीम् ।।६७।।

कर्पूरशैला इव केचिदुज्ज्वलाः
किञ्जल्कराजत्तनुकान्तयः परे ।
अन्ये लसत्कोकनदोपमत्विषो
नीलोत्पलोत्फुल्लरुचस्तथापरे ।।६८।।

सद्राजहंसा इति खञ्जना इति
श्रीचक्रवाका इति कुक्कुटा इति ।
शारीरतत्तद्वरवर्णसम्पदा-
योग्यानि नामानि वराणि बिभ्रतः ।।६९।।

धूपा इव वृत्तदशाङ्गशोभिनो
वैद्या इवाष्टाङ्गसुदीर्घितश्रियः ।
मेघावसानौषधिसङ्घका इव
स्निग्धं दधानाः प्रवरञ्च पञ्चकम् ।।७०।।

केचित्सुरत्नप्रकरा इवोदधे-
र्लब्धावतारा इतरे वनायुजाः ।
सत्पारसीका अपरे च वाह्लिकाः
काम्बोजकाः केचन ताजिकोद्भवाः ।।७१।।

केचिच्छरच्चन्द्रसुचारुपुण्ड्रक-
व्याजाद् यशस्सत्तिलकैरलङ्कृताः ।
श्रीवत्सयुक्ता इतरे हरेरिव
श्रीवेश्मवक्षःसुषमाञ्च बिभ्रतः ।।७२।।

सल्लक्षणाऽलङ्कृतदेहसम्पदा
मन्दीकृतोच्चैःश्रवसः स्वरंहसा ।
उद्भासयतो वरमन्दुरोदरं
लोकेन तूर्णं तुरगाः ससज्जिरे ।।७३।।

(सप्तदशभिः कुलकम् ।)

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उद्वृन्तयन्त्रेणविनीतकण्डवो
निर्णिक्तगात्रोल्लसदङ्गरागकाः ।
रत्नावलीकीलितहेमनिर्मितैः
पल्याणकैस्तेऽथ जनैर्ममण्डिरे ।।७४।।

प्रेङ्खत्सुरत्नांशुखलीनयन्त्रिता
नृत्यन्त उत्क्षिप्तपदाग्रबन्धुरम् ।
क्षौमोल्लसत्प्रग्रहपाणिभिर्जनै-
रानिन्यिरेऽमी नृपमन्दिरान्तिकम् ।।७५।।

संह्लेषमाणैरभिकैस्तुरङ्गमैः
पादाग्रविक्षेपणचाटुवीक्षिताः[1]
वाम्योऽतिरम्याकृतयोऽपि सज्जिता
लोकैरनीयन्त महीपमन्दिरम् ।।७६।।

कान्ता इवोन्निम्नसुनाभिमण्डलाः
कासारदेशा इव चारुचक्रका: ।
अश्वैर्वृषैश्चापि नियुज्य सद्रथा
द्वारप्रदेशं गमयाम्बभूविरे ।।७७।।

धर्मक्रियेवाङ्घ्रिचतुस्कशोभिनी
साध्वी पुरन्ध्रीव सुवंशधारिणी ।
सत्काव्यनव्योक्तिरिवात्यलङ्कृता
सानन्दमेवाशु सुधीवरैर्धृता ।।७८।।

सल्लोकमैत्रीवगुणानुषङ्गिणी
विद्वत्कथेवातिसुवर्णसंस्थिता ।
कुल्याङ्गनेव प्रवराम्बरावृता
द्वारे विरेजे शिविकाऽपि सज्जिता ।।७९।। (युग्मम् ।)

आरुह्य कैचित्करिणो महीयसो
द्वैथांस्तुरङ्गानितरे तरस्विनः ।

---

1. The earlier reading in Mss. A, is पादाग्रटापोत्कटचाटुवीक्षितः corrected in the mss. itself as पादाग्रविक्षेपण etc. also accepted by Mss. B.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजन्यमान्या इतरे वरान् रथान्
रथ्याध्वना राजगृहाय: निर्ययु ।।८०।।

पाणौ दधाना: सशरं शरासनं
सन्मण्डलाग्रस्फुरदुग्रपाणय: ।
कक्ष्याविनिक्षिप्तविशालनालिका:[1]
पारेपरार्द्ध प्रययुश्च पत्तय: ।।८१।।

राज्ञोऽस्य जज्ञे प्रतिहारभू: क्षणा–
दर्वावलीपादजधूलिधूसरा[2] ।
मात्यद्द्विपानामथ सन्ततस्रवद्–
दानाम्बुपूरैरतिपङ्किलाऽभवत् ।।८२।।

पृथ्वीन्द्रवंशाम्बुधिजन्मना नृणां
मानानुपूर्व्या विधिवन्निषेदुषाम् ।
शस्त्रौघसङ्घट्टनजातनि:स्वनै:
श्रीशत्रुशल्येशसभावभौतमाम् ।।८३।।

अङ्गीकृतगमनोचितमङ्गलवेषैर्विशेषिताङ्गश्री: ।
वृन्दीशितुरतिरेजे, चतुरा चतुरङ्गिणी द्वारे ।।८४।।

विषमविलोचनलोचन–विरोचनार्चि:सुचोरिताङ्गस्य ।
अंशा इव कुसुमेषोस्तद्राजन्या अराजन्त ।।८५।।

सेनामानाती (तां) भर्तुर्यात्रां प्रतीक्षमाणान्ताम् ।
विनता: प्रधाननिवहा:शशंसुरीशाय नत्वाशु ।।८६।।

अधरितमधुमाधुर्यां धुर्यां तद्वाचमेष आचामन् ।
स्वयमपि सम्मदमत्तो वेषमधारीद्विवहियम् ।।८७।।

---

1. The earlier A mss. reading is कण्ठे विनिक्षिप्तविशाल etc., which has been corrected to कक्ष्याविनिक्षिप्त etc. in the mss. itself also accepted by mss. B.
2. The earlier A mss. reading is अर्वावलीष्टापजधूलि etc. corrected as a variant reading अर्वावलीपादज etc. in the mss. itself also accepted by mss. B.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनुपधिमधुरच्छाये काये राज्ञोऽस्य भूषणन्यासः ।
चर्वितचर्वणसाम्यं न कथङ्कारं व्रजत्युच्चैः ॥८८॥

सुमसृणघुसृणारतैः संवीताङ्गोऽयमम्बरैरीशः ।
भाति स्म कामतप्तो दधदिव कालीयकालेपम् ॥८९॥

इति कलयन्नयमङ्गेऽनङ्गश्रीगर्वभङ्गदः कान्त्या ।
आभरणगणमनर्घ्यं भासुरमुदभूषयद्भूपः ॥९०॥

प्रमथितमन्मथरूपं गौपीनाथेरथाङ्गसौभाग्यम् ।
मानवतीजनमनसां किमपि वशीकरणमौषधंजयति ॥९१॥

वंशप्रशास्तिरुचिरां चारणगीतिं चिरेण सशृण्वन् ।
निजदैवतमयमुच्चैर्नन्तुं पीताम्बरं प्रयाति स्म ॥९२॥

किरीटकोटिसन्नटद्वरिन्मणिप्रभाभरैः
शिखण्डिपिच्छमण्डनश्रियं विडम्बयन्निव ।
सुकुण्डलीयरत्नभाविराजिगण्डमडण्लः
प्रफुल्लपुण्डरीकवद्विराजमानलोचनः ॥९३॥

उरःस्थकौस्तुभप्रभश्चतुर्भुजीसमुल्लसद्-
गदासुदर्शनस्फुरत्सुपाञ्चजन्यनन्दकः ।
गभीरनाभिपल्वलोल्लसत्सरोजसम्भवो
ध्वजाङ्कुशाब्जवज्रकैरलङ्कृताङ्घ्रिपल्लवः ॥९४॥

घनाम्बुलम्बिताम्बुमृत्कदम्बबन्धुरच्छविः
सुवर्णवर्णवाससा विभूषितो नु विद्युता ।

---

1. In the mss. A (तां) is missing where the reading is सेनामानीतां भर्तुर्यात्रां etc. We have replaced the reading as सेनामानीतां तां etc., as the metre आर्या demands a second तां as pronominal adjective of सेनां also attested by mss. B.
2. The variant reading (इत्यपि पाठः) also found in Mss. B. given by the mss. A is भूषयत्स्वयं भूपः, but we have not accepted this one. We are in favour of आर्या metre and not in favour of गीति. The word स्वयं is redundant here.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चलत्सुचारुचामरप्रवीजितः श्रिया श्रितो
दृशोऽरमुष्य सम्मदं स नन्दनन्दनो ददौ ॥९५॥

(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

निर्भरभक्तिभरादिव भूयो
भूमिनतं रचयन्निजमौलिम् ।
मुक्तनिमेषविलोचन एष
क्षिप्रमवन्दत नन्दतनूजम् ॥९६॥

उच्छ्वसितं महिमानममानं
वेद न वेदगणोऽपि यदीयम् ।
स्वं वपुरेव पवित्रयितुं मे
गोपतनोरियमस्य नमस्या ॥९७॥

यद्घनमुक्तपयःकणिकाना-
माचमनव्रतमुग्रमचारि ।
त्वन्मुकुटे स्वकबर्हविभूषा
बर्हिभिरस्य फलं किमलम्भि ॥९८॥

देव भवन्मधुराधरसङ्गात्
किञ्चिदुदञ्चितपञ्चमरागा ।
वंशजगोपवधूर्वरवंशा
त्वन्मुरली तरलीकुरुतेऽहो ॥९९॥

कोऽपि बतैष चतुर्दशरत्न्यां
कौस्तुभकस्य तपःपरिणामः ।
श्लिष्टरमाकुचपत्रलताङ्के
यच्चिरमस्य तवोरसि वासः ॥१००॥

त्वच्चरणाम्बुरुहीयमरन्दो
दिव्यधुनी धुतपापसमूहा ।
मालतिका कालिता शशिमौले-
र्मौलिमलङ्कुरुते स्रगिवोच्चैः ॥१०१॥

धृतवरवनमालो मेघमालोद्धुरश्री-
स्तरलतडिदुदारेणाम्बरेणातिभव्यः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जयसि मधुरिपो त्वं गोपसङ्गोपनार्थं
करधृतमनुकुर्वँस्तुङ्गगोवर्धनाद्रिम् ।।१०२।।

अनुयमुनमनन्ताभीरकान्ताभिरुच्चैः
सह हि विहरमाणो रासलीलाविलासी ।
शरदि कपिशवल्लीवेल्लितं पल्लवश्री–
रुचिरतमतमालं त्वं स्वलक्ष्म्याऽतिशेषे ।।१०३।।

मुनिगणमनसोऽपि त्वं दुरापस्वरूपः
कपटनटितडिम्भक्रीडिताडम्बरश्रीः ।
मृदशनरुषितायां मातरि स्वीयवक्त्रे
प्रकटितजगतीकः कस्य नासि स्मयाय ।।१०४।।

यन्मायागुणपाशबद्धमखिलं संसारजालान्तरे,
सम्भ्रान्तं परिवम्भ्रमीति भुवनं तं गवां बिभांसुः स्वयम् ।

न प्राभूदयसीयदामभिरपि त्वद्यंत्रणे सा यदा,
नन्दस्य प्रमदा तदैव लघयन्नङ्गान्यघं नोजहि ।।१०५।।

मा भूवन्नस्य भूयो वदनपदकराम्भोरुहेभ्यः सहस्रं
ब्रह्माणोऽजिह्मवीर्या इति रणरणकोत्तानचित्तेन धात्रा ।
त्रासोत्कम्प्राङ्गकेन स्रवदनवरतस्वेदबिन्द्वाञ्चिताक्षं
ध्यातं पद्मायताक्षं प्रदिशतु कुशलं धाम पैताम्बरं तत् ।।१०६।।

इति नृपतिरतीव भक्तिभाव-
प्रभवसुसम्मदगद्गदोक्तियुक्तम् ।
मधुमधुरपदं स्तुवन्नमन्दं
सुचिरमवन्दत नन्दनन्दनं सः ।।१०७।।

इत्थममुष्य प्रेक्ष्यसुभक्तिं फुल्लदृगन्तं वीक्ष्य मुरारिम् ।
सिद्धिमिवोच्चैरर्वकवर्यश्चम्पकमालामार्पयदस्मै ।।१०८।।

वन्दनपूर्वं तेन गृहीता भूमिभुजा सा चम्पकमाला ।
मण्डितकण्ठाऽशोभत भव्या जैत्ररमाया बाहुलतेव ।१०९।।

मूर्त्तां प्रसक्तिमिव तां विनिधाय कण्ठे
कंसद्विषो भगवतो नृपतेर्द्विजः सः ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नक्षत्रयोगसकलग्रहसंक्रमाणा-
मुक्तिच्छलाददित सन्ततमाशिषोऽस्मै ।।११०।।

भूयात्ते मन्दुराद्यं[1] मुनिनयनपतेर्दोबलत्वं लभेथा
द्वाविंशं भं पुराणे तव नव धरणीसम्मितं सम्पदां स्तात् ।
लोकोन्मानप्रधाने दहनशशिमितं वै धृतं तेऽस्तु लोके[2]
[3]नाम स्याद् द्वादशं ते सकलपरिमितास्त्वं समाःशाधि पृथ्वीम् ।।१११।।

यात्रायां सप्तविंशो मुनिशशिगणितश्चास्तु योगोद्विषां ते
त्वत्कार्ये षोडशः स्तात् खनयनगणितं केशवस्ते ददातु ।
प्राप्नोत्वेकादशस्ते कुलमथ नवमो वैरिणामस्तु नित्यं
सर्वैरङ्कैः सविंशैर्भव दनुजरिपोस्त्वं प्रसादात्तृतीयः ११२।।

अहितकुमुदवृन्दं सार्वभौमाऽतिमन्दं
रचय तरणितीव्रस्वप्रतापैस्तमोवत् ।
अतिकविगुरुकीर्तौ ते शरच्चन्द्रचारौ
न विदधतु सुधायां के तु हेलां बुधौघाः ।।११३ ।।

यो भञ्जन् दशम-ध्वजारिनवमं तत्तुर्यशं सद्विग-
च्छात्रस्याष्टमवेदनां विरचयन्षष्ठ्या भुवोऽसप्तमः ।
चञ्चत्पञ्चममध्यमा स विलसद्दृष्ट्या तृतीयो ह्यभूद्-
आद्यार्याप्त शुभः शुभं सदिशतादेकादशश्रोत्रहा ।।११४।।

इति स द्विजस्य नृपतिः शुभाशिषं
प्रतिगृह्य वाञ्छितदुघामघापहाम् ।
प्रपितामहीमथ निजं पितामहं
विनयादुपास्थित परं स्थितिप्रियः ।।११५।।

शरणीकृतस्वचरणाऽमुनाऽथ सा
जरसा रसातिभृतमञ्जुभाषिणी ।
परिरभ्य निर्भरतरं सुवत्सला
विमलाशिषाऽमुमचिरादभूषयत् ।।११६।।

---

1. The variant readings are:—
   A. I live मुनिनयनपतिभ्रातृभक्तो भवेरुच्चं—इत्यपिपाठ ।
2. A. III o शशिमितं व्यामृतंतेऽस्तु लोके ।
3. B. IV कीर्तिश्चाष्टादशं ते सकलपरिमिताः etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रौद्रानूनतनूनपादुपहताङ्गानङ्गजीवौषधिं
पाणौ कृत्य जगद्विजित्वरगुणां तां दालपीं नन्दिनीम्[1] ।
शर्वाणीमिव शङ्करः शरभुवं शक्रः शचीं शोभनां
सौनासोरमिव प्रसूय तनुजं नित्यं भवान्मोदताम् ।।११७।।

क्षितिपतिरिति तस्या आशिषं तां नमस्या-
मभिमतफलदात्रीं मन्त्रसिद्धिं नु मूर्ताम् ।
अवनितलविलोलन्मौलिनाऽऽसाद्य सद्यः
पुनरपि स पितामह्यङ्घ्रिमुच्चैरनंसीत् ।।११८।।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः-
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य सत्-
काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते वैवाहिकी प्रस्थितिः ।।११९।।

।। इति श्रीविश्वनाथकृते महाकाव्ये श्रीशत्रुशल्यचरिते
विवाहप्रस्थानवर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः ।।

---

1. Variant reading in A is तां दालपीं कन्यकाम् accepted by B.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। पञ्चदशः सर्गः ।।

कामदैर्निजकुलोत्थदैवतै-
र्वन्दितैरनुमतः सदैव तैः ।
प्रास्थिताऽथ कलितोत्सवासवः
स स्वसम्पदाभिभूतवासवः ।।१।।

एतदीयवरकीर्तिवल्लरी-
स्यन्दमानमकरन्दसुन्दरैः ।
राजमौक्तिकमयाच्छगुच्छकै-
श्छत्रमस्य शिरसि व्यरोचत ।।२।।

शैलपातपृथगम्बुविभ्रमा-
नाशु नाकसरितो भुवि भ्रमान् ।
सन्दिशद्भिरतिचारुचामरै
र्नन्विहारि स नृपो रुचाऽमरैः ।।३।।

तत्र चित्रचरिते स्वमन्दिर-
द्वारदेशमधितिष्ठति प्रभौ ।
सज्जितं बहुविधं विधानती
यानमन्तिकमनायि मानवैः ।।४।।

पाणिपीडनविधानलालसः
स्वाऽन्य याननिकरे किलाऽलसः
अच्छकच्छजहयीं प्रमोदितः
सोऽध्यरुक्षदखिलाऽनुमोदितः ।।५।।

मण्डितः फणगणैः सकुण्डली
यत्नतोऽयमबिगर्जगद्भरम् ।
संवहन्तमपि तं स्थितेर्बला-
द्वामिकानृपमवोढ वेगतः ।।६।।

तं प्रयान्तमनु भूरिमुद्गतं
वन्द्यवाद्यनिकरैः समुद्गतम् ।
वृद्धनीरनिधि-ऋद्धनादिभिः
शत्रुगोत्रधृतिसद्धनादिभिः ।।७।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रस्थितेऽथ मथितारिवारिधौ
सिंहसंहनन ईश्वरे भुवः ।
पिञ्जरा उपरिकुञ्जरं ध्वजा
विंद्युतामभिभरुर्मुहुर्द्युतिम् ॥८॥

अन्वगात् तमथ राजकं परं
दृप्यदुद्भटसपत्नकं परम् ।
व्यूहनेव वपुषान्तु मन्महे
मान्मथं हरजये लसन्महे ॥९॥

गन्धवाहरयवाहवन्धुर-
श्रेणिवन्धमधुरं समीयुषी ।
सङ्कुलीकृतमहापणा ययौ
तच्चमूस्तदनु पण्यवीथिकाम्[1] ॥१०॥

खेलतः समपसार्य बालका-
नापणान्मृगदृशो नवालकाः ।
सौधतुङ्गशिखरोद्धुराङ्गना-
त्तं दृशा समपिबन् पुराङ्गनाः ॥११॥

मृष्टसिक्तसुपथेऽमुमापणे
सम्प्रयान्तमभिवन्द्य वन्दितम् ।
मण्डितस्वभवना उपायना-
न्याहरन्नगणितानि वाणिजाः ॥१२॥

मण्डितापणभुवं तमीश्वरं
स्वास्यकान्ति–जितसत्–तमीश्वरम् ॥
यौवतं वरमवेक्ष्य नागरं[2]
मङ्गलं समततानना गरम् ॥१३॥

शौक्तिकानि विनिधाय मौक्तिका-
न्यञ्जलौ किल निजे तदञ्जसा ।

---

1. The earlier A mss. reading is तच्चमूः समनुपण्यवीथिकाम् corrected to तच्चमूः तदनु etc. in the mss. itself accepted by us as well as mss. B.
2. Earlier mss. reading in A. as यौवतं मधुरमेव नागरं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चारुवेषसुविशेषिताङ्गकं
कामदेवमिव तं समार्चयेत् ॥१४॥

तं नयन्तमरिसत्पुरन्दरं
गोपुरस्थमवनीपुरन्दरम् ।
संवहत्कलशमम्बुसम्भृतं
स्त्रैणमानयत मुद्रसम्भृतम् ॥१५॥

तन्निजोच्चकुचवारिकुम्भगो-
त्तुङ्गताविजयिनोऽस्य कुम्भिनः ।
संविलोक्य सहसा ह्रिया ध्रुवं
वृन्दमम्बुजदृशामपासरत् ॥१६॥

यद्बलं परबलौघवारणं
स्यन्दमानमदवारिवारणम् ।
दानसौरभमिलन्मिलिन्दकं
पङ्किलं समतनोदलिन्दकम् ॥१७॥

सद्द्विपद्विषमकुम्भिकेसरी
हास्तिकाश्वरथकन्थिकाभरैः ।
हारिहस्तिनखदन्तुरामपि
द्वारभूमिमकरोत्समामिव ॥१८॥

स्वीयदर्शनसमुत्सुकाननं
तं प्रफुल्लतरकेलिकाननम् ।
नन्दति स्म सुमनःकदम्बकै
राजितञ्च विकचैः कदम्बकैः ॥१९॥

एष शेषफणभारदुर्द्धरां
भूधुरामधिकरं दधन्नृपः ।
किञ्चिदुन्नमितवक्त्रमण्डलः
पश्यति स्म विपिनोद्धुरश्रियम् ॥२०॥

तद्वनं विधुरचित्तनन्दनं
स्वप्रभावजितचारु-नन्दनम् ।
आवहन्मधुकरैरुदञ्चितैः
तस्य सौवविभवैर्मुदंचितैः ॥२१॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तं किलोपवन-भालनोल्लस-
ल्लोचनं प्रसवभारभङ्गुराः ।
आर्चयन् विकचपुष्पसञ्चयै-
र्देवता इव वनस्य वीरुधः ॥२२॥

याति राजनि सलीलमध्वना
नीलनीरदसमुत्तमध्वनाः ।
नृत्यतां व्यरचयन्किलाऽऽनकाः
केकिनां मदवतां कला न काः ॥२३॥

मारुतोन्मुखरकीचकैरयं
दत्ततानमधिकर्णयन् पथि ।
पञ्चमस्वरमुदञ्चितं पिकैः
स्वीयगायकसुखं व्यसस्मरत् ॥२४॥

निर्जयन्नवसुधारसं वरं
संदधत्तरलवीचिसंवरम् ।
तद्दृशोरजनि निर्मलाशयः
सन्निधौ पथि जयज्जलाशयः ॥२५॥

तत्सरःसरसिजन्मसौरभो-
द्वारमन्दगतिभिर्हिमानिलैः ।
आह्वियन्त मुहुरस्य गच्छतो
घर्मजक्लमभवोदबिन्दवः ॥२६॥

घर्मरोधितरुसंलसद्वनः
सन्निधिस्थ-हिममिष्ट-सद्वनः ।
सर्वसम्पदुपशोभिसत्पुरः
सत्पथः क्षितिभुजोऽलसत् पुरः ॥२७॥

कूकुदेन दलपेन भूभुजा-
ऽनल्पकल्पितसमृद्धिसिद्धिभिः ।
भूपतिर्वसतिभिः पथिष्वपि
प्रापितः स किल नागरं सुखम् ॥२८॥

अस्य तत्र दलपानुचारकै-
र्नव्यनव्यरचितोपचारकैः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तत्क्षणायितमहो ग्रहश्च यैः
पूजितस्य लसतो महश्चयैः ॥२९॥

आनर्तात्रिदशवृन्दविघ्नित-
स्वर्गनव्यकृति–ग्राधिजन्मना ।
सृष्टमुक्तमघवत्पुरीं ध्रुवं
मन्महे वसतिमस्य मार्गगाम्[1] ॥३०॥

भूरिसैनिकजनोपकारिका
दिव्यभोगकलितोपकारिकाः ।
संव्यतीतममुमाश्वरञ्जय-
न्मण्डुरं सुरपुरीं पुरञ्जयत् ॥३१॥

यत्र केलिपवने मनोभुवो
मोहनास्त्र इव लोकमोहने ।
स्मेरवक्त्रगणिकाभिरुच्चकै
र्मोदते विट इवातिमुक्तकः ॥३२॥

यद्वने पवनलोलपल्लवा
विप्रलम्भिहृतहृद्विपल्लवाः ।
गायतां मृदु मरन्दलालिनां
वीरुधोऽभिनयदाः किलाऽलिनाम् ॥३३॥

विच्युतैः पवनधूतवृन्ततो
यत्र चित्ररुचिभिः प्रसूनकैः ।
कामिनोः किल रतान्ततान्तयोः
कल्प्यते कुसुमतल्पविभ्रमः ॥३४॥

यद्विहारविपिने सुकेशरे
मन्मथस्य जनमोहके शरे[2] ।
सद्रसालशिखरे वनप्रियः
कूजितैर्भवति कस्य न प्रियः ॥३५॥

---

1. The earlier A mss. reading is वसतियाज्यमार्गगाम्, corrected as above in the mss. A itself and also accepted by mss. B.
2. The earlier reading in the mss. A is मन्मथस्वजनमोहके शरे corrected to मन्मथस्य जनमोहकेशरे on the margin in the mss. A itself and accepted by mss. B as well.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यत्र पीनविलसत्पयोधराः
सन्दिशन्ति नवसद्वयोधराः ।
वापिका मधुरसारसेक्षणा
अङ्गना इव नृमानसे क्षणान् ॥३६॥

यद्गृहा जलदनीलकण्ठतां
बिभ्रतोऽपि हिमरश्मिमौलिताम् ।
ऊर्ध्वलोलसितकेतुगङ्गया
शाम्भवीमनुभवन्ति चारुताम् ॥३७॥

पण्यवस्तुपणनोन्मुदाकुलं
यद्बिभर्ति वणिजां सदा कुलम् ।
आपणञ्च मणिकान्ति मिश्रकं
तामसीष्वपि दलत्तमिस्रकम् ॥३८॥

संलसद्दलपकीर्तितर्जित-
श्रीभरः शिवशिलोच्चयः शुभाम् ।
यां पुरीं स्फटिकवप्रलक्ष्यतो
निर्भयां भजति हन्त ! सन्ततम् ॥३९॥

अप्रबोधितगृहस्थसारिका
नीलरत्नरुचिनाऽभिसारिकाः ।
यत्र यान्ति विलसद्रसादरं
ज्योत्स्निकासु सुपथेन सादरम् ॥४०॥

राजमानमणिभित्तिभासुर-
प्रोच्छलद्बहलकान्तिभासिषु ।
यद्गृहेषु रजनीषु दीपका
मङ्गलाय विलसन्ति केवलम् ॥४१॥

यत्र रत्ननिकरोद्भवांशुकः
स्तम्भगः सकृतको नवां शुकः ।
बिभ्यतीं चलदृशं रहस्यतः
संरुणद्धि बत तां रहस्यतः ॥४२॥

---

1. Mss. B. text is तमिश्रकम् on this please see the Commentary प्रकाशिका appended as appendix A.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यत्र चित्रमणिकान्तिदन्तुरा
भूमयोऽङ्गनगताश्चकासति ।
अङ्गना दिनमुखीयमङ्गला-
ऽऽलेपरङ्गशवलीकृता इव ।।४३।।

तत्पुरं सुरपुराभिभावुकं
भासमानजनभूरिभावुकम् ।
तं किलाऽकृत विवाहदीक्षितं
हृष्टचित्तमचिरादुदीक्षितम् ।।४४।। (कुलकं त्रयोदशभिः ।)

मण्डयन् पुरवरं स मण्डुरं
खण्डितारिधरणीशमण्डलः ।
मन्त्रिभिर्दलपतेर्निवेदिते
राजकेलिविपिने वसन्स्वयम् ।।४५।।

विष्टपत्रितयगुप्तिलग्नकः
सप्रतीक्षितविवाहलग्नकः ।
दालपेन विपिनेन सन्ततं
मञ्ज्वनीयत मुदा रसं ततम् ।।४६।।

मञ्जुवञ्जुलनिकुञ्जपुञ्जितो-
द्गुञ्जितालिकुलकाकलीकले ।
बन्धुरस्फुटितबन्धुजीवका-
ऽशोककेसररसालशालिते ।।४७।।

सौरभोद्धतलतौघजालके
प्रोल्लसत्किसलयद्रुजालके ।
वापिकान्तरविराजिसारसे
श्रेणिवन्धमुखरातिसारसे ।।४८।।

स्यन्दमानमकरन्दमेदुराः
सारणीर्दधति सम्प्रसारिणीः ।
चक्रिरे वसतयोर्यथोचितं[1]
तत्र चारुणि वनेऽस्य सैनिकैः ।।४९।। (त्रिभिर्विशेषकम् ।)

---

1. The earlier reading in the mss. A. is वसतीर्यथोचिता स्तत्र. Variant reading on the margin is वसती यथोचितं तत्र. but Mss. B. has a third reading which is better- चक्रिरे वसतयो यथोचितं.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कामिनीरपह्नुतोपमा नवा
बिभ्रतोऽत्र किल केऽपि मानवाः ।
सन्निपीय वरनारिकेलिका-
सत्फलासवमधुश्च केलिकाः ॥५०॥

केऽपि कोमलपलाशिपल्लव-
च्छायपीततपनातपामयाः ।
वीजिताः सुरभिमन्दमारुतै
र्नन्दिनं वनमनिन्दिषुश्चिरात् ॥५१॥

सारणीरचितचारुमज्जनाः
स्वं वपुःश्रमजतान्तिमज्जनाः ।
केऽपि तूर्णमलिपन् हिमालयैः
क्षोदकैः सुमसृणैर्हि मालयैः ॥५२॥

वारुणीभवमदोद्धतारुणं
लोचनं दधदतीव तारुणम् ।
कण्ठराजिवरपुष्पमालया
कान्तिरश्रयत नोपमालया ॥५३॥

सत्सुधारससुधाकयै फलैः
क्लृप्तभोजनविधानकाः परे ।
संलसत्क्रमुकनागवल्लिका-
रञ्जिताननरुचोऽचकासत[1] ॥५४॥

इत्थमर्थवदुपास्य वाहिनीं
तस्य संमदमरौघवाहिनीम् ।
तद्वनं सुजनकै रथोद्धता
स्न व्यहीयत पथः स्ननुद्धता ॥५५॥

चञ्चच्चित्रपतत्रिचारुविरुतप्रेमार्द्रवाचाकृतः
कुल्यानां मकरन्दमेदुरजलैः पाद्यार्घ्यदानक्रमः ।
किञ्जल्कैरनुलेपनं सुकुसुमैर्मन्दानिलोत्पातुकै-
स्तस्मै भूपतयेऽमुना किल वनेनाऽऽकल्पि रम्योऽञ्जलिः ॥५६॥

---

1. Mss. A. रुचोऽचकासत. B. रुचश्चकाशिरे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नमर्यादानथार्यान् नरपतिदलपप्रोषितानेष भोगान्
भुञ्जानो भूमिजानिर्निजभुजविजितद्विर्नवद्वीपभूपः ।
श्यामां रामाभिरामां तरलतरदृशं श्वः स्वपाणौ करिष्यँ-
स्तच्चिन्तातान्तचित्तः कथमपि युगवत्तद्दिनं मन्यते स्म ।।५७।।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरेकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य स-
त्काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते यात्राविचित्रोत्सवः ।।५८।।

।। इति श्रीविश्वनाथकृते महाकाव्ये श्रीशत्रुशल्यचरिते
यात्रावर्णनो नाम पञ्चदशः सर्गः ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। षोडशः सर्गः ।।

अथो स पाथोजसखो हरिद्वधू-
र्दृढं समालिङ्ग्य विसृत्वरैः करैः ।
अनङ्गरङ्गश्रमभङ्गुराङ्गको
जहद्विलम्ब प्रचुचुम्ब वारुणीम् ।।१।।

चिरं सपत्नीभिरयं नयन्नह-
र्वियोगदूनामथ वारुणीं व्रजन् ।
शठोऽतिशालीनमतिंनतिं विना
चुचुम्ब तामम्बुजबन्धुरुच्चकैः ।।२।।

दिगङ्गनाङ्गानुविलेपनारुणां
तनूमनूनं दधताऽमुनाऽधुना ।
भृशं रुषं प्रापितया तयाऽप्यहो
अधारि धीराऽरुणता क्षणान्मुखे ।।३।।

प्रतीचि सिन्धौ विनिमज्जतोजवा-
च्छिरःस्थसिन्दूररजो यदुद्धतम् ।
रविद्विपस्याऽस्य तदेव शोणतां
व्यधत्त सन्ध्यामिषतो नभस्तले ।।४।।

सुचारु चक्राङ्गसखस्य पश्चिमे
गिरौ किमु प्राक्रमि चक्रिणागमिः ।
यदद्य तद्गैरिकशृङ्गरेणवः
समुच्छलन्तोऽरुणयन्ति वारुणीम् ।।५।।

रसेन सम्भुज्य दिनं दिशो भृशं
रिरंसयायान्तममुं रुषाऽरुणा ।
सखीव सन्ध्या बत वारुणी दिशो
निनिन्द चञ्चद्द्विजनादभङ्गिभिः ।।६।।

असौ प्रचेतो हरितो हि शम्भली[1]
घनानुरागाद् रमतेऽमुना स्वयम् ।

---

1. A. mss. प्रतीचीहरितो B. प्रचेतोहरितो ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इतीव सन्ध्या मुखरैर्द्विजैस्तदा
क्षणादुपाक्रुश्यत वारुणीसखैः ।।७।।

विहायपूर्वोत्तरदक्षिणा इमाः
श्रिता प्रतीची जलजन्मबन्धुना ।
अनेन कस्मादिति मानतो ध्रुवं
क्षणाद्भूवन्मलिनानना दिशः ।।८।।

असौ हि सन्ध्या ध्रुवमाहितुण्डिकी
द्विजव्रजध्वानमनूल्लसज्जपा ।
वधूमनोनाकुगताँस्तमोभिषा-
द्वहिः समाकर्षति मानपन्नगान् ।।९।।

यदुष्णतप्तस्य किलोष्णमौषधं
वदन्ति वैद्यास्तदृतं हि मन्महे ।
खरांशुदग्धा हरितस्तमश्छलाद्
वहन्ति देहे मृगदर्पलेपनम् ।।१०।।

विलोक्य मित्रं परदेशसङ्गतं
सशोककोकीविरहानलार्चिषाम् ।
ज्वलिष्यतां सन्तमसश्छटाच्छलात्
समुज्जिहीते किमु धूममण्डली ।।११।।

रवौ चिरं चुम्बति वारुणीमिमां
तमांस्यजृम्भन्ततमां ससम्भ्रमम् ।
जनस्य पूर्वापरदिक्परिग्रहे
विवेकलेशोऽपि न शेषितो यथा ।।१२।।

करैः सहस्रेण सरोजबन्धुना[1]
भृशं समालिङ्गितयाऽन्यया दिशा ।
नभोङ्गणे भङ्गुरहीरमौक्तिको-
पमः समाकीर्यत तारकागणः ।।१३।।

1. A. करैः सहस्रैः शतपत्रबन्धुना B. करैः सहस्रेण सरोजबन्धुना ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वचक्रमिन्दुं[1] जगतो जिगीषया
चकार कामः किमु तर्कुयन्त्रके ।
यदेतदूत्तैजनतः समुच्छलत्-
स्फुलिङ्गचण्डा उडवश्चकासते ।।१४।।

रतावसानालसवारुणीलसद्-
विकीर्णवेणी गलितैरुडुच्छलात् ।
चितेन पुष्पैर्नभसा तदा कृतः
खपुष्पनीतेरपि सम्भवो नवः ।।१५।।

नभःकटाहे किल सान्ध्यवह्निना
निपाच्यते किन्नु सुधाऽद्य केनचित् ।
तदीयफेनाः किमु तारका इमा
घनेन चांशेन विधास्यते विधुः ।।१६।।

वियत्पुरीं तूर्णमलङ्करिष्यतो
द्विजौषधीनामधिपस्य किं कृता ।
विराजिलाजायिततारकागणै-
र्दिगङ्गनाभिः किल मङ्गलक्रिया ।।१७।।

अधीनमित्रामपरां दिशं भृशं
विलोक्य सञ्जातरिरंसया किमु ।
स्फुटस्फुरद्देहरुचा पुरो दिशा
कलावतोदञ्चितरागयाऽजनि ।।१८।।

स्वशम्भलीमावुकचारुकौमुदी-
करिष्यमाणप्रियचन्द्रसङ्गमा ।
सुरेन्द्रदिग्वासकसज्जिका तदा
रराज काश्मीरकृताङ्गलेपना ।।१९।।

सुकौङ्कुमीमङ्कुरयद्रुचं क्षणाद्
ददच्च हारिद्रदरिद्रतां[2] ततः ।

---

1. A. स्वचक्रमिन्दुं B. स्वशस्त्रमिन्दुं ।
2. A. हारिद्रदरिद्रतां B. हारिद्रविनिद्रतां ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अथापि मन्थाकुलदुग्धवारिधि-
स्फुरत्तरङ्गावलिकान्तिमङ्गदम् ।।२०।।

सुपूरकर्पूररसातिशीतलं
कुमुद्वतीहासविकासि च क्षणात् ।
हरिद्वधूनां रुजमुष्णरश्मिजा-
मलं व्यलुम्पद्रुचिवृन्दमैन्दवम् ।।२१।। (युग्मम् ।)

उदेति यावन्न कुमुद्वतीपतिः
पुरैव तावत् किरणानुजीविभिः ।
अखण्डि भूमण्डलगं तमः परं
सुधारसोऽसेचि चकोरचञ्चुषु ।।२२।।

उदारकेदारगतानि सन्महः
कृतं चिरेणाऽनुभवन्ति सम्मदम् ।
अमीमिलन्नम्बुरुहाणि तत्क्षणात्
पराञ्चि दोषाकरदर्शनात् किमु ।।२३।।

अथोदयाद्रावुदियाय मण्डलं
प्रचण्डचण्डीशशिरोमणेः क्षणात् ।
तदीयलालाटहुताशरोचिषो
ध्रुवं समाक्रान्तविलोहितद्युति ।।२४।।

दिशाऽयमैन्द्रया किमचुम्बि चन्द्रमा-
श्चिरेण बन्धूकनिमाधरत्विषा ।
तदीयदन्तच्छदरागतो यतः
स लोहितायन्मुदितो नभस्तले ।।२५।।

निजानुजेनाऽमरराजहस्तिना
ध्रुवं समालिङ्गि कुरङ्गवाहन (:) ।
यदस्य सिन्दूररसार्द्रतद्वपुः
प्रभाभरैरक्रियताऽतिशोणता ।।२६।।

सुधाकरव्याजसुवर्णपारदे
प्रदोषरासायनिको न कोविदः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

महीधराग्रणि सुवर्णसात्कृता-
न्यपि क्षणाद्यान्ति यतोऽद्यरौप्यताम् ।।२७।।

यथा यथा पूर्वगिरेरधित्यका-
मलङ्करोत्येष कलाधरः स्वयम् ।
तथा तथा सख्य इवाऽन्यभूभृतां
मुहुः स्मयन्ते न चिरादुपत्यकाः ।।२८।।

प्रसह्य तु व्योमनि तारका लसद्-
विसारीवैसारिणडिम्भघस्मरम् ।
अदोहि यादोनिधियाद एव किं
व्यधायि धात्रा हिमरश्मिमण्डलम् ।।२९।।

अधारि मीनाङ्कमथा 'यथा' विषं[1]
मुहुर्लिहानेन तु नीलकण्ठता[2] ।
तथेन्दुनाऽपि ग्रसता तमो धृतं
किमन्तरङ्कीकृतरङ्कुकैतवात् ।।३०।।

स्मरस्य विज्ञाय दिनं विधूदया-
न्निमज्ज्य तत्कान्तिसुधामयह्रदे ।
तदा निजाङ्गादुदसारि किं तमो
दिगङ्गनाभिर्मृगनाभिलेपनम् ।।३१।।

अरं रिरंसुर्हरिदङ्गनागणै-
र्मुनेः किलाऽत्रेर्नयनं कलाकरः ।
तमोनिचोलं स्वकरैर्विमोच्य किं
दुकूलमाभ्यो विततार कौमुदीम् ।।३२।।

अहो घनः सान्द्रसुधाभृतः सितो
विधुर्विधात्रा किमकारि कौतुकात् ।
उदन्वतश्चन्द्रमणेश्चयः क्षणात्-
दसावसावीज्जलपूरमुच्चकैः ।।३३।।

---

1. A. यथा विषं मुहुः B. यथा गले विसं ।
2. A. नीलकण्ठता B. नीलवर्णता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इति क्षितीशोपवनीमनीदृशीं
श्रियं नयन्निन्दुरयन्नयं दिवि ।
अदर्शि बुन्दीपतिनाऽमुना मनाक्
प्रियाधिबाधाविधुरेण दारुणः ।।३४।।

अशेषपीयूषमयांशुराशिभि-
र्विशातयन्नेष दिशामपि क्लमम् ।
अजिग्लपद् ग्लौर्ग्लपितारिमण्डलं[1]
नृपं तमन्तर्भृतचिन्तमुच्चकैः ।।३५।।

विराजति द्यौललनाललन्तिका-
मणौ गुणौघैरभिभूतदीपके ।
अदीपि दीपस्य तु (रात्रि) सन्ततौ
नितान्तमन्तर्लसदाधिजा शिखा ।।३६।।

तृणाशनाङ्कस्थ कुरङ्गसङ्गतो
मतोऽयमिन्दुस्तृणपूलिकैव मे ।
स्वभावगाम्भीर्यकृशं स्मरानलं
यदस्य सन्दीपयति स्म भूपतेः ।।३७।।

किमेष मन्थाकुलितात् पयोनिधेः
शशिच्छलाद् वाडव एव निःसृतः ।
रसार्द्र तद्गात्रलतां प्रतापयन्
बिभर्ति धूमं हि कलङ्ककैतवात् ।।३८।।

विषं शशि यद्यपि सोदरावुभौ
तथाऽपि भोक्तु प्रथमाद्विमोहकात्[2] ।
महीपतेर्द्विषयीभवन्मुहुं
निमित्तमन्त्यस्तु ततो विशिष्यते ।।३९।।

प्रचण्डतापैः स्वमहोभिरुच्चकै-
र्जले शयानामपि पद्मिनीं दहन् ।

---

1. The mss. A has a reading like अजिग्लपज्ज्लौ etc.

2. A. प्रथमाद्विमोहकात् in Abtalive (to be construed with ततः अन्त्यः विशिष्यते)।
   B. प्रथमं विमोहकम् which is nominative Singular for विषं to be construed as प्रथमं (विषं) विमोहकं (अस्तीतिशेषः।)

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कृतोऽधिकारे विधिना शशी रवे-
रहो प्रभावातिशयः प्रभुप्रियः ॥४०॥

सरस्वतः स प्रभवन् निशामणिः
सरोरुहां साहजिको ध्रुवं रिपुः ।
यदेष बुन्दीनृपतेर्हृदम्बुजं[1]
चकार तूर्णं विपदां वशंवदम् ॥४१॥

कुमुद्वतीबान्धवतुन्दिलायित-
प्रियाधिबाधाम्बुनिधावनारतम् ।
अयं निमज्जन् नृपसज्जनाग्रणी-
स्तरीं तदोरीकृतवान् न कामपि ॥४५॥

अथो यथा मानविसृष्टबन्धुतं
रहो निमज्जन्तममुं महामुहि ।
अपाकृतं खण्डितयेव निद्रया
तदाऽनुजग्राह वनस्य देवता ॥४३॥

मयूरबर्हं कुसुमाभचन्द्रकं
यदीयधम्मिलमवैम्यसंशयम् ।
मुखञ्च यस्याः कलयामि कैरवं
स्वरूपसम्पत्परिभूतपङ्कजम् ॥४४॥

दृशौ यदीये जलजे सितेतरे
कपोलपालीमपि चम्पकावलीम् ।
अवैमि कौन्दीं कलिकां रदावलीं
स्मितं च यस्याः स्मयमानमालतीम् ॥४५॥

मदोल्लसत्कोकिलकूजितं स्वरं
चिरं च यस्याः कलयामि कोमलम् ।
रदच्छदं बन्धुरबन्धुजीवकं
मृणालयुग्मं किलयद्भुजद्वयम् ॥४६॥

पदाङ्गुलीर्वेद्मि च पल्लवान् नवान्
स्तनद्वयं दाडिमकोरकद्वयम् ।

---

1. A बुन्दीरमितुर्हृदम्बु. B. बुन्दीनृपतेः etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यदीयनाभिञ्च गभीरवापिकां
सुरोमराजिं जलनीलिकामपि ॥४७॥

विराजिरम्भायुगमूरुयुग्मकं
निशाभिभूतं कमलञ्च यत्पदम् ।
सुगन्धितामुग्धमधुव्रतध्वनि-
र्विभाति यस्या अपि चारुनूपुरः ॥४८॥

विराजदारामजवस्तुभूषणा
तनुश्रिया न्यक्कृतनाकयौवता ।
अशोकवृक्षादवतीर्य सा तदा
पुरो नृपस्याऽऽविरभूद् वनामरी ॥४९॥

(षड्भिः कुलकम्)

किमद्य भूलोकविलोकनोत्सुका
हरेरुरस्तः कमलेयमागता ।
अहो हरार्धाङ्गमसौ किमद्रिजा
सरस्वती वा (विधि) वक्त्रचुम्बिनी ॥५०॥

दशां सहस्रस्य हरेः सरोरुहां
स्रजा प्रजाताऽऽभरणा शचीनुकिम् ।
अमुत्र केलीविपिने तपस्यतः
स्मरस्य किं वा सहचारिणी रतिः ॥५१॥

इति क्षणात् क्षोणिभुजा ऽमुना चिरं
विभाविता चेतसि सा ससंशयम् ।
मुहुर्हसन्ती हसितेन कौमुदीं
वचःसुधाभिस्तमसिञ्चदुच्चकैः ॥५२॥

(त्रिभिर्विशेषकम्)

महीमहाराज विराजतां भवान्
जगत्त्रयोपार्जितसज्जया श्रिया ।
अयि स्फुरत्तावककीर्तिकौमुदी
मुदम्बुधेस्तुन्दिलतां दधातु नः ॥५३॥

अपावि दिष्टयोपवनी त्वयाऽधुना
भवत्पदानुग्रहपूतभूतला ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अहो अहङ्वास्य वनस्य देवता
त्वयाऽद्य नाथेन परं सनाथिता ॥५४॥

महीन्द्र[1]कच्चिद्भवतेऽस्य रोचते
विलासवाटीऽयमहो पटीयसी ।
त्वदीयसम्भावनयाऽनया परं
लसत्सदाकालिकचारुविभ्रमा[1] ॥५५॥

[2]अनामयं तेऽद्य कुतोऽनुयुञ्ज्महे
महेन्द्रदारिद्र्यदोर्द्वयौजसः
कपोलपाली[1] लवलीं पचेलिमा-
मसौ जयन्ती कुरुते (ऽद्य) संशयम् ॥५६॥

तवाङ्गकक्षामतयाऽद्यकेवलं
विराजिनैसर्गिककान्तिसारया ।
विभावरीकेलिकला-लसच्छवेः[3]
प्रभातचन्द्रस्य हि जीयते रुचिः ॥५७॥

मनीषितार्थैः सुरराजदुर्लभै-
र्भवन्निदेशस्पृहयालुभिश्चिरम् ।
सदार्च्यमानस्य तवाप्यनाप्यता
महो कुतस्त्यं भजतेऽद्य वस्तु तत् ॥५८॥

तनीयसीयं दलपस्य नन्दिनी
ध्रुवं निलीना तव वर्तते हृदि ।
अकुण्ठितज्ञानदृशाऽपि भूषिता
न देवतास्ता अपि रूपयन्ति याम् ॥५९॥

असौ हि माया मदनस्य मोहिनी
निजाङ्गवल्लीरुचिमन्त्रवाहिनी ।

---

1. A mss. reading सदाकलिकचारुविभ्रमा (scribe's error).
2. The verse is differently read by Mss. B. as follows :
अनामयं ते स्वत एव निश्चितं समस्तलोकामयहारितेजाः ।
कपोलपालीलवलीविपक्रिमामसौ जयन्ती कुरुते तु संशयम् ॥
3. A. केलिरसालसच्छवे B. केलिकलालसच्छवेः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इमां समागम्य हृदैव यद्भवा-
नमुह्यदाश्वेव तदत्र कः स्मयः ।।६०।।

इतीरयन्ती विपिनाधिदेवता[1]
तदाऽऽशयन्ती श्रवसी प्रभोः सुधाम् ।
उदाररूपां दलपस्य नन्दिनी-
मसावुपश्लोकयितुं प्रचक्रमे ।।६१।।

अनन्यसाधारणरामणीयको
मनोभुवो मानससर्ग एव यत् ।
अहो कथं वा विदुषामशेषतः
स्पृशन्तु वाचो ललनाललाम तत् ।।६२।।

हराग्निभीतस्मरदुर्गभूमिका-
मिमामवैमि प्रमदामृतोम्भिताम् ।
न्यमज्जि रागात्तव चेतसाऽप्यहो
यदेतदीयाङ्गककान्तिकीर्तिषु ।।६३।।

गरीयसा रूपभरेण भूषिता
तुलां किलाऽऽरोहति नाऽद्य यद्यपि ।
तथापि चित्रं यदसौ प्रभाभरै-
रनल्पमल्पीकुरुतेऽबलाकुलम् ।।६४।।

यदा पुनः स्यात्तरुणः पितामहः
पठेत् स शृङ्गाररसश्रुतिं यदि ।
तदा कदाचिल्ललनाललाम तद्
विधातुमेतस्य विदग्धता भवेत् ।।६५।।

प्रतिप्रतीकं प्रगुणोज्ज्वलाङ्गिकां
पटुस्फुटच्चम्पककम्पकच्छविम् ।
इमां विनिर्मातु स मन्मथः कथं
करः स्फुरच्छाङ्करवह्निकालिकः ।।६६।।

तदीयरूपे वशीतोर्वशी मदे
न मेऽद्य काचित् प्रतिभाति मेनका ।

---

1. A. इति ब्रुवन्ती विपिनाधिदेवता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अहो पराची तु घृताचिका परं
सुमञ्जुघोषा परुषा न किं भृशम् ।।६७।।

असौ लता हेममयी न सा मृदु-
स्तडित् किलैषा न विनेयमम्बुदम् ।
सुकेतकीयं न हि सा विकण्टका
सतामितीयं कुरुतेऽद्य संशयम् ।।६८।।

प्रतप्तजाम्बूनदसुन्दरीं द्युतीं
विलोक्य तस्या वपुषो मृगीदृशः ।
क्षणप्रभा मे हृदि भाति न क्षणं
न केतकं वा तुलनानिकेतनम् ।।६९।।

वचः कवीनामिव वक्रताञ्चितं
सतामिव स्निग्धमहो हृदम्बुजम् ।
अवैमि तस्याः कचपाशमाशु त-
न्मुखेन्दुवित्रस्ततमोलताततिम् ।।७०।।

तदीय नास हिमसौरभोल्लसत्-
समीरधीराचमने समुत्सुकः ।
कचोच्चयोऽस्याः किमु कालियोरगो
ललाटिकाव्याजलसत्फणावलिः ।।७१।।

रतीशितुः सर्वकगर्वगञ्जनं
दधानमुच्चैरभिधानचन्द्रकैः ।
भ्रमं स्मरारेर्ददतं जयत्यसौ
स्वकेशपाशैर्बत नीलकण्ठकम् ।।७२।।

अलीकलग्नः कुटिलो मलीमसो-
ऽप्यहो तया मूर्ध्नि धृतः कचोच्चयः ।
अतो हि पुष्पैः स जनेन भूष्यते
करोति किं किं न सदा सदादरः ।।७३।।

तदीयवक्त्रोपरि कुन्तलच्छलात्
सुधांशुलोभेन ससम्भ्रमं भ्रमन् ।
अयं हि सिंहीतनुजस्ततोऽलिभि-
र्विभाति बद्धोऽद्य कुशाग्रबुद्धिभिः ।।७४।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुरोऽकरिष्यच्चमरी स्वचामरं
तदप्यलिप्स्यन्मृगदर्पकैर्यदि ।
यदेदमाञ्जिष्यदथोज्ज्वलैस्तिलै-
स्तदैष्यदस्याः सह कुन्तलैस्तुलाम् ।।७५।।

कृतैतदास्येन्दुरतीशरोषतः
सृजन् स विम्वं विधिरैन्दवं नवम् ।
द्विधा विधायेदमसाधुशूलिनः
शिरस्यधाद्भालमिषाच्च तन्मुखे ।।७६।।

धृतावतारस्य मनोभुवः शिशो-
र्विमोहविद्याऽक्षरलेखकर्मणि ।
अवैमि चामीकरचारुपट्टिकां
सुरेखितां भालतटीं नतभ्रुवः ।।७७।।

अवेतुमावेशजडैः कुपण्डितै
रमेयमेतद्गतकान्तिगौरवम् ।
हृदा धृता या तुलया तया ह्रिया
द्विधाऽद्य भूतं किमु तद्भ्रुवोश्छलात् ।।७८।।

[1]जगत्त्रयीत्रासदपत्रिचित्रितः
स सव्यसाची मकरध्वजो ध्रुवम् ।
हरापकाराद्द्विगुणीभवत्क्रुधा
भ्रुवौ तदीये धनुषी करोति यः ।।७९।।

तदक्षिनीलोत्पलमध्यतोजवान्-
निमज्जतः श्यामलतारकच्छलात् ।
अमुष्य पक्षौ मधुपस्य मन्महे
भ्रुवौ तदीये कुटिले सितेतरौ ।।८०।।

---

1. Mss. B reads this verse differently as follows :—
पिता यदीयः प्रथितश्चतुर्भुजः
स पञ्चवाणोऽपि चतुर्भुजो ध्रुवम् ।
हरा यकाराद् द्विगुणीव वत्क्रुधा
भ्रुवौ तदीवे धनुपीकरोति यत् ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यदा बत स्यादसिताम्बुजन्मनः
स्मरस्य संवर्तिकयोर्धनुद्वयी ।
सितेतरं स्दाद्यदि केसरं तयो–
स्तदा तुला स्याद्विनतभ्रुवो भ्रुवोः॥८१॥

शरत्रयेणैव जयञ्जगत्त्रयीं
तव स्वजैत्रस्य जिगीषयाऽधुना ।
तदीयदृग्द्वन्द्वमिषाज्झषाङ्को
विभाति शेषां विसृजन्निषुद्वयीम् ॥८२॥

स्थितं यदह्नाय मृगाङ्कमण्डले
तदक्षिमन्दाक्षसशङ्करङ्कुना ।
तदास्यदास्येऽपि चिरादनौचिती
न तस्य जाने पशुना विलोकिता ॥८३॥

दरादराच्छामलयास्वया रुचा
जलेषु वासेन च नीलमुत्पलम् ।
तदक्षिलक्ष्मीप्रतिपक्षकल्पना-
विकल्पमल्पीकुरुते विपश्चिताम् ॥८४॥

परःसहस्रैः सुकृतैः सुदुर्लभं
तदक्षिसारूप्यमवाप्तुमुत्सुकम् ।
वि (श) द्धिमानीं ध्रुवमुत्पलं चिरा-
दुदारकेदारगतं तपस्यति ॥८५॥

विधाय सारेण रुचां तदक्षिणी
श्रमत्रशेषं जलजासनो जले ।
किमाश्वमार्जीत् सुदृशोर्दृशोर्लवः
कुतोऽन्यथा नीलसरोजमीनयोः ॥८६॥

तदक्षिणी सान्द्रविराजिपक्ष्मणी
हृणीयमाना हरिणी विलोक्य किम् ।
सशङ्कमङ्केऽपि वनस्य संस्थिता
तृणीयमुष्टिं शरणीकरोत्यहो ॥८७॥

स्वभावलोला विकृतिं गताऽधुना
मनाक्स्फुरद्यौवनवारुणीवशात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विलङ्घितश्रौतपथा स्मृतेः कथां
कथं दृगस्या जगतोऽवशेषयेत् ।।८८।।

ततेनु तौतातिकतन्त्र उच्चकै-
रधीतिनी किंनु नतभ्रुवोऽक्षिणी ।
इमे यताऽद्य श्रुतिपारगे परं
प्रबाधके हन्त मुनेरपि स्मृतेः ।।८९।।

अलङ्कृतश्रोतपथं तथाप्यहो
विलोलतामुञ्चति तद्विलोचनम् ।
शुचिद्विजालांसविधेऽपि संवसन्-
नतीव रागीव मृगीदृशोऽधरः ।।९०।।

गृहीततदभ्रूधनुषो मनोभुवः
सुवर्तुलश्यामदृषन्मयीं गुलीं ।
स्वरूपचौरे भवतिरयिष्वतः
अवैमि[1] तल्लोचनकृष्णतारकाम् ।।९१।।

अपाङ्गभङ्गीयमहो नतभ्रुवः
शरायते पञ्चशरस्य किं न वा ।
मनोहरा चाप्यदसीय[2]नासिका
तदा रणार्थं नलिकायते न किम् ।।९२।।

तदीयनासां त्रिजगन्नितम्बिनी-
स्वरूपदर्पान्धतमिस्रघस्मराम् ।
अवैमि दीपस्य शिखांशुकस्तथा
तिलस्य पुष्पं मषकायतेऽत्र यत् ।।९३।।

नवेन्दुनिन्दाकरगण्डमण्डल-
च्छलात् किलाङ्ग स्मरकेलिकानने ।
मृगीदृशो यौवनवारिणोक्षिते
विभाति नारङ्गफलं पचेलिमम्[3] ।।९४।।

---

1. A अत्रैमि B प्रवेद्मि ।
2A. मनोहरा चाप्यदसोय etc. B मनोहरा वाप्यदसीय etc,
3. Variant reading mss. A. विभाति नारङ्गफलं विपक्मिमम् ।। which is accepted by A mss. B. as well.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अमर्षतो दारुणवामदेवदृग्-
दवेन दग्धस्य रतीशशाखिनः ।
इदं वपुः कान्तिसुधाप्तजन्मनो
द्विपल्लवी किं सुदृशो रदच्छदौ ॥९८॥

वशीकृतोद्यत्त्रिजगज्जयश्रिया
त्वयात्तितांसोः सुरताहवं मुहुः[1] ।
पताकिका रागमयी मृगीदृशो
विभाति भूयो रदनच्छदच्छलात् ॥९६॥

द्रुमत्वजात्यैव जडोऽपि साहसात्
तदोष्ठकान्त्यै स्पृहयाम्बभूव यः ।
बताऽस्य कस्याऽपि तु विद्रुमाभिधा
द्रुमं विशिष्टं स्वमचष्ट तन्न किम् ॥९७॥

जपाप्रसूनोपमितिः प्रजल्पना
न बिम्वबन्धूकतुलाऽपि वन्धुरा ।
सुधामुधात्वप्रतिभूलसद्रसे
रसज्ञ तस्या अधरे पुरः स्थिते ॥९८॥

अहो भवद्रागत आशु रक्ततां
गतस्य तस्या हृदयाम्बुजन्मनः ।
अभीष्टमित्रोदयतोद्यमाद्यतो
मयूखलेखे किमु तद्रदच्छदौ ॥९९॥

विधिः कृती तन्मधुसङ्गनिर्मितौ
समापयत् किं मधुरां स्वकां कलाम् ।
वरेऽधरेऽस्या यदनेन तत् क्षणात्
कृतं रसालस्य फलं रसालसम् ॥१००॥

कलाः कलेशस्य विलोक्य षोडश
स्मरेण तद्वक्त्रविधुं ततोऽधिकम् ।

1. Earlier reading in mss. A is तितांसोः सुरतासवं मुहुः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विविधित्सुना षोडशकद्वयीमिता[1]-
स्तदीयदन्तच्छलतो ध्रुवं कृताः ।।१०१।।

अवाप्तदर्शप्रलयः सुधाकरः
स चूर्णपर्यायसुधाकृतो ध्रुवम् ।
स्फुटोल्लसद्दन्तसुधापृषत्कणं[2]
मुखं तु सत्यं सुदृशः सुधाकरः ।।१०२।।

विभिन्दती सुन्दरकुन्दसम्पदं
रदालिरस्या न तनुर्न वा घना ।
कुमारतारुण्यवयोद्वयेऽधुना
वरिष्यते वा कतरन्न वेद्मि तत् ।।१०३।।

कृशोदरीया विशदा रदावली
निरुन्धती हीरमणेरपि प्रभाम् ।
मनांसि यूनां स्ववशे[1] मनोभुवो
विधास्यतः कार्मणमालिका किमु ।।१०४।।

शिरीषकोषादपि कोमलां वपु-
र्निरूप्य रूपोच्चयचारुताजुषः ।
असूययेवाऽस्य गिरा गरीयसी
ततोऽपि मन्ये मृदुतोररीकृता ।।१०५।।

लसद्रसब्रह्मणि तत्स्वरश्रुतौ
शृणोतु को वा परिवादिनीस्वरम् ।
इमां समासादयतु द्विजोऽप्ययं
पिकः कथं वा बलिपुष्टपोषितः ।।१०६।।

तदास्यविश्रान्तिगृहा सरस्वती
चिरेण यां वादयते हि वल्लकीम् ।
न किं तदीया मृदुतानसन्तति-
र्नतभ्रुवोऽस्या वचसां सुचातुरी ।।१०७।।

---

1. Variant reading in A षोडशकद्वयीरिमास्तदीय etc. ।
2. A 'दन्तसुधापृषत्कणो' ।
3. A करतन्न विद्महे ।
4. A मनस्तवाऽद्य स्ववशे इत्यपि (पाठः ।)

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तदीय वक्त्रेन्दुजितेऽम्बुजे स्थिता
सरस्वती सा विधिपार्श्वगा जडा ।
इमां तु जानामि बुधां कृतासनां
सुदृङ्मुखेन्दौ जलजन्मजित्वरे ॥१०८॥

कृतैतदास्येन्दुनिमीलदम्बुजस्फुरत्-
सुदुःस्थासनतस्थुषा विधेः ।
यदङ्गुलिस्तद्वदनेऽपतद् दृढं
ततोऽवनम्रं[1] चिबुकं मृगीदृशः ॥१०९॥

यथाऽनयाऽकादरिद्रितद्युति-
र्नितम्बिनी सृष्टिरहो मुहुर्विधेः ।
तथाऽद्य तेनाऽपि दरिद्रितश्चिरं
मृगीदृशोऽस्या वदनोपमाविधिः ॥११०॥

दिवारजन्योर्मलिनेन्दुपङ्कज-
स्फुटस्फुरत्पाटवधातृमत्सरात् ।
अयातयामश्रितयोरपि स्मर-
स्तदास्य शिल्पं विदधत् प्रगल्भते ॥१११॥

प्रसह्य रुद्रापहृतैकसत्कलो
मुहुश्चराहुं व्रणदीर्णमण्डलः ।
स तन्मुखीभूय भयेन सम्प्रतं
सुधाकरः संश्रयते सुखाकरम् ॥११२॥

सलीलमन्तःसलिलं कृतालयं
भयं यदाऽऽपद् रिपुतः सितद्युतेः ।
तदाननीभूय तदम्बुजं बलात्
कलाकरं सम्प्रति हन्त बाधते ॥११३॥

स्फुर -द्विजौघाधररागसन्ध्यया
सहोज्झितहानस्मित कौमुदीद्युतिः ।
मुखेन्दुरस्यास्तनुयाद् भवन्मन-
श्चकोरमुत्कोरकितोत्सवं किमु ॥११४॥

---

1. A तदीयरोकं B ततोवनम्रं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तदीय रात्रिन्दिवसुन्दरोल्लसन्-
मुखामलेन्दौ धवलस्मितच्छलात् ।
पदं न धत्ते किमु कौमुदी मुदा
समुद्विजन्तीह विधौ कलङ्किनि[1] ।।११५।।

कपोलपत्रान्मकरोल्लसद्ध्वजो
भ्रुवा धनुष्मान् सुदृशो[1] दृशाशरी ।
तदास्यदुर्गे ससुखं वसन् स्मरो
भवत्सपत्नाकरणं किमीहते ।।११६।।

अदृश्यसौन्दर्यरसेऽन्यकामिनी-
शरीररूपेऽद्य मरूपवर्तने ।
मनोऽध्वनीनस्तृषितस्तवाऽतिथि-
र्नकिं भवेत्तद्वरकर्णकूपयोः ।।११७।।

तदास्यसौन्दर्यसुधाम्बुधावहो
श्रवश्छलावर्तयुगं जयत्यदः ।
द्विषद्बलाम्भोनिधिपारगामिन
स्तवाऽपि चित्ते न तु यत्र मज्जितम्[2] ।।११८।।

यदेकपाशेन विशेषितोद्यमः
पतिर्जलानामभवद्दिगीश्वरः ।
श्रुतिद्विपाश्यां हृदयेश्वरीभवे
दसौसुदृक् ते दशदिक्पतेर्न किम् ।।११९।।

परिस्फुरन्माणवकीयमौक्तिक-
च्छलोल्लसत्स्वच्छमरन्दसीकरः ।
शिरोधिरस्याश्चटुलोऽवटुश्रिया
स्फुटैतदास्याऽम्बुजनाल एव किम् ।।१२०।।

---

1. Variant in mss. A. कृतावहेलेह (विधौकलङ्किनि) इत्यपि (पाठः ।) also accepted by mss. B.

2. Mss. B. has different reading of fourth line as follows : न्यमज्जि चित्ते न तवापि यत्र तु ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मृगीदृशः कम्बुरयं न किं गलो
जगज्जयार्थं मदनस्य यास्यतः ।
जगत्त्रयीमोहनकार्मणश्रुति-
र्यदुच्चकैरुच्चरति स्वरस्ततः ।।१२१।।

नृपाग्रणीर्ग्राममनोहरत्रयी-
जगत्त्रयीनाथकगर्वगञ्जने ।
विराजिसङ्गीतकलेऽद्य तद्गले
त्रिलेखलक्ष्येण चिरेण लक्ष्यते ।।१२२।।

मृणालजालान्मृदुतां विकृष्य किं
विधिः स तद्बाहुलताःकृतौ कृती ।
तथैव रिक्तस्य बताऽस्य दृश्यते
यदन्तरन्तः सुषिरः[1] शिरागणः ।।१२३।।

अहो लसद्बाणमृणालकोमला
भुजद्विपाशी सुदृशोऽतिशोभते ।
यया तवाऽलङ्कृतकण्ठपीठया
दृढं हि बन्धो मनसो विधास्यते ।।१२४।।

विमन्दता कोकनदस्य शोणतां
करेणरज्यन्नखकान्तिनाऽमुना ।
असौ दधाना ज्वलनास्त्रमङ्गना–
सुरूपलक्ष्मीमिव दग्धुमीहते ।।१२५।।

निषङ्ग आनङ्ग इवैष हैङ्गुलः
करः कृशाङ्ग्याः स्मरमङ्गलश्रियः ।
यदद्य रज्यन्नखबन्धुराङ्गुलि-
च्छलाच्छराणां प्रतिभाति पञ्चकम् ।।१२६।।

सदङ्गुलिव्याजसुविद्रुमद्रुमं
विराजिमीनं विलसत्सरोरुहम् ।
सरो नु सारस्वतमेष तत्करो
विभाति लावण्यकलाविधौ विधेः ।।१२७।।

---

1. B. शुशिरः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुरश्मिकाश्मीरलसद्रसारुणो
रणान् रणत्कङ्कणकैतवात् प्रियम् ।
स्मरेषुदूनस्य तवाऽभयाय किं
स्वहस्तलेखो द्रुहिणस्य तस्करः ॥१२८॥

नखच्छलादङ्कुरपञ्चकान्वितो
दधच्च पञ्चाङ्गुलिपल्लवान् नवान् ।
भवत्तपःपञ्चसुरद्रुमीमयः
करस्तवास्या ग्रहणात् फलिष्यते ॥१२९॥

वसन्तमासाद्य नवं वयोऽधर-
प्रभामिषादङ्कुरिता नतभ्रुवः ।
वपुर्लतापल्लविताङ्गुलिच्छलात्
किलाऽद्य धत्ते कुचचारुकोरकौ ॥१३०॥

लसत्तदीयाम्बु सुधामयह्रदे
शिशुत्वखेलत्कलभस्य मज्जतः ।
परिस्फुटौ किञ्चिदहो बहिर्जला-
दवैमि कुम्भौ सुदृशः कुचावुभौ ॥१३१॥

सुतुन्दिलेऽस्या वदनेन्दुसन्निधौ
तवाद्य रागाम्बुनिधौ निमज्जनम् ।
विशङ्कमानेन विरिञ्चिना कृतं
किमन्तरीपं सुतनोस्तनद्वयम् ॥१३२॥

विमूल्य बाल्यं तु वयो वपुः पुरं
नवस्य सख्युर्वयसो विविक्षतः ।
अकारिषातां कलशौ स्मरेण किं
कुचच्छलान्माङ्गलिकौ मृगीदृशः ॥१३३॥

अहो सुपीना सुतनोः स्तनद्वयी
न कुम्भिकुम्भौ प्रसभं जिगाय किम् ।
यदेतदुद्यज्जयसम्भवं यशो
बिभर्ति मुक्तामयहारकैतवात् ॥१३४॥

तदुद्यदास्येन्दुविलोकनाभयं
हृदा दधानौ विरहव्यथासहौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कुचौ रथाङ्गौ किल कृष्णचूचुक-
च्छलाद् विषं भोक्तुमिव व्यवस्यत: ।।१३५।।

कुचौ कृशाङ्ग्या: कलशौ नु काञ्चनौ
तप:परार्धै: सुलभौ रसोम्भितौ[1] ।
स्मरस्य यन्मेचकचूचुकच्छला-
न्मषीयमुद्राऽत्र रहस्यशंसिनी ।।१३६।।

कृशं कृशाङ्ग्या उदरं स्फुरदृशां
दृशं मुनीनामपि कुण्ठयत्किमु ।
अनङ्गतां योगबलादुपेयुष:
स्मरस्य साक्षादपिधानकौशलम् ।।१३७।।

जगत्त्रये तत्तुलनानिराकृति-
प्रगल्भजल्पाकमहो वलित्रयम् ।
वत प्रमाणीकुरुते मृगीदृश:
कृशस्य सत्तामुदरस्य साम्प्रतम् ।।१३८।।

अनेन कार्यैर्जगतां शुभंयुभि-
र्भृते भवच्चेतसि किं विविक्षया ।
तदीयमध्यस्तनुतां भजन्नपि
प्रकाममभ्यस्यति तानवं पुन: ।।१३९।।

विधेर्विलोक्य द्व्यणुकक्रमात् कृतिं
कृती स कामो नवशिल्पनिर्मितौ ।
सुमध्यमेकाणुमयं मृगीदृशो
विधातुमद्योत्सहते मतेन न: ।।१४०।।

शरै: प्रसूनैर्मृदुभिर्भवज्जये-
ऽक्षम: स काम: किमु साम्प्रतं रुषा ।
गभीरतन्नाभिसरोजकोषत:
कृपाणिकां रोमलतां विकर्षति ।।१४१।।

उदाररोमावलिरज्जुमुच्चकै:
सुनाभिकूपं कलशावपि स्तनौ ।

1. Mss. A. has incorrect form रसौम्भितौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विधाय वेधाः किमु सेक्तुमीहते
तदङ्गमुद्यानवनीं प्रभामृतैः ।।१४२।।

विमूल्य[1] वाल्यं द्दढवन्धनं वलाद्
गभीरनाभीविलसत्तदङ्गके ।
स्फुटन्त्रुटद्रोमसमूहशृङ्खलः
प्रमत्ततारुण्यगजोऽद्य खेलति ।।१४३।।

भ्रुवा धनुर्ज्यामपि रोममालया
नसा च तूणं सुद्दशो द्दशाशरान् ।
विधाय धाता मदनस्य किं रथे
युनक्ति चक्रे नु नितम्बकैतवात् ।।१४४।।

चिरादसारा कदली वलीयसीं
तदूरुलक्ष्मीमवलम्बतां कथम् ।
असौ न लभ्या करभेण[1] विभ्रता
बताऽद्य रेखाः प्रतिषेधशंसिनीः ।।१४५।।

तपस्ययाऽऽसाद्य बताऽद्य मोहनं
तदङ्गमस्त्रं जयतो जगत्त्रयीम् ।।
तदूरुयुग्मं मदनस्य मन्महे
लसज्जयस्तम्भयुगं नु काञ्चनम् ।।१४६।।

अनङ्गभूपालबिहारकन्दुका-
ववैमिगुल्फौ मृगवल्गुचक्षुषः ।
तदीयजङ्घे अनघे च यष्टिके
ध्रुवं तदुत्क्षेपणकर्मणि क्षमे ।।१४७।।

अकृत्रिमस्वाङ्गरुचा सुचारुता-
महो हरन्त्या हरिणीद्दशो भृशम् ।
शरण्यमस्या(श्चरणं) किमश्रयत्
सरोरुहश्रीश्चकिता ससम्भ्रमम् ।।१४८।।

पदो यदस्या लवतां यतो गतं
ततोऽभवत्पल्लवनामकं भुवि ।

1. Variant reading in Mss. A. कलभेन ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तदद्य बाल्यादिव तत्तुलां
प्रवालसंज्ञां बिभृते नवं दलम् ।।१४९।।

अवाप्य पद्मं पदसद्म सुभ्रुव-
स्तथाऽजयत् स्वान्तकरं सुधाकरम् ।
यथा स्वसेवां कुरुतेऽधुनाप्यसौ
मिषान्नखानां प्रकटोल्लसत्कलः ।।१५०।।

इतीयमारभ्य कचान्नखावधि-
स्फुरत्प्रकर्षाङ्गरुचिर्विरञ्चिना ।
रुचः समुच्चित्य[1] जगत्स्थिताः कृता
तवाऽर्कवंशस्य शिरोमणेः कृते ।।१५१।।

वेल्लधम्मिल्लराहुर्वदनहिमरुचिर्लोहिताङ्गाधरोऽयं
केतुर्व्यालोलदृष्टिर्गुरुजघनतटः सौम्यसत्काव्यवाणिः ।
भास्वच्छ्रोणिः सुमन्दोल्लसितपदगतिर्विग्रहः सग्रहोऽस्या
मन्ये राजन्यमान्य त्रिभुवनजयिनी कामशिक्षैव साक्षात् ।।१५२।।

सुस्निग्धश्चिकुरो भ्रुवावतिनतौ चक्षुः श्रुतेःपारगं
वक्त्रं चातिकलाधरं शुचितरा एतद्द्विजश्रेणयः ।
सद्वृत्ता स्तनमण्डलीति नृपते त्वच्चित्तवित्तं द्रुतं
हर्तुं दाम्भिकवर्ग एष मिलितो नूनं तदङ्गच्छलात् ।।१५३।।

धम्मिल्लेन विधुन्तुदं मुखरुचा चन्द्रं चकोरं दृशा
कुम्भौ किञ्च कुचद्वयेन करिणां सिंहं सुमध्येन च ।
रम्भामूरुयुगेन या विजयते त्रैलोक्यजैत्रच्छविः
सेयं श्वो दशदिक्पतेस्तु भवतो लब्ध्वा करं मोदताम् ।।१५४।।

अङ्गप्रत्यङ्गरिङ्गद्गहनसुभगतासान्द्रपीयूषपूरा-
मातङ्गोत्तुङ्गरङ्गस्थलतरलतरापाङ्गभङ्गीतरङ्गाम् ।
फुल्लद्वक्त्रारविन्दामलकलितलसन्मौक्तिकोदारफेना-
मेनां तां स्मारतापादनुसरसरसीं राजहंसावतंस ।।१५५।।

लसदुपवनीदेव्या भव्यामतीव वचःसुधा-
मिति नरपतिः पायं पायं (श्र) वोऽञ्जलिना स्वयम् ।

---

1. A. समुच्चीय B. समुच्चित्य ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विदितमपि तां पृच्छन्नच्छं प्रियागुणवर्णनं
हृदि च सुदृशं ध्यायं ध्यायं निनाय स यामिनीम् ।।१५६।।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्री विश्वनाथस्य सत्-
काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते वध्वा वपुर्वर्णनम् ।।१५७।।

।। इति श्रीविश्वनाथकृते महाराजाधिराज श्री श्रीशत्रुशल्यचरिते
महाकाव्ये नायिकाङ्गनामः षोडशः सर्गः ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ सप्तदशः सर्गः ॥

अथ सम्मदासवमदाहृतचेता
निजसम्पदा शिथिलयन् स दिगीशान् ।
धरणीपतिर्दलपतिः स्थितिविज्ञ-
श्चतुरानवोचदचिरात् सचिवान् स्वान् ॥१॥

सवितुः कुलं स्वचरितेन पुनानं
निजसम्पदा[1] सुरपतिं च धुनानम् ।
नृपशत्रुशल्यममुमद्य यथावद्
दुहितुर्वरं[1] परिचरन्तु भवन्तः ॥२॥

वरमौक्तिकग्रथिततोर -
विमलच्छविच्छलहसद्वदनानि ।
भवनानि भूषयत केतुभिरुच्चैः
प्रमदद्रुमैरिव सुपल्लवितैर्मे ॥३॥

शुचिशातकुम्भसलिलोम्भितकुम्भैः
प्रतिहारभूमिमपि सत्कुरुताऽऽशु ।
विरजःपथा विलसदापणवीथीः
सलिलैश्च सिञ्चत सुबन्धुरगन्धैः ॥४॥

प्रतिमन्दिरं मृगदृशोभृतशोभा
रचयन्तु किञ्च किल मङ्गलगीतिम् ।
नवनीलनीरधरधीरनिनादं
सरसं रसत्वपि चतुर्विधवाद्यम् ॥५॥

इति तन्निदेशनवशंवदचित्तैः
सचिवैस्तथा व्यरचि सम्भृतिरुच्चैः ।
अतिथीभवत्स्वयमपीन्द्रपरार्ध्यं
सुखतोऽनया किल यथा परिपूज्यम् ॥६॥

प्रतिसौधमूर्धपरिबद्धपताका-
चलदञ्चलाम्बर कराङ्गुलिकाभिः ।

---

1. A. दुहितुः पतिं, B. दुहितुर्वरं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नगरं परं दलपतेस्तदुदारं
त्रिदिवद्युतिं द्रुतमतर्जयदुच्चैः ।।७।।

अनणुस्फुरन्मणिगणीय मयूखो-
ल्लसदङ्गरागसुभगा नगरीयम् ।
[1]अचकादुदञ्चितसुचित्रविभूषा
धृतमूर्तिरुज्ज्वलरसस्य सखीव ।।८।।

प्रतिहारभूरपि परं भवनानां
मसृणोल्लसद्घुसृणसान्द्रविलेपा ।
शुचितोरणग्रथितमौक्तिकगुच्छ-
च्छविकैतवादकृत सम्मदहासम् ।।९।।

विकलीकृतातिकलकोकिलकण्ठाः
कमनीयकान्तिकलिताः किल कान्ताः ।
महदेवता इव महीन्द्रपुरेऽस्मिन्
मृदुमङ्गलोल्लसितरङ्गमगायन् ।।१०।।

प्रमदक्रियाविधिविहस्तसमस्ता-
ऽभिजनोच्चरत्कलकलोद्धतमेदाः ।
अति वृन्द वाद्यनिनदो[2] द्रुतमैन्दद्
दलपस्य तत्र नगरेऽतिगरीयान् ।।११।।

समताऽयन्ननघताऽघसङ्घाः
पटहान् पटुध्व निभृतोद्दढदण्डैः ।
समपू पुरश्चदवनैर्वदनोत्थै-
र्वरभैरिकाः सरभस बहुभेरी ।।१२।।

विततं ततं सततमस्वनदस्मिन्
नगरे घनं च सघनं समघोषीत् ।
अपि नद्धमध्वनदरं घनधीरं
सुषिरं समीरभृतरन्ध्रमराणीत् ।।१३।।

---

1. Mss. A. also notes on the margin as. अचकीदुदञ्चितेत्यादिः साधुः प्रयोगः
2. A. अतिवृन्दवाद्य । B, अतिवन्द्यवाद्य ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अतिसान्द्रमन्द्ररसितैरुपनृत्यद्-
वरनर्तकीचपलचारुतडिद्भिः ।
पुटभेदने भवदमन्दमभेदः
पटहव्रजस्य सहवारिदवृन्दैः ।।१४।।

तरलायिताभिजनकेकिकदम्बः
स्तनयित्नुनूत्ननिकरध्वनिधीरः ।
अयमुच्चरद्दलपचातकचञ्चूं
समपूपुरत्समदसान्द्रसुधाभिः ।।१५।।

उचितं मिथो मिथुनमद्य युयुक्षो-
श्चतुराननस्य यशसां स्तुतिपाठैः ।
द्विसहस्रसंख्यरसनः कविरासीत्
किल शेष एष निनदोऽतिगभीरः ।।१६।।

अयि नः सुगोप्य हृदये सह येन
त्वमहो चिरेण रमसे रमणेन ।
स्फुटमद्य ते स कलयिष्यति पाणिं
व्रज मा भजस्व हृदि कामपि शङ्काम् ।।१७।।

इति मङ्गलाय विधये प्रहिताभिः
प्रहसन्मुखीभिरचिरेण सखीभिः ।
अतिनर्मकर्मकुशलाभिरभाणि
प्रियकामुका[1] दलपतेर्दुहिता सा ।।१८।।

(युग्मम् ।)

त्रपया निजाननमसौ नमयन्ती
प्रतिरुन्धती कमपि सात्विकभावम् ।
तरुणारुणाम्बुजसदृग्भिरभीक्ष्णं
निजदृग्भिरैक्षत सखीः स्मयमानाः ।।१९।।

---

1. The earlier reading in the mss. A was प्रियकामुकी which was indecent in grammatical sense; mss. A. itself has variety reading as प्रियकामुका chosen by mss. B. as well as by us; decent expression grammatically.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अथ तां कथञ्चिदनयन्त वयस्याः
पिहितां त्रपाभरवगुण्ठपटेन ।
प्रियसङ्गमामृतजडीभवदङ्गीं
प्रवरां प्रसाधनभुवं मधुराङ्गीम् ।।२०।।

भृतभर्मभद्रकलशान्तिकभूमौ
विलसच्चतुष्कसुपरिष्कृतवेद्याम् ।
उपवेश्य[1] तामथ यथाकुलधर्मं
समभूषयन् प्रवरवृद्धपुरन्ध्र्यः ।।२१।।

अतिगौरमङ्गमदसीयमनङ्गो
विरहासहार्तिपरिपाण्डु निरीक्ष्य ।
कनकद्रवैरिव लिलेप हरिद्रा-
मयवर्णकस्य कपटेन तदानीम् ।।२२।।

अथ तच्छिरोनिहितकौसुमतैल-
प्रसरत्सुगन्धभरपातुकभृङ्गाः ।
समुपेत्य मेचकितकुन्तलबन्धून्
कुशलानि गुञ्जितमिषात् किमपृच्छन् ।।२३।।

निजजैत्रतत्कुचविलोकनजात-
त्रपयेव नम्रवदनैरथ कुम्भैः ।
विलसत्सुगन्धिसलिलैर्ललनास्ताः
स्नपयाम्बभूवुरचिराद् रुचिराङ्गीम् ।।२५।।

सितसीकरोत्करकिरा चिकुराली
सुचकोरचञ्चलदृशोऽतिचकाशे ।
वमतः क्रमाच्छशिसुधाः परिपीता-
स्तमसः प्रसह्य दधती रुचिमुच्चैः ।।२२५।।

प्रविकीर्णकेशभृशभासितमिस्रा-
ऽन्तरभासिवारिपृषतोद्धततारा ।
विलसद्दुकूलनवकौमुदिकाऽसौ
शरदः प्रदोषसमयं हसति स्म ।।२६।।

---

1. Variant earlier reading mss. A. उपवेश्म ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घुसृणाङ्गरागसुभगं सुदृगङ्गं
तुलयेत् कुतोऽसुरभि काञ्चनमद्य ।
यदि कण्टकं त्यजति नाम कथञ्चि-
न्नवकेतकं तदुपमां तदुपैतु ।।२७।।

अथ ताः प्रसाधनविधौ[1] विदधाना
मिथ ईर्ष्यया कुशलतामधिकां स्वाम् ।
कचधोरणीं मृगदृशो मदनास्त्रं
समधूपयन् सफलतां किमु नेतुम् ।।२८।।

निजसौरभाहृतमधुव्रतजात-
द्विगुणीभवत्सुमलिनच्छविधूपैः ।
अविशेषमाश्रितवतीं चिकुरालीं
चतुरा कथञ्च न बबन्ध तदाली ।।२९।।

चिकुरोत्करश्चलदृशः कचपाश्या-
स्थितमौक्तिकप्रकरकैतवकेन ।
विलसद्विधुन्तुदपराजयजातं
बिभराम्बभूव सहजं यश एव ।।३०।।

इदमीयभालतटहाटकपट्टे
चतुराभिरालिभिरहो विहितो यः ।
कुरविन्दकन्दलरुचिर्घुसृणीयः
सललाटिकां व्यफलयत् तिलकोऽस्याम् ।।३१।।

रतिरङ्गमङ्गलमपाङ्गविभङ्गः
सुदृशोऽत्यशोभतनवाञ्जनयुक्तः ।
नृपशत्रुशल्यविजये रतिजाने-
स्तमहं विषाक्तविशिखं वत जाने ।।३२।।

लसदञ्जनाञ्चिततदक्षिकटाक्षै-
रुचिरेण खञ्जनकगञ्जनदक्षैः ।
असिताम्बुजन्म विजितं श्रुतिकूणे
न्यवसत्तदा तदवतंसमिषेण ।।३३।।

---

1. Earlier variant reading Mss. A. अथ तां प्रसाधनविधौ etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मणिकुण्डलद्वितयमण्डितमस्याः
श्रवणद्वयं मृगदृशोऽतिचकाशे ।
रतिनाथकस्य जगतीं विजिगीषो-
रिव चक्रयुग्ममममलं दधदुच्चैः ॥३४॥

नवपल्लवव्रजविजित्वररागे
सुदृशोऽधरेऽधरसुधामधुरत्वे ।
वरवीटिका विधिलसत्फणिवल्ली-
दलकैर्न्यधायि चाकितैरिव रागः ॥३५॥

चतुरैस्तदालिनिहिताऽसितरत्नो-
द्भटपट्टसूत्रकपटात् कलकण्ठयाः ।
अवहत् तदा द्विजपिकाभिभवोत्था-
मपकीर्तिमाविलतरां किल कण्ठः ॥३६॥

वरमौक्तिकामलमनोहरहारा-
ऽमरसिन्धुबन्धुरसमागमलोला ।
असितोल्लसद्गुणकलिन्दसुतेयं
किल तीर्थराजमकरोद्गलमस्याः ॥३७॥

शरदिन्दुसुन्दररुचा समराज-
न्नृपशत्रुशल्ययशसा सदृशो यः ।
वलयीभवत्करिरदः स सुदत्या
अनुरागतो ध्रुवमजायत शोणः ॥३८॥

वरवर्णकैरथ तथालिभिरस्या
रुरुचे सकञ्चुलकितः कुचसीमा ।
अपि चित्ररत्नखचितोऽपि सुचोलः
समभूद् यथा सुविफलीकृतकान्तिः ॥३९॥

प्रतिवासरं तरुणिमोन्नतिभाजो-
स्तनयोर्भरेण तनु मध्यकमङ्गम् ।
सुतनोर्वितर्क्य किमवन्धि तदाभि-
र्न चिराददो[1] मुखरकिङ्किणि काञ्च्या ॥४०॥

---

1. Earlier variant reading mss A. न चिरादसौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मदमन्दतद्गतिविलासतुलाया-
मकदर्थयत् सुकविसार्थमहोयः ।
शरणञ्चकार वरणौ चकितः किं
स हि हंसकः सुदगलङ्कृतिभूतः[1] ॥४०अ॥

उपमाप्रकल्पनरुषेव सुशोणा-
च्चकितः करात् सदम्बुजरागः ।
नवयावकस्य कपटेन तदानो-
मभजत् पदाम्बुरुहमम्बुरुहाक्ष्याः ॥४१॥

सहजोल्लसल्ललितकान्तिनिकाये
सुदृशोऽन्यवेशि कुशलालिभिरित्थम् ।
स्वकला प्रकाशनकृते न तु तन्व्या-
स्तनुभूषणाय बत भूषणभारः ॥४२॥

अतितीक्ष्णधीरिव गुरोरुपदेशात्
विमलान्वयस्थितिरिवापि सुपुत्रात् ।
कवितेव सत्कृतलसद्रसशब्दात्
परिकर्मणोऽतिशुशुभे सुदती सा ॥४३॥

कुलदेवताचरणवन्दनपूर्वं
प्रणनाम सा नतमुखी त्रपयोच्चैः ।
अमरप्रसादसुहृदं लभमाना
तत आशिषं शुभगुरुं गुरुवर्गम् ॥४४॥

अथ सन्निधि व्रजति मङ्गललग्ने
तरणौ जलेशवनितारसमग्ने ।
तनुजाविवाहविधये दलपस्तं
द्रुतमाजुहाव सवितुः कुलवीरम् ॥४५॥

चरवाक्सुधासवससम्भ्रमचित्तः
परमर्थिसात्कृतलसन्मणिवित्तः ।

---

1. Mss. A. Omits the bracketed verse but.
Mss. B. Reads it as 20. 41.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दशदिग्दरीमुरवरवाद्यनिनादः
सविवेशदालपपुरं धरणीशः ॥४६॥

अथ मण्डुरं धरणिमण्डनरूपं
विशति शितीशितरि तत्र विवोढुम्[1] ।
विलसत्कुतूहलरसोन्मनसोऽभूत्
पुरयौवतस्य बत सम्भ्रमभूमा ॥४७॥

अथ तद्विलोचनकुतूहललोलाः
कमलाधिकच्छविदृशः सुदृशस्ताः ।
स्वरुचा स्मरभ्रमकरं तमवेक्ष्य
स्वहृदि द्रुतंचकमिरे रतिभावम् ॥४८॥

अवरोधवासपरिद्धवगुण्ठ-
प्रविधूननाकुलकरा रुचिराङ्ग्यः ।
विलसद्गवाक्षनिहतैर्नयनाब्जै-
रिव तोरणस्रजमतन्वत नार्यः ॥४९॥

रतिजप्रजागरसरागविघूर्ण-
न्नयनानवेक्षितसमोन्नतमार्गा ।
स्खलनोल्लसद्धससखीजनदृष्टा
प्रमदा मदालसमियाय तदाऽन्या[2] ॥५०॥

[3]मधुरप्रसाधनविधानविकीर्णां
लसदंस आशु कबरीं कलयन्ती ।
मृगलोचना तमथ काचन चारु
विलसत्सकङ्कतिकपाणिरपश्यत् ॥५१॥

अशनायितं शिशुमतीव रुदन्तं
स्तनपानतः सरभसं प्रविमोच्य ।
स्फुटदृश्यमानकुचमण्डलमन्या
समुपेयुषी विटदृशां मह आसीत् ॥५२॥

---

1. A. सुराज्ञि B. विवोढुम् ।
2. This verse in mss. A. is No. 50 in mss. B. No. 52.
3. This verse in mss. B. precedes the earlier verse रतिजप्रजागरसराग etc..

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इतरा घनस्वजघनस्तनभारा-
दधिरोहिणीषु[1] कथमप्यतिमन्दम् ।
ददती पदं कृतनिजात्ययकारा-
मुपकारिकामपि तदा हृदि मेने ॥५३॥

लिखी-तार्धपञ्चशरचित्रकराऽन्या
स्वमनोविनोदनिपुणाऽथ गवाक्षात् ।
प्रविलोक्य तद्विजयिनं नृपमेतं
द्रुतमौज्झदञ्चितमदा स्मरशिल्पम् ॥५४॥

अपरा त्वरातिशयदोलितमध्यं
द्रुतमित्वरी रतिविजित्वररूपा ।
प्रसृतश्रमाम्बुकणमण्डितगण्डा
तमवेक्ष्य तु व्यधित सात्त्विकभावम् ॥५५॥

द्रुताधवनोन्मुखरनूपुरसिञ्जा-
मुखरोल्लसत्पदगतेरितरस्याः
अभितो विलोलतरहारमयूख-
च्छलतो जहास मुदिता कुचसीमा ॥५६॥

मुखरञ्जनग्रहणलोलकराऽन्या
समदभ्रसम्भ्रमरसाकुलचित्ता ।
करशाखया कलितवीटिकयाऽमुं
समदर्शयत् स्मितमुखी स्वसखीभ्यः ॥५७॥

मदनामनागनलसज्वलदङ्गया
गलचञ्चलस्रगसिताम्वुजदम्भात् ।
तदवेक्षणाय मनसोन्मनसोच्चैः
प्रकटीकृतानि नयनानि परस्याः ॥५८॥

तदवेक्षणोत्पुलकपुष्यदुरोजा
प्रकटं त्रुटन्तमवलोक्य सुचोलम् ।
परिबिभ्यति सुचतुराऽलिजनेभ्यः
प्रणिनिन्द सौचिकमहो मुहुरन्या ॥५९॥

---

1. Mss. A. दधिरोहणीपु B. दधिरोहिणीपु ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रतिजानिमान जयिनं क्षितिजानिं
तमवेक्ष्य काऽपि घनपक्ष्मलिताक्षी ।
रतितोऽधिकां सहजसुन्दरगात्री
मपि नन्दिनीं दलपतेर्निरणैषीत् ॥६०॥

इति पूजितः पुरवधूनयनाब्जै-
र्धरणीपतिर्दलपतेः प्रतिहारम् ।
मृदुगन्धवाहचलतोरणहस्ते-
र्द्रुतमाह्वयन्तमिव बन्धुमपश्यत् ॥६१॥

पवनोल्लसत्किसलयाङ्गुलिकौघ-
स्फुटदर्शिताभिनयविभ्रमभव्याम् ।
मुखरद्विरेफकलगीतिममंस्ता-
ऽमरलासिकामिव नृपोऽत्र स रम्भाम् ॥६२॥

अथ शुश्रुवान् दलपतिः प्रतिहारे
समुपेतमेतमुपगम्यपदातिः ।
प्रविसार्य दोर्युगमगाहत तूर्णं
विलसत्तदङ्गपरिरम्भसुखाब्धिम् ॥६३॥

बहुमानपूर्वमतिमानमुपेतं
सुहृदां समाजमुपवेश्य सभायाम् ।
उपचारकैः सुचतुरैरयमार्चत्
सुरराजसम्पदभिभावुकभूतिः ॥३४॥

पुरुषोत्तमाय परिदित्सुरमुष्मै
बहुवाहिनीपरिवृढो मणिपूर्णः[1] ।
तनुजां निजां स कमलामिव साक्षा[2]-
दुपचक्रमे श्रुतिविधिक्रमपूजाम् ॥६५॥

कृतवन्द्यपाद्यविधिरेष वराय
द्रुतमाहरद्द दलपतिर्मधुपर्कम् ।

---

1. A. Mss, variant readings are o वाहिनीपरिवृढो दलपः सः ।
2. A. तनुजां निजां सरसिजामिव साक्षात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अविलम्बतः परिचुचुम्ब स कान्ता-
ऽधरमाधुरीमधुरबन्धुधियैव ॥६६॥

इतरेतरस्य वरमानसरत्नो-
द्धतचोरयोरथ तयोः करयुग्मम् ।
समबन्धि माङ्गलिककङ्कणदम्भाद्
गुरुणा तदा दलपधाम्नि सुराज्ञि ॥६७॥

अतिकर्कशैरथकुशैः परिबध्नन्
गुरुरेतयोः करयुगं वरवध्वोः ।
तरुणारुणाऽम्बुरुहदर्पविमदे
कुशलत्वमस्य विदधे धृतयोगम् ॥६८॥

कनकं वनीयकवनीमनुवर्ष-
न्नवनीवदान्यनिकरोत्तर एव ।
समदर्शि यो विधिवशादध आसीत्
स वधूकरं वरकरः प्रतिगृह्णन् ॥६९॥

वरपाणिरेष जगतीतलवर्ति-
श्रुतचक्रवर्तिवशकार्मणकर्मा ।
स्ववशीकृतिक्षमतरच्छविधीरं
विनतो वधूकरमुपर्यभृतोच्चैः ॥७०॥

श्वशुरप्रदत्तमणिकुण्डलचूडः
स वरोऽधिकण्ठममुना निहिता या ।
वरमौक्तिकस्रजममन्यत कान्ता-
विलसद्विसभ्रदिमबाहुलतां ताम् ॥७१॥

तपसा प्रसादवदना मदनारे
र्दयिता नितान्तममतान्तकरं यम् ।
तमदत्तदारुणमसिं स वराया-
ऽदित कूकुदो दलपतिर्द्रुतमस्मै ॥७२॥

विलसत्सशात्रिकनिशातकृपाणं
कृतपाणिपीडनममुं स महीन्द्रम् ।
कुतुकेन यौतकमनेकमुदारः
समजिग्रहद्ध धनदजित्वरसम्पत् ॥७३॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धरणीविहाररसलालसचित्तं
सुरयौवतं वरमिवैष वराय ।
क्षितीवासवाय विलसद्युति दासी-
शतमार्पयत् कनकभूषणदीप्रम् ॥७४॥

प्रविसारिसारतरकान्तिविराज-
न्मणिपुञ्जराजितसुवर्णसुवर्णम् ।
समदत्तभोजनसुभाजनमस्मा
अपहृत्य सारमिव हेममहीध्रात्[1] ॥७५॥

क्षितिनाथवक्त्रविगलद्दलपूग-
च्छलपद्मरागखचितो भविता यः ।
वरभर्मनिर्मितमुदारनरेशः
स पतद्ग्रहं द्रुतमजिग्रहदेतम् ॥७६॥

मदसौरभोल्लसितसभ्रमनृङ्ग-
प्रकरस्फुरन्मधुरगुञ्जितमन्त्रैः ।
सततं वसन्तविभवं स्थिरयन्तो
ददिरे वराय दलपेन महेभाः ॥७७॥

अतिभूरिभासुरमणीरमणीया-
द्भुतभर्मभूषणविभूषितवेषाम् ।
गजतां तदा न जनता किमु मेने
प्रविरूढपक्षकनकाद्रिसनाभिम् ॥७८॥

दधतः प्रभञ्जनकगञ्जनकीर्ति
कपटात् प्रकीर्णकविघूर्णिघृणीनाम् ।
बहुसैन्धवान् स वरसादकृतोच्चै-
र्मणीभिः सहोदरधिया कृतसङ्गान् ॥७९॥

मदनेषुमेदुरितसत्तरसो ये
त्रिदधुर्वधूसविधमाशु गतानि ।
कृतिनस्तदा दलपदिष्टतुरङ्ग-
च्छलतः पुरो बभुरमी वरकामाः ॥८०॥

---

1. Variant reading fourth line Mss. A. अयमन्तरीपमिव जाम्बूनदस्य ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

बहुवाहिनीपरिवृढो दलपोऽसा-
वनघाय भूमघवतेऽथ वराय ।
वितरँस्तदा सुबहु हास्तिकमाश्वं
मणिवृन्दमम्बुधिममन्दयदुच्चः ॥८१॥

अदुनोन्मनो य उभयोर्वरवध्वो-
र्विषमस्तिथीर्बहुतिथा विरहाधिः ।
द्रुतमाशुशुक्षणिममुं विधिमन्त्रै-
र्दधतुः प्रदक्षिणमिमावनुनेतुम् ॥८२॥

श्रुतिराशशास सुदृशं यदिमां तां
स्थिरतां तदाऽश्मवददो ध्रुवमेव ।
यदतीतरत्तरणिवंशभुवो ऽसा-
वनुभावतो विरहदुःसहसिन्धुम् ॥८३॥

उभयो परस्परवपुर्द्युतिसम्प-
च्छ्रवणात्तयोर्य उदलङ्घत् सीमाम् ।
गुरुरेतयोर्वसनबन्धनदम्भात्
सुदृढंतदा तमनुरागमबध्नात् ॥८४॥

सदरुन्धतिं धवनिदेषत एषा
समपश्यदर्ककुलसद्गुरुदारान् ।
सुपतिव्रतागुणगणादिव भीतेः
कृतसाधुविष्णुपदमात्रशरण्याम् ॥८५॥

तरुणारुणाम्बुजविराजिनिनेया-
ञ्जलिराजिलाजनिकरं करभोरू ।
द्रुतमग्निसादकृत सा स्वकचेतः
समिदुत्समिद्धविरहाग्निकणाभम् ॥८६॥

निहिताहुतेरथ तया हुतभोक्तुः
श्रितभूमधूमततिराशुजजृम्भे ।
सुतनोस्तनूं प्रदहतो विरहाग्ने-
रपकीर्तिरेव धृतमूर्तिरहो किम् ॥८७॥

अनयोः करव्यतिकरेण तदानीं
प्रससार घर्मसलिलं बहुलं यत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तनुजां निजां वितरतो द्रुतमेतद्
दलपस्य पाणिगजलैः समरोपि ॥८८॥

समुदञ्चिपञ्चशरचापलभाजो-
रनयोर्बभूव विपुलः पुलकौघः ।
समवेदि बन्दिकृततत्कुलकीर्ति-
श्रवणास्रुताक्षिसलिलैर्न स लोकैः ॥८९॥

अविपातमन्मथसमुत्थविकारौ
ययतुः कुतूहलरहो गृहमेतौ ।
अवलोकनाकुलवधूकृतरन्ध्र
प्रकरच्छलाङ्कुरितनेत्रहस्रम् ॥९०॥

इह कापि नर्मचपला चपलाक्षी
सुचिरं तदीयसखितोज्झितलज्जा ।
मिथुनं मिथो रचितवीटिकमेतत्
समजिग्रहत् कृतहसा मुखरागम् ॥९१॥

परया परस्परसुनामनि पृष्टे
त्रपया शिरो विनमितं द्रुतमाभ्याम् ।
अथ साऽन्यया निजगदे सखि पश्य
प्रणतं मिथो मिथुनमेतदिदानीम् ॥९२॥

अपरां वरं हुतहुताशनभूति-
च्छुरितालकं सुमुकुरं परिदर्श्य ।
अगदत्परां स चतुरः कतरो वा
पुरुषायितं नयति यो निजभालम् ॥९३॥

त्रपया विनम्य वदनं धृतमौनं
तदगद्यताऽथ मिथुनं परयाऽऽशु ।
इतरेतरं यदि युवां कृतमानौ[1]
कतरस्तदा व्रजतु वामनुनेतुम् ॥९४॥

उपहस्यमानमिति तभिरभीक्ष्णं
शरणीचकार तदनुत्तरमेव ।

---

1. Variant reading Mss. A. उभयौ युवां यदि मिथः (कृतमानौ) ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

समसन्दसम्मदसुगद्गदवाणी-
वरमाधुरी प्रकटनस्य भियेव ।।९५।।

उपनीतमप्यथ चतुर्विधभोज्यं
बुभुजे तदा मिथुनमेतदभूरि ।
इतरेतरस्य चिरवाञ्छितसङ्गा-
मृतलालसं यदशानयमिवोच्चैः ।।९६।।

अथ तावुभौ स्वपनघूर्णितनेत्रे ।
स्वसखीजने निजगृहानुपयाते ।
रहसि स्थितावपि मुहुस्त्रपयोच्चै-
र्वलितानन सुषुपतुर्निशि तस्याम् ।।९७।।

साम्मुख्यस्पृहयालुमानसमपि त्यक्त्वाऽऽभिमुख्यं क्रमं
मन्दस्पन्दयुतेक्षणं क्षणमथाऽमीलच्चलापाङ्गकम् ।
लुम्पत्केलिकथं क्षणं क्षणमहोपार्श्वाभिवृत्तिच्छला-
दन्योन्यस्य कृताङ्गसङ्गमनयोरासीद् विचित्रं रहः ।।९८।।

वैमुख्यादनधीतदर्शनविधिर्मन्दाक्षमन्दायिता-
ऽन्योन्यालापरसोदरादरपरित्यक्ताङ्गसंश्लेषणः ।
दूरादुज्झितचुम्बनोद्भुतगलल्लीलायितप्रक्रमो-
ऽप्यन्तः सम्मदघूर्णितोऽजनि तयोः स्वापक्रियाविभ्रमः ।।९९।।

सौजन्योद्धतजन्यराजिहसना लोलस्वबालावली-
प्रत्यादेशवशंदेन दलपेनात्याशितज्ञातिना ।
संस्थाप्य त्र्यहमात्मधामनि कृतानेकोपहारार्हणः
सोऽर्थिभ्यो वसु शत्रुशल्यनृपतिः प्रीत्या व्यतारीद् बहु ।।१००।।

तद्दानाद् धनपालतामकलयन् केचिच्चिरादर्थिनो
भूयो भूमिभुजो परे समभवन्नन्येऽभवन् वासवाः ।
सद्रत्नाकरतां नितान्तमितरे प्रापत् परे लेभिरे
माद्यत्सिन्धुरयूथनाथपदवीं केऽप्यासुरश्वेश्वराः ।।१०१।।

प्रेङ्खत्प्रोज्छृङ्खलांशुप्रकरवरमणिस्मेरदिक्चक्रदीप-
श्रेणीकल्याणपल्याणककपटलसन्नाकियानावनद्धाः ।
एतेनामेयमायाकलितसुललिताकारधीराः समीरा-
[illegible] ।।१०२।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धीरा विन्ध्यवनीव याचकवनी दानान्धगन्धद्विप-
क्रीडाडम्बरमण्डिताऽऽशु विदधे दानोद्धुरेणाऽमुना ।
न्यस्ते तेन सदर्थिसार्थसदने सौवर्णकूटे मुहुः
स्वर्णाद् विभ्रमघूर्णित- खरघृणिर्मन्दं दिवं लङ्घते ।।१०३।।

उत्कर्षविशवृष्टागणितमणिगण प्रीणितासङ्ख्यखेलत्-
सङ्ख्यावत्सङ्खविख्यापितनिजसहजप्रौढगाढानुभावा ।
राकानिस्तन्द्रचन्द्रद्युतिदलनमुखीं मुख्य उच्चैर्नृपाणां
पाणौ कृत्याऽऽयताक्षीमगमदथ तया साकमात्मीयधाम ।।१०४।।

तुर्ये वर्येऽह्नि भार्यासहचरितगतिः सूपचर्याचितार्यै-
र्निर्मर्यादार्थिसार्थप्रथितकथशरच्चन्द्रचारुप्रशस्तिः ।
अन्योन्याभीष्टमेलाप्रथमपरिचयोत्कन्दलामन्दमोह[1]-
प्रौद्भिन्दद्रोमवृन्दः कथमपि रजनीशेषमेषोऽध्यशेत ।।१०५।।

योन्तर्वाणिशिरोरुहमणेर्वरभिषम्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्वुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्यसुकवेः श्रीविश्वनाथस्यसत्-
काव्ये श्रीवृपशत्रुशल्यचरिते वृत्तो विवाहोत्सव ।।ः १०६।।

।। इति श्रीमन्महाराजाधिराज श्री शत्रुशल्यचरिते श्री विश्वनाथकृते
महाकाव्ये नायिकाङ्गनामः षोडशः सर्गः ।।

1. Variant reading Mss. A. अन्योन्यस्यानत्राऽन्यप्रथमसुमिलनोत्कन्दलामन्दमोद etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। अष्टादशः सर्गः ।।

अथ प्रथमविभ्रमानुपमसम्मदाम्भोनिधि-
प्रगाहनविधिस्फुरन्निरवधिश्रमस्यादरात् ।
चिरंकृतशयः महाशयममुं प्रियासंयुतं
प्रभात उदबूबुधन् बिबुधमागधश्रेणयः ।।१।।

सुधामधुरिमोपमासदपमानदानोद्धत-
प्रियाधरजमाधुरीसहजबन्धुताबन्धुरैः ।
पदैः प्रतिपदद्रववद्रसाविला ससाराक्षरै-
स्तदाऽऽशु जगिरे गिरः सुमगधैरगाधोक्तिभिः ।।२।।

चिरं जय जयाऽधुना विजयिनां पते तेजसां
प्रसारय रसालसस्वमुखपुण्डरीकत्विषम् ।
परं परिहरद्रुतं नयनचुम्बिनिद्रातमः
प्रमोदय तवोदयोत्तरलतर्षचक्रद्विजान् ।।३।।

उदञ्चिमृदुलस्मितोल्लसितलीलनीलोत्पल-
प्रहासधृतसाहसैरलसक्ष्मशिक्षाक्रमैः ।
विराजिनिजदर्शनैः परमदर्शनीयाश्रियं
प्रभातसुषमामिमानुगृहाण भोः साम्प्रतम् ।।४।।

उदारदरदन्तुरत्सदरविन्दवृन्दोल्लस-
न्मरन्दमदसम्मदालसविलासलासोद्धतः ।
रहस्यरतजश्रमं परिहरन् परं कामिनो
रहोषसि महोज्जवले वहति गन्धवाहः सुखः ।।५।।

प्रवत्स्यति निजप्रिये प्रमथनाथचूडामणा-
विवं कृशतमा तमी द्विजरुतोद्धताक्रन्दिता ।
चिरेण गलिताञ्जनस्वनयनातिमानस्रवत्-
सुवाष्पभरसीकरान् किरति तारकाः पाण्डुराः ।।६।।

अखण्डशशिमण्डलं विजयते धराखण्डल-
प्रचण्डविरहोल्लसद्युवतिगण्डवत्पाण्डुरम् ।
उदारसुदरिद्रतातुरविदग्धवैदग्ध्यवद्
भृशंकृशतमायते नृवर । तारकाणां गणः ।।७।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्षपाकरगुरुत्रपाकरमयूखखेलन्मुखे
तवोल्लसति साम्प्रतं विधुरितोऽधुना लीयते ।
इतोऽपि बत यामिनीसुयमुना कृशर्क्षच्छला-
दनूरुकरमन्थिता किमपि किञ्च फेनायते ।।८।।

न मन्त्रविरतिप्रियं न च विषादलब्धालयं
न जातु कलितक्षयं न च विभासिदोषोदयम् ।
तमोविधुरितं न च द्रुतमवेक्ष्य युष्मद्यशः
सुधांशुमतिलज्जितो विधुरितो ध्रुवं लीयते ।।९।।

नभःस्थमुनिकामिनीजनबलीभवत्तण्डुल-
भ्रमप्रसभतुन्दिलप्रमदकन्दलद्रंहसः ।
पुरोचलकुलायतः सजवमुज्जिहाना इतो
प्युडूनि चटु चिन्वतेऽरुणाकरालिपारावताः ।।१०।।

गुणप्रगुणिमस्फुरत्तरुणिमोल्लसद्रोचिषां
बलेन जगले निशामधि यदाऽऽशु यैर्दीपकैः[1] ।
अमी परिणता इव प्रतनुतां गताः साम्प्रतं
वमन्ति किमु तत्तमो बहलकज्जलालिच्छलात् ।।११।।

निशान्तसमयव्ययच्छवि निशान्तदीपोच्चयः
सुदुर्जन इवेक्ष्यते निरवशेषितस्नेहकः ।
जरन्निव दशाङ्गतः स्वपरिशाम्यदोजश्छटा-
हृतोल्मुकमलीमसं वमति कज्जलं भूरिशः ।।१२।।

द्रुतं रचितजागरश्रुतिसुखस्वराञ्चद्द्विज-
व्रजोल्लसदसूयया झटिति जागरूकः स्वयम् ।
प्रियप्रथमसङ्गमातुरनवाङ्गनाकुन्थन-
श्रुतिं पठति हुङ्कृतैर्गृहकपोतपोतोत्करः[2] ।।१३।।

भृशं समनिशं निशामलसितां शयानामिमा-
मनूरुकिरणोत्करव्यतिकरोल्लसत्सम्भ्रमाम् ।
जनेश बत जाग्रती कमलिनीमलीनां तति-
स्सखीव रतिजं रहो मधुरगुञ्जितैः पृच्छति ।।१४।।

---

1. B. Mss. निशि प्रचुरमाशुयद्दीपकैः ।
2. A. Mss. has wrongly spelt हुङ्कृतौर्गृहकपोतपोतोत्करः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इतो बत विलोक्यतां कुमुदिनीवनी मज्जति
स्फुरस्तमतमोम्बुधौ सह चकोरचारूच्चयैः ।
परत्र च पुरोहरिद् विवृणुतेऽनुरागं मुखे
विखेदहृदयैरहो सह युगैस्तु चक्राङ्गयोः ॥१५॥

प्रशाम्यति विशाम्पते तुहिनदीप्तिदीपे दिशां
सुभीरुरभिसारिका प्रियनिकेतनान्निःसृता ।
उषःसमयमङ्गलीकृतमहो जनैस्ते यशो
निशम्य सितवाससा पथि जवात् पिधत्ते वपुः ॥१६॥

रहस्यरणकार्मणस्वरमणोल्लसत्पाणिज-
व्रणा हरिणलोचनाकुचयुगे स्फुटं भान्त्यमी ।
प्रभाकरकरस्फुरद्दरकृतास्तभूभृद्भृगु-
प्रपातशकलीभवच्छशधरां शशाङ्काकराः ॥१७॥

त्रयीपठनकर्मठोन्मठबटूच्चकैःप्रोच्चर-
च्छ्रुतिस्वरपरम्परानुकृतिनर्मकार्मध्वनिः ।
रसालसित-दम्पतिश्रवणशष्कुलीनिष्ठुरं
रटत्यपि च कुक्कुटोद्द्रुतदरिद्रनिद्रः स्फुटम् ॥१८॥

प्रसुप्य ससुखं निशामुभयपार्श्ववृत्तिव्रतै-
र्विकुञ्चितपुरःपदद्वितयमुत्थिताः सालसम् ।
करेण धुतधूलयः कृतविराजदम्बूकृताः
सचीत्कृति च भुञ्जते मधुरमिक्षुकाण्डं गजाः ॥१९॥

सपश्चिमपदद्वयप्रसरणं विनम्य त्रिकं
विधाय वपुरायतं वलितकण्ठमालिङ्ग्य च ।
मुखेन हृदयं धुतोत्कटसटाश्चलत्प्रोथका
हयास्तव सहेषितं कवलयन्ति दूर्वाङ्कुरान् ॥२०॥

कियाच्चिरमहो भवन्नयनमद्य निद्रारति-
र्महीश परिरप्स्यते वशितवल्लभेवोद्धता ।
रथाङ्गयुगमेलनप्रतिनिधिर्निधानं रुचा-
मुदञ्चति पुरोहरिद्वदनबिम्बचुम्बी पुरः ॥२१॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

लसद्घुसृणनिर्मितं तिलकभूषणं पूषणं
द्विजेशरुचिदूषणं[1] धृतवतीयमैन्द्री हरित् ।
दरिद्रयति निर्दयं सुभगतां भुजङ्गीभवत्-
प्रगल्भककुभां[2] प्रभाकरकुलावतंस प्रभो ।।२२।।

निभालय विभो विभाकरकरोत्करोऽति स्फुटं
किरीटकुरुविन्दति प्रथममग्रिमक्ष्माभृतः ।
अलक्त कति च क्रमाद द्रुतममुष्य पादश्रियो
धराचिकुरपाशके तदनु सान्द्रसिन्दूरति ।।२३।।

सुदुःसहसहोदयद्वरकरप्रतापोद्धते
विभाति भवतीह च द्विजगणा हितार्थेऽधुना ।
चिरं मथितसलथं परतमोऽतिसन्त्रासतो
व्रजत् सुगहनोदरीगिरिदरीर्दरीदृश्यते ।।२४।।

समुद्रपरिमुद्रितक्षितितलस्य धुर्यावुभौ
विभो स विदधे युवां कमलनाभनाभिभवः ।
नृपं तव पितामहं भुवनरत्नरत्नाभिधं
भवन्तमपि तत्तुलाविधिलसत्प्रमाणायितम् ।।२५।।

निरर्गलसदर्गलाधिपतिशाहजाहज्वलत्-
प्रतापलसदाशुशुक्षणिविनाशधाराधरः ।
अमुष्य च यशोक्षरविवपपहारदाक्षीसुत-
स्तवोपरि भुवो भरं दधदुपैति रत्नः सुखम् ।।२६।।

क्षितिं लसदुदन्वतीं विदधताऽद्य राजन्वतीं
महीमघवताऽनघप्रघणभूरिभूमिस्त्वया ।
प्रगीतगुणगौरवोद्धतदिगीशवृन्दाश्रिता
चिरादरचि नाकिनामिवपुरी गरीयःश्रिया ।।२७।।

श्रुतिप्रकरवर्णितप्रवरधर्मकर्मोत्करं
प्रमाणयसि मानसे यदपि मानवेन्द्र स्फुटम् ।

---

1. Mss. A. द्विजागमविदूषणं B. द्विजेशरुचिदूषणं ।
2. Mss. A. भूजङ्गीभवत्प्रगल्भककुभां B. भुजङ्गायितातदन्यककुभां ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तथापि रिपुकामिनीरचिततापपापव्रत:
परश्रुतिमधिक्षिति द्रुतमधिक्षिपस्युच्चकैः ।।२८।।

रणाङ्गणमुपेयुषां बत विशाम्पते विद्विषा-
ममर्षपरुषत्विषा कथमलावि सम्पत्त्वया ।
यदैन्द्रपदगा अमी सुरपुरन्ध्रिनीरन्ध्रिता:
प्रकाममुपभुञ्जति क्षितिय दिव्यभव्यश्रियम् ।।२९।।

अखर्वतरसर्वतोमुखरयोल्लसद्वाहिनी-
समुद्धतपराम्बुधिं ज्वलति गाहमानोऽपि य: ।
तमद्य रिपुकामिनीरचितमोहमूहामहे
प्रचण्डतरवाडवप्रतिभटं प्रतापं तवं ।।३०।।

भवद्भुजयुगारणिप्रभवदुच्छिखप्रज्वलत्-
प्रतापदहने निजान् द्रुतमसून् विधायाऽऽहुति: ।
मुहु:प्ररुददङ्गनानिपतदश्रुधाराजले
तवाऽवभृथमुच्चकैरनुभवन्त्यहो विद्विष: ।।३१।।

तपर्तुकृतपूर्तिभिर्वितपमान उस्रव्रजैः
प्रतापतपने तव द्रुतममी परार्कोपला: ।
वमन्त्यनुपमं परं सुकरवालभिन्नान्तरा-
ऽसकृत्स्रवदसृङ्मिषाद्विषमचञ्चदर्चिश्चयम् ।।३२।।

अहर्दिवमहर्पतौ नरपते प्रतापे तप-
त्यपेतितसुपातुकप्रवरयामिनीनामनि ।
अमर्षविषमौजसां रणमुपेयुषां विद्विषा-
मनीकनिभनीवृतिस्फुरति कालरात्रि: कथम् ।।३३।।

प्रचण्डतरवारिसन्निशितधीरधारोत्किरान्
घनानपि परान् करोत्यहह खण्डश: कृत्स्नश: ।
विपक्षतरलेक्षणानयननिम्नगा: पूरयन्
प्रतापतरणिस्तवोत्तमचरित्र चित्रीयते ।।३४।।

समग्रकुलभूमिभृद्वलय[1] चक्रमाक्रामता
प्रतापतपनेन ते समयितुं बताऽयं रवि: ।

1 Variant reading Mss. A. सदष्टकुलभूमिभृद्वलय ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कृतः कमलजन्मनाऽधितुलमद्य सन्दाक्षतो
ध्रुवं प्रतिदिनं कृशद्युतिरतीव मन्दायते ॥३५॥

जगन्ति भवतोऽवतोऽत्रभवतः प्रतापोल्लसत्-
सहस्रकिरणोत्करैरधिरणं प्रदग्धा द्विषः ।
तदंशसदृशायितं द्युमणिमेतमीर्ष्याविशा-
ददृश्यवपुषोऽप्यहो झटिति खण्डशः कुर्वते ॥३६॥

प्रतीपनृपतिष्वहो बहलवेपथुः सीत्कृति-
स्तथा प्रविदधे भवत्प्रभवहैमनानेहसा ।
प्रतापतपसन्तपत्तपनतस्त्वदीयादपि
व्यपैतिन किमप्यसौ परमेधते प्रत्युत ॥३७॥

विराजिविजयो भवान् निजभुजप्रतापानलै-
स्तथा दहदिह स्फुटं विमतमण्डलीखाण्डवम् ।
निषिक्त उरुसंलसत्त्वदसिधीरधाराजलै-
र्यथाङ्कुरकथाऽप्यहो भवति नाऽत्र पृथ्वीपते ॥३८॥

चण्डांशोरपि चण्डांशुः प्रतापः शत्रुशल्य ते ।
यदनेन भृशं तप्ता विशन्ति तरणिं द्विषः ॥३९॥

त्वष्टुः कर्कशतर्कुकर्तनकलामामृष्टपुष्टद्युतिः
कुर्वन् क्रूरनृपालकालरजनीं सन्तापयञ्छत्रिणः ।
दृप्तारातिकलत्रनेत्रसरितां स्रोतांसि सम्पूरयन्
वृन्दावत्यवनीन्द्र ते विजयते प्रौढप्रतापो रविः ॥४०॥

अत्युच्चैस्तरवारिभृत्तव करः पुष्यन् पृषत्कोत्करं
वर्षन् हर्षविशेषतः किमपि तद्दिव्यं दधानो धनुः ।
हेतुर्यस्य चिरस्य तेन विहिता युष्मत्प्रतापोल्लसद्-
वह्नेः शत्रुकलत्रनेत्रसरितां बुन्दीश तुन्दीकृतिः ॥४१॥

ख्याताखर्वरयत्वदार्वणसगर्वाङ्घ्रिप्रघातस्फुर
धूलीधोरणीखधोरिततत्त्विषि मृधे ब्रध्ने पिधान गते ।
सद्यो द्योतितदिङ्मुखो निजभुजादप्यद्द्विषद्दुर्यशः-
कालिन्दीप्रभवो नवो विजयते युष्मत्प्रतापो रविः ॥४२॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वीरश्रीशत्रुशल्य त्वदतिपृथुलसद्बाहुदण्डप्रताप-
प्रौढाग्निज्वालजालैर्दृढतरतपनादुद्यदुद्दामपूरः ।
दुग्धोदन्वान् स्वफेनैर्जगदिदमखिलं मज्जयेद्वैरिदारा
धारा वारामुदारा निजनयनभुवो नैव चेत् संस्रवेयुः ।।४३।।

सवितरि तिमिराब्धौ मज्जतामेकबन्धौ
विशति नियतिनीचीलावुके नु प्रतीचीम् ।
विरहविधुरिताङ्गी ते प्रतापं रथाङ्गी
पठति घुसृणशोणं फुल्लदृक्कोणमुच्चैः ।।४४।।

सद्यो माद्यति खिद्यते प्रलयति प्रस्विद्यति भ्राम्यति
क्षोभाच्छ्राम्यति ताम्यति प्रपतति त्रस्यत्यथो घूर्णति ।
वीर श्रीनृपशत्रुशल्य भवतः श्रुत्वा प्रतापं वरं
भर्तुः सन्निहिताऽपि वैरिरमणीप्रौढा नवोढायते ।।४५।।

खेलन्त्यद्य रणाङ्गणेषु जयिनः शङ्के प्रतापामुदा
दिग्भूषाकुरुविन्दकन्दलरुचो वृन्दावन्तीन्द्रस्य ते ।
दृश्यन्ते परवंशकाः शकलिता यत्कोटिशः क्ष्मातले
प्रौढाघातवशात्त्विषाम्पतिमिषाद्यान्त्यम्बरं कन्दुकाः ।।४६।।

आयुष्मन् युष्मदीयप्रबलबलभुजस्फायमानप्रताप-
ज्वालामालाविलासच्छुरितरिपुनृपस्वर्णहर्म्यौघपिण्डैः ।
अच्छातं प्रोच्छलद्भिर्नभसि सुरधुनीधुर्यधाराभिषेका-
देकाकारैरुदारैः परिणतमरुणं तर्कयाम्यर्कबिम्बम् ।।४७।।

धावन्ती दूनपीनस्तनजघनभराक्लान्तमध्या सुमध्या
मध्येकान्तारमद्धा त्वदहिततरुणी सम्भ्रमभ्रान्तचेताः ।
द्राघीयःशाखिशाखाव्यतिकरविगलद्धासम्पातुकानां
मुक्तानां कैतवेन स्वपरिवृढयशःपुञ्जमुज्झत्यजस्रम् ।।४८।।

हन्ताऽहन्तावदुर्वीप्रथितनृपवधूर्व्युत्क्रमः क्वैष पाप-
स्त्रस्याम्यस्यामटव्यामयि चतुर विना त्वां विहर्तुं वतैका ।
लोको लोकेत कश्चित् क्षणमलघुतमच्छायमध्यास्यतां भो-
रित्थं स्वद्वैरिनारी कमपि वनगता वक्ति गम्भीरभावम् ।।४९।।

अध्वानं शंस शीघ्रं वचनविरहितं को नु शंसेदनुद्धे
बन्धो पृच्छामि मार्गं हरिणकुलमहो तर्जितं त्वदृशैव ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निःशङ्कं वाग्धि मुग्धायनमिह सुभगे दक्षिणं वोत्तरंवा
वक्त्रोक्त्या विद्रवन्त्यस्त्वदहितसुदृशो विप्रलभ्यन्त इत्थम् ।।५०।।

मानरहितदानसहितयुद्धमहितकुञ्जरं
कल्पहरणविद्युदरुणकेतुकिरणपिञ्जरम् ।
सैन्यममितमस्य कमितरन्तिकमित आगतं
पश्य पवनवेगलवनभूरिजवनसङ्गतम् ।।५१।।

अप्यतिमतजम्भविमतमद्य न वत्त किं जयेत्
तद्गतनयमुञ्च कुनयमाशु सुनयमाश्रयेः ।
मुञ्च प्रधनमर्पय धनमुज्झ निधनसाहसं
मा कुरु सुत मां सुसहितमद्य दयित राक्षसम् ।।५२।।

भीतिहरणमस्य चरणमाशु शरणमाश्रये-
र्दासक इव तस्य च भव साधु विभवमर्थयेः ।
युद्धविकट-सर्वसुभट-चारुमुकुट-हीरक
त्वद्रिपुमिति योषिदगतिवक्ति सुमतिसारकम् ।।५३।।
(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

तत्तत्पाकरुचिः खलेषु च कटुः षड्विद्विषः कालयन्
धर्माचारविलोकनः प्रतिफलत्कामो जहद्व्याकृतिः ।
विद्वल्लोकमनाः कलायनकरः साधु प्रतीको भवाँ-
स्त्वच्छत्रोनृपशत्रुशल्य सदृशो विघ्नोऽधिकं यं वयम् ।।५४।।

आक्रान्तं भोगिसङ्घैरविरतविल सद्भूषिताशेषलोकं
द्वारस्थस्फारखङ्गिप्रकरमतिचिराद्राजमानं शिवौघैः ।
अध्युष्टं पुण्यलोकैः सुबहुलधवलक्ष्मत्वमुच्चैर्दधानं
राजँस्ते विद्रुतानां विलसति सदनं विद्विषां सम्पदीव ।।५५।।

स्फूर्जत्त्वज्जैत्रयात्राद्भुतजवविलसद्गर्वमर्वावलीना-
मङ्घ्र्याघातोत्थितैर्यद्रणभुवि तरणिः स्वं पिधत्ते रजोभिः ।
तद्युष्मच्चापमुक्तप्रबलतरशरप्रौढनिर्भिन्नवैरि-
प्रोद्यन्मुण्डौघराहुग्रसनदरभराच्छत्रुशल्येश शङ्के ।।५६।।

या पङ्क्तिर्व्योम्नि नीला लसति जलमुचां नैव सा किन्तु जाने
त्वद्यात्राजिराजिप्रखरतरखुरोद्धूतधूलिर्गता द्याम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वाराज्यभ्रंशभीतत्रिदशपतिगलन्नेत्राहस्रसनिर्यन-
नीरप्रौढप्रवाहैः सपदि विलुलिता कङ्कतां प्रापितेयम् ॥५७॥

नीहारन्ति हरन्त्यहो अहरहर्हीरति हारन्ति ते
हंसन्ति द्रुतमिन्दवन्ति कुमुदन्त्युच्चैश्च कुन्दन्त्यपि ।
कैलासन्ति किल स्मितन्ति च मुहर्धीरं सुधान्त्युच्चकैः
शेषन्त्यभ्रमुवल्लभन्ति भवतो भव्या यशोराशयः ॥५८॥

कृत्वा दण्डं तुलाया धवलसुरधुनीं कौतुकी पद्मयोनीः
श्रीमत्किर्त्याच्छमूर्त्या हृततुलतुलयन्नेतमुच्चैः सुधांशुम् ।
ऊनेऽस्मिन् बुन्दिजाने क्षिपति स परितः पूरणायाऽस्य जाने
स्फारास्तारास्तुषाराचलरुचिररुचः शत्रुशल्यावनीन्द्र ॥५९॥

लोहं चामीकरं चाहृतमिह जलधिद्वीपतो लाभलुब्ध्या
क्रेतुं सांयात्रिकाभ्यामधितरुणि भृतं भूरिशो भव्यशोभ ।
तस्मिन् हन्तोभयस्मिन् गतवति भवतः कालधौत्यं यशोभि
श्चित्रं तत्रैकआसीत् स्मितमधुरमुखः साश्रुनेत्रपरोभूत् ॥६०॥

मन्दप्रज्ञैरमन्दं कविभिरतिहठात् त्वद्यशःसञ्चयानां
सद्यः संश्रावितोऽयं प्रतिभटघटनासद्विधाने सुधांशुः ।
पादाङ्गुष्ठाहतस्तैरनुचिततुलनाजातकोपैरिवोच्चै-
र्मन्येऽद्याऽप्येष धत्ते व्रणकिणितमुरो लाञ्छनस्य च्छलेन ॥६१॥

डिम्डीरः क्षीरसिन्धोः श्रुतवसनशिवस्याश्रयः श्वेतशैलः[1]
शेषोनिर्मुक्तदेहो हृतहरिणकिणः पार्वणः शर्वरीशः ।
बुन्दीसौभाग्यभूषामलयजतिलकः क्ष्मावधूतारहारः
सच्छीलश्रीप्रहासः प्रजयति यशसां सञ्चयस्ते जगत्सु ॥६२॥

अच्छौ पक्षौ वितन्वन्ननुदिनमुदयँश्चक्रतोषं प्रचिन्वन्
धीरं दोषापनोदादयमुदयमथो वाहिनीशान् विनिघ्नन् ।
नन्दापूर्णान् सभद्रान् प्रविदधदतिथीन् सज्जयान् द्वेषणाना-
मेकं रिक्तं किलायुस्तिथिमिह तनुते देव ते कीर्तिचन्द्रः ॥६३॥

---

1. The mss. A. has wrongly spelt as स्वेतशैलः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यन्मध्यो द्रुतमेव मन्दरमयग्राव्णाऽपि[2] रुग्णायितो
यः पीतो वडवाग्निना चुलुकितः कुम्भोद्भवेनाऽपि यः ।
यञ्चालङ्घित हन्त मर्कटवटुर्दैवैश्च यो लुण्ठितः
स त्वत्कीर्तिसुधाम्बुधेः कथमहो साम्यं लभेताऽम्बुधि ॥६४॥

निःसीमाऽऽशीविषेन्द्रस्त्वदुरुगुणगणाकर्णनार्णःप्रपूर्ण-
ष्वक्ष्णां वृन्देषु मन्देष्वचकमत पुनः श्रोतुमेव श्रवांसि ।
शङ्के पङ्केरुहस्था प्रियमयमनिशं सेवते सादरं यत्
प्रीतात् पीताम्बरात्तच्छ्रवणगणमहोप्राप्तुमेवाऽहिराजः ॥६५॥

ढौकन्ते हरितो वनानि सरितो रोहन्ति तुङ्गान् गिरीन्
धावन्ति क्षितिमण्डलेषु परितो भ्राम्यन्ति देशान् बहून् ।
अम्भोधींस्तरसा तरन्ति सहसा द्वीपान्तराण्यञ्जसा
गाहन्ते तव शत्रुशल्य यशसां स्तोमाः सपत्नाननु ॥६६॥

कालिन्दीलसदञ्जनाचलवलन्नीलोत्पलादीन्यहो
निर्मान्ती विशदान्युदारमतिमंस्त्वत्कीर्तिरत्युज्ज्वला ।
मालिन्यं परिगृह्य हन्त नु ततः प्रत्यर्थिसार्थानने
चिन्तातान्तिमति क्षितीन्द्र नियतं संस्थापयत्युच्चकैः ॥६७॥

साराकारांशुराकाभिककरनिकरोद्रिक्तसन्द्रोहदक्षे
क्ष्मेशत्वत्कीर्तिराशौ भवदरिकुयशःश्यामिका यच्चकास्ति ।
सत्यं पत्या जगत्याः प्रतिविबुधगृहं तत्त्वया स्वर्णशैले-
ष्वन्तर्द्विर्निर्मितेषु व्रजति मुहुरहर्नायके सा तमिस्रा ॥६८॥

प्रालेयाचलतुङ्गशृङ्गविगलद्धौरेयधाराभर-
स्वःसिन्धौ मधुरे निमग्नवपुषस्त्वत्कीर्तिपूरे द्विषः ।
सम्प्राता नु विषादितां दधति ते मौलौ जटामुत्कटां
भस्मालेपनमङ्गके करतले नित्यं कपालावलीम् ॥६९॥

मन्थान्दोलितदुग्धसिन्धुमधुरा निर्मोकमुक्तोल्लस-
च्छेषश्वेततरा धरामघवतः सत्कीर्तिपुञ्जास्तव ।
त्रैलोक्यालयमुज्ज्वलं विदधतस्तल्पस्थितास्तत्क्षणात्
कृष्यन्ते सुदृशा रतान्तसमये चित्रं दुकूलभ्रमात् ॥७०॥

---

2. The reading in mss. A. is as मंदरमयग्रावणपि ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आनीतानां प्रदातुं मदकलकरिणां गण्डराजत्कलिन्द-
क्ष्माभृत्संस्यन्दमानप्रततमदजलप्रोल्लसत् सूर्यकन्याम् ।
सङ्कल्पानल्पनीरोत्करसुरसरिता सङ्गमध्य व्यधास्त्वं
रक्ताम्भोजाभपाणिर्विबुधसुमहितं स्वाङ्गनैपि प्रयागम् ।।७१।।

क्षुत्क्षुभितकुटुम्बा नतमुखबिम्बा
लसदविलम्बा मृतिविषये
तव कीर्तिसुगङ्गास्वधिधृतभङ्गा
द्रुततरमङ्गान्यदधत ये ।
करकलितकपालं परिधृतशूलं
शिरसि जटालङ्कृतमचिरं
दधतो वपुरेते सपदि परेते-
शमनुहरन्ते मदनहरम् ।।७२।।

घण्टाघोषगरिष्ठगर्जितगुरून् बारां भरान् वर्षतो
भूषाकाञ्चनपिञ्जरानपजरान् दत्तांस्त्वया कुञ्जरान् ।
पश्यन्तो नृपशत्रुशल्यभवनद्वारेषु मेघागमो
न्मुग्धा पण्डितयोषितः पिदधति स्वीयान् गृहान् सत्तृणैः ।।७३।।

स्वर्णाद्रीयन्ति तार्णा अपि सपदि गृहा जर्जरा यत्कवीनां
पौलोमीयन्ति कान्तस्त्रुटितकटितटीशाटकाः ताटकाभी[1] ।
सुत्रामायन्ति कुत्राऽप्यनधिगतधनास्ते च लब्धेभवृन्दा
वृन्दावत्याः पते ते स्फुरति स परितः पश्य दानप्रकर्षः ।।७४।।

वरान् मुक्ताहाराञ्छिरसि रसना वक्षसि घने
कपोला ताटङ्कान्यधिगलमनल्पाङ्गदगणान् ।
विपर्यस्य न्यस्यन्त्यविदितविभूषाविधिकलाः
कलाभाजां भार्याः पुरि पुरि भवद्दानविभवात् ।।७५।।

स्निग्धाम्भोधरधीमधारतरुणत्वद्दत्तमत्तद्विप-
प्रोद्यद्विन्ध्यसमुच्छ्रयतरणतो भूयो भवत्सम्भ्रमः ।

---

1. The variant reading mss. in A.B. ताडकाभाः also but we have chosen ताटकाभीः for the sake of allecteration a favourite technical device of the present poet, where ताटका means ताडका, he favours female friend of the Ramayana episode.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वाज्ञा गौरवभङ्गभङ्गुरतरध्यानावधानो मुनिः
कैर्वोपायगणैर्जनैर्नरपते कौम्भिः समाधीयताम् ॥७६॥

येषां वेश्मनि जीर्णजूर्णकणिकादुःकण्डनेऽश्रूयत
त्रुट्यद्वित्रिपुराणकङ्कणरणत्कारः कुरङ्गीदृशाम् ।
तेऽमी सम्प्रति शृण्वते करिघटादानाम्बुलुभ्यद्भ्रमद्-
भृङ्गालीकलगुञ्जितानि कवयस्त्वद्दानलीलायितात् ॥७७॥

उद्दामदारिद्र्यहुताशताप-
विद्रावणाय द्रविणौघवर्षैः ।
वर्षन् सदा न्यक्कुरुषे त्वमद्य
प्रवर्षतः प्रावृषि वीर मेघान् ॥७८॥

दारिद्र्यदावानलदाहदून-[1]
दोषज्ञदत्तद्रविणोद्यदद्रिः ।
दृप्तातिदुर्हृद्द्रुमदारणोद्य-
द्दन्तावलद्योतितदोर्द्वयस्त्वम् ॥७९॥

अत्युच्चैः परवारणस्य भवतो हस्तो विहस्तोल्लस-
द्वैरिश्रीनलिनीवनीदिगवनीदानाम्बुपूरं स्रवन् ।
पद्मासद्मरुचां कुचान्तरपरिस्पर्धालुकुम्भानिभान्
हेलातः प्रकिरन् हरन्नपि मदं दिग्दन्तिनां मोदते ॥८०॥

दीने न दीनेतरि देव युष्मद्-
दानीयपानीयचयव्ययेन ।
लङ्का सशङ्कायितयातुधाना
भूयो भवित्री नरसुग्रहा किम् ॥८१॥

अवितुस्तव प्रभवितुर्जगतीं
द्रविणोल्लसद्वरपृषत्कभरात् ।
सुदरिद्रताऽतिचकिता सुचिरं
शरणीकरोति परभूमिभृतः ॥८२॥

विलिखसि किमु लेखज्येष्ठ दारिद्र्यवर्णा-
ननु दिनमहि सङ्ख्यावल्ललाटेऽतिसह्यान् ।

---

1. Varianr reading A. दावानलदावदून ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ननु रविकुलहीरः शत्रुशल्यो नृवीरो
वितरणजलपूरैः प्रोञ्छतीमान् प्रसह्य ।।८३।।

तुरासाहं साहङ्कृति विजयमानः स्वविभवै-
र्भवानस्मिन् मन्ये जगति वितथं दातृषुमतः ।
दशामद्यावद्यां तव मनगता वैरिसुदृशो
विचिन्वन्ति क्लान्ताः पुरि पुरि चिरं धान्यकणकान् ।।८४।।

उष्णीषं न पुराणमस्ति मलिनो नो कञ्चुको ग्रन्थिमान् ।
नो खर्वस्तुरगो न चास्य सहगो दारिद्र्यनामा सखा
कस्मात् प्रत्यभिजानतां निजपतींस्त्वद्दानलीलायिता-
दिन्द्राभानपि शत्रुशल्यनृपते चित्रं कवीनां स्त्रियः ।।८५।।

अशेषं पातालं त्वमसि सविशेषं[1] विजयसे
समस्ताशास्थानं निजगुणगणानन्दितजनः ।
बुधाधारो धीरो भुवनवरवीरोऽस्ति च भवाँ-
स्ततः स्थाने मन्ये विभुरिति भवन्नाम विदितम् ।।८६।।

वक्षोदेशः पृथुस्ते जयति तव यशोराशिरस्त्यर्जुनोऽयं
भात्यास्ये भारतीश्रीस्त्वमसि जितकलिर्वीरसेनावतंसः ।
शुद्धान्ते ते त्रिरामा त्रिभुवनभवनालोकलोकेशमूर्ते
तं त्वां श्रीशत्रुशल्य स्मरति मनसि यस्तस्य लाभो जयश्च ।।८७।।

एवं वन्दितवन्दिवृन्दमृदुलस्तुत्या स संत्याजितो
निद्रामाशु समुद्रमुद्रितमहीभर्ता प्रहर्त्ता द्विषाम् ।
जृम्भारम्भणविभ्रमालससमुन्मीलद्विशालेक्षणं
क्षामाङ्गयावदनारविन्दममलं मङ्गल्यमालोकत ।।८८।।

जृम्भारम्भविभुग्नबाहुलतिकाप्रव्यक्तवक्षोजनेः
प्रेयस्या दरदन्तुरत्कुवलयश्रेणीविघूर्णद्दृशः ।
लीलालोलदलीकमाऽलककुलव्याजात् कलङ्काकुल-
स्यास्येन्दोर्मृदुसौखसुप्तिकमभूदस्येक्षणं तत्क्षणम् ।

सत्कीर्तिप्रकरामलामरसरिन्निष्पारपूरैः परं
धुन्वानोऽम्बुरुहालयासहलसच्चाञ्चल्यपङ्काकनम् ।।

1. The Mss. A. has wrongly spelt सविसेषं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

त्रिर्मन्दानकमेदुरोदरवैरापूरयन् दिग्दरी-
र्मन्दं मन्दमयादयं सह तया वृन्दावतीं वन्दिताम् ।।९०।।

द्वे सोलङ्किकुलोद्भवे[1] इडरपात् कल्याणमल्लादुभे
तिस्रो राष्ट्रधरान्वयात्कमठजां चान्द्रीं तथा यादवीम् ।
गौडीं मल्हनहंसजामथसिसोदयीयाञ्च कुल्यां तथा
प्रामारीमथ राणकर्णतनुजां पाणावगृह्लादयम् ।।९१।।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरणैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य सत्-
काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते वन्द्यास्तुतिर्वन्दिनाम् ।।९२।।

।। इति श्रीमद्वैद्यकुलावतंस श्रीनारायणात्मजश्रीविश्वनाथविरचिते महाकाव्ये महाराजश्रीशत्रुशल्यचरिते वन्दीस्तुतिरष्टादशः सर्गः ।।

---

1. A. सौलङ्कि, B. सौलङ्कि ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ एकोनविंशः सर्गः ॥

अवरोधवधूर्मधुराः स धरा-
धिपतिर्धृतमध्यविदग्धवयाः ।
रतिकेलिकलाकुशला रमयन्
शममन्दमविन्दत बन्धुमुदः ॥१॥

स रहो विहरन् हरिणीनयना-
निकरेण वरेण नरेन्द्रवरः ।
निजकेलिवनीमवनीरमणो
रमणीयतरामगमत् प्रमदात् ॥२॥

सुरराजपराजयराजिरुचो
व्रजतोऽस्य वनीमवनीकमितुः ।
अवरोधवधूनयनाय तदा
समनायि जनेन विमानगणः ॥३॥

हृतदिव्यपुरन्ध्रिमदाभिररं
प्रमदाभिरुदारवपुर्द्युतिभिः ।
कलितं ललितं शिविकानिकरं
न चिरादवहन् वरवाहनराः ॥४॥

अथ कौतुकपातुकलोककुल-
प्रतिषेधविशेषितवर्षवरैः ।
परितस्त्वरितं भृशमाकुलिता
ललिता वनिताशिविकाः प्रययुः ॥५॥

स्वरुचा कृतनन्दननिन्दमिदं
रमणीयवपूरमणीगणयुक् ।
धरणीरमणः प्रमदादविशत्
कुसुमेषुरिवैष विलासवनम् ॥६॥

मरुदुत्तरलव्रततीततिगा
नलिनालिकुलैः सलिकावलिभिः ।
प्रविशन्तमशङ्कितमेतमहो
मुहुराह्वयति स्म विलासवनी ॥७॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विशति क्षितिमादिशतीह विभौ
रतिरूपविजित्वरदारगणे: ।
ससुहृद्वरहृच्छयशङ्किमना:
प्रमना: सुरभीरभसादुदयात् ।।८।।

अमलमलयदेश्यं वाहयन् गन्धवाहं
स्फुटसितशतपत्रच्छत्रचित्रीयमाण: ।
पटहितपिकलोकश्चामरीचूतगुच्छै-
रुदगमदृतुराज: पूजयन्[1] तं नृराजम् ।।९।।

। अथ वसन्तवर्णनम् ।

उन्मीलल्लीलं छदकरशिफाकोरकोरोजराजि-
न्युच्चैश्चञ्चत्सत्सरसिजमुखी बन्धुजीवाधरश्री: ।
व्याजात्पुष्पाणां कुसुमितलतावल्लिताकेलिवाटी
कामार्तेवोच्चैरुरु परिवृढालोकत: सिष्मिये सा ।।१०।।

उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्गितभृङ्गगुञ्ज-
माकन्दवृन्दविकसत्पिकनादनादि ।
मन्दानिलोत्तरलवल्लिलताभिनीति
प्रावर्त्यतर्तुपतिना रतिनाथनाट्यम् ।।११।।

आलिङ्गन् भुजविटपं लतावलानां
सोत्कम्पं[2] सदधरपल्लवञ्च चुम्बन् ।
किञ्चासां स्तबककुचं स्पृशन्नशङ्क:
कामीवालसदनिलोऽथ दाक्षिणात्य: ।।१२।।

लङ्काशैलतटीपटीरपटलीवाटीष्वटित्वा मुहु-
र्लाटिलोकविशङ्कटस्तनतटभ्रष्टा: प्रणष्टौजस: ।
कावेरीव्रततीततीयनटनारम्भप्रगल्भा ववु-
र्वाता हन्त सुदक्षिणा विरहवद्वामासु वामायित: ।।१३।।

---

1. Variant reading Mss. A. पूजितुं ।

2. Mss. A. has earlier reading पटुविटाभबाहु वल्लीं वल्लीनां corrected as above accepted by Mss. B.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विपुलविरहज्वालाजालातुरा इव सन्ततं
विमल[1] मलयीयो दक्षोदेशिचरादतिचर्चिता: ॥
पुनरपि धृतामोदागोदासुतुङ्गतरङ्गकै
रचितनलिनीसङ्गा रङ्गानधुर्मृदुवायव! ॥१४॥

अविवतरतखिन्नाशीविषीभुक्तशेष:
सविषदव इवोच्चैश्चन्दनोद्वर्तिताङ्ग: ।
सरसतरसुपम्पानीरसम्पातशीतो
मुदमुदवहदुच्चैर्दाक्षिणात्य: समीर: ॥१५॥

सत्पान्थसार्थप्रमदास्मराग्ने-
रारम्भकाणुप्रतिमान्यणूनि ।
सुगन्धवत्गन्धवहोद्धतानि
राजीवराजीयरजांसि रेजु: ॥१६॥

अध्वनीनजनचित्तवारणो-
द्धुर्यधैर्यगुरुकुम्भदारण: ।
तद्विभेदरुधिरारुणोऽङ्कुश:
प्रोल्ललास स पलाशकोरक: ॥१७॥

कलिका धृतमालिन्या किंशुकवन्यो विलोहितप्रान्ता: ।
पथिकवधूविरहाग्नेर्धूमज्वालाधियं विदधु: ॥१८॥

रसालसालस्य सुगन्धभार-
सालम्बरोलम्बविचुम्बिताग्रा ।
राजी व्यराजीन्नवमञ्जरीणां
बाणावलीलिप्तविषा स्मरस्य ॥१९॥

रसाल जालजालकोन्मिलमलिन्दमण्डली-
सुमञ्जुगुञ्जिताञ्जितश्रव: पुटस्फुटज्वरै: ।
निहन्तुमध्वगाङ्गना अनङ्ग एष कोकिला-
कलापकाकलीच्छलाज्जहृद्‌यो जान्मनुम् ॥२०॥

---

1. Mss. A. also mentions another reading as विमलविरहज्वाला etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नवदलमालः सरसरसालः
स्रुतमकरन्द कलपिकवृन्दः
लसदलिलीलोऽध्वगतिकीलो-
पममधृतारं सुमुकुलभारम् ॥२१॥

यदपि वसन्ते विरहिदुरन्ते
समधृत धन्यां रुचिमिह वन्या ।
तदपि रसलावलिरलिमालां
मदयति चित्रा कुसुमविचित्रा ॥२२॥

विकचविचकिलाः किलामलानि
प्रदधुरहो कुसुमानि नोपमानि ।
सुरभिनरपतेः प्रवेशकाले
प्रकटितमङ्गललाजविभ्रमाणि ॥२३॥

फुल्लन्मल्लीकुसुममरन्दे लीनाऽलीनां ततिरतिमत्ता ।
पान्थस्त्रैणग्लपनकलङ्कं शङ्के धत्ते स्मरयशइन्दौ ॥२४॥

चारुमारुतसकम्पचम्पकैः
काञ्चनीयरसकान्तिकम्पकैः ।
विप्रयुक्तवनितासु पातुका-
ऽकाण्डचण्डचपलायितं द्रुतम् ॥२५॥

चञ्चत्काञ्चनचौर्यकृद्रुचिरपि स्वामोदरम्याऽप्यसा-
वञ्चच्चम्पकवृक्षराजिरलिना हीनेव दूनाऽऽधीना ।
निर्धूमं ज्वलतोऽसहातिविरहव्यूहानलस्योच्चकै-
रुद्यद्गन्धफलीमिषादकलयज्ज्वालावलीं तत्क्षणात् ॥२६॥

ललनाकपोलपाली शालीनाभा भृताऽपि सौरभ्यैः ।
चम्पककलिका न पपे मधुपैरतिमुक्तसंसर्गात् ॥२७॥

इह सुरभावभितोल्लसल्लते
समदमधुव्रतसंसदो मुदे ।
रभसविसृत्वरसौरभोद्धता
श्रीयमुररीकुरुते स्म मालती ॥२८॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इति कम्पितनीपवनैः पवनै
परिनर्तितवल्लिविलासवनम् ।
कलयन् सुषमां कुसुमाकरतो
ललनाभिरलोकत लोकपतिः ।।२९।।

लसदुपवनगोपीपाणिनिर्दिश्यमाना
मधुमधुरिमधावद्भृङ्गदष्टच्छदौष्ट्यः ।
स्तबकभरविभुग्नाः फुल्लवल्ल्यः प्रगल्भा
युवतय इव चक्षुस्तत्क्षणादस्य जह्रुः ।।३०।।

हासविलासस्फूर्जितभासः[1]
पुष्पलतास्ता एष समस्ताः ।
सुन्दरवेषा नूतनयोषा
दर्शयमानोऽतुष्यदमानाः ।।३१।।

आलोककौतुकसुसम्भ्रमिताभिराभि-
र्भूयानकारि विपिनस्य तदोपकारः ।
स्पृष्टः पदाऽभवदशोकतरुर्विशोको
वक्त्रासवैः समुकुलो बकुलोऽपि सिक्तः ।।३२।।

आस्यश्वासानिलपरिमले जातहर्षप्रकर्षा
हर्षोत्कर्षात्तिदधरमधूद्धुर्यलुब्धा ।
राजस्त्रैणं तदभिववृते जङ्गमानां लतानां
भूरिभ्रान्त्या प्रचुरितजवा माद्यदिन्दिन्दिराली ।।३३।।

दर्शनीयश्रियं दर्शयन् माधरीं
भूधरोऽसौ तदा काञ्चिदूचे वधूम् ।
पश्य वश्याप्रियस्यालिनोऽस्याः सुमं
रौथपात्रायते धित्सतः सन्मधु ।।३४।।

भवत्स्मितप्रभाजितप्रसूनदूनमानसा ।
मरन्दबिन्दुकैतवादसौ दृगम्बु मुञ्चति ।।३५।।

असौ कदाचित् सहसा जहास
सरङ्गनारङ्गलतामुपेत्य ।

1. Mss. A. wrongly spells स्फुर्जितभासः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

बाले समालोकय तावकीन-
स्तनद्वयस्पर्द्धि फलं किलास्याः ।।३६।।

ऊचे काञ्चित् स तरलदलच्छद्मना कम्पमाना
मानातीतस्रुतमधुकणस्वेदबिन्द्वञ्चिताङ्गी ।
मन्दं मन्द सरसमरुता चुम्बिता मल्लिका[1]ऽसौ
नव्या दिव्यामभिनववधूकेलिमङ्गीकरोति ।।३७।।

अपेयमधु चाम्पेयं मधुपैः समुपेत्य सः ।
आदाय पाणौ तत्पाणिमेणीदृशमभाषत ।।३८।।

रुषा विशेषात् सरुषीभवन्त्याः
कपोलपालीव मया भवत्याः ।
न चुम्बितुं चम्पकसूनराजी
शक्याऽलिनेयं नलिनीगतेन ।।३९।।

सन्मल्लीं स्तवकभरानतामुपेत्य
प्रहान्यां सहसितमेष योषितं स्वाम् ।
पश्येयं त्वमिव पृथुस्तनाढ्यनम्रा
कम्रालेर्भवति सदा मुदे ममेव ।।४०।।

स आम्रमाताम्रदलं प्रदर्श्य
परामभाणीत्पिकमञ्जुवाणीम् ।
रतिप्रसूनेषुधिया रसालवन्या-
ङ्कुरार्चा चटु रच्यते नौ ।।४१।।

उचित परस्परप्रथमसङ्गमसम्प्रसरत्-
पुलककुलोल्लसद्रुचिरकोरकचारुरुचोः ।
सरसरसालकस्मितलसन्नवमल्लिकयोः[2]
परिणयमङ्गलं पठति किं मृदुकोकिलकः ।।४२।।

---

1. Mss. A. has earlier reading मालिका corrected to मल्लिका also attested by Mss. B.

2. A has the earlier reading as मालिका (also in the Text of Mss. B) Correct to मल्लिका. Mss. B. has मल्लिका accepted by the Commentary.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अवदत् प्रमदां स मुदा सहितो वदनासवतो मुदितेऽत्र तव ।
बकुले मुकुलं मुकुलेऽलिकुलं कलगुञ्जितमाकलमोह मुहुः ।।४३।।

अस्तोकसम्मद उपेत्यजवादशोकं
स्तोकोदरीं गिरमुदैरयदेष काञ्चित् ।
उन्निद्रचन्द्रमुखिते पदपद्मघाता-
दागस्करोऽहमिव फुल्लति तूर्णमेषः ।।४४।।

पीनस्तनश्रोणिभरालसानां मराललीलागतिलालसानाम् ।
निःश्वाससंवासितदिग्दरीणां श्रमोऽमुनाऽमन्यत सुन्दरीणाम् ।।४५।।

अथोल्लसत्तालतमालमाला-
क्षतापतापार्कमहःकलापे ।
वनेऽवनीशो विहरन् विशङ्क-
मशोकमूले विमले विवेश ।।४६।।

विहरणपरिखेदस्वेदनिर्मन्दविन्दु-
च्छलविलसिततारस्फारशोभास्यचन्द्राः ।
कलितललितकम्पाः पीनवक्षोजदून-
स्तमनु मनुजनाथं योषितस्ता निषेदुः ।।४७।।

अश्रान्तश्रान्तितान्तिस्रुतजलकणिकाकैतवान्माकरन्दैः
र्निर्मन्घः सीकरौघैः कवलितवपुषः कम्पितोरोजगुच्छाः ।
रज्यद्राजीवराजीरुचिरकरशिफास्फारसत्पल्लवास्ताः
सीमन्तिन्योऽतिधन्याव्रततिरुचिमधुस्ता अशोकस्य मूले ।।४८।।

श्रमं शमं निनीषुणा मनीषिणाऽमुना तदा ।
अपायि कामिनीजनैः सुरासुराधिपश्रिया ।।४९।।

सविधविविधभोगा कामिनीवक्त्रयोगात्
प्रसृमरतरगन्धाहूतभृङ्गानुवन्धा ।
सरसतररसाला वारुणी चारुलीला
मुदमुदवहदस्य श्रान्तितान्तिं निरस्य ।।५०।।

प्रेयसीमधुरदन्तवाससा वासितामिव लसद्रसां सुराम् ।
सन्निपीय मधुरां महीधुरामुद्वहन् वकुलवल्ललास सः ।।५१।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नवकुवलयोन्मीलल्लीलाकलापकलोत्कल-
प्रचुरचपलस्वीयापाङ्गोल्लसत्प्रतिविम्बितैः ।
परिमलमिलद्भृङ्गश्रेणीयुतामिव सादरं
मदिरनयनाः सम्मन्वानास्तदा मदिरां पपुः ॥५२॥

वपुरनुपमशोभा भूषयामास तासां
तरुणमपि वयस्तां शोभयामास भूयः ।
तदपि रुचिरहाव पावयामास सद्यो
मधु मधुरमशेषांस्तान् विशेषाननैषीत् ॥५३॥

या अवियाता प्रागुपयाता रक्तिमगौप्सुहृत्सु सुहृत्सु ।
आसवपानादुत्सवभाजां सैव किमासां चक्षुषि जज्ञे ॥५४॥

पीतप्रसन्ना अपि ताः प्रसन्नाः पल्लन्नकल्लारविभासिमुख्यः ।
सुभ्रूमभामा इव राजरामाः शोणाक्षिकोणा अभवन् क्षणेन ॥५५॥

अपागसङ्गी चलदृक्तरङ्गो
भङ्गी गिरां गद्‌गदवक्त्ररम्या ।
इत्थं मिथो लोलदृशां समोऽभूत्
तारुण्यवारुण्युदितो विलासः ॥५६॥

स प्रेमपूर्वकमपाययदासवं यां
प्राणेश्वरः प्रियतमामथ सा न यावत् ।
रागं दृशोर्वहति तावदहो परस्याः
कान्ते जुघूर्ण बत पाटलितः कटाक्षः ॥५७॥

यावलेपलवमप्यतिमौग्ध्या-
न्नादधौ रतिविधौदयितेन ।
साऽधुना निजशिरो विधुनाना
वक्रवागरुणचक्षुरलक्षि ॥५८॥

परिपश्यति तद्विलासवश्ये सदवश्यायकराननां न नाथे ।
प्रमदा नःममादपीतमद्याऽप्यरमुद्याति मदो हि सम्मदेषु ॥५९॥

ययाऽतिशालीनतयाऽप्यधायि
लज्जावगुण्ठेन सरङ्गमङ्गम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तस्या मदस्त्रस्तसदुत्तरीयं
सुखावलोकं वपुरस्य जले ।।६०।।

मद्यास्वादोन्मेदुरश्वासवासभ्राम्यद्भृङ्गोत्सारणे लोलपाणिः
याथाहीति प्रस्खलद्वर्णमन्या सञ्जल्पन्ती तेन तूर्णं चुचुम्बे ।।६१।।

सरोषतोषासु मदात् क्षणेन योषासु तासु क्षितिपस्य तस्य ।
ज्ञात्वाऽपि गोत्रस्खलनं सुतीव्रं न्यह्लुयताह्नाय सुरमिदेन ।।६२।।

इत्यमेष सविशेषमदानां
रञ्जनाय मनसः प्रमदानाम् ।
हारिहाससुमनोहोला-
कौत्सवैरुवने विजहार ।।६३।।

सशोणपटवासकैः समधिवासयद्भिर्दिशो
मरुच्चलविकस्वराम्बुजवनीरजः पिञ्जरैः ।
प्रपूर्णघुसृणाम्बुभिर्मणिसुवर्णजोत्क्षेपकैः
समन्मथरसं मिथो युवतिभिर्विजह्ने तमाम् ।।६४।।

मदिरामदेन मुदिता मदिराक्ष्यः
समताऽयँस्तमरुणैः पटवासैः ।
तरुणारुणाम्बुजरजःप्रतिपक्षै[1]-
रिव रोष[2]-रोहिततरैः स्वकटाक्षैः ।।६५।।

मुष्टिक्षिप्तैः शोणपिष्टातवर्षैः सम्भ्रान्ताभिस्ताभिरभ्याहतोऽसौ ।
भ्रङ्गीचक्रेऽङ्गेषु मूर्तं मुहूर्तं रागालेपं साभिलाषं[3] किलासाम् ।।६६।।

अरुणपटवासजुष्टे मुष्टिक्षेपः समोऽस्य तासाञ्च ।
आयतमासां चक्षुस्तदपि स कष्टायते स्म पिष्टातः ।।६७।।

भृङ्गैर्वृतोऽम्बुजपरागधिया मरागै-
र्बालातपभ्रमयुतैरपि चक्रवाकैः ।

---

1. Both Mss. A-B. have wrong reading प्रतिपक्षौ ।

2. Mss. B. wrong reading रौष ।

3. Mss. A. has also earlier reading सावलेवं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आलोकितो रतिरसात् सहसास द्विडथ
क्रीडासुशोणपटवासवरो नृपस्य ॥६८॥

प्रगुणमरुणयन्ती द्यां स्वभासाऽनवद्यां
सततमहिमकीर्तिस्फारतारा हरन्ती ।
रभसभरविधूता शोणपिष्टातराजी
व्यलसदुदयदेतसत्प्रतापार्कसन्ध्या ॥६९॥

पटवासविदूननेत्रपद्मामतिमुग्धां मुखवाष्पदानदम्भात् ।
सविधं समुपेत्य तूर्णमुच्चैरविलम्बात्सशठश्चुचुम्ब काञ्चित् ॥७०॥

बन्धूकबन्धूभवदंशुचूर्णैरन्धीभवन्नेत्रनि[1] रुद्धपाणेः ।
कूर्पासकं सम्भ्रमतः परस्या निरस्य सोऽश्लिष्यदुरोजकुम्भौ ॥७१॥

जघान सघनस्तनीमरुणचूर्णकैर्या प्रियां
न सा किमपि विव्यथे प्रमदहासभास्वन्मुखी ।
प्रकोपसुपरायणा बत पराः परास्तानना
अहो प्रमुमुहुर्मुहुः प्रलभलब्धघाता इव ॥७२॥

अयमिति हुताशन्यां धन्यां विधाय वधूजनैः
सह विगलितव्रीडां क्रीडां विलासवने निजे ।
यदुपतिरिवानन्दाद्वृन्दावने व्रजयौवतै-
रलभततमां सीमाभूमातिगां हृदये मुदम् ॥७३॥

॥ अथ ग्रीष्मवर्णनम् ॥

पत्यामृतूणामिति तं जगत्याऽत्यादरेणार्चितमेक्ष्य नाथम् ।
स्फुटस्फुटत्पाटलहासभासा समुन्जजृम्भेऽर्चयितुं तपेनः ॥७४॥

हृदयहारिविहारहृतान्तरं चिरतरंतमुदीक्ष्य महाशयम् ।
प्रचुरकेलिमहानि महान्त्यहो द्रुतमहानि तपेन वितेनिरे ॥७५॥

नववधूवदनैरिव कामुकैर्मधुकरैः प्रणयान्मृदु चुम्बितैः
विकचशीर्षशिरीषसुमोत्करैर्नरपतेरमुना विदधेऽञ्जलिः ॥७६॥

---

1. Mss. B wrong reading विरुद्ध ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रस्फुटपाटलपटलीकेसरपटवासवासितावाताः ।
तुङ्गातपविधुराङ्गाः सहसा सरसीमसेवन्त ।।७७।।

सलिलकलितलीला अप्यजस्रं नलिन्यः
प्रसृमरमकरन्दामन्दबिन्दुच्छलेन ।
प्रचुरमिहिरतापोन्मेदुरस्वेदपूर-
प्रचुरपृषतलक्ष्मीं ग्रीष्मकाले समूहुः ।।७८।।

पूर्वं मेषपलाशनादधिगतास्वादो रसानां परं
भुक्त्वा मेषमशैषमेष करुणालेशेन संवर्जितः ।
भीष्मे ग्रीष्मऋतावमुत्र तपनः क्रव्यादवद्दारुणो
गोराशिं बुभुजे जवान्नृमिथुनं भोक्तुं समुत्कण्ठितः ।।७९।।

निदाघर्तौ दाहप्रवणतराणिप्रौढकिरणो-
द्धतापायश्छायामचकमत को वा न मनसि ।
यदस्मिन्नुद्दामद्युमणिकरसंशोषितगलद्-
दलोच्छायच्छायं श्रयति सलिलानमपि गणः ।।८०।।

विरहिवनिता या सश्वासैरिवोल्लसदूष्मभिः
सपदि च दधे द्राघीय रुचं परं तपवासरैः ।
मुकुलितकुचांसम्पश्यन्त्या स्वकीयसपत्निका-
मिव चलदृशा दध्रे कार्श्यं भृशं निशयान्वहम् ।।८१।।

अमुष्मिन् ग्रीष्मर्त्तौ पिशुनवचसीवाऽसहतमे
जहत्सीमे चामे रस इव जनस्य ज्वरकरे ।
प्रचण्डो मार्तण्डो जड इव ललाटन्तपतरो
जलाधारं धीरं गुरुगलदिवाशोषयदरम् ।।८२।।

इह हि मिहिररुग्भिरुग्रभाभि-
र्जगति गरीयसि सन्ततं प्ररुग्णे ।
प्रथममतिकटून्यहानिपाके
रचितसुखानि यथौषधानि रेजुः ।।८३।।

इति निदाघजदारुणदाहतो विधुरराजवधूमधुरोरसि ।
विनिहतैरपि सान्द्रतरैर्द्रवैर्मलयजैः समशुष्यत तत्क्षणात् ।।८४।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तपसन्तपत्तपनतापनिवृत्यै वलयीकृतं किल कयापि मृणालम् ।
तदहो तदैव सुनितान्तमताम्यत् सुकुमारतद्भुजलतात्रपयेव ।।८५।।

कस्याश्चिद् दिनकृददीनदाहरोहद्-
घर्माम्भःकणनिचितोरसः सुदत्याः ।
नो रम्यां दधतुरहो उरोरुहौ किं
मारन्दोदितपृषदच्छगुच्छलक्ष्मीम् ।।८६।।

प्रगुणारुणपाणिजव्रणस्तनयोः स्वेदजलैर्विशेषसक्तः ।
सुदृशो ददृशे स चीनचोलः कुरुविन्दैरिव निर्मितो नृपेण ।।८७।।

[1]प्रेह्वन्नखेर्मवदघर्मजलार्द्रचीन-
चोलावृताऽपि न तताप तु कापि भीरुः ।
ईर्ष्याकषायनयनं विनिमालयन्ती
बालामिमामतापदाशु यथा सपत्नी ।।८८।।

इति विषमतरोष्मग्रीष्मसन्तप्तवर्ष्मं
क्षितिपतिरिह पश्यन् स्त्रैणमेणांभनेत्रम् ।
अचकमत विगाढुं गाढगम्भीरनीरं
[2]सलिलरुहमनोज्ञं तं जयत्सागरं[3] सः ।।८९।।

सुधायाः सध्रीचीं मधुरजलवीचीं प्रणयिनी-
मिवोच्चैः खेलन्तीं सरणरणकः प्रेक्षितुमिव ।
सन्मुन्मीलन्नीलोत्पलमिव सुविस्फारनयनो
विलासीवोल्लासं वहति बहलं योऽनवरतम् ।।९०।।

वृन्दावतीपरिसरस्थमहामहीध्र-
प्रोत्तुङ्गशृङ्गतरलप्रतिबिम्बितैर्यः
नाकेश्वराशनिनिशातनिपातदून-
मैनाकधारिजलधेस्तुलनां बिभर्ति ।।९१।।

---

1. Mss. A. has marginal explanation as प्रोद्गच्छन्नखव्रणवत्—व्रणोऽस्त्रीयामेर्ममरुः ।
2. Mss. A. reading सदृशरुचि जयन्तं सागरं सागरेण ।
3, Mss. A. has marginal note जैतसागर इति भाषानाम: ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यो हंसोल्लसितामलशययुतो व्याकोशकोशाम्बुजा-
मोदामन्दमदालिजालिललितालोलाक्षमालाधरः ।
सद्ब्रह्मर्षिरिवादरिद्रविटपिव्याकीर्णपर्णाङ्गुलि-
श्रेणीभिर्द्विजराजभर्त्सनकरं रुन्धे प्रचण्डौजसम् ।।९२।।

तपतापतान्तरवृन्तपातुकै-
स्तटशुक्तिषूज्ज्वलमरन्दबिन्दुभिः ।
मथनासमर्थविबुधैरलुण्ठितः
स्फुटमेव मौक्तिकमणीर्विभर्ति यः ।।९३।।

सम्पुष्पितानोकहगन्धवाहैस्सद्गन्धवाहैस्तरलैस्तरङ्गैः ।
भुजैरिवाह्वानकरं सखायं संसार कासारमसौ नृसार ।।९४।।
(पञ्चभिः कुलकम् ।)

श्रोणीभारात् कलितललितान्दोललीलास्वमध्यं
गच्छन्तीनामलसविलन्न्यासधन्याङ्घ्रिपद्मम् ।
वामाक्षीणां क्षितिपतिरसौ राजमानः समाजे
भेजेऽभिख्यामनुगतवशावंशवश्याद्विपस्य ।।९५।।

आपीनस्तनजघनातिमन्दगत्या
साधर्म्यं वर वरटाततेर्गतानाम् ।
कान्तानामिह निवहै रसावुवाहै-
तत्तीरे मदकलराजहंसलक्ष्मीम् ।।९६।।

अत्युज्ज्वलानणुमणिस्फुरदंशुजाल-
मञ्जीरमञ्जुतरसिञ्जितराजिपुञ्जैः ।
लीलालसस्वगतिलालसहंससङ्घ-
मङ्घ्रिद्वयं द्रुतमतर्जयदत्र तासाम् ।।९७।।

विजिहीर्षुरसो जलाशयेऽस्मिन्
सुदतीनां निखरेषु भीमतीनाम् ।
प्रथमं स्वयमेव वीतशस्त्रा-
भरणो भूरमणो द्रुतं विवेश[1] ।।९८।।

1. Mss. A. ममज्ज ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रौढप्रालेय शैलातिमहिममिहिकावाहिवात्यासमुद्यत्-
सावर्ण्यान्नामवर्णात् त्रिभुवनभवनं कम्पते हन्त यस्य ।
गाढस्यैतस्य गाढं द्रुतमवनिभुजा तस्य पद्माकरस्य
स्थाने पद्माकरोऽयं सपदि बहुतरं कम्पमापत्तदायत् ।।९९।।

पद्माकारिता लोलतराङ्गुलीकं
कान्तेन कान्ता अतिचाटुपूर्वम् ।
ता मन्दमन्दं चरणारविन्दं
सशङ्कमङ्के निदधुर्जलस्य।।१००।।

शङ्कातङ्कान्मन्दविन्यस्तपादासक्तालक्ताभाभयेनाऽम्भसः किम् ।
आसामासीत्तत्प्रभापद्मरागीभूताश्मोत्थे चारुसोपान एव ।।१०१।।

किंदघ्नं सलिलमिति प्रियं प्रियास्ताः
पृच्छन्त्यो मुहुरमुनोदिताः स्वमात्रम् ।
साशङ्कं धवकरधार्यमाणहस्ता
विन्यस्तातिमृदुपदं जगाहिरेऽम्भः[1] ।।१०२।।

तत्रैकातित्रासतो वामनेत्रा गत्वा नीरं जानुदघ्नं कथञ्चित् ।
भङ्गैस्तुङ्गैरन्तराकृष्यमाणा मज्जलज्जं कान्तमेवाजुहाव ।।१०३।।

न रोधसः साध्वसतो व्रजन्त्या अन्तर्जलं लोलदृशः परस्याः ।
प्राणेशकण्ठार्पितबाहुवल्याः सद्यःफलैवाऽभवदम्बुलीला ।।१०४।।

स्फुरत्कोपाटोपात् सरभसमपास्तालिवचसो
निरस्यन्त्याः कस्याश्चिदमलसरस्यां विहरणम् ।
प्रियेण प्रक्षिप्तैः सलिलपृषतैः क्षालितमिव
त्यजन्मानं पङ्कं हृदयमुदभूदच्छमचिरात् ।।१०५।।

नियन्त्रितायास्त्रपयाऽतिमात्रं स्पर्शोऽपि यस्या अतिदुर्लभोऽभूत् ।
तस्यास्तरङ्गैः शिथिला प्रियेण नीवीनवायाः सुखमेव दध्रे ।।१०६।।

कापि सुभीरुः सत्करभोरूश्चञ्चलशफरीस्पृष्टतरोरुः ।
किञ्चिदुदस्तश्रोणिगवासा हासविकासायाऽऽस परासाम् ।।१०७।।

1. Mss. A. जले ममज्जुः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ललितललनाविहारैरिति हृतचित्तो विलासीव ।
क्षणतः क्षोभमवापद् गम्भीरोऽप्येष कासारः ।।१०८।।

नीवीं मुहुः शिथिलयंश्चलवीचिहस्तै-
र्मन्दं स्पृशन्नतिपृथुस्तनसीमभूमिम् ।
कामीव किञ्च परिचुम्बितदन्तवासा-
स्तासां सरःपतिरराजत रागपात्रम् ।।१०९।।

गम्भीरनाभीकुहरे पुरासामावर्तितं निम्नवलीषु लीनम् ।
तुन्देऽतिमन्दे प्रसृतं तदम्भस्तनाचलेषु प्रतिघातमापत् ।।११०।।

मृणालविभ्रजौ भुजौ सुचपलौ विधाय सरसे रसेन सरसि ।
प्रसार्य चरणौ रणोद्धतमणी इमास्समतरंस्तरङ्गबहले ।।१११।।

कुचैः प्रतिहता हता च जघनैर्घनैस्थिततनुस्तनुस्फुरितकैः ।
व्यशोभत तदा तदङ्गरजसाञ्जसाञ्चितजला जलोद्धतगतिः ।।११२।।

तासामङ्गक्षोभलोलोर्मिमाला-
दोलालीलालम्बकामूलनालाः ।
श्रीसद्मान्यप्याशु पद्मा प्रकम्पं
प्रापुस्तूर्णं तन्मुखेन्दोर्भियेव ।।११३।।

अथ रचितग्लहवन्धवन्धुरा
रभसविलासितभव्यविभ्रमा ।
युवतिततिर्हृदयेश्वरं जलैः
समसिचदञ्जलिरागपिञ्जरैः ।।११४।।

वायुर्क्षणोन्नमितबाहुवल्लरी
व्यक्तस्तनोन्नतिरुचां मृगीदृशाम् ।
आलोलकङ्कणझणत्कृतिस्तदा
लीलाग्लहेषु कलहायते स्म किम् ।।११५।।

प्राणेशपाणिपरिमुक्तपयः कणौघै-
स्तासां निषिक्तमलसद् वदनं तदानीम् ।
राकाविशङ्कितशशाङ्कसुपङ्कजश्री-
साम्राज्यपट्टसमये कलिताभिषेकम् ।।११६।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स उपधिमविदत्या कुन्ददन्त्या कयाचित्
प्रियकरपरिकीर्णोर्णिः कर्णरुग्‌रुजन्त्या ।
वलितवदनपद्मं छद्मना सेचनस्य
व्यरचि रुचिरमुच्चैरञ्जलिर्वल्लभाय ।।११७।।

कराग्रप्रत्यग्रव्रणतरुणजाग्रच्छशिकलं
कुचं शम्भुं पत्या प्रतिमृगदृशः स्नापिततरम् ।
मुहुर्दर्शं दर्शं प्रचुरलसदीर्घ्यं समसिचत्
स्तनेशं स्वं काचिन्नयनसरसीवारिपृषतैः ।।११८।।

व्यत्युक्षीरभसभरच्छलात् परस्याः
प्राणेशे कुचकलशे स्पृशत्यशङ्कम् ।
तद्धौतस्तनमृगदर्पकालिमोच्चै-
रन्यसा बत शरणीचकार वक्त्रम् ।।११९।।

लोलत्तरङ्गशिथिलांशुकोल्लस-
नाभिह्रदेषु ललिताननश्रियाम् ।
मज्जन्नृपस्य नयनं नतभ्रुवां
दिष्ट्या स्तनाबलभतोद्भटौ घटौ ।।१२०।।

तैरन्योन्येषामानने क्षिप्यमाणाः
सारा आसारा वारिणः स्वच्छभासः ।
सम्फुल्लाम्भोजश्रेणिजैत्रश्रियोच्चै-
र्मुक्ता मुक्तानां राजयः किं विरेजुः ।।१२१।।

कान्तानां कबरीषु[1] तूर्णमुररीकृत्य श्रियं कौसुमीं
नेत्रेन्दीवरपक्ष्मणोस्तु दधतो मारन्दविन्दुत्विषम् ।
विम्वोष्ठे रदचन्द्रिकारुचिरतां[2] कण्ठे च मुक्ताप्रभां
शम्भौ पीनकुचे च तण्डुलरुचं रेजुः पयोविन्दवः ।।१२२।।

अविरललुलदधमिल्लश्रीविराजिमुखाम्बुजाः
सुबहलगलद्विम्वोष्ठाभा विलुप्तदृगञ्जनाः ।

1. Mss. A. wrongly spelt कबरीषू ।
2. Mss. A. o चन्द्रिकारुचिरदाः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विपुलपुलकालङ्कारौघाः प्रकम्पिवपुर्लता
जलविलसितैरेताः कान्ता रतान्तरुचिं दधुः ।।१२३।।

वायुं क्षणेन परिवीक्ष्य मृगेक्षणानां
शीतालुशालिपुलकं स कुलं नृपालः ।
तेनैव सार्धमुदियाय सुमन्दमन्दं[1]
कासारतीरमिभराडिव धेनुकाभिः ।।१२४।।

अङ्गे धर्तु तरलितकरं यान्यगृह्यन्त ताभि-
स्तैः सम्प्रीतैरिव सुविमलैः सम्पुफुल्ले दुकूलैः ।
अङ्गासक्तान्यपि दृढतरं यान्यपास्यन्त ताभि-
र्वासोभिस्तैः सपदि रुरुदे स्नानवारि[2] स्रवद्भिः ।।१२५।।

पीनश्रोणितटीषु सूक्ष्मविलसत्कान्तिच्छटाः शाटिका
वक्षःसीमसु सान्द्रचन्दनरसाः कण्ठेषु मुक्तास्रजः ।
बिम्बोष्ठेषु भुजङ्गवल्लिरुचयो नेत्रेषु नव्याञ्जनं
कान्तानामिति वारिलुप्तविभवो लेभे पुनः स्वं पदम् ।।१२६।।

सुरकामिनीसमधुरा मधुरा
विलसद्विलास सुतनूस्सुतनूः ।
रमयन् प्रमोदसदनं सदनं
स निजं जगाम सरसः सरसः ।।१२७।।

उशीरकायमानिकानिकामसंवृता वृता
नितम्बिनीजनैर्जनैर्निराकृतोत्पतज्जनैः ।
अमानिकाविमानिकानिकायमस्य भूभृतो
भृतोरुभोगविभ्रमं स सम्भ्रमं सुनिन्थिरे ।।१२८।।

।। अथ वर्षावर्णनम् ।।

विशन् स्ववेश्मप्रतिहारभूमि
समीपतः पीनपयोधरांसः ।
चिरं वियोगान्मलिनाम्बरान्तां
कान्तामथ प्रावृषमैक्षतोच्चैः ।।१२९।।

---

1. Mss. A. मंदमद (omitting अनुस्वार) ।
2. Mss. A. स्नानवारि च्यवद्भिः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सपदि जिष्णुममुं प्रियमुच्चकै-
रुपगतं समवेक्ष्य मुदा तथा ।
कुटजपुष्पमिषात् स्मयमानया
समदकेकिकलध्वनिरादधे ॥१३०॥

लसदुरुमरुदुद्धतातिनीला-
म्बरमघुरस्फुटविद्युदुद्यदङ्गी ।
प्रसृमरतिमिराभिसारिकेव
व्यधित पुरो दयितस्य सा विलासम् ॥१३१॥

प्रावृषीह मदशालिबलाका-
लोकमञ्जुलरवोद्धतगीतिः ।
नीलनीरधरतुङ्गमृदङ्गा
व्योमरङ्गभुवि विद्युदनृत्यत् ॥१३२॥

वियदिह जलदानमितं
कुलमुच्चैश्चातकस्य जलदानमितम् ।
पयसा रुचिरङ्गलता
सरितां रेजेऽतिवृद्धरुचिरङ्गलता ॥१३३॥

भूयो भूयोऽम्भोधरधाराहृतधूलौ
लीलाशैले रङ्गतले मत्तमयूराः ।
कामक्रीडानाटकनान्दीमिव केकां
नृत्यन्तोऽमी मञ्जुलरागं समगायन् ॥१३४॥

देवीभूमिर्जलधरमालासारैः
सारैः सिक्ताम्बुदपटहान् बिभ्राणान् ।
बिभ्राणाऽसौ प्रसभधृतच्छत्राक-
च्छत्रा कस्याऽहरदचिरान्नो धैर्यम् ॥१३५॥

उपचितोऽपि पुनर्वसुना भृशं
परिहरन् बत मित्रकलाधरौ ।
रचितगर्जितकैतवतर्जनः
कृपणवन्मलिनो लसदम्बुना ॥१३६॥

कलुषाशया रचयता सरितः
परितः सतोऽपि च पथो हरता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विदधे सरोषसुदृशो हृदयं
जलदेन तेन मलिनेन शुचि ।।१३७।।

व्यातन्वन् धन्व दिव्यं घनघनसमयो विद्युदुद्यत्पताको
धारानाराचवर्षीयमभिनदभितो भीष्मसद्ग्रीष्मवह्निम् ।
तस्यैवव्योम धूमव्रततिततिरुचाऽभूत् किमुश्यामवर्णं
चूर्णाः शीर्णाविशेषा भुवि च समपतन् निन्दुगोपत्यदेशात् ।।१३८।।

अलिनिकेतनकेतकसन्तति-
स्फुटितरागपरागसुगन्धिभिः ।
प्रसभमेव वधूसमचेतसां
चिरमकम्प्यत दर्पलता ऽनिलैः ।।१३९।।

आपीय स्फुटितकदम्बपुष्पसीधु
कुर्वद्भिर्मृदुलकलच्छलाच्चटूनि ।
गौराङ्गीविपुलकपोलशालिलीलं
रोलम्बैः कुसुम[1]मचुम्बि केतकीयम् ।।१४०।।

मेघश्यामं धाम तन्मुक्तसङ्गं शेषे शेते यत्र लक्ष्म्या सहोच्चैः ।
मास्याषाढेऽस्मिन् व्रतान्याचरिष्णोराषाढोऽसौ हस्तगो दण्ड एव
।।१४१।।

धीरवारिधरधुर्यविलासां
प्रावृषः स सुषमामिति पश्यन् ।
शत्रुशल्यनृपतिर्वनिताभि-
र्विभ्रमैररमताऽभिमताभिः ।।१४२।।

साटोपं तरलतडिल्लताकडारे
मेघानां नभसि निशम्य कापि शब्दम् ।
सम्भ्रान्ता दरभरतः परं नवोढा
वोढारं विततभुजं तमालिलिङ्ग ।।१४३।।

मध्येसपत्नांसभमास्थिताया
कास्याश्चिदङ्गे प्रियदर्शनेन ।
सीत्कारोमोद्गम कम्पनानि
वामा अजानन्न् जलदागमेन ।।१४४।।

---

1. Mss. A. कुसुममचुम्बि, B. सुसुम o (Comm. कुसुमं पुष्पमचुम्बि) ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वयसा ऽभिनवेन भासमाना
च्चिरमन्या भुवनत्रयेऽसमाना ।
स्तनभाररुचा च कासमाना
शुशुभेऽनेन चिरं रिरंसमाना ।।१४५।।

शीतालोः प्रबलवलाहकानिलेन
प्रेयस्या उरसि बभौ कुरङ्गदर्पः ।
सन्मन्त्रैर्विषभिषजोऽम्बुदस्य नादै-
रायातो बहिरिव मानकालसर्पः ।।१४६।।

।। अथ शरद्वर्णनम् ।।

मदकलकलहंसचारुयाना
हसितसरोजविराजिदिङ्मुखश्रीः ।
विमलविलसदम्बराभिरामा
शरदथ तस्य दृशं भृशं जहार ।।१४७।।

सुमलिनघनसङ्गादुत्यथप्रस्थितानां
सपदि कलुषभावं निघ्नती निम्नगानाम् ।
शरदियमनवद्या साच्चरित्रेव नारी
व्यतनुत निरपायं मित्रमाहात्म्यमुच्चैः ।।१४८।।

कामक्रीडातरलललितहंसश्येनी
व्रीहिव्रातैः सुचिररचितलोकैः ।
चन्द्रोदारा शरदुरुशरपुष्यत्सम्पद्-
गोपीनाथोश्चिरमनुविधधे सत्कीर्तिम् ।।१४९।।

नित्यं जयारुचिमतिव मुखे दधाना
व्याकोशकोकनदसुन्दरदर्शनेयम् ।
राज्ञाऽमुना[1] च घनसभूषिताङ्गी
वर्षाविशेन समदृश्यत खण्डितेव ।।१५०।।

परिणतकेतकगौरी राजकुमारीव फलिनधात्रीका ।
शरदियमलम्भि दिष्ट्या पुण्यवता राजहंसेन ।।१५१।।

विलसत्कलहंससाधुवादा
दमयन्तीव नलोल्लसद्विलासा ।

1. Mss. A. राज्ञामुनाच्छघनसारः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शुचिसद्रसशोभिनी शरत् सा
सुमनोभिश्चिरमादरेण भेजे ।।१५२।।

पर्जन्यास्त्रे श्रावणेनाऽवकीर्णे
रोषावेषादूर्जमासेन राज्ञा ।
आग्नेयास्त्रं तूर्णमाविष्कृतं किं
रेजे शोणं पिण्डपुष्पस्य पुष्पम् ।।१५३।।

विकचचम्पककम्पकरच्छवि-
र्वरजःपटवाससुवासिता ।
सहचरीयमुदञ्चितकण्टका-
ऽनवरतं समचुम्बि मधुव्रतैः ।।१५४।।

यैर्धीरधाराधरवारिधारा-
त्रासादिवाम्भोरुहिणीषु लिल्ये ।
समीरधूतैररुणैः परागै-
स्तैरर्कतेजोभिरिवाऽऽशु डिड्ये ।।१५५।।

कालोत्करालितनभस्यतमःप्रचण्ड-
तुण्डप्रवेशहृतरङ्कु कलङ्कभासा ।
शीतांशुना मुखरुचं शरदं दधानां
पश्यन्नगस्त्यविटपी विटवज्जहास ।।१५६।।

कर्कन्धूफलमधुरस्तनश्रियोऽस्याः
लावण्यं ललितवयःकृतं विलोक्य ।
व्याजेनाऽतनुशरभाजि मञ्जरीणां
सत्काशे स्मितरुचिरुच्चकैश्चकाशे ।।१५७।।

स्तनभरविनतां सुदर्शनीयां
नवकनकद्रवगौरचारुगात्रीम् ।
वरकलमततिं तदीयगोप्त्री-
मपि न मृगोऽन्तिकगः पृथग् विवेद ।।१५८।।

समाक्षिपन् माक्षिक मिक्षुकाण्डं
सुस्वादु मास्वादिजनैरमन्दम् ।
सुधामुधाकृद्दयिताधरीय-
माधुर्यमाधुर्यमवैतुमेव ।।१५९।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शरदा समुदारसम्मदेन
स्फुरदम्भोरुहसंलसन्मदेन ।
रसता सरसीषु सारसेन
व्यवहरत् सारसिकाऽऽणुसारसेन ।।१६०।।

कृतबहुधान्यप्रणाम्या मुखधृतरागा सुमञ्जुलालापा ।
सज्जनततिरिव रेजे, विलसत्पक्षा शुकश्रेणी ।।१६१।।

इतीन्दिरां स शारदीं, विशारदां विशाम्पतिः ।
मुदा विलोक्य वार्षिकीमुमार्चनां समाचरत् ।।१६२।।

अयमलुलीत लुलायं कुण्ठितजम्भारिदम्भोलिम् ।
एककरधृतकृपाण्या शवर्ण्या प्रीणनायोच्चैः ।।१६३।।

सरभसप्रसरद्वलिसैरिभ-
क्षतजधौतमनेन महीभृता ।
महितहेमवतीचरणाम्बुजं
तरुणयावकमण्डितमुद्बभौ ।।१६४।।

सूपूजितापराजितो, विराजितो जयश्रिया ।
असौ नृपासनस्थितो, दिगीश्वरैरवन्द्यत ।।१६५।।

राकासुधाकरलसद्विशदातपत्रः
सत्काशगुच्छमृदुचामरवीज्यमानः ।
अन्यैर्नृपैर्ऋतुगणैरिव सेव्यमानो
रेजे शरत्समय आकृतिमानिवायम् ।।१६६।।

अधिविजयदशम्यमुं सिषेवे ।
चतुरयुती द्रुतगामिनां[1] हयानाम् ।
मदकलकरिणां परं सहस्रं[2]
युधिचरतां च पदा परार्द्धमात्रम् ।।१६७।।

घव्यपायसुनिशातनिशाधिनाथां-
राकानिशामनुविशा[3]मधिपाल एषः ।

1. Mss. A. earlier reading द्वयसीततिर्हयानाभ् ।
2. Mss. A. earlier reading सहस्रदघ्नी ।
3. Mss. A. earlier reading मधिविशामधिपाल एषः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अत्युल्लसल्ललितमण्डपमण्डनीयं
रासोत्सवं प्रविदधे वसुदेवसूनोः ॥१६८॥

लब्धोत्कर्षतुषारदीधितिमहःपीयूषपूतानिलो-
द्धूतासौरभसम्भ्रमोल्लसदलिप्रोद्गीतगीतध्वनिः ।
लीलामण्डपमण्डिताऽनुविदधौ भक्त्येव पुष्पावली,
रासोल्लासविलासिविभ्रमभृताभीरीनरीनर्त्तनम् ॥१६९॥

पीनश्रोणीस्तनतटभरान्मन्थरन्यासराज-
त्पादाम्भोजभ्रमणविरणात्किङ्किणीदत्ततालः ।
श्रेणीबन्धप्रसभकलितान्योन्यशोणाङ्गुलीको
लास्योल्लासोलसदनुहृतः शार्ङ्गिणा गोपिकानाम् ॥१७०॥

अतन्द्रचन्द्राननमण्डलाभि-
श्चन्द्रोज्ज्वलासुक्षणदासुसार्धम् ।
सत्पथ्यनेपथ्यधरः स सौधे
सुधाच्छकीर्ति विदधे विहारम् ॥१७१॥

अमलसकलभूषणास्तरुण्यो
निजदशनच्छविनिर्मलस्मितेन ।
उपचयमिव चक्रिरे सुधांशो
रुचिरचकोर निपीतचन्द्रिकस्य ॥१७२॥

यो नीलपद्मसमनेत्रनवप्रवाल-
लीलाधराधररुचाऽरचि काकणन्ती ।
तासां स शारदसितांशुसितांशुजालै-
र्नासामणिः पुनरनीयत मोक्तिकत्वम् ॥१७३॥

पक्ष्माणि सत्पक्ष्मदृशांशशाङ्क-
कान्तिच्छटाभिश्छुरितानि तासाम् ।
प्रियाननेन्दोरिवपानयोगात्
सजत्सुधाबिन्दुगणानि इव (?) रेजुः ॥१७४॥

सञ्जहत्तन्द्रचन्द्रप्रभाकञ्चुका-
ऽह्नाय सन्निह्नताश्लेषहृच्चन्दना ।
यामिनीशानना कामिनी सौरम्ने-
द्भावनोयाऽऽस काऽप्यस्तकूर्पासका ॥१७५॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

काचिन्मुग्धा दुग्धमुग्धान् सुधांशोः
प्रांशूनंशून् कर्णसीमोत्पतिष्णून् ।
श्वेताम्भोजोत्त सशङ्काविहस्ता
हस्तं श्रोत्रे तूर्णमावर्तयत् स्वम् ।।१७६।।

इति ललितविलासस्फुटमुखहास-
च्छलशशिभासः प्रचुरदरा-,
दिव सुवलित्रिभङ्गीतनुरुहभङ्गी-
मिषलसदङ्गीकृततिमिराः ।
पीवरसुनितम्बा सदधरबिम्बा
गुरुतरतुम्बाभकुचनताः
अनुनृपमभिनन्द्या बभुरतिवन्द्याः
स्मरवशविद्या इव वनिताः ।।१७७।।

।। अथ हेमन्तवर्णनम् ।।

तं विलोक्य लसदम्बुजमुख्या
वश्यमाशुशरदो बत सख्याः ।
हैमनी ऋतुरुची रुरुचेऽथो
मानिनीव मलिनाननपद्मा ।।१७८।।

इह हि प्रबलहिमान्या मानिन्या इव विलोकनाद् भीतः ।
अपसरतितूर्णमुच्चै रालिङ्गितदक्षिणः सूर्यः ।।१७९।।

गिरिजागुरोः क्षितिभृतः सुचिरा-
दुपसर्पणाप्त हिमसाद्भिभवम् ।
परिरभ्य गन्धवहमाशु धुनी
गृहिणीव हन्त जडतामगमत् ।।१८०।।

पृषदश्वपृषत्कभीषिता
लसदूष्माण इनरनलत्विषः ।
कठिनस्तनदुर्गदुर्गमे
समलीयन्त नितम्बिनीहृदि ।।१८१।।

द्रुतमपगतपत्रे बत शतपत्रे
स्मृत सुकलत्रे पथिकजने,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तुहिनयुतसमीरे प्रवहति धीरे
वसतिकुटीरे घनवलने ।
सुरयुवतिसमाना अवहृतमाना:
सपदि धुनाना: स्तनभरत:,
कृतदृढपरिरम्भ: प्रचुरितदम्भ:,
प्रभुरिह शम्भ: समभजत ।।१८२।।

समुदीक्ष्य शीतमरुता सहसा
सुविशीर्यमाणमधरे सहसा ।
प्रतियोषितोऽरुरितरा सहसा
स्वसखीभिरत्र मुमुदे सह सा ।।१८३।।

।। अथ शिशिरवर्णनम् ।।

परिमलमिलदलिवृन्दं
जातानन्दं विभिन्दती कुन्दम् ।
शिशिरश्रीरथ भेजे
कान्तेवामुं महीकान्तम् ।।१८४।।

वात्यस्मिञ्छिशिरानिले रतिपतेरुन्मादनास्त्रं परं,
किं चित्रं चललोचना नवनवं वाञ्छन्ति यत्कामुकम् ।
चारित्रव्रतदेवताऽपि यदहो स्वप्नेऽपि याऽन्यं प्रियं
नैच्छत् साऽप्यनले चिरेण दमयन्त्यङ्गीकरोति स्पृहाम् ।।१८५।।

यन्मौलौ कलनं तुषारमहसो यद्वर्जनं वाससां
यत् स्थानं तुहिनाचले शिरसि यत् त्रिस्रोतसो धारणम् ।
सर्वं तत् त्रिपुरारितापसवटोर्दम्भस्य विस्फूर्जितं
यल्लीनं दृशि सम्बिभर्ति शिशिरत्रासाद्विशेषर्बुधम् ।।१८६।।

चित्राम्बरैरप्यतिपूज्यमाना
स्नेहैरगण्यैरपि सेव्यमाना ।
सभा खलानामिव मानवानां
रूक्षत्वमेवावहदङ्गयष्टि: ।।१८७।।

कान्तामिहाऽतनुशिलीमुखराजमानां
स्मेराननां स्तवकपीननकुचावनम्र

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आमोदसुन्दरतनुः शिशिरीयवायुः
शीताकुलोऽभिक इव द्रुतमालिलिङ्ग ।।१८८।।

कलितागरुधूपं सुन्दररूपं विलसत्सुगहननाभि,
सुमुखं सुनवीनं स्वरजितवीणं स्तनराजितमृगनाभि ।
यौवतमभिरामं प्रकटितकामं दृढमाश्लिष्टमनेन,
मरहठ्ठावृत्तं जडिमनिवृत्तं कविनेवैषि रसेन ।।१८९।।

विलसत्सुचरित्रे मनसिजमित्रे
वयसि विचित्रे रचितरुचः,
पृथुजघनसमेताः शिशिर सुभीताः
सविधमुपेता मानमुचः ।
विपुलस्तनभारा मुखजिनतारा-
धिपमदसारा मुहुरबलाः
भेजे सुखरङ्गं विलसदनङ्गं
दृढमालिङ्गन्नयमबलाः ।।१९०।।

इति तमुदारं प्रमुदितदारं
त्रिभुवनवीरं क्षितिपतिहीरम् ।
भेजे भूपं किङ्करूपं
रचितानन्दं षड्ऋतुवृन्दम् ।।१९१।।

योऽन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्यस-
त्काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते चर्याऽस्य वर्यार्तवी ।।१९२।।

।। इति श्रीमद्बहुविद्यवैद्यवृन्दकुलचूडामणिश्रीनारायणसुतकृते
श्रीशत्रुशल्यचरिते ऊनविंशः सर्गः ।। 19 ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ विंशः सर्गः ॥

श्रयति यमिहाऽश्रान्तं कान्तं सतीव निजं मही
बत परकरास्पृष्टा हृष्टा सदा वशवर्तिनी ।
तमथ मथितुं श्रीगोपालंसुखी चिकुलोद्भवं
व्यरचयदयं चित्रां यात्रां पितामहवाक्यतः ॥१॥

असमसमरोत्सर्पद्दर्पद्विषद्गणदारणे
शिशुरपि धृतामर्षोत्कर्षः स यत्समनह्यत ।
अभिनवमेहाव्यूहैर्नेहेन्द्रदिग्जठरोद्गति-
क्षणहततमः स्तोमस्याऽसौ रवेर्हि कुलस्थितिः ॥२॥

त्रिभुवनसहायस्याऽस्याऽरीन् समित्सु सुरित्सतो
द्विषदसहनं बुद्ध्या बुद्ध्यन् महः सुमहत्तमम् ।
न्यदिशत भृशं श्रीमान् रत्नो भटान् स रणोत्कटान्
धृतशिशुधियोऽलङ्कर्मीणेऽप्यहो गुरुवृत्तयः ॥३॥

अनिशविषमग्रीष्मोष्णांशुप्रभीष्मभुजोष्मणां
भृशमसुहृदामुद्भृज्जन्तः समूहमहंयवः ।
घनघनघटाघोराघ्रातार्घघर्घरघोषणा-
विकटपटहाश्चण्डक्रीडाः प्रपुस्फुटिरे पटु ॥४॥

प्रतिगजरिपुध्वानभ्रान्त्या बताऽष्टहरिद्दरी-
कुहरविहरद्भूभृत्सिंहैः श्रुतः सभयोत्सुकम् ।
रणमखधृतोत्कर्षः प्रैषोऽयमस्य निमन्त्रणे
नभसि रभसाढ्ढक्कारावः सुगाढमढौकत ॥५॥

द्रुतमिव समिन्धाना नानास्ववीरभुजानलं
द्विषदुरुतते- र्निर्मथ्नन्तः प्रतापहुताशनम् ।
रिपुकुलकृतस्तम्भारम्भाः प्रचण्डमकुण्ठित-
स्वभटतयश्चित्रीयन्ते तदा स्म तदानकाः ॥६॥

1, Variant reading A. बुद्ध्याजानन् ।

2, Mss. A. रिपुमहिभुजा; B. भृशमसुहृदा etc.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रिपुकुलबलग्रासव्यासप्रसक्तपरेतराट्-
प्रविकटनटजिह्वाऽऽजिह्वानसम्भृतसम्भ्रमा ।
वरजयरुचामेष्यन्तीनां स्वयंवरचम्पक-
स्रगिव ददृश मध्येसैन्यं नृपस्य पताकिका ।।७।।

अथ चिरगलन्मोहैर्मौहूर्तिकैः सुमुहूर्तके
जयिनि गदिते चञ्चच्छत्रः स चामरवीजितः ।
अहितमहिवोद्वेलोद्वेल्लत्सरित्पतिसेतुभिः
सहभटगणैः क्षोणीजानिःक्षणादभिचक्रमे ।।८।।

रिपुकुललयाशंसुः प्रांशुस्फुटत्तडिदुद्भट-
ध्वजविजयिनी माहीनेजादिकप्रभुचिह्नयुक् ।
हरिभुजलतेवोच्चैश्चञ्चत्सुदर्शनदारुणा-
ऽनमयदवनीं सेना मानातिगाऽस्य महीपतेः ।।९।।

अविरततश्रेणीबन्धच्छलादभिपातुका-
ऽमतजयरमासंश्लेषाय प्रसारितदोर्लतः ।
रसभृत इवाऽभीक्ष्णं विभ्रत्सुकङ्कटकण्टकाँ-
स्तमनु मनुजव्यूहोऽयासीद् दुरूहपराक्रमः ।।१०।।

रणरसमदासीदत्सादिप्रणोदितवाजिनां
खरखुटपुटोद्धूता धूलिः पिशङ्गरुचिर्भृशम् ।
नभसि रभसाद् भान्ती भूष्णुः प्रतीपमहानिशा-
प्रसरपिशुनामाविश्चक्रे चिरेण पितृप्रसूम् ।।११।।

सुमसृणसृणिप्रीणत्पाणिप्रवीणनिषादिनां
बत बहुतृणं सम्मन्वाना दृढामपि यन्त्रणाम् ।
मदकणजलामोदामन्दोद्विजन्निजजातयः
कटकनिकटं त्यक्त्वा जग्मुर्गजा मदमन्थरम् ।।१२।।

---

1. Variant readings A. जिह्वाजिहातसम्भ्रमा and जिह्वा भ्रमाहतसम्भ्रमा ।
2. Mss.A. क्षोणिजानिः क्षक्षणादभिचक्रमेः Mss.B. सहभटगणैरभ्यक्रामन्नृपोऽतुलविक्रमः ।
3. A. माहीत्येगादिकप्रभु0 ।
4. B. प्रसरपिशुनां संध्यामाविश्चकार भयावहाम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अविरलगलद्दानाम्भोभिर्निषिक्तमहीतला
अपि करटिनः सौम्याः केचिन्निषादिवशे स्थिताः ।
विपुलविलसत्पृष्ठोदञ्चन्नृपासनमण्डिताः
कलितगतयो हार्या वर्या इवेयुरनुप्रभु ॥१३॥

दृढनियमिता यन्त्रा सम्यक्कशात्रयचातुरी-
चणसुमतिना नानादेश्याः प्रभञ्जनगञ्जनाः ।
तुरगनिकरा लीलोत्क्षिप्ताग्रपादमनोहरां
गतिमकलयँश्चित्रामुच्चैस्तदार्धपुलायिताम् ॥१४॥

अनुडद्युतैर्वाह्याः सह्या न जात्वरिदुर्गकै-
र्विषमयमुनासोदर्यास्यस्फुटत्कुहरोद्धुराः ।
व्यधुरतिभराभ्यञ्चन्त्यञ्चद्विशङ्कटशाकट-
प्रधिसमधिकक्षुण्णां क्षोणीं प्रभीषणनालिकाः ॥१५॥

रिपुहतिधृताटोपं चापं सनाथयतो द्रुतं
नशितविशिखैः प्रेङ्खत्पुङ्खैः सुमर्मकृतेर्मकैः ।
लसदसिलतांश्चञ्चत्कुन्तान् कृतान्तगणाञ्जनो-
ऽमनुत लुनतः पत्तीनस्य द्विषद्भटदोर्मदम् ॥१६॥

कनकखचिता अध्यारूढा अमानविमानिकाः
प्रपदमवधि यावल्लम्बैर्निगीर्णरुचौऽम्बरैः ।
द्रुतमभिपतल्लोकत्रासप्रदोद्यतवेत्रकै-
र्दृढपरिवृता स्थापत्यौघैर्ययुर्नृपयोषितः ॥७॥

अपिहितदृशा यन्त्रा यत्नाद् वशाः सुखमासिता
महति दधतीः पृष्ठे चित्रान् गृहानपि दारदान् ।
करनियमितामीष्वारुह्य प्रभीरुकयोषितां
रुचिरवपुषां तन्वन्नन्तःपुरं समगाद्गणः ॥२८॥

रिपुकुल इवैतन्नासीरस्थितोद्धतदन्तिभि-
र्विटपिपटले लीलोत्खाते सदध्वनिरोधिनि ।
चतुरमतिवद्विषद्रीची चुकुण्ठ न सा क्वचित्-
नरपतिचमूरुच्चैश्चञ्चद्ध्वजव्रजराजिनी ॥२९॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रचलति वले गोपीनाथेरमुत्र महत्तमे
जनकलकलं वाजिह्रेषारवोऽभ्यभवत्तमाम् ।
तमपि तिरयाञ्चक्रे क्रामद्गजव्रज बृंहितं
चटुलरटिताः प्रौढा ढक्का द्रुतं च तदप्यधुः ।।२०।।

सरणिधरणी धावन्मुद्गशिनां खुरचन्द्रकै-
र्विदलितलसल्लोष्टाऽकारि क्षणेन पुरा मृदुः ।
अथ रथचलच्चक्रैश्चक्रे सुकृष्टतरा चिराद्
गजमदजलैरासेच्ये तद्यशः फलवृद्धये ।।२१।।

वरनृपतेरस्याऽसंख्यैर्बलैः पथि निर्ममे
मन इव रिपुस्त्रीणामुच्चैः सरित्कुलमाकुलम् ।
अथ वपुरिवैतासामासादितामितलाघवं
व्यरचि न चिरादञ्चच्छोषं तदास्यमिव क्षणात् ।।२२।।

चटुलवडवावेक्षाक्षोभोल्लसज्जववाजिनां
प्लुतगतिभराल्लब्धास्फालोच्छलज्जघनश्रियः ।
विवलितमुखं दृष्टा लोकैर्विलोलदुरोरुहः
पथि हयरुहः कान्ताः पेठुः पराः पुरुषायितम् ।।२३।।

गुरुणि निहिते पृष्ठे भारे रटच्छ्रुतिखकखटं ।
सुविपुलललज्जिह्वं पश्यद् विलोलविलोचनम् ।
दृढमपि नरैर्नुन्नं तोत्रैर्निबद्धमिथस्तति-
द्रुतमुपययावङ्गीकुर्वत् प्लवप्लुतिमौष्ट्रकम् ।।२४।।

प्रसृमरमदादुद्यद्गर्जत्द्विपेन्द्रपुरःसर-
प्रपरुषवचःत्रस्यद्यन्तृप्रमुक्तगुणोक्षकात् ।
सुविषमदृषद्घातोधूर्णद्रथाङ्गयुगाद् रथात्
स्खलनविगलद्वासो वैश्यं जनान् समहासयत् ।।२५।।

उपलपटलैर्दुःसञ्चारं मुहुः स्खलनप्रदं
रथिभिरयनं नेदीयोऽपि व्यमुच्यत दूरतः ।
अथ सुखगतिर्वन्द्या पद्या न्यषेवि दवीयसी
न कुटिलपथान् संसेवन्ते कदापि हि साधवः ।।२६।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

त्वरितनिपतद्व्यायामोद्यद्बुभुक्षचमूजन-
व्रजपरिवृतैर्जातानन्दैरतीव वणिग्जनैः ।
सपदि पुरतो गत्वा छायासुशीतजलस्थले
विततविलसत्सद्यः स्वाद्यं महार्घमपण्यत ॥२७॥

गिरिवरदरीप्यत्सिंहध्वप्रतियोगितद्-
विकटपटहत्रासाद्यूथं द्रवत् पथि पोत्रिणाम् ।
अहमहमिकापूर्वं जघ्ने द्रुतं ततशक्तिभि-
स्तरलितहयैरश्वारोहैर्विमुक्तखलीनकम् ॥२८॥

असहमसां तत्सैन्यानां जवेन तितीर्षता-
मतिगहनतां नाव्यां चर्मण्वतीं सुविवृण्वतीम् ।
तरिषु युगपत् स्वं स्वं भारं परिक्षिपतां द्रुतं
कलकलभरः प्रादुर्जज्ञे प्रपूरितदिङ्मुखः ॥२९॥

जघनभरतो मन्दोत्क्षिप्ताङ्घ्रिहंसकसिञ्जित-
प्रगुणमधिरोहन्तीनां वै तरीः पुरयोषिताम् ।
विपुलतरणीकाष्ठालम्बोन्नमद्भुजवल्लरी-
प्रकटितकुचालोकं मेने नियामक आतरम् ॥३०॥

सहबलगणैस्तीर्त्वा तूर्णं सतामिति भूपतिः
पणमिव रणक्षोणीक्षीबद्विषत्क्षयलक्षणम् ।
प्रविकटरटद्भूयोभेरीसुभाङ्कृतिभीषणं
प्रसृमरतरं स्कन्धावारंव्यधत्त विधानतः ॥३१॥

अथ सरभसं वह्यौघेभ्यो निरस्तभरैर्नरै-
र्निचिखनिपुभिः शङ्कून् स्वीयप्रदर्शितपौरुषम् ।
द्रुततरसमाहूतात्मीयैर्विकस्वरसुस्वरं
नृपपटगृहाः सौधोत्तुङ्गा अतानिषतक्षणात् ॥३२॥

अरुणवसनावासोद्भासा क्वचिच्छुरितच्छवीन्
सततवितताजर्जस्विद्विजाधिपनिर्मलान् ।
अवनिमवितुर्वस्त्रावासान् प्रतापमिषारुण-
च्छविमणिलसत्सानूँल्लोकोऽन्यमंस्त यशोऽचलान् ॥३३॥

उपरिशिविरं वद्धैरभ्रंकषैरपि केतुभिः
प्रविदित निजावासा आसादिताऽमितसम्पदाः[1] ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुदृढमचिरान्नुन्ना नूनश्रमालसयानकाः
स्वपतिरचितावेक्षाः क्षिप्रं ययुः पृतनाचराः ॥३४॥

व्रजति पृतना यावन्नैव प्रमाणविवर्जिता
स्वयमपि जवात्तावद् गत्वा तताम्बरमन्दिरैः ।
त्वरितविततक्रय्याक्रान्तालसत् क्रमपङ्क्तयः
करधृततुलैः पण्याजीवैर्व्यतानिषताऽऽपणाः ॥३५॥

द्रुतमभिपतल्लोकश्रेणीनिषेधनरोषणै-
र्लघुविरचितोत्तानाः षण्ढैर्वरोधवधूजनाः ।
कलितकलितावासैरग्रेगतैरनुजीविभिः
सुविहितसुखाकल्पांस्तल्पान्छूमादधिशिश्यिरे ॥३६॥

द्रुतमुपगतं स्वस्वावासे सुमण्डपमण्डिते
श्रमजलपृषत्क्लिन्नं वासोऽपनीय निजाङ्गतः ।
अभिनवधृताकल्पं तल्पं श्रितं समुदञ्चित-
स्वरसुमधुरं सद्गाणिक्यं जनेन निरैक्ष्यत ॥३७॥

गजरथहयादिभ्यः सम्यैर्वतीर्य विनीय च
प्रहरणगणं धूलीधूम्रं निषिच्य जलैर्मुखम् ।
द्रुतमनुचरैरभ्युद्यातैर्मुहुर्वत वीजितै-
र्मगधरचितस्तोत्रैर्मञ्चेष्वलम्भि सुखासिका ॥३८॥

गहनपयसस्तस्यास्तोये सुमेकलकन्यका-
भ्रमविवशितान्नागाँस्तुगाँश्चिरादभिषुण्वतः ।
सुमलिनशिलासानून् मेनेऽन्तरीपसमुन्नतान्
मनसि जनताऽगस्त्यादेशाद्विशंवदभूभृतः ॥३९॥

प्रतिगजमदामोदामन्दानघप्रतिघोद्धतै-
र्निबिडनिगडान्युन्मूल्योच्चैर्व्रजद्भिरितस्ततः ।
धृतमदतयाऽवलातोद्यन्निषादिनीयन्त्रणै-
स्तरलितजना सेनानागे रणाह्वत वाहिनी ॥४०॥

वदनविलसड्डिण्डीरौघान् दविष्ठपथश्रमान्
नियमितमुखानुच्चैर्दन्तालिकाभिरभीक्ष्णशः ।
विमलसलिलैः सिक्तान्वक्त्रे मुहुर्द्द्तिवाहिभिः
समृदु यमयामासुर्भूयो हयान् वरवल्लवाः ॥४१॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनिमिषदृशा वामीं कामी विलोक्य पुरः स्थितां
चिरविरचितामर्षह्लेषः खनन्नवनीं खुरैः ।
पिहितनयनस्तूर्णं लोकैर्जहाय हयः क्षमां
भवति हि नृणां चित्तोन्मादोऽखिलोऽपि दृगुद्भवः ॥४२॥

शिबिरविततिव्यग्रैः सद्यो निरस्तभरं नरैः
श्रमनिरूपमश्वासं व्यात्ताननं क्षणमुत्सृजन् ।
मयकुलमहोत्यक्त्वा पीलून् जघास लसत्फलान्
कटुतरतरून् क्षुद्रो लोको न मिष्टमपेक्षते ॥४३॥

अपहृतलसद्गोणीभारं द्रुतं श्रितशाद्वलं
विदधदसकृद्रोमन्थं सन्निमीलितलोचनम् ।
अधिगतसुखं सद्यः प्रोद्यन्मदादनडुत्कुलं
व्यलिखदसकृच्छृङ्गैस्तुङ्गैर्गुरुैस्तटिनीतटान् ॥४४॥

अयमिति निवेश्योच्चैर्दुह्वत्प्रमाथिवरूथिनीं
समरविजयी पारे तीरे तरङ्गवतीहृदे ।
क्रमपरिगलत्तारुण्येऽपि द्रुतं तरणो दिशं
वरुणरमणीं चुम्बत्युच्चैर्विहर्तुमना अभूत् ॥४५॥

सुवितततमथाऽऽनीयाऽऽनायं विगाढदृढह्रदै
र्निविडबडिशैर्दासैर्दासीभर्वाद्भिरभीक्ष्णः ।
धृतझषमिषादेषाऽशेषामपि स्वकसम्पदं
द्रुतमतिथये तस्मै राज्ञे धुनी समुपाहरत् ॥४६॥

अपि सुविषमावर्तात् कैवर्तकैः सरितां ह्रदा-
द्बहिरुपहृता नृच्छन्मूर्च्छान् विधूनितपुच्छकान् ।
नरपतिरयं शुद्धान्तस्त्रीजनस्य दृशा स्मरन्
पयसि विजहौ प्रेष्ठ प्रोष्ठीगणान् करुणावशान् ॥४७॥

प्लुततरमथाऽऽहूयाऽमेयान् द्रुतं बहु वाहुजान्
वररसवतीलोकैर्विज्ञापितो नियताञ्जलिः ।
विविधमगधस्तोत्रैस्तूर्णं प्रवर्णितविक्रमः
स किल बुभुजे प्राज्यं भोज्यं चतुर्विधमादरात् ॥४८॥

रुचिरविलसत्तालोलीलाकलापकलस्वरं
श्रवणमधुरामालालाल्य सविनमृति गायकम् ।

CC-0. Prof. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निजगुणगणैर्हाहाहूहूप्रहासकृतां नृणा-
मभजत नृपः शृण्वन् गीतिं रहः प्रमदाजनम् ॥४९॥

अथ पुनरतिप्रस्थप्रास्थानिकाऽऽनकगर्जितै-
रपहृतनिशास्वापस्वापं प्रगे प्रबलं बलम् ।
गुरुभरधृतिक्रूरक्रन्दत्क्रमेलकवार्षभ-
स्फुटकलकलं सन्नासीरान्वितं द्रुतमायत ॥५०॥

निधुवनपरीखेदामन्दायिताध्व परिश्रमा-
श्चिरतरलसन्निद्रातन्द्रालसायितलोचनाः ।
प्लुततरगिरा पश्चाद्रक्षैः कथञ्चन बोधिता
द्रुतमपसरज्जारा वाराङ्गना अपि निर्ययुः ॥५१॥

रिपुकुलमहाकल्पानल्पाम्बुभिद्भिरिवोद्भटै-
विकटकरटस्फोटश्च्योतन्मदाम्बुभिरैभिकैः[1] ।
विरचित लसन्नासीरोऽसौ रटत्पटुडिण्डिमः
कटुभटघटाघोरो वीरो व्यरोचत संव्रजन् ॥५२॥

पवनलवनावेगत्वङ्गत्तुरङ्गतरङ्गवा-
न्निशितविलसच्छस्त्रज्वालासमुद्भटवाडवः ।
द्विपशतलसद्द्वीपाहार्यो रिपुक्षिति विप्लवं
क्षितिपपृतनापारावारो विधातुमधावत ॥५३॥

भुवनदयया तष्टस्त्वष्ट्रा प्रचण्डमृतण्डजो
निजकुलभटैतच्छात्त्रीकस्फुरत्करशुक्तिषु ।
सुनिशितलसत्कोटीकान्तिच्छलाज्जगदध्वरान्
किमु विनिदधे दूराल्लक्ष्यान् स्वकीयकरोत्करान् ॥५४॥

प्रचलतिवले बुन्दीभर्तुर्जगज्जयजित्वरे-
ऽविमितविमतग्रामग्रामा भ्रमानदरिद्रताम् ।
सपदि विभरामासुः प्रांशुद्रवच्चकितप्रजाः
किमु निजपतिप्रौढोदेष्यद्दशानुजिहीर्षवः ॥५५॥

1. B. श्च्योतन्मदैर्द्विरदव्रजैः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निजभुजपराक्रान्त्या क्रामन् विपक्षगणक्षितिं
विकटकटकव्यूहापोढद्विषद्भ्रूट्विक्रमः ।
समरधरणीमल्लैर्भिल्लैरतीवदुरासदं
न्यविशत रिपून् विध्यन्नद्धा मऊविषयं नृपः ।।५६।।

तमथमथितारातिव्रातं विशन्तमशङ्कितं
श्रवणविषयीकुर्वन्नौर्वप्रचण्डपराक्रमः ।
प्रपरुषरुषाखीची नीचीकृतामितविक्रमो
भृतपरिकरं नित्यंनृत्यत्कटुभ्रुकुटिद्वयः ।।५७।।

शिखरिगुरुभिश्चौडैश्चण्डामतीक्रमतङ्गजैः
पवनजवनैरश्वैर्विश्वाक्रमप्रवणैर्वृताम् ।
प्रविकटभटैः सन्निर्मातां दरं दृढवर्मभिः
सपदि महतीं व्यूहाञ्चक्रे निजां सवरूथिनीम् ।।५८।।

बलपतिमयं भ्रातृव्यं स्वं पुरोऽक्षयराजकं
विदधदमितैः शस्त्राजीवैः सुरक्षितमाजिषु ।
स्वयमथ वसन्मध्येसैन्यं वरायुधिकैर्वृतो
निजबलभरादुर्वीं धुन्वन् रणाय विनिर्ययौ ।।५९।।

अमुमनुययुस्तूर्णं कर्णान्तिकृष्टशरासना
अपहृतपरप्राणैर्बाणै रणेष्वधियोधिनः ।
प्रलयसमयामेयाधृष्यान्तकानुगदेश्यका
मृगरसमदोत्फुल्ला भिल्लाः कलावपलायिनः ।।६०।।

मउनरपते[1] प्रस्थानेऽस्याऽशिवं जगदुः शिवा
धनपतिदिशो याता याभ्यां दिशामिव दैवतः ।
स्त्रिय इव दिशोऽप्यन्तर्दाहं दधुर्मलिनश्रियः
श्रिय इव निजा लोलयं लोलत्विषोऽवललम्बिरे ।।६१।।

पललकवलापेक्षैर्गृध्रैः सुरप्रमदाकर-
ग्रहणपिशुनामातन्वानैः सुतोरणमालिकाम् ।

---

1. A. मउमहिपते Corrected to ०नरपते० on margin B. मउनरपतेः ।
2. A. Earlier reading पललकवलगृध्नुगृंध्रैः, Corrected to ०लापेक्षैर्गृध्रैः on margin; B. ०लापेक्षैर्गृध्रैः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रलयसमयक्रूरक्रोधान्तकस्य चरैरिवो-
परि परिवृता खीचीभर्तुश्चमूस्समशोभत ।।६२।।

भुवननिधनाध्मातौ[1] ध्मातोद्धतानकगर्जितौ
प्रहरणगणज्वालाजालज्वलत्पटुवाडवौ ।
सपदि समगंसातां पूर्वापराविव तोयधी
बलिबलभरावन्योन्यं तावुभावतिभीषणौ ।।६३।।

अहमहमिकापूर्वं सैन्यद्वयेऽत्र तु सङ्गते
वरजयरुचे शुद्धे शुल्के वरीतुमिवोत्सुकाः ।
स्वधनुरधुवन् केचित्संर्वमिताङ्गलता भटाः
सुदृढविलसन्मुष्टीनृष्टीन् परे च समस्पृशन् ।।६४।।

समररभसात्सञ्जग्मुष्योस्तयोरथ सेनयो-
श्चिरमुपचितश्चियोऽभूत्प्रकोपहुताशनः ।
अमितसुसमित स्वीकारेण ध्रुवं स समेधितो
विपुलनलिकावक्त्रादाविर्बभूव सुभूरिशः ।।६५।।

अजगरगुरूण्यास्ये न्यस्तद्वितुल्यकगीलका
रिपुकुललसद्रोगैर्भोगैरदभ्रभयङ्कराः ।
फणभृत इवाभीक्ष्णं तीक्ष्णैर्विषाग्निकणोत्करैः
कवलितजगत्प्राणा रेजुर्मयस्थितनालिकाः[1] ।।६६।।

क्षुधितपितृराडदण्डोच्चण्डादतीवसुविस्तृता-
दलघुनलिकासङ्घाद् घोरादनूनतनूनपात् ।
त्वरितमुदितोद्दप्यद्दुर्हृत्समिद्भिरिहैधितः
करन्नियमने साक्षी साक्षादभूत् सुरसुभ्रुवाम् ।।६७।।

विमतहविषा विष्वग्वैश्वानराद् द्रुतमेधिताद्-
विपुलविलसद्द्यावाभूमी विगाहनसाहसात् ।
द्रुतमुपहृतोदञ्चत्केतु द्युयानमदुद्रुवन्
परमचकिता दिव्या नार्यः सुकौतुकपातुकाः ।।६८।।

प्रपरुषरुषा दष्टस्वौष्ठा वरिष्ठभुजौजसः
प्रविकटरटत्कोटिक्रूरं शरासनकर्षिणः ।

1. A. Mss. गजस्थितनालिकाः, B. मय o.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुनिशितशरासारैर्घोरैरधिप्रधनस्थलं
बहुलमनलं तूर्णं कीर्णैरसीममशीशमन् ।।६९।।

असमसमरे ग्लास्नुत्रस्तावमुत्र तु पत्रिणः
श्रवणसरणीपारीणानि प्रकृष्य धनूंष्यरम् ।
प्रवरखुरलीप्रेङ्खत्प्रज्ञैर्भटैर्दृढमीरिताः
कविगिर इवाधुन्वन् मूर्ध्नः परस्यगताहृदि ।।७०।।

कुचमकरिकाऽनाऽयोऽमेयः प्रतीपमृगीदृशां
रतिरसलसद्भावोहावो द्युलोकनतभ्रुवाम् ।
अमरनगरीयात्राघण्टापथः परिपन्थिना-
मथ रिपुमथा चावे रोपव्रजः प्रभुणादधे ।।७१।।

समरसृमरस्थेमस्थाम्नः प्रभीष्मधनुष्मतः
स्थगितभुवनो यो विस्फारः प्रभोः समजृम्भत ।
दिवमिह सुखानूनां यूनां द्विषामधिरोहतां
पटहनिनदो मङ्गल्योऽसौललासरसाधिक ।।७२।।

अपि हृतजगत्प्राणा उच्चैरभेदमभीक्ष्णशः
सदृगभिधया वेगेनाऽभिप्रयान्त इवानिलैः ।
विमत वनितोरोजक्ष्माभृत्सुपत्रलतावनीः
प्रसभमधुवन् बुन्दीभर्तुः ससम्भ्रममाशुगाः ।।७३।।

युधि खरतरोद्दप्यत्कुप्यत्सपत्नमहीभृता-
मसुलभजयश्रीसंश्लेषस्पृहाकलुषायितम् ।
हृदयमदयं वज्रक्रूरश्चकर्त विकर्तनान्वय-
भटमणेर्बाणासारस्तिरस्कृतदुष्कृतम् ।।७४।।

परभटशरावग्राहोग्रग्रहैः स महेषुभि-
र्द्विषदवनिषु क्षिप्रं प्राणाऽसुभिक्षकरोऽपिसन् ।
अथ रिपुवधूचक्षुर्देशे सवाष्पकवृष्टिभि-
र्व्यधित विलसद्वैधव्यश्रीसुभिक्षमभीक्ष्णशः ।।७५।।

कुलीशविषमैः सेनान्योऽस्य स्फुरत्करतेजसो
विजितजगतो बाणैर्भिन्नाः प्रभिन्नमतङ्गजाः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वहलविगलद्रक्तार्द्राङ्गा: परं शकलीकृता
धृतगिरिमृद: क्रौञ्चप्रस्था इवाशु विरेजिरे ।।७६।।

गुरुतरगरोद्गारैर्वीरै रणे प्रभुणेरितै-
रिपुभिरमुनोद्वृत्त ं कृताद्विषद्भटमौलय: ।
नभसि रभसादुद्गच्छन्त: सशङ्कमनूरुणा
विरचितवपुर्व्यूहा: सिंहीसुता हृदि मेनिरे ।।७७।।

तमिति समितिद्विट्संवर्तव्रतापकृतादरं
नयनविषयीकुर्वन् क्रूरान्तकादपि भीषणम् ।
प्रगुणमरुणै रोषार्चीर्षीक्षणै: प्रवमन् परं
समरमतनोच्छक्त्या युक्तो भटोऽक्षयराजक: ।।७८।।

अथमृधविधाकण्डूजुष्टप्रवेष्टसमुल्लस-
न्निशितविलसच्छक्त्याऽऽशक्त्याजयस्यसमुद्यते ।
मउपतिचमूनाथे तस्मिन् जगत्कृतविस्मये-
ऽधिकरममुना दध्रे शक्तिस्तुलेव जयश्रिय: ।।७९।।

सुदृढपिहितस्वर्गद्वाररटोत्कटकुञ्चिका
प्रवरखुरलीविद्यादीक्षाप्रदानशलाकिका ।
मृधमखविधौ दुर्हृत्पूर्णाहुतेर्महती जुहू:
पितृपतिलसाज्जिह्वाशक्तिर्नृपस्यकरे बभौ ।।८०।।

कुलिशविषमप्रान्तै: कुन्तैर्विकर्तनतेजसा
समरजयिनाऽनेनाविद्धःसमिद्धै: भुजौजस: ।
परभटततेर्वीर्याम्भोधिप्रमाणबुभुत्सया
ध्रुवमचिरतो हृन्द्याऽनिन्द्यान्यतीव बिभेदिरे ।।८१।।

समरविलसत्कण्डूलैतत्प्रवेष्टसमीरिता:
खरतरलसद्भास: प्रासा: सपत्नमहीभृताम् ।
प्रवरतरसां पारं यान्तो विभिद्य हृदि व्यधु-
र्विलमपलसत्तद्धैर्यं श्रीविनिर्गमहेतवे ।।८२।।

कवचमचिराद् भित्त्वाऽभेद्यं सरोरुहपत्रवद्
घनमपघनं छित्त्वाऽन्येषां मृधेनृपशक्तय: ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नरहरिनखक्रूरा घोराःक्षरत्क्षतजारुणाः
प्रलयसमयप्रोद्यद्विद्युत्प्रभां परमां दधुः[1] ।।८३।।

शरभुवमिवासक्तं शक्तिस्फुरत्करमाहवे
तमथ मथनायार्यम्भोधेरवार्यकरौजसम् ।
कृतहठसमाघाता व्राताः परं परिपन्थिनां
द्रुतमभिययुर्धृत्वा पाणौ विकोषकृपाणिकाम् ।।८४।।

अमरसमराहंयून् हन्तुं रुषाऽऽशुसमुद्यतान्
दृढमसिलसद्दोष्णः पूष्णस्त्विषं दधतो मुखे ।
विषमविमतान् हन्ताऽनन्तानतान्तमवैक्ष्य स
स्वयमपिकरेऽधार्षीत् खड्गं द्विषत्क्षपणक्षमम् ।।८५।।

द्रुतमथ जगत्प्राणश्रेणीधयाद्भुतपन्नगी
सुविषमरुषा कोशान्नाकोर्बहिः समुपेयुषी ।
अहितसुयशोराकामीकावलोपकुहूनिशा
रिपुकुलमहामारी वारी जयोन्मददन्तिनः ।।८६।।

वहलकलहप्रत्यग्रार्द्र द्विषत्समिदिद्धतत्-
सुभुजहुतभुग्धूमश्रेणीविडम्बनपण्डिता ।
अधिपरभटाभीकानेकामरप्रमदाऽसिता-
म्बुजसमकटाक्षाभाऽस्याऽभात् करे करवालिका ।।८७।। (युग्मम्)

अथ परलसद्गोत्रच्छेदी महीमघवानघो-
ऽशनिमिव दधत्तिग्म्मां तिग्मच्छविः स कृपाणिकाम् ।
निजभुजयुगद्राघिष्ठौजोऽवहेलितविष्टपं
रिपुबलमलं चस्कन्दोच्चै रुषा परुषायितः ।।८८।।

तपगातपनोत्तापं कोपान्नृपः स रणे तपँ-
श्च्युतकृपकृपाण्योच्चैरुच्याटिताऽहितदोर्मदः ।
निजभुजनटद्दण्डश्चण्डः प्रचण्डकरात्मजो
यम इव रणक्षोणावैन्दद्विषद्कुलपलालसः ।।८९।।

अनिशमशनिक्रूरा घोरा रणे करवालिका
द्विगुणितसमिद्भासा भामश्रिया प्रभुणेरिता ।

---

1. A. परमुद्ययुः । B. परमां दधु ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनयदहितानद्धोत्कृत्या पृथग्भवदङ्गकान्
बकरिपुभुजाच्छिन्नद्वैमातुरावतरश्रियम् ॥९०॥

विमतविपिने कुण्ठः कण्ठीरवोऽस्य लसन्मसिः
परकरटिनां कुम्भौ धारानखैरभिनत्तथा ।
प्रसभनिपतत्तवक्त्रान्तर्गतामलसद्द्विजा
बभुरिह यथोत्खाताः खीचीसुकीर्तिकुटा इव ॥९१॥

क्षितिभृदसिना भूयो भिन्नप्रभिन्नगजव्रज-
प्रपरुषलसच्छीर्षोत्कर्षात् क्षरत्क्षतजच्छटा ।
सुदृढकठिनैतत्कुम्भास्थिस्थितारणिघट्टना-
ददयमुदयद्वह्निज्वालाविलासमधान्मृधे ॥९२॥

ग्रसनि तदसाविशं युद्धे भटान् समरोत्कटा-
नथ युधि दधच्छस्त्रीं शस्त्री करेऽक्षयराजकः
सपदि निकषा दन्तैरोष्ठं कषन्निकषात्मजो
रघुपतिमिव प्रायाच्छत्रुक्षयक्षमवुन्दिपम् ॥९३॥

तमथ[1]सुभटं शस्त्रीपाणिं रणायपरायणं
निजजयिभुजावेलाशैलावरुद्धपराब्धयः ।
अमलकुलजावुन्दीभर्तुर्भटाः परिवव्रिरे
मुनिमिव मुमुक्षु[2] तं सिद्धिव्रजा अणिमादयः ॥९४॥

द्विगुणितरणक्रूरक्रोधानलेद्धभुजानलः
तरुणतरणिप्रौढास्यश्री स खीचीबलाग्रणीः ।
समरसृमरां मृत्योर्दूतीमिवोद्धतशस्त्रिकां
त्वरितमुररीकुर्वन् सर्वान् भटानभितोऽभिनत् ॥९५॥

रणमखविधाविद्धे क्रोधानले वरधाय्यया
तदसिसुतया हव्यान् भव्यानसून् प्रविधाय ते ।
समर विलसत्तृष्णाः कृष्णादयो बत पञ्चषा
विकटसुभटा बुन्दीभर्तुर्द्रुतं त्रिदिवं ययुः ॥९६॥

---

1. A. तमथ सुभटं, B. अथ वरभटं ।
2. A. मुमुक्षं, B. मुमुक्षुं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विदधति मृधे तस्मिन्नित्थं विपक्षकुलक्षयं
प्रलयसमयामेयात्मानं दिनेशमिवासहम् ।
क्षणमनिमिषैरीक्षाञ्चक्रे सविस्मयमीक्षणै-
र्विरहितमिथोवैरं स्वैरं बलद्वयराजकम् ।।९७।।

अनिशमशनायातिक्रूरान्तकोत्कटदंष्ट्रिक-
महितहरिणीनेत्रापत्रावलीसुखनित्रिकाम् ।
असहकलहामुद्यद्दुर्हृद्यशःपटकर्तरीं
स्वयमथ करे गौपीनाथिर्दधार स शस्त्रिकाम् ।।९८।।

ओंङ्कारो विजयागमस्य समराकूपारखेलद्भट-
ग्राहाणां निविरीसचण्डवडिशं विद्विण्मनोवृश्चिकः ।
सापत्नाम्वुधिमग्नसन्मउमहीसद्दंष्ट्रिदंष्ट्रोत्कटा
शस्त्री सा नृपशत्रुशल्यकरगाराजत्तरामाजिषु ।।९९।।

शस्त्रीक्रूरकरः सशस्त्रिकभुजेनाऽनेन बुन्दीपतिः
क्रीडन्नुत्कटतद्भटान् निपततोऽच्छैत्सीत्तदा मर्मसु ।
दृप्यद्दारुणतद्व्रणापहरणायोद्यद्घृणा चारुणा
द्रोणाद्रिं हरताप्यहो हनुमता मोघो न जज्ञे यथा ।।१००।।

एतत्कृत्तातिमत्ताहितबलकलहाविष्टसत्काण्डपृष्ठ-
द्राघिष्ठोरोस्रमिश्रामिषभृशविलज्जग्धयो यातुमुग्धाः ।
कण्ठोल्लुण्ठन्नरान्त्रग्रथितसुनलकस्रक्क्वणोदग्रमग्रे
धावन्त्यः स्वस्ववेश्मस्वपि करचरणैः स्वाः सपत्नीर्निजघ्नु ।।१०१।।

तत्रारित्रासकर्त्रात्रिभुवनविलयाशंसिशस्त्र्या नृभर्त्रा
युद्धे चित्रीयमाणाः सपदि चक्रतिरे शात्रवौघास्तथोच्चैः ।
उग्रग्रैवेयकान्यप्यतिविकटनटद्भ्रूणिदष्टौष्ठविम्बा-
न्युच्चैर्मुण्डानिचण्डान्यहह जहि जहीत्थं यथा व्याहरन्ति ।।१०२।।

रोषाच्छीर्षाणि दोष्णा विलसदसिसुतेनैष पिंषन् परेषां
निश्शेषांसंचिकीर्षुः स्वविमतपृतनां विद्विषोरोषणस्य ।
गोपालच्छत्रदण्डोत्कटकठिनभुजस्तम्भभीमस्य तस्य
क्षिप्रं वक्षश्छलेनाच्छिनदरिनगरीद्वारराजत्कपाटम् ।।१०३।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कीनाशीयतिशान्तमाशु विशनोऽप्येतस्य चेतस्यहो
लोकस्याद्भुतहेतवे समभवत्तद् भीषणं चेष्टितम् ।
उत्कर्षाहवहर्षसम्भ्रमभरानृच्छेत्प्रमूर्च्छेऽस्य य-
च्छस्त्रोदारुणपाणिरभ्यरिगणं कायोदधावोच्चैः ।।१०४।।

क्षीणप्राण इवातिदारुणरणे तास्मिंश्चमूनेतरि
स्वर्याते स मऊपतिर्विगलितोत्साहो मुहुर्मूर्च्छितः ।
शोकावेगगलद्विलोचनजलव्याजात् स्वराज्यश्रियो
नश्यन्त्या विदधन्निवापसलिलं जीवन्मृतोऽदुद्रुवत् ।।१०५।।

तं हत्वा सहकारिणं मउपतेर्भ्रातृव्यमव्याहतं
चित्रस्तोत्रवदावदैः स मगधैर्बुन्दीपतिर्वन्दितः ।
सम्प्रानारिजयेऽभवृंहितलसद्बृंहिष्ठढक्कारवः
स्वाधीनामकरोद् विपक्षधरणीं तद्राज्यदेवीमिव ।।१०६।।

योऽन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्री विश्वनाथस्य सत्-
काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते खीचीकुलोत्कर्तनम् ।।१०७।।

।। इति श्रीमद्बहुविद्यवैद्यकुलावतंस श्रीनारायणात्मजविश्वनाथकृते
महाकाव्ये श्रीशत्रुशल्यचरिते खीचीदेशग्रहणो विंशः (सर्गः) ।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। एकविंशः सर्गः ।।

खीचीवंश्यानथ स निखनन् युद्धनष्टावशेषा-
न्छैषाशेषोल्बणफणाशिरः स्थानुभूमीधुनीण: ।
त्रासोत्कम्प्रां वरमउभुवं तां नवोढामिवोच्चै-
रासाञ्चक्रे सपदि वशयँस्तत्रचित्रैश्चरित्रै ।।१।।

पादानम्रारिमुकुटनटद्रत्नभासां विलासै
र्वीरो वीरव्रजजयरुचा चारु नीराज्यमानः ।
उत्खातारिः स्वभुजमहसाऽऽनन्दयित्वा मऊं तां
वन्द्यां वुन्दीं प्रभुरुपययौ राजितोऽन्तःपुरेण ।।२।।

खीचीनीचीकरणसुयशः ख्यापयन्नानकानां
नादैर्वैरिक्षितिभृदसहस्फूर्जथुस्फायमानैः
हृष्टो विष्टश्चिरमुपचितानन्दवृन्दावतीं तां
भेजे रामाः परमनुपमाश्चारुलीलाविलासैः ।।३।।

ताभिस्सार्धं रहसि विहरन्नेष निशेषितारि-
स्तारेशश्रीप्रसभरभसध्वंस वक्त्रप्रभाभिः ।
प्रापत्तापत्रितयदलनः सुप्रजानां निजानां
तस्या देव्या दलपदुहितूर्मानसिंहं तनूजम् ।।४।।

स्वप्राक्पुण्यक्षितिरुहफलं राज्यलक्ष्मीपुरन्ध्री-
सौभाग्यश्रीस्थिरयितृगलप्रोल्लसत्पट्टसूत्रम् ।
ऐन्द्री पूर्णं विधुमिव हरित् सा सुवाना तनूजं
राज्ञी राज्ञः प्रमदजलधिं तुन्दिलं व्याततान ।।५।।

एतस्याहो, परमकृतिनोऽपत्रपासंवृतोऽपि
प्रोद्यन् सद्यस्तनुजजनितः कोऽपि हर्षप्रकर्षः ।
अन्तरुसिप्रचुरविलसद् गण्डसम्फुल्लभासा
फुल्ला क्षेण प्रसभमरुथि श्रीमतो द्यैर्मुरवेन ।।६।।

वाले तस्मिन्नथ समुदितेऽपत्रपिण्णुर्गुरुभ्यो
गौपीनाथिः स्वहृदि मुदितोऽप्यानतास्यश्चिरेण ।
श्रीरत्नेन स्वशपथशतप्रेरितो याचकत्रा-
फुल्लाक्षेण प्रसभमकथि श्रीमतोच्चैर्मुखेन ।।७।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पारावारप्रमितधरणीवर्तिसच्चक्रवर्ति-
श्रेणीमान्यस्वपितृमनसो रञ्जनं नामनान्घा ।
विद्वान् प्रादुर्यदयमभवत् स्वैश्चरित्रैर्विचित्रैः
सिंहोऽरीणां तदयमुदभूद् भावसिंहेति नाम्ना ॥८॥

गौपीनाथेः प्रतिदिनमथो वर्धमानस्य तस्य
स्फूर्जत्कान्तेः प्रवरपृथुकस्योच्चकैराननेन्दौ ।
मन्दोदञ्चत्स्मितरुचिलसत्कौमुदीमोदनीया
प्रादुर्जज्ञे प्रतुलितकला दुग्धमुग्धा रदाली ॥९॥

मातापित्रोश्चिरमुपचितस्नेहसद्ग्रन्थिरुच्चै-
रेकीभूतः स किल पृथुको वर्धमानः क्रमेण ।
रिङ्गन् रङ्गप्रचुरमजिरे स्फाटिकान्नव्यराका-
राङ्भित्तश्रीमुखनखरैर्निर्ममे पद्मरागान् ॥१०॥

आलम्ब्याऽयं तरणिकुलजक्षुण्णपद्यामिवोच्चै-
र्बालो धात्रीबरकरसिफां चारुलीलश्चचाल ।
किं च स्मेराननमनुकृतां तुष्यदम्बाजेना-
वोचद् किञ्चित्प्रकटरदनाव्यक्तवर्णां स वाणीम् ॥११॥

सर्वोर्वीभृद्गुरुतरशिरोधार्यवर्यत्विषाऽसौ
पुष्यन् पूषासमुदित इव प्रत्यहं शात्रुशल्यिः ।
नाधात्तस्मिन् स्वपितरि मुदं केवलं राजहंसे
सद्यो यावन् न्यधित जनतावक्त्रपद्मेऽपि तोषम् ॥१२॥

युद्धक्रीडाप्रसभसुभगम्भावुकोदारसारा-
नाराद्वीरान् सहजमहसा बाल एवाभिभूष्णुः ।
राज्ञः पुत्रः स किल गुरुणा संस्कृतः क्षात्रधर्मै-
र्यन्त्राकृष्टो मणिरिव बभौभूयसातेजसोच्चै ॥१३॥

क्षात्रो धर्मः स्वयमिव जगद्रक्षितुं सोऽवतीर्ण-
स्तीर्णो वर्णिव्रतमथ चिरं वृत्तगोदानकर्मा ।
राणावंश्यक्षितिपतिजगत्सिंहपुत्रीं सुगात्रीं
पाणौ चक्रे सकलवनिता चारुतागर्वहन्त्रीम् ॥१४॥

पुत्रेणोच्चैरिति स च पिता पूर्णकामः प्रकामं
साम्राज्यश्रीस्थिरयितृलसत्कर्मभिः शर्मयुक्तः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तैस्तैर्भागैर्वत सुरपतेः स्वप्नकालेऽप्यनाथै-
रिन्दन् बुन्ध्यां मुदमुदवहत् सेवितः शत्रुशल्यः ।।१५।।

अन्योन्येभाभिभवसुभगोत्साहमारोहलोकै-
र्नुन्नान् भिन्नान् धृतमदतया सिन्धुरान् वारिमध्यात् ।
उत्पुच्छाग्रं प्रतिगजमहो धावतो युध्यमानान्
कुम्भाकुम्भि त्रुटितनिगडं प्रेक्षताऽसौ कदाचित् ।।१६।।

सीमातीतप्रमुदितहृदः संसदि क्षोणिभर्तुः
सिद्धा योद्धुं समदहरिणा जातुचित् कौतुकेन ।
शृङ्गाशृङ्गि स्फुटकलकलं हन्तुमन्योन्यमुत्का
क्रोधावेशं कथयितुमिव स्म स्वमुत्पुच्छयन्ते ।।१७।।

जातु स्फीतामरगुरुजितां शास्त्रपारङ्गमाना-
मन्योन्यस्याभिभवरभसाविर्भवत्तर्कचर्चम् ।
तत्तद्वेदावतरणलसत्सम्मति क्षोणिपालो
भेजेऽजयं विविवदिषतां सङ्गतं पण्डितानाम् ।।१८।।

चञ्चत्तत्तद्रससमुदितोदारसन्दर्भभव्यो-
दञ्चद्व्यङ्ग्यं प्रगुणितगुणालङ्कृति स्फीतवस्तु ।
सान्द्रानन्दं वितरदचिरान्नव्यकाव्यं कवीनां
विद्वानेष स्वचतुरधियाऽलङ्करिष्णुर्मुमोद ।।१९।।

एतेनार्थैः सुचिरममितैरर्चिता अर्चितेन
क्षोणीपालैश्चतुरमतयः संस्कृते प्राकृते च ।
सान्द्रानन्दप्रदनवसुधामाधुरीणां धुरीणैः
शब्दैरर्थैरपि च कवयः पूजयामासुरेनम् ।।२०।।

नानातानावलिसुललितग्राममूर्छाविभेदो-
दञ्चत्तत्तत्स्वरसुमधुरं गायतां चारुरागान् ।
क्षोणीन्द्रैतद्भजनविधये भूमिमभ्यागतानां
गन्धर्वाणामिव तमभजद्गायकानां समाजः ।।२१।।

काले कस्मिन्नपि कृतपणं दीव्यतादीव्यदक्षैः
स्वाभिप्रेताङ्कपतनमुदा निघ्नतां सारिकौघम् ।
वृन्देनोच्चैर्धरणिमघवानेष खेलन् सखीनां
वैरिक्षोणीविजयमुदितोऽमन्दमैन्दज्जयेन ।।२२।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सिंहद्वीपिद्विपकिरीरुरुक्रान्तकान्तारमुच्चैः
श्येनैः क्रव्याशनकशुनकैर्वागुराभिश्च युक्तः
स्वच्छेनाच्छोदनसमुचितेनैप वेषेण राजन्
राजाऽत्राजीत् स सह सखिभिः कर्तुमाखेटखेलम्॥२३॥

क्वापि व्यापिव्रततिविषमारण्यपर्यन्तवर्ति-
न्येषोऽशेषैः सरसि सखिभिः खातभूमीगृहेषु।
तिष्ठन्मङ्क्षु प्रसभमिषुणाऽऽह्वानपूर्वं स वीर-
व्याघ्रो व्याघ्रानभिनदचिरादम्बु पातुं प्रयातान्॥२४॥

सर्पद्दर्पप्रमुखरघुरीघोरमभ्युद्धरन्तो
घृष्टि श्रेष्ठा निकटमटतः सारमेयानमेयान्।
कर्णाकृष्टिप्ररटदटनिक्रूरकोदण्डमुक्तैः
काकोलाक्तैरिषुभिरमुनोच्चैः सपत्राक्रियन्त॥२५॥

धावज्जङ्घाकरिकशुनकैस्तत्स्तुतिस्पर्द्धयेव
[1]क्रुद्धं रुद्धा दिशि विदिशि च प्रेक्षमाणा नृपेण।
प्रेम्णास्त्रैणस्वपृथुकगणाग्रेसराः कृष्णसारा
घोरैर्बाणैर्बत विदधिरे दक्षिणेर्माण उच्चैः॥२६॥

श्येनम्पातव्यसनरसिकेनाऽमुना सम्प्रयुक्तो
हस्ताच्छ्येनो नभसि रभसात् पक्षती द्राघयन् स्वे।
उड्डीयोच्चैः सपदि चकितान् कान्दिशीकान् विहङ्गान्-
जीवग्राहं प्रभुमुपययौ प्रेष्यवद्धन्त गृह्णन्॥२७॥

मुक्ता हस्तान्नरपतिसखैः पित्सदादित्सयोच्चैः
श्येना नासादितखगमथादभ्रमभ्रे भ्रमन्तः।
नैफल्यह्रीयुज इव बताऽसम्मुखीना उदास्यै-
र्दर्शं दर्शं पिशितमचिरादाह्वयाञ्चक्रिरेतैः॥२८॥

वन्याऽगण्यावनिरुहलसत्पुष्पमालाविभूषाः
शीर्षोत्तंसीकृतखगलसच्चित्रपक्षाः सुवेषाः।
धृत्वा पाणौ विषमविलसद्द्रोपचापं युवानो
राज्ञः पक्षिग्रहणरभसाद्धावमाना विचेरुः॥२९॥

---

1. Mss B. wrongly spelt क्रूद्धं०।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्रीडन्नित्थं स इति मृगयाभूवियद्व्यापिबन्धे
बद्धोत्साहो विपिनमवनीभृज्जगाहे सुहृद्भिः ।
नैनं स्मैनः स्पृशति किमपि श्वापदान् कालयन्तं
षष्ठांशो यन्नृपतिभिरहो नैव हेयः कुतोऽपि ।।३०।।

क्रीडं क्रीडं क्षितिपतिरसौ भव्यमूर्तिर्मृगव्य-
व्यायामोत्थश्रमजलकणाचान्तचार्वङ्गरागः ।
उद्यत्खेदप्रजयिविजयाम्भः पिबन् मित्रलोकै-
र्युक्तोऽभुक्तोपहृतपिशितान्याशु शूलाकृतानि ।।३१।।

मन्द्रं मन्द्रं रसति सुकुलायाकुले पक्षिलोके
भासांपत्यौ गलितविभवे दुर्नये राजनीव ।
कामक्रीडातरलहृदये यौवते नव्यनव्यां
भूषां बिभ्रत्यथ स नगरीं स्वामयामास भूपः ।।३२।।

वन्द्यां बुन्दीं निजपृतनया यास्यतोऽस्यानकौघैः
द्यावाभूमीविवरमुखरैः साधुशब्दायमानैः ।
एतत्क्रीडासमयविलसत्सिंहनादभ्रमार्ता
मध्येभूभृद्दरि हरिगणा लिल्यिरे भीतिभाजः ।।३३।।

आरूढस्य प्रवरकरिणं दारुणानीकिनीभि-
र्भूमीभर्तुः प्रमुदितहृदो यास्यतो वन्द्यबुन्दीम् ।
धीरं ध्वान्तं रिपुकुलमिव ध्वंसयन्त्यः प्रकामं
सायं रेजे नरकरगता दीपिका भूरिभास ।।३४।।

एतस्याग्रे प्रययुरयुतं स्वैरमेव प्रयाणे
शस्त्राजीवा दशशतमिता उन्मदा दन्तिनश्च ।
तेषामर्धे रुचिरवपुषो वैत्रिणो हेमवेत्रा
हैमामत्र स्थितकुसुमजस्नेहदीपास्तदर्धे ।।३५।।

इत्थं वीरः स किल विपिनेनार्चितः स्वीयलक्ष्म्या
साम्राज्यश्रीगुरुभरधरोद्भासुरोदारवाहु ।
देवद्रींचीं श्रियमपि जयन् स्वश्रिया मागधौघ
प्रौढोद्गीतामलगुणगणोवन्द्यबुन्दीं विवेश ।।३६।।

सौधान् सौधाकरकरलसत्कीर्तिरेष प्रविष्टः
सृष्टाशेषस्वपदनिपतद्राजको राजकेन्द्रः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वेषं क्रीडासमयविहितं तूर्णमुत्तार्यवर्यः
शुद्धान्तस्थो युवतिभिरहोस्वैः कटाक्षैर्न्यमन्त्रि ।।३७।।

तासां लीलाविलसितसुखाम्भोनिधिं गाहमानो
वीरोऽन्येद्युर्मणिघृणिगणस्मेरसिंहासनस्थः ।
मन्त्रिव्रातैः सदसि गदितोऽसौ नमोवाक् पूर्वं
तत्तल्लोकोदयसमुचितं कार्यमार्यं व्यधत्त ।।३८।।

शत्रुं पुत्रं स समिति नयैः साधुभिः सापराधं
शासद्धर्म्यैः स्वकुलजनृपक्षुण्णवर्त्मानुगच्छन् ।
गुर्वीमुर्वीं दधदधिकरं शत्रुशल्यो नृपालः
श्रीमद्रत्नप्रमदमकरोद्यौवराज्येऽपिराजन् ।।३९।।

एतस्येत्थं भुवनभवनं रक्षतः क्षोणिभर्तु-
र्नामारीणामपि च हरतः स्वप्रतापैः प्रसह्य ।
वामं चक्षुः स्फुरदकथयद्रत्नराजं द्यूराजं
राज्यप्राप्तिं द्रुतमथ नुदद्दक्षिणं चाचचक्षे ।।४०।।

श्रीमद्रत्ने विजितखुरमे कीर्तिमात्राशेषे
शेषेणापिप्रणतसुफणं धार्यमाणं कथञ्चित् ।
सप्ताम्भोधिस्फुरदुरुभरं मन्त्रिणो भूतधात्र्या
अत्राधातुं जयनि नृपतौ चक्रिरेऽस्याभिषेकम् ।।४१।।

लोलत्राणप्रतिनिधिभुजे राज्ञि तस्मिन बुभूषौ
शेषो भारः सुलघित इति स्यां सुनभ्येति भूमिः ।
तृप्तिर्मेस्यादगणितमखैरित्थमाखण्डलोऽपि
ज्ञातिव्रातः परममुदयः स्यादितिप्रीतिमापत् ।।४२।।

राज्ञोऽस्याऽथाभिषवसमये मन्दमानन्दभागिभः
पाणीद्वन्द्वातिदृढलगुडैस्ताडितोताडिघौघैः ।
धीरं ध्वानं द्रुतमुदगृणन्नानका भूपुरन्ध्री-
पातिव्रत्योदयदुरुयशश्चारु चक्षाणमुच्चैः ।।४३।।

श्रौत्राहन्तीमहितहृदयाध्यानदृष्टिप्रमुष्टा-
नेहोदेशव्यवहितिजगज्जातजङ्घाललीलाः ।
चातुर्वेद्यैर्गुरुपदरतैश्चारुशिष्योपशिष्यै-
साध्वेतस्याभिषवणमहेप्राययुस्तापसौघाः ।।४४।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अस्मै दातुं बहुविधमुपग्राह्यमुद्गृह्य चञ्च-
च्चित्रच्छत्रावलिसुललिताः क्षिप्र मक्षौहिणीशाः ।
शीर्षोदञ्चन्मुकुटमणिभापुञ्जनीराज्यमाना
मानातीताद्धिनवविलसद्द्वीपभूपा इहायन् ।।४५।।

दृश्ये श्रव्ये प्रवरकवयो भव्यकाव्ये प्रवीणा
नानाश्लेषध्वनिगुणगणालङ्कृतिस्फीतवाचः ।
मुक्त्वा धातुर्निगमविषमं वक्त्रशृङ्गाटकं त-
लीलावासा इव मृदुगिरामाययुर्वन्द्यबुन्दीम् ।।४६।।

इत्थं तस्याभिषवसमये ब्रह्मराजर्षिवृन्दैः
सान्द्रानन्द्राद् द्रुतमुपगतैर्व्याप्तमास्थानमासीत् ।
दीप्तिं प्रापद्[1] धरणिपगणोपायनीभूतभूरि-
श्च्योतद्दानद्विपस्थहयैश्चत्वरं च प्रकीर्णम् ।।४७।।

तत्तस्थानस्थितिपरिलसद्वर्णभित्तिस्थचित्र-
व्याजादासादितमकरिकाविभ्रमादभ्रशोभा ।
सौधे सौधे रुचिररचितालेपनस्वच्छभासां
दम्भाद्बुन्दी नवमिव पतिं सिस्मिये तं विलोक्य ।।४८।।

मुक्तायुक्ताम्रजदलचलत्तोरणांशुच्छटाभि-
श्चञ्चत्सारस्वतजलमिलज्जाह्नवीपाटलाभिः ।
सौधास्यश्रीः प्रमदजनितं स्पष्टमाचष्ट हासं
पाकोदञ्चत्करककणिकोदारदन्तोस्रमिश्रम् ।।४९।।

अर्थातीताजिरपरिततोल्लोचचञ्चद्रुचीनां
चित्रस्थानामनिमिषदृशां प्राणिनां कैतवेन ।
राज्ञोऽमुष्याऽभिषवकुतुकालोकनायाऽऽगतानां
रेजे तस्मिन् सदसि सुचिरं देवतानां समाजः ।।५०।।

प्रासादाग्रप्रततविलसद्वैजयन्त्यो जयन्त्यो
बुन्द्यामभ्रंलिहमणिहसद्यष्टिदीप्ताङ्गयष्ट्यः ।
लोलच्चैलाञ्चलमिषविलोलाधराः स्वश्चराणां
राज्ञोऽमुष्याऽभिषवकुतुकं वक्तुकामा इवाभुः ।।५१।।

---

1. Mass. A. हीप्याचक्रे (also दीप्तींप्रापत्), B. दीप्तींप्रापत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सौम्यैः केन्द्रप्रणयिभिरथोद्यद्ग्रहैः ख्यातपुष्यत्-
क्षोणीराज्ये रिपुभवनगैः क्रूरतान्तैर्वहद्भिः ।
व्याख्यातारिप्रकरनिधनै जैत्रयोगे पुरोधो-
मुख्या वीरं शुचिजलभृतैर्हेमकुम्भैरसिञ्चन् ॥५२॥

द्राङ् माहेन्द्राभिषवमनुभिः सिच्यमानस्य तस्य
क्षोणीभर्तुर्विमलविलसत्सद्दुकूलावृताङ्गी ।
ज्येष्ठा प्रेष्ठा शुचिकुलभवा धर्मपत्नी समीपे
तस्थावेतच्चरितमुदिता मूर्तियुक्ता महीव ॥५३॥

तत्तत्तीर्थाहृतशुचिजलायुक्तसर्वौषधीकात्
प्रादुर्भूतोऽमलपरिमलोऽभूत्तदा दिक्प्रसारी ।
एतल्लोभान्मिलदलिकुलं संलसत्काकलीकं
भूदेवानां समनुविदधे मन्त्रपाठं यथोच्चैः ॥५४॥

येषां पुत्रो जलनिधिधयः सम्प्रतीतस्त्रिलोक्यां
कुम्भास्तेऽपि त्रिजगदवितुः सेककालेऽस्यराज्ञः ।
चातुर्वैद्यद्विजगणमनूपस्कृता राज्यलक्ष्म्या
व्यक्तं हेतूनमृतजलधीन् कारयामासुराविः ॥५५॥

सिक्तः सौवस्तिकमनुगणैर्भूमिदेवैः सदेवो
यन्त्राकृष्टो मणिरिवदधद् भूयसीं भव्यशोभाम् ।
दूरीचक्रेशरदिजलसच्चन्द्रिकाचारुचञ्चत्-
सर्वोत्कृष्टं यश इव निजं भव्यलोलं दुकूलम् ॥५६॥

चीर्णस्वस्तिक्रियमथ नृपं तं कुमार्योतिऽवर्या
आशासाना विजयमचिरादक्षतैः कुङ्कुमाक्तैः ।
कृत्वा भाले ललिततिलकं चारु नीराजयन्त्यो
रेजुर्लीलाकलितवपुषः प्रीतदिग्वृन्ददेव्यः ॥५७॥

नानारत्नप्रसृमररुचाऽमानमुद्भासमानं
चञ्चच्चामीकरसुमुकुटं स्थापयामास तस्य ।
क्षोणीजानेः शिरसि चतुरास्यो द्विजौघास्तदानीं
सौवर्णाण्डं तदिव जगतीभारधारातिदक्षे ॥५८॥

संवीताङ्गोविमलविलसत्कञ्चुकेनाथनाथो
बुन्द्या वीरोऽधिकटि कलयामास भासं दधानः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रत्यर्थीयप्रकर विलये निष्कृपांसत्कृपाणीं
शस्त्रीं शस्त्रिव्रजभुजमदावग्रहोग्रां तथाग्र्याम् ॥५९॥

चञ्चत्सिंहासनगनृपतेरातपत्रं विचित्रं
सौदर्योऽधादुपरि विजयी राजसिंहो महौजाः ।
वैमात्रेयस्त्वरिकरिहरिर्भ्रातृवर्गोऽतिशूरः
स्निग्धोऽस्योच्चैरधृतधरणीलक्ष्मसच्चामराद्यम् ॥६०॥

राज्ञां वर्गः स्वमुकुटनटद्रत्नभासां विलासा-
नेतस्याङ्घ्र्योः पुरत उपदारूपिणश्चारुचक्रे ।
एतत्पादप्रकरकमलस्पर्शरत्नायमानं
स्पर्शादेव व्यधित नृपतीन् वासवोदारभूतीन् ॥६१॥

दिल्लीपालः प्रवरखुरुमः श्रीजगत्सिंहराणः
श्रीमान् जोधाभिधपुरपतिश्चन्द्रदुर्गेश्वरश्च ।
आमेरीन्द्रः स कमठभटः श्रीजयत्सिंहराजो
राज्ञेऽमुष्मै स्फुरदुरुमदान् यूथनाथानुपादुः ॥६२॥

तत्तद्द्वीपागतनृपतयो लोकविख्यातवीर्या
नत्वा बद्धाञ्जलिपुटमतो लिप्सवः सुप्रसादम् ।
यद्यद्रत्नं भुवि समभवद्विश्रुतं रत्नगर्भा-
र्धाशायाऽस्मै सपदि ददिरे शत्रुशल्याय तत्तत् ॥६३॥

राज्ञां वृन्दैः स इति महितः शत्रुशल्यो महीशो
ब्रह्मर्षींस्तान् गृहमुपगतान् सम्यगानर्च तूर्णम् ।
नानाग्रामैर्द्रविणततिभिर्गाभिगधानप्यगाधान्
माद्यदन्तावलरथहयैस्सच्चकाराऽतिचारु ॥६४॥

मानातीतानथ स नरपानर्चयित्वायथाव-
त्तानुत्सृज्य प्रमुदितमानाः पूजयन् ज्ञातिवर्गम् ।
लोकान् सर्वान् सपदि वशयन् स्वैर्गुणैस्तत्क्षणेना-
मन्दाक्रान्तामकृतधरणीं सागरान्तां गरीयान् ॥६५॥

स नृपतिरभिषिक्तः प्राज्यराज्ये धरित्र्या
रविरिव करभासा भासयन् दिङ्मुखानि ।
प्रसभमरिसमाजध्वान्तविध्वंसधीरः
स्वजनहृदयपद्मं नन्दयामास भूयः ॥६६॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सद्धर्मः कलिना युगेन मलिनारम्भेण खञ्जीकृतः
तेज:पुञ्जविराजिनोऽस्य नृपतेश्चारित्रमन्त्रैः शुभैः ।
जङ्घालो रचित: परं कलिसखं दुष्कर्म विध्वंसयन्
सत्कर्म प्रथयन् स्वमित्रमचिरादेधाम्बभूव क्षितौ ।।६७।।

योऽन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणे:
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ।
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य स-
त्काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते राज्याभिषेकोत्सवः ।।६८।।

।। इति श्री श्रीमद्वहुविद्यवन्धुकुलचूडामणिश्रीनारायणसुत
विश्वनाथकृते राज्याभिषेको नामैकविंश: सर्ग: ।।21।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ द्वाविंशः सर्गः ॥

त्रिजगदभयदानदक्षधाम
क्षितिपललाम दधत् स दिल्लीपालम् ।
विषम यमदिशो ग्रहे सचिन्तं
निजगुरुदत्तपदं रिरक्षुरभ्यैत् ॥१॥

भुवनगणशरण्यधीरधाम्नः
प्रबलरिपुक्षपणे प्रचण्डनाम्नः ।
अयुतमनुययुस्तुरङ्गरोहा
द्विरदशतानि च पञ्च पृष्ठतोऽस्य ॥२॥

खुरुममनुपमं रिरक्षतोऽस्य
क्षितिकमितुर्व्रजतो[1] जवेन भूयः ।
द्विपरथहयभारतोऽतिगुर्वी-
मभृत कथञ्चिदहीश्वरः स उर्वीम् ॥३॥

प्रविकटरटदानकौघघोषै-
र्बधिरितकर्णपुटो द्विषद्भटानाम् ।
पथिनरमहितो जनैः पुपूजे
प्रणतशिरोभिरसौ महीमहेन्द्रः ॥४॥

अथ तमुपगतं पुरोपकण्ठे
त्रिजगदकुण्ठिततेजसं नरेशम् ।
स खुरुम उदियाय सेनयोच्चै-
र्द्रुतमिव तारकवैरिणं सुरेन्द्रः ॥५॥

त्वरितमुपगतेन तेन बुन्दी-
परिवृढ एष सुसत्कृतस्तदानीम् ।
समविशदचिरं सभां सुभव्यां
विरचितचारुसुधर्मममर्मनर्माम् ॥६॥

यवनगणपतेः सभूभृदर्धा-
सनपरिगः परिगीतदोः प्रशस्तिः ।

---

1. Mss. A wrongly spelt वजतो ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रणयसमुचितं हितं च वाक्यं
द्रुतमगदत् समदाम्बुदस्वरेण ।।७।।

परमह मुहुरेधसेऽद्य कच्चिद्-
धरणिसुतुङ्गपदेऽङ्ग मङ्गलोघैः
अपि परमवनीं प्रशासतस्ते
चरितमिमां द्रविणानि दोग्धि वग्धि ।।८।।

चतुरुदधिमितामिमां धरित्रीं
प्रवशयतस्तव बन्धुता हितानि ।
रचयति हृदयानुवर्तनैः किं
त्वमपि च सत्कुरुषेऽद्य कच्चिदेताम् ।।९।।

निजभुजमहसासुरेन्द्रजिष्णुः
कमहितमुत्सहसेऽद्य वा विजेतुम् ।
वद वद विमर्दं करोमि सद्य-
स्तमिह महोभिरहो स्वकीयदोष्णः ।।१०।।

इति नरपतिनाऽमुना स उक्तो
यवनपतिर्मुदमावहन्नमन्दाम् ।
विकसितहसितप्रभाभिरन्त-
र्गततिमिरं प्रहरन्नवोचदेनम् ।।११।।

त्वयि सति मम राज्यकर्णधारे
धरणिरसौ प्रधिनोतु मां कथं न ।
प्रणयवसुपुरस्कृतामयोच्चै-
रपि सुहृदो न कथं प्रिये यतन्ताम् ।।१२।।

त्रिजगदविनयव्यपोहधीरे
जयति करे तव निष्कृपे कृपाणे ।
सकलमपि किलस्थितं ममेदं
त्वमिह विदाङ्कुरु राजकं वशेऽद्य ।।१३।।

विकटभटघटाश्चिरेण यस्मिन्
स्वभुजमदं मम मेनिरे तृणाय ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रतुदति बत मां सुशल्यतुल्यः
सुविषमदेवगिरिः स शत्रुशल्यः ।।१४।।

इति स तदुदितं निशम्य सम्यक्
स्वसखजनाधिवधीरणैकधीरः ।
समरसृमरचण्डबाहुकण्डू-
स्वयमथ देवगिरिं प्रति प्रतस्थे ।।१५।।

निजहृदयरुजं द्रुतं जिघांसा-
विह मिहिरान्वयहीरके महीशे ।
यवनपतिरतिप्रफुल्लवक्त्रः
सह निनिदेश भटान् रणेऽतिचण्डान् ।।१६।।

यवनगणायुतः स खानखानो
रणजयिखानजमा च तस्य सूनुः ।
त्रिभुवन वरचन्द्रदुर्गराजो
भटततिपूर्णबलश्च कर्णराजः ।।१७।।

खुरमसुभटमुख्यखानदौरा
प्रवरमुबारिकखानकौ[1] युवाऽजौ ।
इति यवनपतेर्बलस्य मुख्या
ययुरमुना सह तत्क्षणादसङ्ख्याः ।।१८।।

प्रभुरयमयुतत्रयप्रमाणै-
र्निजसुनिदेशवशंवदैः समेतः ।
त्वरितमगमदुग्रदाक्षिणात्ये-
श्वरवशदेवगिरिं विधातुकामः ।।१९।।

तुरगखुरपुटोद्धतोऽस्य धूली-
भर उदडीयत दिङ्मुखेषु सद्यः ।
इदमुरुशरभीभराद्विशीर्य-
त्सुविषमदेवगिरेरिवाणुवर्गः ।।२०।।

---

1. Mss. reading is मुवारजखानको ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रवलबलपतिः स वुन्दीनाथ-
स्त्रिभुवनजित्वरदोर्मदप्रसारः ।
भटविकटनिजाभवश्यमभ्र-
ङ्कषमरुणत् परितः क्षणेन शैलम् ।।२१।।

अचलमथ समन्ततो निरुद्धं
द्रुतमवलोक्य निजामभूमिपालः ।
असहदहनतीव्रगोलवेषः
समरमहोत्सवमङ्गलं ततान ।।२२।।

अति विषमनिजाममित्रवद्याः ।
पुरधरणीश[1] दिलेश्वरो महौजाः ।
सुरगिरिपसहायतां करिष्यन्
रणदुलहं प्रजिघाय घोरवीरम् ।।२३।।

भुवनमहितघोंसलान्ववाया-
म्बुनिधिकलानिधिशाहजीमहीन्द्रः ।
रणविजयिमुरारिणा समेतो-
ऽपितुमगमत् स निजामभूमिपालम् ।।२४।।

बलमयुतचतुष्टयप्रमाणं
नृपतिनिजामसहायताप्रवृत्तम् ।
सविधमुपगतं विलोक्य वीरः
परिकरमेष नृपो रणे बबन्ध ।।२५।।

अथ समररसान्मिथो वले ते
निजजयगृध्नुहृदी अदीनरोषे ।
ववृषतुरचिराच्छरान् कठोरान्
पितृपतिराष्ट्रविवर्धनैकहेतून् ।।२६।।

प्रकिरति परितः शरौघवर्षं
बलयुगले बत लेखयौवतानाम् ।

---

1. Mss. A. earlier reading वद्यापुरमहिभृद्यःo Corrected as above.
2. Mss. A. वोंसलान्वयाम्बुनिधिo ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वरभटवरणे समुद्यताना-
मजनि मनोजतरुः प्रफुल्लशाखः ।।२७।।

धनुररिनिधनोद्यतं स कर्षन्
नृपतिरमर्षविशेषिताजिकर्मा ।
बहुविधमवधीद्‌वलं परेषां
यमरदनोपममार्गणैरगण्यैः ।।२८।।

छविलसदसिभासुरप्रवेष्टो
नृपतिरसौ करिणां गणं परेषाम् ।
अधिवसुमति पातयाञ्चकारा-
मरधरणीध्रमिवानतं भयेन ।।२९।।

सुमहति कलहे प्रवर्तमाने
हृतपरशीर्षक[1]बन्धवन्धुरा भूः ।
समहृत सुषमां हृतोपमानां
सपदि दिवः प्रलये विलासिकेतो ।।३०।।

खणखणनिनदोघ्नतां भटानां
विकटकृपाणभृतां तदाविरासीत् ।
सविधमुपसरद्‌द्विषज्जयश्री-
करपरिपीडन चारुचाटुकारः ।।३१।।

प्रहरणपरिकृत्तशत्रुगात्र-
क्षरदसृजा धरणी रणे चकाशे ।
सुरयुवतिकरग्रहे प्रसिक्ता
सदरुणा चन्दनवन्दिताम्बुपूरैः ।।३२।।

मिथ इति कलहायमानसैन्य-
द्वयसुभटेषु रुषा समुत्कटेषु ।
विनतविजयिचन्द्रदुर्गराजो
निधनमवाप स याकुतश्च खानः ।।३३।।

---

1. Mss. A. हतपरशीककबन्धवन्धुरा, meaning "filled with the trunks (headless bodies) of Parsi Muslim slain (in the battle)".

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

खलयुगभटयोस्तयोर्विनाशे
नरपतिरेष रुषा द्विषां बलं तत् ।
समभिनदभितः कृपाणपाणिः
प्रकुपितकालकरालवक्त्रकान्ति ।।३४।।

तरुणतरणिदारुणप्रतापे
क्षपयति राजनि तत्र वैरिपक्षम् ।
रणदुलहनृपो रणादपायाद्
विफलितबाहुमदो मृगप्लवेन ।।३५।।

विजितपरबलः स बुन्दिपालः
प्रविलसदानकगर्जितोर्जितश्रीः ।
पुनरमरगिरिं निरुध्य धीरः
प्रवरनिजाममनोरथं बबन्ध ।।३६।।

अपनदिरुररीकरोति रूपं
चिरिणिपरतो बत यत्स तेन तान्तः ।
अपि लुङि च निरस्यत्तेर्मुखेयद्-
द्विवचनमेतदुवाह सन्निजामः ।।३७।।

प्रतिदिनमशनाययाऽतिदीनो[1]-
ऽमरगिरिपो निजजीवनैकगृध्नुः
व्यतरदविरतः स बुन्दिभर्त्रे
सुविषमदेवगिरिं जगद्विजेत्रे ।।३८।।

अयमिति सुरशैलमात्मवशं
सपदि विधाय निगृह्य तं निजामम् ।
यवनगणपतेस्तदा पुरोऽभूद्-
हृदयमनोरथ एव पूर्णकामः ।।३९।।

अथ मुदितमनाः स दिल्लिपालः
स्वधरणिराज्यभरातिधुर्यकूर्मम् ।
असकृदपि परिष्वजन्नजय्यं
तममहयत् प्रणयप्रदत्तदुर्गम् ।।४०।।

---

1. Mss. A. earlier reading अनिशमशनयानिपीड्यमान्ने corrected as above.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अयमिति जगतीजयैकदक्षो
वरतमभूमिपदं चिरेण शासत् ।
सुरभयति दिशां मुखानि कीर्त्या
गुणलतया वर पुष्पिताग्रयेह ॥४१॥

वृन्दावतीपतिरिति प्रभुशत्रुशल्यः
शासन्नयेन धरणीं सुरराजतुल्यः ।
प्रत्यर्थिसार्थरचितामलतापभूमा-
भूमीतले विजयते सुतबन्धुवर्गे ॥४२॥

राज्ञोऽस्य दारुणरणे कुलिशायमान-
मप्यान्तरं द्रुततरं महतां कवीनाम् ।
चञ्चत्प्रसादसदलङ्कृतिभव्यकाव्यैः
शैथिल्यमाशु नवनीतमिव प्रयाति ॥४३॥

देवानांप्रियविप्रियप्रलपितप्रत्यग्रहालाहलो-
न्मीलत्कीलकुलाकुलात् कलिभवान्यक्ष्माभृदास्थनाकात् ।
उद्दामारभटीपटिष्टचटुलालङ्कारकान्तश्रियां
भीतानां विदुषां गिरां विजयते वीरोऽयमावासभूः ॥४४॥

उन्मीलद्बहलध्वनिप्रविलसत्पीयूषपूरोल्लसन्-
स्वादूद्गारगरीयसीं गिरमिमां सम्मानितां सज्जनैः ।
आत्मीयानुपकर्तुं मर्दितुमपि क्रूरान् पुरोभागिनो
राज्ञोऽस्योद्धतवन्दितामनटयच्छ्रीविश्वनाथो भिषक् ॥४५॥

विद्वद्वृन्दसुवंद्यवैद्यविलसत्सद्वंशरत्नाकरो-
दञ्चत्कौस्तुभसन्निभस्य भिषजः श्रीविश्वनाथस्य मे ।
हन्तानर्घ्यतरश्रियो न सुलभाः साधारणैर्देवकै
र्वाग्भासः पुरुषोत्तमं चिरममुं देवं भजन्तामिमा ॥४६॥

श्रीमद्रत्नपितामहस्य चरितोद्यज्जीवनामत्रतः
सम्भूनां पुरुषोत्तमस्य भवतो भव्यं भजन्तीं पदम् ।
द्विड्वैकल्यदशत्रुशल्यसुयशोगङ्गां सुतुङ्गामिमां
यान्तीं द्यामनु कोनु धर्तुमुचितः श्रीविश्वनाथात्परः ॥४७॥

अपि गुणगणामन्दानन्दामृतोम्भित चेतसां
सहजरचितासीमप्रेम्णां परोक्तिषु सन्ततम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुचतुरधियां निस्सन्दिग्धं विधास्यति मामकी
कृतिररतिमुदं लक्ष्मीभर्तुर्यथा तुलसीदलम् ॥४८॥

श्रीमत्सूरसुतातिशालिमहिमा रत्नाकरं वृण्वती
सानन्दं चतुराननोद्गतसरस्वत्यादरं गृह्णती[1] ॥
गोपीनाथजशत्रुशल्यसुयशोगङ्गा सुतुङ्गा तया
दिष्ट्याऽयुज्यत विश्वनाथभणितिः कुल्यापि कल्याणिनी ॥४९॥

यद्यप्यदर्यविदन् विदद्भिररितां स्वाभाविकीं वोऽस्म्यहं
भो मन्दा बत कद्वदा मम वचः शृण्वन्तु किं तु क्षणम् ॥
सत्कोषध्वनिशेषभाषितविदोऽन्तर्वाणिमान्यस्य मे
काव्येऽस्मिन्न च्छूम एष मन्त्रवदहो स्वीये हृदि स्थाप्यताम् ॥५०॥

सुश्लोकैर्जगतां मनांसि रसयन् सद्वृत्तजातप्रथैः
स्वोजाः सन्मधुरप्रसादविभवोऽलङ्कारभूरिच्छविः ॥
दोषध्वंसगभीरसद्ध्वनितया सर्वोत्तमत्वं गतो
मान्यः कस्य न शत्रुशल्यनृपतिस्तत्काव्यबन्धोऽप्ययम् ॥५१॥

योऽन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तामणेः
साहित्याम्बुरुहाकरैकतरणेः श्रीवैद्यनारायणात् ॥
रुक्मिण्यामुदभूदमुष्य सुकवेः श्रीविश्वनाथस्य स-
त्काव्ये श्रीनृपशत्रुशल्यचरिते देवाचलत्रोटनम् ॥५२॥

———

इति श्रीमद्वैद्यवन्द्यपदश्रीनारायणात्मजविश्वनाथरचिते श्रीमन्महाराजाधिराजशत्रुशल्यचरित्ते देवगिरिग्रहणो नाम द्वाविंशः (सर्गः) ॥

॥ इति शम् ॥

---

1. Mss. A earlier reading सरस्वत्या प्रणत्यादरं Corrected as above.

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ श्री ॥

अथ श्रीशत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाटीका प्रारभ्यते

॥ त्रयोदशः सर्गः ॥

1 आरूढ इति। सन्तं श्रेष्ठमुदयं भाग्यवृद्धि पर्वतविशेषं चारूढः प्राप्तः स्वीयौ उद्यन्तौ यौ करौ हस्तौ लक्षणया भुजावेव वा तयोः, स्वीया उद्यन्तो करा रश्मयस्तेषां च विभवेन प्रतापेन प्रकाशिताः कीर्त्योज्ज्वलीकृता आशा दिशो येन. कराशाशब्दयोर्वल्यभिलाषपरत्वेन व्याख्याने तु सामंजस्यन्न प्रतीयते, भास्वान् तेजस्वी सूर्यश्च श्रीरत्ननाम्ना क्षितिपेन निषिक्तं दत्तं यौवराज्यं यस्मै इति शत्रुशल्यमात्रान्वयि, स शत्रुशल्यः तत्क्षणात् परेषां शत्रूणां ग्रहादीनां च तेजांसि व्यजयत अभ्यभवत्, तृतीयपादेन शत्रुशल्ययौवराज्यानन्तरजं वृत्तं वर्ण्यते न पुनः श्रीरत्नस्वर्गानन्तरजमात्रमिति द्योत्यम् ।

2 आक्रामन्निति । निजभुजयोस्तेजसा अंजसाऽनायासेन दुर्वारान् दुष्टशूरान् आक्रामन् वशीकुर्वन् प्रजासु नीतिं विदधत् कुर्वन्नपि स्वाधीनां निजायत्तामपि वसुधां भूमिं अश्रांतं सततं न ईतयः अनीतयः ईत्यभावाः नीत्यभावाश्च ताभिर्युक्तां रचयति तदुच्चकैश्चित्रम्, अस्वाधीनेऽपि विषये नीतिं विदधत-स्स्वाधीनेऽपि विषये नीत्यविधानं चित्रम्. अतिवृष्टिरवृष्टिश्च शलभा-मूषकाः शुकाः, स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयस्स्मृताः ।

3 यस्येति । कलिना युगेन विकला श्रीर्यस्य तस्य यस्य नलस्य निषध-राजस्य पुनर्विपत्तरणानंतरं भुवा भूम्या संगः लाभः, पुनर्भ्वः अक्षता वा क्षता वापि पुनर्भूस्संस्कृता पुनरित्युक्तलक्षणस्त्रियाः सङ्गश्चासीत् स नलः नयज्ञः नीतिवित् कथं भवतु यः भूपः शत्रुशल्यः शत्रूणामपि पुनर्भुवः पृथिव्याः पुनर्भ्वश्च संस्पर्शं विनिहन्ति सः अयं कथं (अनयं) सहेत ।

4 एतस्मिन्निति । भुवि समवर्तिनि पक्षपातरहिते दुष्टानां प्रजानां दमितरि उपशमके दंडं धारयति इति तादृशे एतस्मिन् राज्ञि शत्रुशल्ये सति अत्युच्चैरपचिता क्षीणा चंडस्य तापस्य दुःखस्य संपत् संप्राप्तिर्यस्याः सम्पन्ना धनादियुक्ता दक्षिणा आशादिशा परमुत्कृष्टं जयति, हि पादपूर्तौ, यमत्वं व्यङ्ग्यम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

5 नेति । एतस्य शत्रुशल्यस्य प्रजाः श्रुतयो वेदा इव उल्लसन्निपातोऽनुदात्तस्वरः नाशनं च यासां तादृश्यो न, काणादानां वैशेषिकाणामुक्तय इव अर्थेषु पदार्थेषु द्रव्येषु च लुब्धा न, महाकवीनां कालिदासादीनां गभीरा गिरो वाच इव वक्रासु व्यङ्ग्यार्थप्रधानासु दौष्टचकुटिलासु चोक्तिषु प्रवणतरास्तत्परा नाभूवन् ।

6 सांख्यानामिति । अस्य नृपतेः शत्रुशल्यस्य नीतिः सांख्यानां कापिलानां नीतिरिव कदाचनापि प्रकृतीनां राज्यांगानां लयं नाशं प्रलये पदार्थजातस्य सूक्ष्मतयावस्थानं च न आशास्ते नेच्छति च पुरः नैयायिकमतवत् कार्यजाते साध्यमात्रे जन्यमात्रे च कदापि अदृष्टमपरीक्षितं धर्म्माधर्म्मात्मकं च साधनं उपायं कारणं च न प्रथयति नांगीकरोति । सांख्या हि प्रलये प्रकृतौ सर्वं लीयत इति मन्यन्ते प्रकृतेर्लयं नाशमिति व्याख्यानं तु वैधर्म्योपमा संदर्भविरुद्धम्, नैयायिकाश्च कार्यमात्रेऽदृष्टादीन्यष्टौ कारणानि मन्यन्ते ।

7 एतस्मिन्निति । भोजस्य धारानगर्यधीशस्य राजविशेषस्य जैत्री गुणैरतिशायिनी कीर्तिर्यस्य तस्मिन्नस्मिन् क्षितिभुजि शत्रुशल्ये सति दानस्य दानार्थंसंकल्पस्यांभसा जलेन समुपजिता लक्षणया सम्पन्ना अन्यथा नदचन्तस्याविवक्षितस्य प्रतीतिः स्यात् धुनी नदी चिरं संस्थास्नु स्थितिशीलं अतिप्रवृद्धं मूलं यस्य वुधानां पंडितानामुपकूलगं निकटगं दारिद्र्यरूपं द्रुमं वृक्षं धुनीते दूरीकरोति नदीस्वाभाव्यात् ।

8 वीरे इति । धर्म्मज्ञेऽस्मिन् वीरे शत्रुशल्ये प्रजासु धर्ममुपदिशति सति के के जनास्तपांसि के विदधति न कुर्वन्ति अपि तु सर्वेऽपि तत्र हेतुः अहो आश्चर्यं यदतः अतिकृशाः वने वसन्तः निरसङ्गास्त्यक्तराज्यादिसंगाः द्विषः शत्रवोऽपि तपस्वितां तपश्चर्यां दुःखिततां च दधति, अत्र द्विषां पूर्वं पापित्वं विवक्षितं कथमन्यथा तत्तपश्चरणमाश्चर्यजनकं पूर्वार्द्धार्थवोधकं च स्यात् एतदुपजीव्येनैष अधर्म्मस्य धर्मविरुद्धत्वात्तपश्चरणमुक्तार्थपोषकमेव ।

9 राज्ञीति । अहहाश्चर्ये खेदे वा इहास्मिन् राज्ञि शत्रुशल्ये सन्नयं श्रेष्ठनीतिं प्रणयति प्रचारयति सति प्रयाता अधिष्ठिता अभिगता च कन्या राशिविशेषः स्वानूढा कुमारी च येन सः विवस्वान् तुलां राशिविशेषं दिव्यरूपां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चरे हृति किं च कनके सुवर्णे न तु प्रजासु हुताशशुद्धिः अग्निदिव्यद्वाराशुद्धिरपि संदृष्टा लक्षणया प्राप्ता, कनके जात्यन्तर दोषोद्भावनं तु जात्यन्तरसांकर्यरूपस्फुटत्वबुद्धया कविना न कृतम्, अत्राऽतिमहतोपि विवस्वतोऽतिजडस्यापि स्वर्णस्य शोधनं तेन कृतमित्येतावत् प्रतीमः, यद्वा व्याजस्तुतिरीत्या को नामाय नयो यत्प्रतिवर्षं विवस्वान् प्रयातकन्यस्तुलामारोहति कनकं च प्रत्यहमग्नौ शोध्यते इत्यर्थपूर्वकं परिसङ्ख्याया पर्यवसानम् ।

10 स्वेति । स्वस्योजोभिर्बलैर्भुवं पृथिवीमकुतोभयान्न कुतश्चेद्भयं यस्यास्तादृशीं तन्वाने कुर्वाणे आशु दस्यूनां चौराणां संघं दलयति नाशयति चामुष्मिन् शत्रुशल्ये सति अहाऽश्चर्ये अदय अस्य शत्रुशल्यस्य अगच्छविः मूर्तिकान्तिः एका मुख्या वामाक्षीणां स्त्रीणां सुहृदयस्य पश्यतोहरा पश्यन्तमनादृत्य हरतीति तादृशी भाति इति चित्रं, वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदंडहरेषु इत्यलुक् ।

11 एतेनेति । एतेन शत्रुशल्येन त्रिलोक्यां स्वकैश्चरितैः समवर्तितादिभिः सपत्नानां स्वपरसाधारणशत्रुमात्राणां नाम्नो वार्ताया अपि विलये अप्रचारे कृते सति प्रकर्षेण विहरतोस्य राज्ञः मृगव्यमाखेटं विना प्रजानां विग्रहः प्रहारादिः क्वचिदपि नैवासीत् ।

12 वैशेषीति । अथ अमुना वीरेण शत्रुशल्येन द्रुतं शीघ्रं प्रजासामान्यमुत्सर्गरूपं, न हिंस्यात् सर्वभूतानीत्यादिकं, पक्षे सेति पृथक्पदं सा प्रजा मान्यं माननीयं च वचनं उद्धतं यथास्यात् तथा हसन्ती हास्यजननेनैव स्वविषयं संकोचयन्ती अवजानती च वैशेषी विशेषस्यापवापस्य संबंधिनी श्रुतिः, यद्वा विशेषशब्दात् स्वार्थे ब्राह्मणादिष्वभिषित्वसामर्थ्यान् ङीषि हलस्तद्धितस्येति यलोपाद् विशेषरूपा श्रुतिरित्यर्थः, अग्निषोमीयं पशुमालभेतेत्यादिका इव अपवादो बाधनं निन्दा च तद्रूपो दोषो यस्यास्तादृशी न व्यधायि न कृता किन्तु सतां कर्मणां यज्ञादीनामाचरणस्य लसद्विधानं अग्निहोत्रं जुहोतीत्यादिकं तेन वित्ता इति तादृशी व्यधायि, तेन वित्तश्चुञ्चुविति चुञ्चुप् ।

13 धर्म्येति । वीरे अस्मिन्नृपतिवरे शत्रुशल्ये सति धर्म्यो धर्मादनपेतो य एतस्य शत्रुशल्यस्य चरितानां च यस्समूहस्तेनोपदिष्टं वर्त्म धर्ममार्गो यस्यै

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धन्या अश्विनी वडवारूपापन्ना सूर्यस्त्री संज्ञा इव न असत्याश्रितं नासत्यौ तत्पुत्रौ दस्रौ तावाशितं च हृदयं यस्यास्तादृशी सती कद्रूः कश्यपपत्नीव कुलद्रुहां कुलवैराणां न विधात्री नकुलद्रुहां सर्पाणां जनयित्री च प्रजा विभाति ।

14 काशीति । अस्मिन् शत्रुशल्ये सति बुंदी अद्य काशी वाराणसीव स्फुरिताः शोभिता महा उत्सवा यस्यां सा चासौ ईशस्य शिवस्य चारवस्सौधा लक्षणया प्रासादा यत्र शोभिताः शिवस्य महेशस्य प्रासादा यत्र सा च अयोध्येव प्रवरा लसन्त्यः सुशीला रामाः स्त्रियस्तादृशो रामो दाशरथिश्च यत्र सती वृन्दावनस्य धरणीव संस्फूर्जत्तमा अतिशोभमानाः पुरुषपूत्तमा जनाः तादृशः पुरुषोत्तमः कृष्णश्च यत्र तादृशी राजति ।

15 एतास्मिन्निति । पिशुनानां सूचकानां निवारके एतस्मिन् शत्रुशल्ये सत्यपि निशीथे अर्द्धरात्रेपि चौराद्यभावेन सद्रथ्यासु अभ्यन्तरमार्गेषु प्रसरज्जनानां कलकलेन कोलाहलेन सकुला व्याप्ता वरासु नगरीषु गरीयसी गुरुतमा इयं सद्बुन्दी इह दिवा स्वर्गेण सह कलहं करोति इति चित्रम्, कलहद्योतनाय तृतीयः पादः ।

16 दुष्पाटच्चरेति । अमुना सम्राजा शत्रुशल्येन दुष्टा ये पाटच्चराश्चौराः, पाटच्चरमलिम्लुचा इत्यमरः, तेभ्यो यो हरो भयं तद् हरणशीलैः सच्चरितैः द्रुतं शीघ्रं गृहाः धरण्यां भूमौ विगतं निमेषणं नेत्रनिमीलनं येषान्ते गीर्वाणा देवा इव रात्रावपि अररयुगस्य कपाटयुग्मस्य, कपाटमररं तुल्ये इत्यमरः, अपिधानेन मुद्रणेन हीनाश्चौरादिनाशात् प्रणीताः ।

17 राज्ञ इति । यस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य प्रवरो नयो नीतिः प्रजाः प्रजाजनानिव सुकविजनानपि सद्धर्मं अजिग्रहत् ग्राहयामास बोधयामासेत्यर्थः तेनाणौ कर्तुः कर्मत्वं एवमेव अजिग्रहत्तं जनको धनुस्तदिति भट्टिकाव्याख्या जयमंगला, किम्, सुकवयो हि अतिशयोक्त्यादिष्वसत्यभाषित्वेन अधर्मकरा अत्याभिमताः, यद्यतः अस्य शत्रुशल्यस्य गुणान् गृणतां अतिशयोक्तिषु वर्णयतामेषां कवीनां रसना जिह्वा श्रुतिर्विद इव अजस्रं सत्यं न त्यजति अलौकिकचरिते ऽस्मिन्निति अतिशयोक्तित्वासंभवेन तद्वाचामपि सत्यत्वात् ।

18 धर्म्माणामिति । सः शत्रुशल्यः स्वचरितैः शत्रूणामिव अन्योन्यविरुद्धानां धर्म्माणामपि निसर्गजं स्वाभाविकं विरोधममोचयत् किम्, यद्यतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जेता जयशील: सुभीमैर्भीषणैस्सौम्यैश्च स्वैः स्वीयैः शीलैर्विषयभेदात् अहितदो दुःखदः हितप्रदश्चायं शत्रुशल्यः जयतितमां सर्वोत्कर्षेण वर्तते. अत्र यथाविषयं क्रौर्यसौम्यत्वादिधर्म्माणां व्यवस्थापनाद्विरोधपरिहारः कवेरभिमतः ।

19 अर्थिभ्य इति । यथायं शत्रुशल्यः अर्थिभ्योऽनिशं धन ददत् सन् दरिद्रतायै निधन नाशं लक्षणया धनाभावं च संयच्छति ददाति तथा अहो सांप्रतमिदानीं स्वीयानां संबंधसामान्ये षष्ठी अयं लक्षणया शुभकर्मणां संपदमिव शत्रूणां षष्ठी पूर्ववत् शीघ्रं निरयं नरकमिव दुःखं लक्षणयैव अयाभावं च ददाति ।

20 कीर्त्तीति । विज्ञानां धीमतां प्रथममतः मुख्यादृतः रथिनामीशो वीरस्सोयं शत्रुशल्यः बहुतिथा बहुसंख्यापूरणीस्तिथीः प्रतिपदाद्याः,पूरणार्थबहुपूर्णेति तिथुक्, कीर्तिरूपेन्दोर्द्युतिभिर्विमलीकृतोऽर्द्धभागो यासामन्यत्रार्द्धे द्विषतां शत्रूणामयश एवान्धकारस्तद्भजन्तीति अष्टमीर्विधत्ते, प्रत्येकमर्द्धेषु चन्द्रिकांधकारयुक्तत्वात् इति प्रतीयते ।

21 सर्वेति । श्रुतिरिव सर्वेषामन्तःकरणवशीकृतौ वशीकरणे स्वनुष्ठितत्वादीश्वरानुशिष्टत्वाच्च प्रतीता जातप्रत्यया गंभीरा दुखबोधा च भूरूपाया देव्या यो विश्वासः एतदेकानुरागरूपस्तस्या स्थितिर्मर्यादेव संप्रहर्षिणी सुखंकरी अस्य शत्रुशल्यस्य नीते रीतिः सकलान्नृपानतिशेते विशेषयति किल, छंदोपि प्रहर्षिणी ।

22 अथेति । अथ राष्ट्रधृग्वंशे राठोडसंज्ञककुले जन्म यस्य स नृपश्चासौ दलपतिनामा अगण्यं गणयितुमशक्यमस्य शत्रुशल्यस्य गुणानां गणं तूर्णमाकर्ण्य श्रुत्वा अस्मै शत्रुशल्याय निजां दुहितरं सुतां दातुं अतिमान्यं पूज्यं वाग्मिनां प्रशस्तवाचामग्रगण्यं पुरोहितं आशु प्राहिणोत् प्रेषयति स्म ।

23 अतीति । चित्तेचारुं सुंदरं उच्चैरतिसमुचितं योग्यमिदं चिन्तयन् सन् मान्यः तुष्टचेताश्च स नृपदलपतिनाम्नः सत्पुरोधाः श्रेष्ठः पुरोहितः रयेण वेगेन जितः पवमानो वायुर्येन तं अश्वमारुह्य विजयिनि कार्यसिद्धिकरे सुमुहूर्ते प्रतस्थे प्रस्थितवान् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

24 सरसेति । तेन पुरोहितेन पथि मार्गे सरसं लक्षणया फुल्लं यत् सरसिजं कमलं तद्वदास्यं यस्याः, सारः श्रेष्ठो यस्सारंगो मृगस्तस्येव चक्षुषी यस्याः, विकचं विकसितं यल्लकुचं फलविशेषस्तद्वच्चञ्चन्तौ सत्कुचौ यस्याः चारुगात्री श्रेष्ठमूर्तिः, अंगगात्रकंठेभ्यो वक्तव्यमिति ङीष्, तिलकेन कलितो युक्तो भालो यस्याः, सुचेला सद्वस्त्रा पथिकानां पथि प्रस्थितानां सुष्ठु सिद्धेः शंसिका सूचिका बाला षोडशवयस्का स्त्री तूर्णमैक्षि दृष्टा ।

25 अभिनवेति । अभिनवो बालो यो निजो वत्सस्तस्मिन् यः प्रेम्णो वात्सल्यस्य भूमा महत्त्वन्तेन सुभूयो वारंवारं विलसदमृतवन्मधुरां दुग्धधारां स्रवन्ती घनो यः कुचानां परिणाहो विशालता ऊधोभारः तस्माद्धेतोः अतिमन्दं स्पन्दमाना किंचिच्चलन्ती अतिशयेन सिताङ्गी श्वेतशरीरा सुरभिगौस्तस्य पुरोहितस्य दृग्गोचरो दृग्विषयोऽभूत्, गोचरशव्दस्याजहल्लिङ्गता ।

26 इतीति । इति प्रकारेण शकुनैः कथिता सूचिता आशु शीघ्रभाविनी प्रार्थितार्थस्य संवधिनीसिद्धिर्यस्मै तस्यैतस्य पुरोहितस्य कामः इच्छापि यावत् बुन्दीं न व्रजति स्मेति शेषः, तावदेव तरलतराऽतिचंचला सुष्ठु गतिस्तया मारुतीयं पवनभवमपि रयं वेगं खंजयन् लघूकुर्वन् हयराजः श्रेष्ठोऽश्वस्तां पुरीं बुन्दीं प्राप ।

27 तरलेति । तरलतरा ये तरंगाः तदासंगी यः सन्मन्दः गन्धवाहः पवनस्तेन प्रशमिताः परिखेदस्य मार्गपरिश्रमखेदस्य स्वेदबिन्दवो येन अमलानां कमलानां ये कोषाः कुड्मलास्तेषां आमोदेनातिमनोहरेण गंधेन मादयन्तो द्विरेफा भ्रमरा यत्र सः संश्चासौ जयत्सागरः जैतसागरनामा बुन्दीसमीपे तडागः सुदूरा-देवास्य पुरोहितस्य दृगतिथिः दृष्टिविषयो जज्ञे जातः ।

28 वरेति । अविरतं यो रतखेदस्तेन क्वापि मंदा क्वचन निस्पंदा च गतिर्यासां ताभिर्हंसीभिः श्रिता परिसरस्य प्रान्तस्य भूमिर्यस्य सः जयत्सागरः संततं अन्तर्म्मध्ये शैवलस्य जलनील्या व्याजतः मिषात् वरैर्मरकताख्यरत्नै-राबद्धो यः सोपानमार्गस्तस्य प्रतिफलितान् प्रतिबिम्बितान् मयूखान् बिभर्ति ।

29 अतीति । अथ तत्र तस्मिन् अतिमहति जयन्ते जैतसागरे कासारसारे तडागश्रेष्ठे कृतोऽभिषवः स्नानं येनासौ पुरोहितः प्राणवायुं निरुध्य प्राणाया-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मोपलक्षितसन्ध्यावंदनं कृत्वा रुचिरं यत् करः सरोजमिव तदालंबिनो ये रोलंबा भ्रमरास्तत्तुल्यां वररुद्राक्षाणां स्रजं मालां दधत् सन् ब्रह्म गायत्रीप्रतिपादचं दध्यौ चिन्तयामास, करस्य पद्मतुल्यत्वाद्रुद्राक्षाणां भ्रमरसाम्यम् ।

30 प्रविलसदिति । प्रविलसता अघमर्षणेन ऋतं चेति मंत्रेण उन्मृष्टं तापत्रयमाध्यात्मिकादि यस्य, षडधिकासु दशसु नाडीषु योगशास्त्रप्रसिद्धासु संयता स्वान्तस्य मनसो लीला यस्य निजहृदि सुपवित्र चारु श्रेष्ठं सावित्रं सवितुः संबंधि ओजस्तेजः सततं दधानो मन्त्रैः पूतोऽसौ पुरोहितः व्यराजत् ।

31 अथेति । अथ शत्रुशल्यीया शत्रुशल्यसंबंधिनी तत्कर्मिकेत्यर्थः या वीक्षा तया तरलितं चंचलीकृत हृदयं यस्य तादृशोपि धैर्यबलाद् दृढ नियमिते चक्षुषी येन स विप्रेषु वद्यो वंदनीयः पुरोहितः सकलमाह्निकं नित्यकृत्यं उषसि प्रातरेव कृत्वा विजगति वरपुर्यां बुन्द्यां मन्दमन्द यथा स्यात्तथा प्राव्रजत् ।

32 कलेति । कलरवं मधुरध्वनि यथा स्यात् तथा अनुगायन्त्यो या नर्तक्यस्तासां नृत्येषु नृत्यन्ति नर्तनानुकारीणि नयनानि येषां तैर्जनसमूहैः सकुलाः व्याप्ता पणिभिर्वणिग्भिर्विततेषु सुष्ठु पण्येषु विक्रेयवस्तुषु अगण्या ये माणिक्यहीरादिका मणयस्तै रमणीयाः पण्यवीथीर्विपणी अशंकं पश्यन् सन् ।

33 क्वचिदिति । क्वचिदपि पणीनां पण्येषु अनर्घ्यैरमूल्यैर्वस्त्रैराहृते अक्षिणी यस्य, कुहचित् क्वचित् अतिमहद्भिर्मन्दिरैर्मन्दिते विस्मयास्तिमितीकृते अक्षिणी यस्य, कुहचित् क्वचित् बुधानां पंडितानां वादैः तत्त्वजिज्ञासया कथाभिः अहमहमिकया अहं रमणीयो न त्वमिति परस्पराहंकारेण उच्चैर्भृशं विवशितौ स्ववाभिमुखीकृतौ कर्णौ यस्य स पुरोहितः अभ्यर्णो निकटवर्ती राजालयो यस्य तादृशोऽभूत् । युग्मम् ।

34 अथ राजालयं षोडशभिः कुलकेन वर्णयति । अथेति । अथ स द्विजः पुरोहितः विततं यन्नासादारु द्वारोपरितनकाष्ठं तत्र या गारुत्मतीया गारुत्मतमणिसंम्बन्धिन्यः छवयस्तासु तरुणदूर्वेयमिति शंकिनः केल्यर्थकुरंगाः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यत्र, अरुणमणिना माणिक्येन विराजंती या सच्छिला द्वाराध.काष्ठं तस्या अंशूनां रश्मीनां छलेन छुरितो लिप्तो घुसृणस्य कुंकुमस्य पंको यत्र, तादृशं द्वारमुच्चैर्दधानं राजसौधमपश्यदिति षोडशेनान्वयः; अधस्ताद्दारुणि शिला नासा दारूपरिस्थितम्, इत्यमरः ।

35 चरणेति । चरणपतनाय शत्रुशल्यप्रणामाय याता आयाता सौधस्यान्तर्गता वा ये राजन्येषु मान्यास्तेषां द्विरदादिभिर्व्याप्तः सद्द्वारसमोपदेशो यस्य पटु मनोहरं रटन्ति यान्यातिवंद्यानि श्रेष्ठान्यातोद्यानि वाद्यानि तेषां नादस्य अपदेशेन मिषेण प्रतिपदं नित्यं गदिता स्वस्वामिनः शत्रुशल्यस्य संस्फीता कीर्तिर्येन ।

36 मदेति । मदकलानाम्मत्तानां करिणां वृन्दा स्यन्दंते प्रस्नवंति तच्छीलैर्दानं मद एवाम्बु जलं तस्य पूरै प्रवाहै विफलितो निष्फलीकृतो धून्युद्गमनिवर्त्तको जलसेको यत्र, तादृशी प्राङ्गणस्योदारभूमिर्यत्र, मदस्य परिमले गंधे लुभ्यन्तोऽत एव मंजु सुंदरं गुंजन्तो द्विरेफा भ्रमरास्तः प्रविततो यः कलो मधुरो राग एवोत्तुंगा महती संगीतस्य गांधर्वस्य रीतिर्यत्र ।

37 कनकेति । कनकेन खचिताः संश्लिष्टा या भित्तयस्तासां प्रस्फुरद्भिः पिंजराभैः प्रसृमरैः प्रसरणशीलैः किरणौघैरुपलक्षितम्, अत एव स्वयमपि उच्चैर्ध्यानयोगादिव नृपैर्महितः पूजितो यो निजेशः आत्मेशः शत्रुशल्यस्तस्य ध्येयो भगवान् तस्य यत्पीतमंबरं वस्त्रम्, ध्येयो यः पीतांबरो विष्णुरिति वा तस्य चारु सारूप्यं समानरूपतां आशु कलयन्तं गृह्णन्तम् ।

38 क्वचिदिति । क्वचित् अतिसितानां सौधानां उत्तुंगकुड्येषु उपकार्याया राजसदस्य छविर्येस्तानि च वलितानि संगतानि वलीकानि निध्राणि तेषूल्लासिनां गारुत्मतानां मणिविशेषानां परिणता सम्पन्ना शुकभा हारित्यं यासां ताभिः भाभिः इह नितंबे मध्यभागे आलंबिनी कादंबिनी मेघमाला यस्या तां ईशाद्रेः कैलासस्य शोभां दधतम्, वलीकं नीध्रे पटलप्रान्ते इति, सौधोऽस्त्री राजसदनमुपकार्य्येति चामरः ।

39 कृतीति । कृतिभिः कुशलशिल्पिभिः कृतः कृतकः कृत्रिमः उद्यत्सारः श्रेष्ठता यस्य स चासौ कासारस्तडागः तत्र चारु सुन्दरं प्रवितताना नलिकानां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

फौवारा इति प्रसिद्धानामग्रेभ्यः प्रोच्छलन्तीनां स्वच्छानां वारां जलानां अनिलस्य वायो रयेण वेगेन विदीर्यत्सु पृथग्भवत्सु बिन्दूनां वृन्देषु केल्यर्थकहंसव्रजस्य मुक्तानां भ्रममतिविदधानम् । दीर्यदिति दैवादिकात् दीर्यतेः शता हंसो मुक्ता भोजीति आधुनिकप्रसिद्धिमाश्रित्य कवेरुक्तिः प्रतीयते ।

40 सितेति । सितकरश्चन्द्रस्तस्य कराणां किरणानां योगेन स्यन्दनशीला ये निस्तन्द्राः स्वकार्योद्युक्ताश्चन्द्रोपलाश्चन्द्रकान्तास्तत्र वलिता स्थापिता नल्यो नलिका यत्र तादृश्या प्रस्तुतानामम्भसां प्रणाल्या जलमार्गेण अतिशयितो महिमा यस्यास्सा चासौ हिमानी हिमसंहतिस्तया माननीयं झर्झरन् झर्झरो वाद्यभेदस्तद्वदाचरन्, आचारक्विबन्ताच्छता, निर्झराणामोघो यस्य तं भवान्याः पितरं हिमाचलमनुसरन्तमनुकुर्वन्तम् । उपमानोपमेयता यथासङ्गति योजनीया ।

41 मणिगणेति । मणिगणानां परिघूर्णन्त्या प्रतिफलन्त्या कान्त्या कान्ता कमनीया या उपकार्या राजसद्म तस्या ललितो यो वलभिभागः गोपानस्य परपर्यायः छज्जा इति ख्यातस्तत्र कृतेषु तुङ्गवातायनेषु गवाक्षेषु मौक्तिकैरुदारा भा यासान्तासां प्रवरजवनिकानां प्रतिसीराणां मिषतः तत् प्रसिद्धं पौरन्दरं इन्द्रसम्बन्धि वेश्म वैजयन्तं हसन्तमिव ।

42 शुकेति । घनन्तमो यस्यान्तस्यां रजन्यां रात्रौ तुङ्गो यो पाथोदो मेघस्तद्वन्नीले, शुकस्य गुरवः श्रेष्ठाः ये गरुतः पक्षाः तेषामंशवः किरणास्तद्वदुद्भासिनां गारुत्मतानामोघेन प्रघटितं यद्वरश्रृङ्गं सौधोपरिभागस्तत्र संस्थितायां सुगौर्यां कनकवर्णायां मृगदृशि नायिकायाम् उच्चैर्विद्युतो भ्रान्तिञ्जनयन्तम् ।

43 मधुरेति । मधुररुचयः सत्कान्तयो याः पुरन्ध्रयः नायिकास्तासां स्नानकालेऽवधूतं अपगतं यत् प्रवरं घुसृणं कुङ्कुमं तस्य पङ्कसम्बन्धी यो (ऽ)ङ्गरागस्तस्याम्बुभिः पीताः पीतवर्णाः परिमले मिलितः योऽलीनां भ्रमराणां व्रातस्तद्वतीः सत्प्रणालीः जलमार्गान् अमितरत्नयुक्तस्वर्णकुल्या इवोच्चैर्दधतम् ।

44 वरेति । वराणि यानि मरकतहीरौ प्रसिद्धौ अम्भोजरागः पद्मरागस्तदादिरत्नानि तेषाम्प्रकारेण समूहेन कलिताः खचिताः ये हैमस्तम्भास्तेभ्यः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सम्भूताभिर्भाभिविफलितं व्यर्थीकृतं सुविचित्राणां अनर्घ्याणां बहूमूल्यानां सतां रल्लाकानां गलीचा इति प्रसिद्धानां चित्रकम्बलानां ओघस्य आस्तृतेर्विविधं विधानं दिङ्नियमादि येन तत् रत्नसानोः मेरोः सानुसमभागः किम् इत्युत्प्रेक्षायाम् स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' इत्यमरः ।

45 अतीति । अतिविमला विराजन्तश्च ये सौधा गृहास्तेषां सत्सु भित्तिभागेषु प्रविरचितानि यानि सुष्ठु चित्राणि तेषु न्यस्तो वस्तूनां प्रपञ्चो यत्र तम्, न अल्पः महान् यः कल्पान्तकालः तत्र स्फुरन्ती (ली ?) सावकोशा या उदररूपा दरी तत्रस्था उदारा महती लोकत्रयी यस्य तं पुराणं पुरुषं विष्णमिव ।

46 अजिरेति । अजिरे अङ्गनोपरि ततं यद्वितानं तत्र उदञ्चि वर्द्धमानं वैचित्र्यं येषान्तेषु चित्रषु स्फुरन्ति, अनिमिषाणि आश्चर्येण निमेषरहितानि नेत्राणि यस्य तादृशस्य, प्राणिजातस्य जनसमूहस्य छलेन उच्चैः आत्मीयां सौधीयां शोभां द्रष्टुमिव द्युतः स्वर्गात् उपगतं आयातं वन्द्यानां वृन्दारकाणां देवानामोघङ्कुलमन्तम् धारयन्तम् ।

47 श्रुतीति । श्रुतिषु निगदितैस्सूक्तानां स्तवविशेषाणां स्तोमैस्समूहैश्चञ्चत् शोभमानं यत्पञ्चायतनभजनं विष्णुशिवदुर्गागणेशसूर्येषु स्वेष्टदेवंमध्ये संस्थाप्यागमोक्तदिङ्नियमेन तदितरचतुष्टयस्थापनपूर्वकम्पूजनम् तस्य धूपेनोद्धुते प्रसारिते सौरभ्ये सुगन्धे लुब्धैः अलिभिः भ्रमरैः अलघु बहुनृत्यतां नर्त्तकानां स्पर्द्धयेव स्फुटं कृतकलगानं मधुरगीतं यत्र तद्देवसौधं देवमन्दिरं बिभ्रतम् ।

48 अमृतेति । अमृतवन्मधुरा ये पिष्टस्य चूर्णस्य क्षीरमांसयोश्च प्रकाराः संयवपायसक्षीरामृतादयस्तेषाम्प्रकरस्य समूहस्य सुष्ठु परिविष्ट्या परिवेषणेन श्रान्ताः सन्तः सूपकाराः पाचका यत्र, कृतं जनानां भरणं येन तद्भावात्स्वस्यात्मनो विश्वम्भगत्त्वं लोकपोषकत्त्वं विष्णुत्त्वञ्च वदद् द्योतयदिव रम्यं पाकस्य वेश्म कलयन्तं बिभ्रतम् ।

49 दधतमिति । परिसरस्यपर्यन्तभूमेस्समीपे खेलन्तस्तुङ्गा उच्चैर्नागाहस्तिनो यस्य तं सुष्ठु विन्ध्याचलमिव ऊर्ध्वं उपरि या धोरण्यः सौधपंक्तयस्तासामधोपि चारु सुन्दरं कारुभिः शिल्पिभिः प्रणीतं रचितं अनल्पं बहुलं,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्विरदानां हस्तिनां कुलं समूहमनिशं दधतं राजसौधमपश्यत् सौधशब्देनैव राजकीयत्वे लब्धे राजशब्दः प्रकर्षविवक्षया ।

50 नृपेति । सता प्रतीहारेण द्वारपालेन दिष्टः बोधितः, अत उच्चैः वयांसि च यां परिषदं सभामुपविष्टः स नृपदलपतेर्वर्यं आचार्यः रुचिः कान्तिर्विभवो वस्त्रभूषात्मकः वयोवस्था तैः शत्रुशल्योऽदविशेषाननभिव्यक्तभेदान् क्षितीशान् करदराजान् संविलोक्य शत्रुशल्योऽनिश्चयेन क्षणं सुमुग्धोऽजनि जातः ।

51 अथेति । अथ स द्विजेन्द्रः शत्रुशल्यं पश्यन्सन् समनिशं निरन्तरं अनिमेषं निमेषहीनं अक्ष्णां साहस्रं सहस्रपरिमाणं अचकमतेत्यष्टादशेनान्वयः । द्विजेन्द्रत्त्वादनिमिषाक्षिसाहस्रं योग्यमेव । तत्र शत्रुशल्यं विशिनष्टि । चरणानाम्पादानां यच्चतुष्कं चतुष्टय तदालम्बीयः सत् पद्मरागाणाम्माणिक्यानां प्रकरः समूहः तज्जातानान्तरुणरक्ताम्भोजवद्भव्यानाम्प्रभाणां मिषत इह लोके शत्रुशल्यीयं यच्चञ्चच्छोभमानं रुचिरं चरितं तेन तुष्टायाः क्षोणीभूमेश्चेतसोनुरागन्दधानम् नेमाः सिंहासनपादगरत्नप्रभा अपितु भूमेरनुराग इत्यपह्नुतिः ।

52 कनकेति । कनकेन सुवर्णेन कनन्ति दीप्यमानानि कनतिर्दीप्त्यर्थोभादिः । अनेकानि अञ्चन्ति शोभां प्राप्नुवन्ति चिरत्नानि प्राचीनानि उच्चानि महान्ति च यानि रत्नानि तेभ्य उच्चरितेन निस्सृतेन रुचिनां दीप्तीनां चयेन सुदूराद् भासमानं सुराद्रेः सुमेरोः शिखरमिव तत् सार्द्धश्लोकवर्णितं चारुसिंहासनं कर्म्मभूतं महद्भिः स्वैर्महोभिस्तेजोभिः प्रसभमतिशयानमभिभवन्तम् ।

53 दिनकरेति । दिनकरकुलस्य चञ्चन्ती दीप्यमाना कीर्तिर्दुग्धाब्धिरिव तस्य फेनैरिव अनेकैः कान्तिमद्भिर्मौक्तिकैः कलितं युक्तं मूर्तं मूर्तिमंत् तरुणो मध्याह्नजो यस्तरणिस्सूर्यस्तद्वद्दीप्तं स्वप्रतापं नु उत्प्रेक्षार्थे शिरसि शिर उपरिदेशे उच्चैः शातकुम्भस्य स्वर्णस्यातपत्रं छत्रं दधतम् ।

54 त्रिभुवनेति । त्रिभुवनस्य या जयलक्ष्मीर्नायिका तस्याः चार्वी गाढा दृढा च याङ्कपाली आश्लेषस्तत्र विलुलितौ यौ वरमुक्तानां स्वच्छौ गुच्छौ ताभ्यामुपमा

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सादृश्यं ययोः द्विगुणिता स्वचरितैर्द्विगुणीकृता निजवंश्यानां स्वच्छा कीर्तिस्सैव स्रवन्ती युगं नदीयुग्मं तस्य सुभगभङ्राभ्यां सुन्दरप्रवाहरूपाभ्यां चामराभ्यां वीजितम् ।

55 शिखरमिति । रत्नपुञ्जैश्चित्रितं विचित्रीभूतं सुराद्रेः सुमेरोः शिखरं शृङ्गमिव सद्यः क्षितेर्विजयि क्षात्रधर्म्मस्य निधानं आधारं धरणेर्भूमेर्भरणे धारणे दक्षे स्वमूर्ध्नि मस्तके ब्रह्मणा निहित स्थापितं हैममण्ड ब्रह्माण्डमिव उच्चै किरीटं बिभ्राणम् ।

56 मुरेति । मुरस्य दैत्यविशेषस्य मथनो विष्णुस्तस्य विराजत्कीर्त्तिरूप पीयूषममृतं तस्य यः पानस्य व्यतिकरो बाहुल्य सम्बन्धो वा तेन परिलग्नो यः फेनस्तदुपमेन अमलेन शुद्धेन श्रोत्रयोः कर्णयोः'स्थितेन मौक्तिकेन जात्यैव.स्वम्, स्वरुचिरूपसमुद्रे व्यक्ता या सच्छुक्तिः तस्याः शोभां विदधतन्दधतम् ।

57 वलीति । वलिभिरावर्त्तैर्वेष्टितस्य कम्बुनः शङ्खस्य स्पर्द्धी यः कण्ठस्तत्रावनद्धस्य बद्धस्य स्फुरतः असितसुरत्नस्य नीलमणेर्ये उरस्थलस्था वक्षोगताः अशवः किरणाः तेषां लक्ष्यान्मिषात् अन्तर्हृदये संस्थं प्रविलसत् थत् अतसीयम् अतसीसम्बन्धि स्मेरं विकसितं पुष्पं तद्वदतिनीलं महत् महत्तेज इव श्रीकृष्णमित्यर्थः उद्भासयन्तं सूचयन्तम् ।

58 गुणेति । गुणेन सूत्रेण कलिता युक्ता सुवृत्ताः वर्तुलाः स्वच्छाः श्वेताः पीयूषस्य विन्दुभिः प्रतिमाः सदृश्यो ललिताश्च या मुक्तास्तासां हारेण हारिणी मनोहरा प्रभा यस्य तेन कनकस्य स्वर्णस्य निकषः पाषाणबिशेषः तद्वद्गौरेण स्वस्योरसा वक्षसा चित्रा विचित्रा नक्षत्राणां माला यस्योपरि अत्युच्चत्त्वात् तं स्वर्णशैलं सुमेरुं चिरमति तिरयन्तं तिरस्कुर्वन्तं यद्यपि निकषः श्याम इव भवति तथापि कनकविकारत्वेन विवक्षा शैलोपमासम्पत्तये च तदुपादानं प्रतीयते गुणवृत्तनक्षत्रमालाशब्देषु श्लेषस्तस्योपयोगी ।

59 चतुरिति । चतुर्णामुदधीनां समुद्राणां भरेणार्त्तायाः क्षोणेर्भूमे धुर्ये वोढरि स्वबाहौ सद्भिररुणमणिभिर्घूर्णन्ती लक्षणया दीपमाना या चारु केयूरस्य कान्तिस्तया हेतुभूतया ज्वलितं ज्वालावत्तामापन्नं परिणताः पक्वा ये परवंशाः शत्रुकुलानि श्रेष्ठवेणवश्च तेऽरण्यमिव तेषामरण्यञ्च तद्दाहे प्रचण्डं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उच्चैः स्वप्रतापाग्नि वहन्तम् अत्र केयूरकान्तौ प्रतापाग्निसम्भावनं प्रतिपिपादयिषितम् ।

60 निजेति । निजे भुजयुगे सर्पन् प्रसरन् यो दर्पः ततो अन्धंम्भविष्णवोऽन्धीभूताः ये द्विषद्भूता अवनिपा राजानस्तेषां वृन्दस्याक्रान्तावाक्रमणे विश्रान्तिर्विक्रमो यस्य तत् विधात्रा निहितं स्थापित चक्रं शस्त्रविशेषमिव पाणिमूले मणिबन्धे चित्राणि रत्नानि यत्र तत् उच्चैः कनकेन रचितं कङ्कणन्दधानम् ।

61 परमिति । परमुत्कृष्टं करशाखास्वङ्गुलीषु इति अधिकरशाखं प्रेंखन्तश्चञ्चन्तः उत्संख्या उत्कृष्टसंख्या असङ्ख्या इत्यर्थः ये वज्रा हीरकाणि अरुणमणयो माणिक्यानि च तैर्युतानाम्मुद्राणां पाटलया त्विषां कान्तीनां पटल्या समूहेन निजकरपद्मे इत्यधिनिजकरपद्मं शत्रूणां जैत्रौ सहोत्थौ स्वाभाविकौ प्रौढकीर्तिप्रतापौ इव चिरेण दधतम् श्वेतरक्तवर्णत्वात् ।

62 प्रवरेति । प्रवरा ये विबुधा विद्वांसस्तेषां वृन्दस्य उदारं महद्यद्दारिद्रयं तदेव दीर्घज्वरस्तस्य हरणे सुसिद्धां प्राप्तसिद्धिं धुरीणां मुख्यां मन्त्रसिद्धिं निजजनानां कृतं भद्रं कुशलं यया द्राक् शीघ्रं प्रविद्राविता निरस्ता अरिक्षितिपतयः शत्रुनृपास्तेषां कुलस्य निद्रारूपां चारुमुद्रामौदार्य शौर्यद्योतकमुपवेशनसंस्थानम् दधानम् ।

63 सितेति । सितरुचेश्चन्द्रस्येव रुचिर्यस्य तद्यच्चञ्चत् शोभमानं चीनचेलं सूक्ष्मवस्त्रविशेष। तस्य चोलो जामा इति प्रसिद्धं वस्त्रम् तस्य च्छलतः स्वीयकीर्तिरूपमङ्गरागं कर्पूरचन्दनादिलेपन्दधानं कनकेन रचितानान्तन्तूनां य उष्णीषो मन्दीलाख्यः तेन निष्णातं लक्षणया सुन्दरं आवृतं वा शीर्षं यस्य स्फुरन्ति उरुतराणि महान्ति चित्राणि मत्र तादृशमूर्णांशुकं दुशाला इति प्रसिद्धं प्रोर्णुवानं परिदधतम् ।

64 इतीति । इति प्रकारेण स्वस्य लक्ष्म्या शोभया भूषणानां विरचिता भूषा येन यच्छोभया भूषणानि शोभनानि भवन्ति परिलूनः उत्सर्पिणः प्रवृद्धस्य कन्दर्पस्य दर्पो येन तं हरं शिवमिव चारुभिः श्रेष्ठैर्वृत्तैः सदाचारैः छन्दोभिश्च अभिरामं कविगदितं काव्यमिव महीभृतां राज्ञां पर्वतानाञ्च मस्तकेषु न्यस्तः पादश्चरणः न्यस्ताः पादाः किरणाश्च येन तं तरणिं सूर्यमिव ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

65 वनमिवेति। धृतः खङ्गोसिः धृताः खङ्गा गण्डकाश्च येन तुङ्गेन वंशेन कुलेन तुङ्गैर्वेणुभिश्च अभिरामं सुन्दरं वनमिव नित्यं स्वस्यान्तिकस्था समीपगा उग्रा शक्तिः शस्त्रविशेषो यस्य तं शरभुवं कार्तिकेयमिव सतां सच्चोद्यज्जीवनं जीविका जलञ्च यस्मात् अनुगैरनुचरैः सहितं सानुपर्वतप्रस्थं गच्छति प्राप्नोति तञ्च जलदम्मेघमिव विराजता काव्येन रचनाविशेषेण भास्वान् सशोभो बुधानां पण्डितानामोघो यस्य विराजन् शुत्रसूर्यबुधानामोघो यत्र च तं त्रिदिवं स्वर्गमिव लक्षणयाकाशं वा।

66 वृकेति। मागधेभ्यः स्तावकेभ्यः उदारं दानं यस्मात् यस्य वा मागधो जरासन्धस्तस्योदारन्दानं खण्डनं येन त वृकनामाग्नियुक्तजठरं वृकोदरं भीमसेनमिव तूर्णं कर्णपर्यन्तं राधेये च विश्रान्ते नेत्रे यस्य त कुरुपतिं दुर्योधनमिव चञ्चन्तीनां सत्कलानां कौशलानां षोडशांशानां च कलापैः समूहैः कृत कोर्भूमेर्वलस्य मण्डलस्य कुवलयानां कुमुदानाञ्च परितोषो येन वैरिणां पद्मायाः लक्ष्म्याः वैरितुल्यपद्मानां चान्तदं नाशकं सङ्कोचकञ्च सितकरं चन्द्रमिव।

67 भुवनेति। भुवनेषु भवनेन चित्रैराश्चर्यकरैर्दुर्लभैरिति प्रतीमः सौम्यैर्भीमैश्च सुहृदामसुहृदाञ्च अमन्दस्य भूयसः आनन्दस्य दानेनार्पणेन खण्डनेन चावदातैः शुद्धैः सदमृतेन विषेण च तुल्यैश्चरित्रै रम्यां सुन्दरं चारुः शृङ्गारो वीरश्चेति रसद्वयमयं उच्चैः धीरमलौकिकं एकक.ल तयोरसम्भवात् सम्भेद मेलमिव।

68 अवितुमिति। एतां कृत्स्नां सर्वामवनिं दोर्द्वयेन भुजयुग्मेनैवावितुं रक्षितुं स्वीकृतस्स्वस्यावतारो भूमौ प्रादुर्भावो येन तम्पुराणम्पुरुषं विष्णुमिव शेषङ्कुलकादौ व्याख्यातम्।

69 विधिवदिति। एव आर्यः पुरोहितः विबुधेशादिन्द्रात् गुरुर्बृहस्पतिरिव विधिवत् अयुतः वन्यवृन्दावतीशात् उचितं यथा स्यात्तथा अर्घ्यपाद्याभ्यां अर्घार्थपादार्थजलाभ्यां अनवद्यां अतिवर्यां सपर्यां पूजामासाद्य आशास्यमाशासनीयमस्यावनिपस्य शत्रुशल्यस्य विजयमाशशंसे आशिषन्ददावित्यर्थः।

70 अथेति। अथ नृपदलपस्य पुरोधाः पुरोहितः वरतरस्य दिल्लीवल्लभस्य आसमन्तात् या कीर्तिरूपा वल्ली तस्याः प्रविलसितो यो वसन्तस्तद्रूपीभवनशीलः।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

लषपतपदस्था भूनृपेति डकत्र् । उदारस्सारो वलं यस्य तं अकीर्तिरिति प्रश्लेषस्तु पूर्वकथाविरुद्धः खुरु(रं) विषये तु तत्समये द(दि)ल्लीवल्लभत्वं नासीत् अधुना यो दिल्लीवल्लभस्तस्य पूर्वसमये अकीर्तिवल्लीत्यादिनां नृपतीनाम्मुकुटरत्नमिव रत्नराजं श्रीरत्नं तस्य श्रीरत्नस्य अम्बां मातरं अपि परमविलम्बाद्धैर्येणेत्यर्थः अविलम्बादितिवाच्छेदः वर्यं कार्यमापृच्छ्य ।

71 मुखरितेति । मुखरितं सशब्दीकृतं सकलानामाशानां दिशाञ्चक्रवाल मण्डलं येन तस्मिन् विशाले बहुले परितः उच्चैश्चारुणां वादित्राणां वाद्ये स्फुरन्ती सति विप्रवर्गे ब्राह्मणसङ्घे विचित्रान् शुभमन्त्रान् पठति सति च पुनः मगधलोके वंशशंसकजने गोत्रवंशादीनां नाम स्तुवति सति ।

72 द्विजेति । द्विजवटुं ब्रह्मचारिणमिव चञ्चन्त्या सच्छिखया लोमाकारावयवसमूहेन चूड्या च बद्धं शीर्षं उपरिभागः शिरश्च यस्य तं सुहृदं मित्रमिव सदा अन्तर्मध्ये मनसि च स्निग्धं चिक्कणं प्रीतियुक्तञ्च सज्जनमिव सुवृत्तं वर्तुलं सदाचारञ्च सत्याः श्रेष्ठा याः प्रियायाः सत्प्रियवचनस्य चावेदकं बोधकञ्च पतिवत्न्यास्सभर्त्तृकाया । अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् अलिकं ललाटमिव कुङ्कुमेन मण्डितम् ।

73 फलमिति । निजस्य स्वीयस्य पुरोहितीयस्येत्यर्थः चेतसो यः कामस्तस्य यः कल्पद्रुमः वाञ्छापूरकवृक्षस्तस्मादुत्थं फलमिव मेदिनीपालस्य दलपस्य पुत्र्याः परिपक्वं तप इव नालिकेरम् उच्चैर्विधिवत्सद्यः शत्रुशल्यस्याञ्जलौ न्यधित स्थापयामास ।

74 नृपेति । तदानीन्तत्समये तस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य पुरस्तादग्रे नृपदलपते. पुत्र्या मूर्तोनुराग इव तदिदन्नालिकेरं फलं कर्तृ ध्रुवं निश्चितं प्रियं प्रीतिविषयं ऋतं सत्यञ्च कामं शंसति इति त्रिलोक्यामन्वितार्थं योग्यार्थं समजनि ।

75 पुनरिति । अथ अयं पुरोहितः पुनरगदत् । हे देव राजन् ! दिष्ट्या भद्रं अद्य मलयगिरेः समुत्था ताम्रपर्णीनदी सिन्धुं समुद्रमिव सुन्दरमुदारं सुखस्थानञ्च गात्रं यस्यास्सा नृपदलपतिपुत्री इहलोके दुरापं दुर्लभं स्वसदृशं स्वयोग्यं त्वां नाथमवापत् ।

76 विधीति । यत् वां युवां मिथः सङ्गतौ तदेतद्विधेः सुदैवस्य विलसितम् किं वा नोऽस्माकमाशिषां विवर्त्तः परिणामः समा ये द्वयोर्गुणाः शीलसौन्दर्याद्या-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्तेषां महिमा महत्त्वं वा लसन्ती या उचिता सुहृत्ता सौहार्दं ततो जातं यद्वै-यात्यं प्रागल्भ्यं ततो हेतोरहं यद्विवदिषुर्वक्तुमिच्छुरस्मि तत्त्वया श्रव्यमेव ।

77 दलपतीति । हे नृपशत्रुशल्य ! इयं शीलसौन्दर्याभ्यां युक्ता दलपतेर्दुहिता मां पुरोहितं पितरमिव वत्सलं स्निग्धं चिरं संविधत्ते, तत्ततो हेतोः अद्य मालिनीमालापङ्क्तिस्तद्वती बहुलीभूता ते प्रीतिः कर्त्री इह विषये यौ पूर्वोक्तौ नौ आवां दलपतिं मां चेति श्रयति तथात्त्वं समौ कर्त्तुमर्हः यथा राजपुत्री वत्सलत्त्वेन स्वपितरम्माञ्च समौ करोति तथात्त्वं प्रीतिविषयत्वेन समौ कुरु अथ च इह छन्दसि त्वन्तथा समौ मगगणेन सहितौ नगणौ कर्त्तुमर्होऽसि यथा तव मालिनीच्छन्दसि प्रीतिः अन्ते यौ यगणौ श्रयति ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणात् एकच्छन्दस्क बहुश्लोकसमाप्तौ अन्तिमे तन्नामन्यास इति प्रायः स्वनियमनिर्वाहाय कविना प्रयुक्त उत्तरार्द्धेऽन्वयक्लेशोऽपि-सौढव्यः ।

78 शरदिति । शरत्कालिकेन्दुवत्सुन्दरमुखीं वररूपां दलपतेर्नवनन्दिनीं बालां पुत्रीं भवतः सहचारिणीं विरचयन्नयं चतुराननो ब्रह्मा अद्य ननु उच्चैर्यथार्थं चतुरं सदृशान्योन्यसंयोजकाज्ञादायकमाननं मुखं यस्य स इति अर्थानुसारिनाम वहति नवनन्दिनीच्छन्दः नवनन्दिनी सजससैर्गुरुयुक्तैः ।

79 इतीति । गभीरा उत्पन्नस्यापि कामविकारस्याप्रकाशिका मतिर्यस्य स नृपः शत्रुशल्य इति पूर्वोक्तप्रकारेण वचनरूपामृतस्य सेकः सेचनं तस्य भरैरतिशयैः दलपस्येयं सुता तत्प्रयुक्तो यो विषमेषुः कामस्तस्माद्भूरुत्पत्तिर्यस्य तस्यात्मनोदवथोः स्वमनस्तापस्य परितोकं निर्वापकं "तुस्कलह कर्म्मणि" इति तौदादिकात्ण्वुल् धातूनामनेकार्थत्त्वम् । त पुरोहितं विससर्ज । तोटकं छन्दश्च । इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम् ।

80 इति श्रीमहाकाव्येशत्रुशल्यचरिते त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥ श्री रामसिंह नृपतेर्बुन्दी भर्तुर्निदेशेन । गङ्गासहायशिशुना सर्गेऽपूरि त्रयोदशे टीका ॥ इति श्रीचौहाणकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्री रामसिंहादिष्टगङ्गासहायशिशु कृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ चतुर्दशः सर्गः ॥

1 श्रीनालिकेरेति। अयं शत्रुशल्यः श्रीनालिकेरस्यार्पणतः तां लोललोचनां श्यामां प्राप्तकल्पां प्राप्ततुल्यां विदञ्जानन्नपि तस्याः प्रीतिरूपस्य माध्वीकस्य मदेन आशुघूर्णितः सन् विवाहलग्नकङ्कलपीयति स्म कल्पवदाचरति स्म। यद्यपि मदेन प्रत्युत चेतः प्रसीदति तथाप्यभीष्टवस्तूत्कण्ठ्या कालासहत्त्वं जायत एव। स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः।

2 त्रैलोक्येति। तत्रान्तरेऽवकाशे शत्रुशल्यस्य वपुषः कान्त्या जितोऽपि रतीश्वरः कामः त्रैलोक्यस्य यानि जैत्राणि एकानि मुख्यानि चरित्राणि तैश्चित्रितं व्याप्तं अमुं नृपतिं शत्रुशल्यं जेतुं शात्रवाच्छत्रुत्वाद्धेतोः अह्नाय शीघ्रं मनोरथमेव रथमारोहत् मनोरथञ्चकार।

3 आलोक्येति। मदनः कामः काममिच्छां मदनञ्च प्रददाति प्रद्यति चेति तादृशं चारुलोचनं दृक्पातो नेत्रं च यस्य उच्चैः सद्भोगिनां सर्पाणाम्भोगवतञ्च भोगैश्शरीरैश्चन्दनादिभिश्चाङ्किता मूर्तिर्यस्य तममुं शत्रुशल्यमीशं प्रभुं शिवं चालोक्य ससाध्वसः सभयः सन् शरासने धनुषि साशङ्कं शरान् आधत्त।

4 एतदिति। साहसी अविचारितकारी स मदनः सहसा एतस्य शत्रुशल्यस्य जयार्थं भूभृतो राज्ञः पर्वतस्य च सुतां श्यामाम्पार्वतीञ्च शरणं श्रितः किमु यद्यतः अद्य स्वयमनङ्गोऽवयवरहितस्सेनाङ्गरहितश्चापि अयं मदनः चतुर्णामङ्गानां हस्त्यादीनां शासकमधिपतिमप्यमुं जेतुमीहते।

5 श्यामेति। वेधसा प्रयोजककर्त्रा स्मरः अबलां स्त्रियं बलरहिताञ्चापि श्यामाभिधां तां राजपुत्रीं बलाह्वां बलानामां शक्तिमलम्भि प्रापितः किम्। गत्यर्थाण्णिजन्ताल्लभेः कर्म्मणि लुङ्, गतिबुद्धीत्यादिना स्मरस्य कर्मता। अन्यथा शक्तिलाभाभावे कपालिनः शिवस्य कपालवतोरंकस्य चापि भ्रूभङ्गमात्रेण दग्धः स्मरः अस्य प्रकटवैभवस्य शत्रुशल्यस्य जये कथं व्यवस्येत् उद्यतो भवेत्।

6 उद्यच्छत इति। अद्य अस्य भूपतेः शत्रुशल्यस्य जये उद्यच्छतः उद्यमं कुर्वतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मनोभुवः कामस्य पुष्पमयैरपि इषुभिर्बाणैर्वज्रायितम् वज्रवदाचरितम्, यैरिषुभिः कस्यापि न भेद्यं धैर्यरूपं वर्मकवचं विभिद्य आशु हृद् हृदयमप्यभिद्यत ।

7 मन्ये इति । मनोजः कामः विषसम्बन्धिन्यो योश्चारवो वीरुधो लताविशेषास्तासां पुष्पप्रणीतैर्विशिखैर्बाणैरमुं नृपं शत्रुशल्यं निर्व्याजं स्फुटं यथास्यात्तथा विव्याध इति मन्ये, यत अद्य महाशयो गम्भीरचेता एषोऽपि अचिरात् अधीरवत् मुह्यति ।

8 आपाण्डिवति । स्मरबाणैः खण्डित अतएव आसमन्तात्पाण्डुना पाण्डुवर्णेन गण्डस्थलेन मण्डितोऽयं क्षितेराखण्डलः इन्द्रः शत्रुशल्यः उत्तुङ्गाभ्यां वक्षोजाभ्यां स्तनाभ्यां घने सङ्कीर्णे श्यामायाः दलपतिसुताया हृदि विविक्षया प्रवेष्टुमिच्छया स्वस्य तानवं तनुत्वं कृशत्वं ततान । सङ्कीर्णस्थलं विविक्षुर्हि सङ्कुच्य प्रविशति ।

9 माति स्मेति । यस्मिन् अस्य शत्रुशल्यस्य उच्चैर्महति हृदये प्रलयसमये उपसंहृतं स्वात्मनि निवेशितं त्रैलोक्यं येन स माधव ऽपि माति स्मेति तत्र हृदयेऽप्यमान्तःकान्तानुरागाः, कायभेदाद् बहुत्त्वम्भवेत्, पुलकस्य रोमहर्षस्यच्छलात् प्रसभं बलाद्बहिर्विनिर्गताः ।

10 उष्णमिति । सुदूनं उपतप्तं मानसं यस्य कान्तायाः करपीडने विवाहे उत्सुकः स नृपः शत्रुशल्यः उष्णं विनिःश्वस्य स्वजनान् पुनः पुनः दलपाङ्गजन्मनः श्यामायाः पाणिग्रहस्यार्हदिनमापृच्छति स्म अपृच्छत् ।

11 तदिति । हन्त खेदे रहश्चरैः रहस्यऽपरप्रवृत्याहरणाय चरद्भिश्चरैर्गूढपुरुषैर्यथाऽयं शत्रुशल्यः तस्याश्श्यामाया देहस्य सौभाग्यसौन्दर्यं श्रावितस्तथा तथाऽस्य महीपतेर्गात्रे चेतोभुवः कामस्य बाणरूपं विषं प्रसृतं विस्तारं प्राप्तम् ।

12 वेदेति । वेदे अग्नेराप इति प्रसिद्धाज्ज्वलनादग्नेः सकाशादपाञ्जलानां जनिर्जन्म सत्या भवतु अद्यैव तावत् निमित्तीयं स्वकारणभूतजलभरं गुणं शैत्यरूपमनुहरन्ते इति तच्छीलैरपि यैः प्रसिद्धै रम्बुजन्मभिः कमलैस्तरसा शीघ्रं एतस्य शत्रुशल्यस्याङ्के ज्वालायितं ज्वालावदाचरितं तच्चित्रं आश्चर्यं क्रियते अद्य श्लोकार्थो यद्यप्यन्यथैव प्रतीयते तथापि ज्वलनादपामिव कमलानामप्यु-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रुत्पत्तिर्न श्रूयते इत्युत्प्रेक्षितम् निमित्तशब्देन वा स्वकारणभूतजलकारणस्याग्ने र्ग्रहण चित्रमिति ज्वालायितमिति क्रियाविशेषणम् अम्बुजन्मभिः ज्वलनादपां जनिः सत्या क्रियते इति तत्रान्वयः शेषं स्पष्टम् ।

13 वाममिति । स भूपतिः शत्रुशल्यः बत खेदेऽद्भुते वा दक्षिणम्मलयभवं दक्षिणाचारप्रवृत्तं चानिलं निकाममत्यर्थं वामं प्रतिकूलं वामाचारप्रवृत्तं च मनुते अङ्गके लिप्तं घनसारं कर्पूरं दृढसारञ्च नसारं साररहितं शैत्यासम्पादकं मनुते स्म । द्राक् शीघ्रं चान्द्रीं रुचं चन्द्रिकामपि वाडवीं वडवाग्निसम्बन्धिनीं शिखां मनुते स्म । हारं भारं मनुते स्म ।

14 धीरेणेति । नृप शत्रुशल्यः यदा धीरेण दृढेनापि धैर्येणोपलसेतुनेव मनोभुवः कामस्य रयं वेगं रोद्धुं नालं न समर्थोऽभूत् तदा उत्सृष्टस्स्वस्वावासगमनाय अनुज्ञातः सामन्तानां स्वाधीनराजानां गणो येन तादृशः सन् सखिभी रहस्यवेदिभिस्सह जवाद्वेगाच्छीघ्रमित्यर्थः एकान्ते हर्म्यमव्रजत् ।

15 स्मारमिति । चेतसि परमुत्कृष्टं स्मारं कामजं ज्वरं बिभ्रतस्तस्य शत्रुशल्यस्य हितेऽपि वस्तुनि चन्दनादौ अरतिरप्रीतिर्जाता अथ एतस्य सुखंविधित्सुभिश्चिकीर्षुभिर्म्मित्रैर्द्रुतं चित्रं आकारबोधकं लेख्यं पथ्यमन्वमन्यत अनुजज्ञे । कामतप्तानां प्रियाचित्रदर्शनमपि सुखकरमिति काव्यरीतिः ।

16 शिक्षेति । तदा समये शिक्षायाः प्रकर्षेणाधिक्येन अपरिहीणा पूर्णा संलसन्ती त्रैलोक्यवस्तु विज्ञानस्य कलाकौशलं यस्य तेन केनाप्यनिर्दिष्टनाम्ना कारुणा चित्रकारेण राज्ञः शत्रुशल्यस्य पुरस्तात् त्रसत् य एणो मृगविशेषस्तस्येव चक्षुषी यस्यास्तस्याः श्यामायाश्चित्रमुपदीकृतम् उपायनीकृतम् । पूर्वार्द्धंकारो श्श्यामा यथार्थ चित्रलेखसामर्थ्यबोधनाय ।

17 लोकेति । अहं कविः अत्र तच्चित्रनिर्म्माणविधौ लोकत्रय्याः त्रिलोक्या यद्यौवतं युवतीसमूहस्तस्य कान्तिभिरेव जलैरार्द्रीकृतं शृङ्गाररसं कज्जलं लेख्योपादानं अवैमि । कामरूपद्रुमस्याङ्कुरमेव लेखनीमवैमि ।

18 वाष्पेति । वाष्पाम्बुभिरश्रुजलैर्विप्लाविते लोचने यस्य, चिरं सस्तम्भं चेष्टाभावयुक्तं गात्रं यस्य, धृतोऽङ्गे वेपथुः कम्पो येन नूतनमेव स्मारं कामजज्वरं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संवहन् सन् स शत्रुशल्यः अमुष्माच्चित्रात् चित्रं विलोक्य, ल्यब् लोपे पञ्चमी, उच्चकैः उदमाद्यत् उन्मादवानभूत् ।

19 चित्रे इति । चित्रे लेख्ये चकोरीनयनां श्यामां विलोकयन् चटुलानि शोभनानि कोटिशश्चाटूनि प्रियवचनानि कुर्वन् वदन् एष नृपः शत्रुशल्यः अब्रुवाणां तां श्यामां मानिनीं कुपितामाशङ्क्य तस्याः पदे पादौ मूर्द्धा स्पृशति स्म ।

20 मोघे ति । यदा रिपूणां मानस्य हानिदो नाशकोऽसौ शत्रुशल्यः तस्या मानस्य हाने कोपाय नयने मोघक्रियो निष्फलप्रयत्नोऽभूत् तदा विषादवान् खिन्नः सन् उन्मादं चेतो विक्षेप रूपं आसाद्य चित्रेऽर्पितां तां प्रतिवाक्यं वक्ष्यमाण-मैरयत् ।

21 मानमिति । हे प्रिये ! त्वन्मात्रं त्वमेव विश्रामगृहं खेदापनयनस्थानं यस्य तत्र पदयोरानते मयि मानं मुञ्च च पुनः प्रसीद किञ्च अनङ्गेन विप्लवो यस्य तदङ्गं सुधामपि मुधा वृथा करोति तादृशेन वाचां प्रपञ्चेन सिञ्च ।

22 आलीति । आली लक्षणया स्निग्धा नायिका इव विपुला आसमन्तात् पाण्डुता मे कपोलयोः, पालीस्वरूपार्थं एव पाली शब्द ईदृशस्थले प्रयुज्यते, चारु यथास्यात्तथा चुम्बति स्वाधीनकान्ता स्ववशवर्त्तिप्रियंका नायिकाविशेषः इव वारामश्रूणां धाराऽपि नितान्तं दृशोर्नेत्रयोरन्तिकं समीपं न विमुञ्चति ।

23 अङ्गानीति । अङ्गना स्त्रीव तुङ्गा महती अनङ्गरूपस्याग्नेः शिखा सुखेष्वा-श्लेषजेष्वादरात् मे अङ्गानि समालिङ्गति । अहो प्रौढा प्रगल्भेव तुच्छा दुष्टा इयं मूर्च्छापि मम मनो गाढं गाहते ।

24 एता इति । अहं असंशयं निस्सन्देहं एताः अपाण्डुताद्याः तव सपत्नीः वेद्मि, यस्माद्धेतोः सर्वा इमाः अकस्मात् कारणं विनैव यस्तावको मानस्तत्सम्भवं अन्तरमवकाशं लब्ध्वा साम्प्रतमिदानीं मुदितास्सत्यः मया सह रमन्ते अकस्मा-दित्यनन्यगत्या तावकमानेत्यत्र योजितम् अकस्मान्ममानुरागं विनैव मुदिता इति वा ।

25 जाग्रतीति । हे प्रिये ! अहो ! अद्य तव चित्तरूपे मन्दिरे पञ्चशरे कामदेवे यामिके स्थानरक्षके जाग्रत्येव अद्य स्तेनश्चौरे मानः कथम्प्राप्तः यस्य मान-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्तेनस्य वशतः त्वयि लक्षणया त्वच्चित्तमन्दिरे मद्विषये या करुणा तद्रूपधनस्याणुनां लेशेनापि नैव स्थितं भावे क्तः ।

26 वाणीति । हे प्रिये, मे मम वाणी तव गुणानामोघैर्वृता, श्रवणे कर्णौ कथानां त्वद्वार्तानां गणैर्हृते नेत्रे भवद्रूपस्यैर्हरितां दिशाम्मुखैर्हृते सर्वदिङ्मुखानां त्वद्रूपत्वेन दृश्यमानत्त्वात् चेतस्तु त्वयापहृतं च ततोणु स्वल्पमपि मानस्य निदानं नावैमि न जानामीति ।

27 स्वप्नेपीति । या स्त्री त्वद्देहस्य सौन्दर्यचिन्तनजन्यमदेन घूर्णितं भ्रान्तं मम मानसं स्वप्नेपि श्लिष्यतु हा हन्त खेदे सा स्त्री चेद्यदि दृशोरतिथिर्दृश्या भवेत् तर्त्तर्हि तन्वङ्गि ननु अद्य त्वया शपामि शपथं करोमि त्वदासक्ते चेतसि नान्यस्याः प्रवेशः ।

28 वाममिति । लोके यत् सुभ्रुवां स्त्रीणां अक्षि नेत्रं वामं सुन्दरं प्रीतिरहितञ्च प्रतीपञ्च लज्जयानुन्मुखं प्रतिकूलं च प्रसिद्धं तत्त्वयि विषये सृतं सत्यम् यद्यतः स्वप्नेपि अनागस्कृति अनपराधे मादृशे जने दृशा वाम्यं प्रीतिराहित्यं प्रतीपत्त्वम्प्रतिकूलताञ्चोपैषि ।

29 स्वप्ने इति । यद्यतो मयि कुपितासि तत् शयानेन स्वपता मया स्वप्ने मनोरथकल्पिता आकृतिर्यस्याः सा त्व श्लथं वाहु (…………) यत्र कर्म्मणि तथा श्लिष्टासि किम्, दृढन्नाश्लिष्टासि किं, वा अथवा पार्श्वस्य अभिवृत्तौ लक्षणया परिवृत्तौ अभिमुखं सम्मुखं न सम्भाविता आदरपूर्वकं न कारिता किम् ।

30 एतदिति । यदि ते मनोरूपा धुनि नदी एतत्पूर्वोक्तशिथिलाश्लेषादितः भवतीति तत् आगो लक्षणयापराधजं वैमनस्यं तद्रूपाद् घनतो मेघात् हेतोः उच्चैः कालुष्यं आविलतां श्रयते, किन्नामेति सम्भावने; कतकोपमेन जलनिर्मलतापादकफलविशेषसदृशेन मे गाढं श्लेषेण इयं ते मनोधुनी नैर्म्मल्यं प्रसादं श्रयिष्यते ।

31 इतीति । इति पूर्वोक्तं वचनमूचिवानुक्तवान् एष शत्रुशल्यः यावत् दोर्लते भुजौ विसार्यं प्रसार्येत्यर्थः, मोहतोऽज्ञानात् प्रियां समालिङ्गति, तावत् केनचित्सख्या मित्रेण स.क्षेपं वस्त्राद्याकृष्टिसहितं यथास्यात्तथा, आक्षेपः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पारभर्त्सने काव्यालङ्करणकष्टचरिति हैमः, ननु इयं अग्रतः कान्ता न किन्तु, चित्रमेतत् इति..........बोधितः ।

32 उन्मादेति । सख्युरेव नियन्तुर्महामात्रस्य वचनेनैवाङ्कुशेन आहतः असौ उन्मादरूपः माद्यद्विरदो मत्तगजः महीशितुर्भूमीपतेरेतस्य शत्रुशल्यस्य चेतोरूपसरसीप्रदेशतः कृच्छ्राच्छनैः शनैर्निष्क्रामत् निरगात् ।

33 अत्रेति । अत्रान्तरेऽवकाशे तान्त्रिको ज्योतिस्सिद्धान्तज्ञः भूमण्डल्याः मण्डनं यन्माण्डुरसंज्ञं पुरं तस्मादेत्य श्यामाया दलपतिसुताया विवाहोत्सवानां यस्सङ्घस्समूहस्तस्य शम्भलीं दूतीं सूचिकामिति यावत् पत्रिकां श्रीशत्रुशल्यस्य करे समार्पयत् ।

34 कान्तेति । उच्चैः कान्तावियोगो ज्वर इव तेन दूनं तप्तं राजा हंस इव तस्याऽस्य शत्रुशल्यस्य हंसविशेषस्य च मानसं मनः हंसक्रीडा.................. संजीवयन्ती हर्षयन्ती विकसितकमलं कुर्वती च सा पत्रिका तरणेः सूर्यस्य प्रभेव खेदोन्धकारं इव न चिरात् अशीशमत् शमयति स्म ।

35 निर्म्मन्दमिति । अमुना शत्रुशल्येन सुदृढं यथास्यात्तथा निर्मन्दोऽमन्दः कन्दर्परूपो दवाग्निस्तस्य दारुणज्वालाभिरवलीढां तापितां वपुरूपां लतां निपीड़नेन स्रवद्यच्चन्द्रांशुसम्बन्धि पीयूषं तन्मये तद्रूपे महाह्लदे आप्लावयन्ती निमज्जयन्तीव ।

36 कर्पूरेति । विरहाग्निना तापिते अस्य शत्रुशल्यस्य लोचने चिरात्कर्पूरस्य पूरैः अंजयन्तीव करे धृता सा पत्रिका साक्षात् दलपसंज्ञस्य क्षितीशितुः नृपस्य पुत्री श्यामेव अमानि सम्भाविता । युग्मम् ।

37 देवेति । एष नृपः शत्रुशल्यः स्वस्य देवांशतां वदन्निव ईक्षणे नेत्रे अनिमेषे कृत्वा कान्तायाः कटाक्षरूपैरिषुभिर्बाणैः सपत्रितो विद्धो नु किमिति सम्भावनाया, विद्ध इवेत्यर्थः हर्षतः शिरो धुन्वन् कम्पयन् पत्रिकां वाचयति स्म ।

38 वृन्दावतीन्द्रमिति । मुदा युतः दलपः सुष्ठु अनामयं कुशलं पृष्ट्वा वृन्दावत्या बुन्द्या इन्द्रं शत्रुशल्यं विज्ञापयते, ज्ञानियोगे इति चौरादिकाल्लट् णिचश्चेत्यात्सने पदम् । तदाह इतो वर्त्तमानाद्दिनादागामिनि भाविनि सप्तमे दिवसेऽहं अङ्गजाम्पुत्रीं त्वत्ता करिष्यामि तुभ्यन्दास्यामि ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

39 पीयूषेति । नु वितर्के पीयूषस्यामृतस्य पाथोधिः समुद्रस्तस्य तुषारैः शीतैः सीकरैः कणैः सिक्त इव रोमाञ्चमुदञ्चयन्नुद्भावयन्नय शत्रुशल्यः वाचितामपि तां सुपत्रिकां आनन्दरूपस्य माध्वीकस्य मदालसक्तद्भूयः अवाचयत् ।

40 एतदिति । एतस्य राज्ञो मनः कैरवं कुमुदमिव तत्खेदस्य कुञ्चिका अयनेत्री सद्य प्रियाविषयकाया आशायाः मनोरथस्य दिशश्च प्रसरस्य प्रचारस्य प्रकाशिका सा पत्रिका कौमुदी चन्द्रिकेव अस्य वसुन्धरापतेः शत्रुशल्यस्य तत्क्षणात् रागोऽम्बुधिरिब तं वर्द्धयति स्म । कौमुदीतोम्बुधिवृद्धिः प्रसिद्धैव ।

41 नाथेनेति । अथ मुदामानन्दानां परां सीमानमारूढवता प्राप्तवता तेन भुवो नाथेन शत्रुशल्येन नियोजितैः सचिवैः मण्डूरं पुरमुद्दिश्य भूयसो महतः बलस्य सैन्यस्य सुष्ठु सज्जा सज्जना यस्यां सा व्रज्या यात्रा विनिर्म्ममे ।

42 दूरादिति । तदा व्रज्यासमये दूराद्बलस्य आह्वानकरो यः प्लुतः स्वर उच्चैः शब्दः तस्य व्याकर्णनेन श्रवणेनोद्भ्रान्तानि मनांसि येषां तैः सैनिकैः सेनासमवेतजनैः प्रक्रान्तानि प्रारब्धानि अपि कार्याणि हेलयाऽवज्ञया विहाय आशु सैन्यानि स्वस्वाधीनानि बलान्यसज्ज्यन्ते सज्जान्यक्रियन्त ।

43 उच्चानिति । अस्य शत्रुशल्यस्य जना इति चतुर्थेऽन्वयः पुरस्तादग्रे उच्चान् परस्तात् पश्चाद्भागे विनतान्नीचान् सुगन्धिना निश्वासेन युतमायतञ्चाननं येषां श्वेतौ उच्चौ च दन्तौ येषान्ते मधुवत्पिङ्गलवर्णाक्षान् विंशतिसंख्या पाणिजाः नखा येषान्तान् भद्राभिधांस्तज्जातीयान् गजान् ।

44 कूर्म्मेति । कूर्म्मोपमान्मध्योन्नतान नित्यं निमीलिते अक्षिणी यैः करेणौ हस्तिन्यां रक्तान् बहुरोमशा रोमवन्तः ओष्ठा येषान्ते उद्रोमाणौ ऊर्ध्वरोमयुतौ कुम्भौ येषां च पुनः सदैव मत्तान् धीरान् मन्दगान् प्रथितान् ख्यातान् विशालान् महाशरीरान् सुष्ठुमन्दांस्तज्जातीयान् ।

45 त्वगिति । त्वक्कर्णपादेषु मुखे च तनून् सूक्ष्मान् नीरोमाणौ कुम्भौ येषान्तान् अतिदीर्घगात्रान् नात्युच्चपुच्छानपि अनुन्दु (?) न्नतीकृतपुच्छानपि द्रुतम्धावतः सदा त्रस्तान् भीतान् अतएव लोलदृशश्चपलनेत्रान् मृगाभिधानान् ।

46 प्रागिति । प्रागुक्तानां दन्तावलानां हस्तिनां भद्रमन्दमृगाणां मिश्राणि लक्षणानि येषान्तान् महत्तमान् दीर्घानपि सुष्ठु विस्रमानगन्धिदानं मदो येषां, शारीरदैर्ध्येण लक्षणया तुङ्गतया महीधरः पर्वतैः समान् मिश्रांस्तन्नाम्नश्च

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गजान् ससज्जिरे, अन्तर्भावित एतदर्थस्य तत्सज्जयांचक्रुः। लक्षणानि चैषां मूले कथितान्येव पालकाप्यादिभ्योऽनुसन्धेयानि ।

47 भ्रातरिति। अथ हस्तिपका महामात्राः मदोत्कटान् गजान्, हे भ्रातः, हे पितः, हे मित्रवर इति साम्ना सान्त्वेन पाणिना च समाश्वास्य अभितो धूलीं निर्धूय कौसुमस्नेहेन पुष्पतैलेन अम्भसाच अनेनिजुः स्नपयामासुः ।

48 आमुक्तेति ।अथ यन्तृभिर्हस्तिपकैः आमुक्तस्संजितो मुक्तानामोघो येषु तैर्दुकूलैः संलसन्ति पृष्ठानि येषां, रणन्तः काञ्चनस्य किङ्किणीनां गणा येषां, सिन्दूरै राजन्ति शिरांसि येषां, ते गजाः चित्रैरंगरागैर्गैरिकादिभिरुपचस्किरे भूषिताः। उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु चेति चकारानुकृष्ट भूषणार्थे सुट् ।

49 अङ्गे इति। यन्तृभिर्महामात्रैः एषां गजानां अङ्गे शरीरैकदेशे तथा चित्रस्याङ्गरागस्य निवेशकौशलं निरमायि, चित्रमाश्चर्यं यथा इमैर्गजैः गात्रे सर्वशरीरे विचित्रैरम्बरैर्या संवृत्तिराच्छादनं तस्य श्रियः शोभाः बिभराम्बभूविरे धृताः ।

50 ते इति । चारुभिश्चामीकरैः स्वर्णैर्मण्डिताश्चित्राङ्गरागा मदवारिवर्षिणश्च ते गजाः धातुद्रवा द्रवीभूतधातवस्तेषां श्रिया हरितालेन च शालते तच्छीलं लसन्निर्झरञ्च शैलमन्वकुर्वत अनुचक्रुः ।

51 केचिदिति । शिलाशब्देनात्र कथञ्चिन्नीलमणिर्गृह्यते तद्वच्छ्यामला कायस्य कान्तिर्येषां बंहीयसा बहुना बृंहितकेन गर्जनेन बंधुरा । ऊर्ध्वमुपरि लसन्त्यः पीताः पताकिकाः येषान्ते केचिद्गजाः विद्युद्भिर्विलोलाञ्चपलान् पयोमुचो मेघान् जहसुः हसन्ति स्म ।

52 उद्यदिति । उद्यन्मदो येषान्तेऽपि अतिसौम्यगामिनः अञ्जसाऽनायासेन सुष्ठु निषादिनां हस्त्यारोहाणां शब्दितैः सङ्केतितशब्दैः किञ्चित्समाकुञ्चितपादं यथा स्यात्तथा भूमौ निषण्णः उपविष्टा सत्करिणो गजाः पृष्ठे नृपासनं हस्तिवाह्यपल्याणान् जात्यैकत्वम्, पृष्ठेष्वधुः धृतवन्तः ।

53 उत्क्षेपकेति । दारुणा मदोत्कटा केऽपि दन्तावला हस्तिनः भीमा भीषणा भटाः शूरा इव उत्क्षेपकानि स्वक्षेप्य वस्तूनामूर्ध्वक्षेपकानि आग्नेयानि अग्निसाध्यप्रयोगानि सुष्ठु यन्त्राणि (× × × × ×) दिप्रसिद्धानि तैः सुयन्त्रणां निरोधं तीक्ष्णां सृणिमङ्कुशञ्चापि अवमत्य निषादिनां हस्त्यारोहाणां वशे न प्राप्तुः बभूवुरित्यर्थेऽव्ययम् अस् गतिदीप्त्यादानेषु इत्यस्यैव वा सत्तार्थं कल्पनया ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

54 मत्ता इति । एतैरित्यनेन निषादिन एव ग्राह्याः निषादिभिः अथ निषादिभिः महामात्रैस्सज्जिताः कृच्छ्रात्समुन्मोचितानि पादबन्धनानि येषाङ्करेणूनां हस्तिनीनां मध्यगास्ते मत्ता इभा गजाः शनैः शनैः राज्ञः प्रतीहारभुवं द्वारदेशमनीयन्त । करेण्वति विशेषणं मत्ताऽऽश्वासनाय प्रयुक्तम्भवेत् ।

55 पार्श्वेति । जनैः प्रेक्षकैः पार्श्वद्वये उल्लोलं चञ्चलं यद्दुकूलसदृशं वासस्तेन संवीतानि प्रावृतानि गात्राणि येषां बहुभिर्धातुभिः हरितालादिभी रञ्जिताः सलीलं यथास्यात्तथा यान्तः करिणः पुनस्संरूढाः पक्षा येषान्ते गिरय अनुमेनिरे सम्भाविताः ।

56 याता इति । दूरादेव समुत्सारिता निरीक्षकलोकानां सङ्घा यैस्तैर्ज्वलनास्त्रधारिभिर्बंदूकवद्भिः पुरोग्रे अनु पश्चाच्च याताः आवृता इत्यर्थः, अनुशब्दोनुपसर्गोव्ययम् अस्य नृपस्य शत्रुशल्यस्य दन्तिनः रथ्यागतान् प्रतोलीस्थान् जनान् प्रेक्षकादीन् इतस्ततो विद्रावयामासुः ।

57 अल्पायसे इति । लोकेनाश्वरक्षकजनेन तूर्णं तुरगा अश्वाः ससज्जिरे इति सप्तदशेनान्वयः । ण्यर्थान्तर्भावः तान् विशिनष्टि । ननु भो महीतल, अद्य नोऽस्माकं नर्तनसमये किमर्थं अल्पायसेऽल्पवदाचरसि इति क्रोधादिव लोकत्रय्यालङ्घवकर्मणि कार्मणैः मन्त्रादि कार्म्मणतुल्यैः स्वखुरैर्म्मुहुः अतिमहन्महीतलम् आकुट्टयन्तः ।

58 एते इति । अभ्यर्णलोकेन समीपस्थिताश्वरक्षकजनेन स्वस्य रंहसा वेगेन जितं वायो रंहो यैस्त एतेऽश्वा उड्डीय नो गच्छेयुः इति शङ्कयेव पदद्वये पाश्चात्यपादद्वये कौशेयस्य कृमिकोशोत्थसूत्रस्य रश्मीनां बन्धनरज्जूनां प्रकरैः दृढ नियन्त्रिताः ।

59 आवक्त्रेति । जनैः अनुजानु जान्वन्तं लम्बनशीलैः आवक्त्रपुच्छं मुखपुच्छपर्यन्तं परिधापितैरुल्लसद्भिः क्षौमीयवस्त्रैः लक्षणया पट्टवस्त्रैः हेतुभूतैः मुनिना शालिहोत्रेण आलूनपक्षाः छिन्नगरुतोऽपि क्षणात्संवृद्धपक्षा इव भाविताःसम्भाविताः । पूर्वं सपक्षा अश्वा इन्द्राज्ञया शालिहोत्राख्यमुनिना छिन्नपक्षाः कृता इति कथानुसन्धेया ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

60 स्वीयेति । बत वितर्के देहानुरूपा उन्मितिर्यस्य तस्य लोलस्य बालधेः पुच्छस्य क्षेपात् कवीनां बुद्धौ स्वीयोऽश्वसम्बन्धी योऽतिवेगस्तस्य प्रतियोगितां प्रतिभटताङ्गतौ कविभिर्वेगविषये स्वतुल्यतया गणितौ इत्यर्थः चित्तमारुतौ मनोवायू आक्षिप्य तिरस्कृत्य उच्चकैः विभान्तः ।

61 दिगिति । दिशां चक्रं समूहमाक्रान्तवतां लङ्घितवतां, कर्त्तरि षष्ठि, न अस्माकं क्रमे क्रमणे तावत्साकल्ये मेदिनी, नाम उपेक्षायाम्, किं वस्तु भवेत, सा मेदिनी अपि अब्धिभि समुद्रैः शृङ्खलिता रुद्धेति विस्मयात् गर्वात्, विस्मयोऽद्भुतदर्प्पयोरिति हैमः । सितानां श्वेतानां दन्तानां मिषात् अन्तर्मनसि हसन्तः ।

62 दिगिति । स्वभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य पुरः लघु शीघ्रं दिशां मण्डल्याः मण्डनस्य स्वगमनेन सशोभीकरणस्य लाघवं क्षिप्रकारितां ख्यातुं कथयितुमुत्सुका इव प्रोथयोः नासयोः अधरोष्ठस्य च स्फुरणेन कम्पनेन अतिबन्धुरं सुन्दरं वलिता स्वभावानुसारेण तिर्यगादितया कृता उर्वी महती कन्धरा ग्रीवा यत्र कर्म्मणि तथा संह्लेषमाणाः ।

63 उत्तुङ्गेति । उत्तुङ्गा ये मातङ्गा गजा महीधराः पर्वता इव मातङ्गयुक्तमहीधराश्च तैराकुला व्याप्ताः प्रत्यर्थिनः शत्रवः कान्तारा इव प्रत्यर्थिसदृशकान्ताराश्च तेषां विगाहन उद्धुराः समर्थाः सत्कन्धरायां ग्रीवायां उद्भासुराणां केसराणां सटानां त्विषा प्रसह्य सैंहीं सिंहसम्बन्धिनीं प्रतियोगितां सादृश्यं गताः ।

64 उत्फुल्लेति । उत्फुल्लानि प्रसन्नानि वक्त्राणि येषां समाः संवृत्ताश्चौष्ठा येषां कुन्दाभाः कुन्दसदृशा दन्ता येषां, परिरक्तकाकुदा शोणतालवः, उत्तुङ्गा घोणा नासा येषां सुष्ठु ललाटरूपाः पट्टिका येषां, सम्फुल्लपद्मोपमानि पक्ष्मलानि प्रशस्तपक्ष्माणि ईक्षणानि येषाम् ।

65 रम्येति । रम्य स्तुव केशान्तोर्ध्वदेशो येषां, उर्ध्वंललाटदेशान्तु केशान्तं च ततः स्तुवम् इति जयदत्तः, तीक्ष्णतरमतितीक्ष्णाग्रं श्रुतिद्वयं कर्णद्वयाग्रं येषां, मांसेनोल्लसन् यः स्कन्धः तेन सुतुङ्गा कन्धरा येषां, पीनमुरो येषां, समासान्तो विधिरनित्यः, मांसला पुष्टा वृत्ताः वर्त्तुलाश्च बाहवोऽग्रपादा येषां वातायुर्मृगभेदस्तद्वज्जंघा येषां, सुष्ठु निमग्नानि अस्फुटानि जानूनि येषाम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

66 सुस्तब्धेति । सुष्ठु स्तब्धो दृढः कूर्चः, अधस्ताज्जङ्घयोश्चैव ग्रन्थिः कूर्च्च इति स्मृत इत्युक्तः, येषां; समाश्चारवः खुरा येषां, महान्ति तलानि पादतलानि येषां, संलग्ना वंशाः पृष्ठास्थिविशेषा येषां, नतैर्निम्नैः पृष्ठैर्मण्डिताः पीनाः उल्लसन्त्यो याः श्रोण्यः कटयः ताभिर्युताः, लघूदराः स्वल्पजठराः ।

67 रन्ध्रेति । रन्ध्रोपरन्ध्रसंज्ञयोः स्थलयोरङ्गयोः; कुक्षिनाभ्यन्तरे रन्ध्रमुपरन्ध्रन्तस्थोपरीत्यश्वशास्त्रोक्तयोः रन्ध्रं निम्नस्थलमुपरन्ध्रं तत्समीपं तयोः स्थलयोश्च सम्भृतेः पूर्णाकारतायाः स्वजलेन पूरणस्य च श्रिया प्रदक्षिणाः शुभफला दक्षिणदिक्कालानुलोमभ्रमाकाराश्च ये आवर्त्ता वृत्तरोमसंस्थानानि जलभ्रमणानि च तेषु विराजनीभिः शुक्तिभिः, शुक्तिश्च शुक्तिसंस्थानैः रोमभिव्यक्तलक्षणैरित्युक्ताभिर्युक्तायोनिभिश्च सम्पन्नो निर्वृत्तो यो भास्वान् दीप्तिवान् मणिर्लक्षणया गलोद्देशगतो देवमणिर्नामावर्त्तः रोचमाननामावर्त्तश्च तैः सम्पन्नैर्भास्वद्भिर्मणिभी रोचमानानि कानि जलानि तैश्च चारु यथास्यात्तथा सैन्धवीं सिन्धुजन्यां लक्ष्मीं शोभां दधाना इव ।

68 कर्पूरेति । केचित्कर्पूरशैला इवोज्ज्वलाः परे तु किञ्जल्कः पुष्पकेसरस्तद्वद्राजन्ती तनुकान्तिः शरीरशोभा येषां अन्ये लसत्कोकनदोपमा रक्तोत्पलतुल्यास्त्विषो यासान्ताः, तथापरे नीलोत्पलोत्फुल्लरुचः उत्फुल्लनीलोत्पलरुच इत्यर्थः । आहिताग्न्यादिकल्पनम् इति क्रमेण ब्राह्मणवैश्यक्षत्रियशूद्राश्ववर्णनम् ।

69 सदिति । शारीराश्शरीरभवा ये ते ते वराः श्रेष्ठाः वर्णाः शुक्लाद्यास्तेषां सम्पदा योग्यानि सद्राजहंसा इत्यादीनि वराणि नामानि बिभ्रतः चक्रवाकादयो वर्णैः शालिहोत्रादिभिः स्मृता इत्युक्तत्वात् ।

70 धूपा इति । धूपा इव आवृत्तैः आवृत्तैः आवर्त्तवद्भिर्लक्षणया न्यस्तैश्च दशभिरङ्गैः; "ये प्रपानगलकर्णसंस्थिताः पृष्ठमध्यनयनोपरिस्थिताः । ओष्ठसक्थिभुजकुक्षिसंस्थितास्ते ललाटसहितास्सुशोभनाः" इत्युक्तैः

मधुमुस्तं धृतंगन्धो गुगुलवगुरुशैलजम् ।
सरलं सिद्धसिद्धार्थं दशाङ्गो धूप उच्यते ॥

इत्युक्तैश्च । शोभनशीला वैद्या इव अष्टस्वङ्गेषु जिह्वाग्रीवापादचतुष्काक्षिकूटद्वयरूपेषु शल्यशालाक्यकायचिकित्सा शैशारागदतन्त्रभूतविद्यारसायनतन्त्र-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वाजीकरणाख्येषु च सुदीर्घिताः दीर्घतापन्ना प्रसृता च श्रीर्येषां, अश्वशास्त्रे पाददैर्घ्यं शुभमित्यलाभेऽपि अत्र अह्रस्वस्यापि दीर्घत्वविवक्षणात् तथा व्याख्यातम् । मेघावसाने शरदि ओषधिसङ्काः फलपाकान्तोद्भिद्समूहा इव स्निग्धं चिक्कणं प्रवरं श्रेष्ठं च पञ्चकं दन्तकेशोष्ठवद्वयमेहनाख्यम् मूलपत्रफलत्त्वक्पुष्पाख्यं च दधानाः ।

71 केचिदिति । सुरत्नानां प्रकरा इव उदधेर्लक्षणलक्षणया उदधिशब्दलक्ष्यसिन्धुशब्दवाच्यदेशात्समुद्राच्च लब्धोऽवतारो जन्म यैः, इतरे तु वनाय्वादिदेशजाः स्पष्टं शेषम् ।

72 केचिदिति । केचिदश्वाः शरच्चन्द्रवत्सुचारोः पुण्ड्रकस्य वर्तुलश्वेतरोमचिह्नस्य व्याजान्मिषात्सतिलकैरलङ्कृताः इतरे हरेः श्रियो लक्ष्म्याः वेश्मभूतवक्षसः सुषमां शोभां बिभ्रत इव श्रीवत्सेन चिह्नविशेषेण युक्ताः ।

73 सदिति । सल्लक्षणैरलङ्कृतया देहस्य सम्पदा शोभया स्वरंहसात्मवेगेन च मन्दीकृतोऽल्पित उच्चैःश्रवा इन्द्रहयो यैस्ते वरं श्रेष्ठं मन्दुराया वाजिशालाया उदरं उद्भासयन्त । कुलकम् ।

74 उद्दन्तेति । अथ जनैरश्वरक्षकैः उद्दन्तयन्त्रेण खुर्रा इति प्रसिद्धलोहयन्त्रेण विनीता दूरीकृता कण्डूर्येषां निर्णिक्तेषु स्नातेषु गात्रेषु उल्लसन्नङ्गरागो येषां तेऽश्वाः रत्नावलीभिः कीलितेन खचितेन हेम्ना निर्मितैः पल्याणकैरश्वपृष्ठधार्यासनविशेषैर्म्ममण्डिरे मण्डिताः ।

75 प्रेङ्खदिति । क्षौमस्य कौशेयस्योल्लसन्तः प्रग्रहा रश्मयः पाणिषु येषान्तैर्जनैः; प्रेङ्खन्तो दीप्यमानाः सुरत्नानामंशवो येषु तैः खलीनैर्मुखयन्त्रणैर्यन्त्रिताः उत्क्षिप्तैः पदाग्रैर्बन्धुरं सुन्दरं यथास्यात्तथा नृत्यन्तः अमी अश्वाः नृपमन्दिरस्यान्तिकं समीपमानिन्यिरे आनीताः ।

76 समिति । लोकेर्जनैः अभिकैः कामुकैः अतः संह्रेषमाणैस्तुरङ्गमैरश्वैः पादाग्राणां विक्षेपणमेव चाटुप्रियोक्तिर्यत्र कर्म्माणि तथा वीक्षिताः अतिरम्या आकृतयो यासां ताः सज्जिताः वाम्यो वडवा अपि महीपस्य शत्रुशल्यस्य मन्दिरमानीयन्त ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

77 कान्ता इति । लोकैरित्यनुषङ्गः कान्ता नायिका इव उन्निम्नं गम्भीरं सुष्ठु नाभिमण्डलञ्चक्राङ्गविशेष उदरावर्तश्च येषां यासां च ते ताश्च कासारस्य तडागस्य देशा इव चारवश्चक्रा अङ्गविशेषा चक्रवाकाश्च येषान्ते सद्रथाः अश्वैर्वृषैश्चापि नियुज्य योजयित्वा द्वारप्रदेशं गमयाम्बभूविरे गमिताः अश्व-वृषयोः कर्त्तृत्वं वा कल्प्यम् नियुज्य स्वयं युक्त्वा ।

78 धर्म्मेति । धर्मक्रियायागादिरिवाङ्घ्रिचतुष्केण पादचतुष्टयेन दातृ प्रतिगृहीतृ-द्रव्यविधिरूपेण शोभनशीला धर्मक्रियाशब्देन धर्म एव गृह्यते चेत्तप आदि पुराणोक्तं पादचरु(तु)ष्टयं बोध्यम्, साध्वी पतिव्रता पुरन्ध्री स्त्रीव सुष्ठु वंशं दण्डविशेषं कुलञ्च धरति तच्छीला सत्काव्येषु नव्योक्तिरिव अति अलङ्कृता भूषिता उपमाद्यलङ्कारयुक्ता च सानन्दमेवाशु सुष्ठु धीवरैर्वाहककैवर्त्तैं सुधीषु पण्डितेषु वरैः श्रेष्ठैः च धृता ।

79 सल्लोकेति । सतां लोकानाम्मैत्रीव गुणानां बन्धनरज्जूनां नयनसूत्राणां वा औदार्य्यादीनां चानुषङ्गिणी सम्बन्धवती, विदुषां कथाजल्पनमिव अति सुवर्णं कनकेन संस्कृता अति सुष्ठुः ललिताः वर्णा अक्षराणि यत्र तादृशं संस्कृतं देवभाषा यस्याः सा च, कुल्या सत्कुलजाङ्गनेव प्रवरैरम्बरैर्वस्त्रैरावृता सज्जिता शिविका शत्रुशल्यारोढव्यनरयानमपि द्वारे विरेजे । युग्मम् ।

80 आरुह्येति । केचिज्जना महीयसोऽतितुङ्गान्करिणो गजानारुह्य इतरेऽन्ये द्वैप्यान् समुद्रसमीपद्वीपभवान्, द्वीपादनुसमुद्रं यञिति यञ्, तरस्विनो वेगवतः तुरङ्गानश्वानारुह्य राजन्यमान्याः क्षत्रियश्रेष्ठा इतरे वरान् रथानारुह्य रथ्येन रथयोग्येनाध्वना मार्गेण, राजगृहाय राजगृहं गन्तुं क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी, निर्ययुः गृहेभ्यो निरसरन् ।

81 पाणौ इति । केचित्पाणौ सशरं बाणयुक्तं शरासनं धनुश्च दधानाः, केचित् सद्भिर्मण्डलाग्रैः खड्गैः स्फुरन्त उग्राः पाणयो येषान्ते, प्रत्येकं वा हस्तभेदा-द्धनुः खड्गधारणं व्याख्येयम्, कक्ष्यासु कक्षसमीपरज्जुषु, शरीरावयवाद्यत्; विनिक्षिप्ताः विशालाः नालिका बन्दूकसंज्ञा यैस्ते पारे परार्द्धं परार्धतोऽप्य-धिकाः, परशब्दोऽधिकवाची विवक्षितः, पत्तयश्च प्रययुः, अर्थाद्राजगृहम् ।

82 राज्ञ इति । अस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य प्रतिहारभूर्द्वारभूमिः क्षणादर्वाबिला

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अश्वपंक्तेः पादेभ्यो जातया धूल्या धूसरा जज्ञे जाता। अथ माद्यतां द्विपानां सन्ततं स्रवतां दानाम्बूनां पूरैरतिपङ्किलाऽभवत्।

83 पृथ्वीति। श्रीशत्रुशल्यस्य सभा मानस्यादरस्य पदव्या आनुपूर्व्यक्रमेण विधिवन्निषेदुषां निषण्णानां पृथ्वीन्द्रस्य वंशोम्बुधिरिव तस्मिन्जन्म येषां तेषान्नृणां शस्त्रौघानां संघटनाज्जातैः निःस्वनैर्बभौतमाम्। छन्दोऽपि इन्द्रवंशा।

84 अङ्गीकृतेति। अङ्गीकृतैर्गमने उचितैर्मङ्गलद्योतकैर्वेशैर्वस्त्रादिसन्निवेशैर्विशेषिता अधिकीकृता अङ्गश्रीर्यस्याः सा चतुरा चतुरङ्गिणी सेना बुन्दीशितुर्द्वारि अनिरेजे।

85 विषमेति। तस्य शत्रुशल्यस्य राजन्याः विषमविलोचनस्य शिवस्य लोचनस्थितो यो विरोचनोऽग्निस्तस्यार्चिभिः सुचोरिताङ्गस्य दग्धशरीरस्य कुसुमेषोः बहुराजरूपेणावतीर्णस्य कामस्य अंशा इव अराजन्त।

86 सेनामिति। विनता नम्राः प्रधानानां सेनापतीनां निवहाः समूहाः नत्वा नमस्कृत्य आशु भर्तुः शत्रुशल्यस्य यात्रां प्रतीक्षमाणां मानातीतामसंख्यातां सेनामीशाय शत्रुशल्याय शशंसुः।

87 अधरितेति। अधरितं तुच्छीकृतं मधुनो माधुर्यं यथा धुर्याः श्रेष्ठाः तेषां प्रधाननिवहानां वाचमाचामन् शृण्वन् संमदेनानन्देन मत्तः एष शत्रुशल्यः स्वयमपि विवाहीयं विवाहयोग्यं वेषमधारीत्।

88 अनुपधीति। अनुपधिः अकृत्रिमा स्वाभाविकी मधुरा सौन्दर्यवती छाया कान्तिर्यस्य तस्मिन् अस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य काये शरीरे भूषणानां न्यासः उच्चैश्चर्वितचर्वणस्य साम्यं कथङ्कारं नापैतु स्वभावसुन्दरे तस्मिन् भूषणानि वृथैवेति। अन्यथैवङ्कथमिति णमुल्।

89 सुमसृणेति। सुमसृणेन स्वभावस्निग्धेन घुसृणेन कुङ्कुमेन आरक्तैः रंजितैरम्बरैर्वस्त्रैस्संवीतानि परिहितान्यङ्गानि यस्य सोयमीशः शत्रुशल्यः कामेन तप्तः कालीयकस्य कालानुसार्यस्य सुगन्धिपीतकाष्ठस्य आलेपं दधदिव भाति स्म।

90 इतीति। अनङ्गस्य कामस्य यः श्रीगर्वः शोभाभिमानस्तस्य भङ्गदः अयं शत्रुशल्यः स्वयं अनर्घ्यममूल्यं भासुरं दीप्तं आभरणगणं कलयन् सन् भूयः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कान्त्या स्वशोभया उदभूषयत् भूषितं चकार सौन्दर्याधिवयं द्योत्यं गीति-रार्यभिदः ।

91 प्रमथितेति । अथ प्रमथितं जितं मन्मथस्य रूपं येन तत् मानवतीजनमनसां कुपितनायिकाचेतसां किमप्यनिर्वाच्यमौषधं गोपीनाथेः शत्रुशल्यस्य अङ्गानां सौभाग्यं सौन्दर्यं जयति ।

92 वंशेति । वंशस्य प्रश(शं) सा रुचिरां चारणानां स्तावकानां गीति रचनां चिरेण संशृण्वन् अयं शत्रुशल्यः निजदैवतं स्वकुलदैवतं पीताम्बरं तन्नामकं विष्णुं नन्तुं नमनकर्म्मीकर्तुं प्रयाति स्म । छन्दोपि गीतिः ।

93 किरीटेति । किरीटस्य मुकुटस्य कोटिष्वग्रेषु नटन्तीनां नृत्यन्तीनां हरिन्मणि-प्रभाणां गारुत्मतदीप्तीनां भरैस्समूहैः शिखण्डिपिच्छं मयूरबर्हं तद्रूपं यद्गो-पावस्थायां मण्डनं तस्य श्रियं विडम्बयन्ननुकुर्वन्निव सुष्ठु कुण्डलीया कुण्डल-सम्बन्धिनी या भा तया विराजि शोभनशीलं गण्डमण्डलं यस्य प्रफुल्लं यत्पुण्ड-रीकं कमलविशेष तद्वद्विराजमानलोचनः । पञ्चचामरं छन्दः, लघुर्गुरु-निरन्तरं यदा स पञ्चचामरः ।

94 उर इति । उरस्था कौस्तुभस्य प्रभा यस्य चत्वारो भुजाः समाहृता इति चतुर्भुजी तत्र समुल्लसन्तो गदा कौमोदकी, सुदर्शनश्चक्रम्, स्फुरन् सुष्ठ् पाञ्चजन्यः शङ्खः, नन्दकः खड्गश्च यस्य, गभीरो नाभिरेव पल्वलमल्पसरः तत्रोल्लसन्सरोजस्य कमलस्य सम्भवो यस्य, सरस्येव सरोजं सम्भवति ध्वजा-ङ्कुशाब्जवज्रकैश्चिह्नविशेषैरलङ्कृतौ अंघ्रीपल्लवाविव यस्य ।

95 घनेति । घनेन भूयसाऽम्बुना लम्बितानां भारेण नम्राणां अम्बुभृतां मेघानां कदम्बः समूहस्तद्वद्बन्धुरा छविर्यस्य, सुवर्णस्येव वर्णो यस्य तेन वाससा विद्युता नु इवार्थे विभूषितः, चलता सुचारुणा चामरेण प्रवीजितः, श्रिया लक्ष्म्या श्रितः नन्दनन्दनः कृष्णः अमुष्य शत्रुशल्यस्य दृशोः समदमानन्दं ददौ ।

96 निर्भरेति । निर्भरोतिशयवान्यो भक्तेर्भरो भारस्तस्मादिव भूयो निजमौलिं भूमौ नतं रचयन्, भाराक्रान्तस्य हि मौलिर्नतो भवति, मुक्तनिमेषौ निर्नि-मीलने लोचने यस्य एष शत्रुशल्यः क्षिप्रं शीघ्रं नन्दतनूजं कृष्णं अप्रमव-दन्त । दोधकापरपर्यायो मालतिका छन्दः, दोधकवृत्तमिदं भभभाद्गौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

97 उच्छ्वसितमिति । वेदगणोऽपि प्रमाणमपरिमेयं उच्छ्वसितं प्रवृद्धं यदीयं महिमानं महत्त्वं न वेद, मे मम स्वं वचोरेव पवित्रयितुमस्य गोपतनोर्नमस्या नमस्कारः । कर्तृकर्मणोः कृतीति मे गोपतनोरित्युभयत्र षष्ठी उभयप्राप्तौ कर्मणोति नियमस्य स्त्रीप्रत्ययोरकाकारयोर्योगे निषेधात् ।

98 यदिति । यद्बर्हिभिर्मयूरैः घनमुक्तपयः कणिकानां मेघवृष्टजलबिन्दूनामेवाचमनमुग्रं व्रतन्तपोऽचारि अनुष्टितं तत् त्वन्मुकुटे स्वकानां बर्हाणां पिच्छानां विभूषा एवास्य व्रतस्य फलमलम्भि किम् ।

99 देवेति । हे देव ! भवतो मधुरस्याधरस्य सङ्गात् किञ्चित् उदञ्चित उद्भावितः पञ्चमरागो यया सा वरवंशा श्रेष्ठवेणुजा सत्कुलजा च त्वदीया मुरलीवंशवाद्यम् वंशजाः सत्कुलजा गोपानां वधूस्तरलीकुरुते उत्कण्ठिताः करोत्यहो स्वयं सत्कुलजा अन्याः अपि तादृशी परपुरुषविषये उत्कण्ठयतीत्याश्चर्यम् ।

100 कोपीति । बत वितर्के चतुर्दशानां रत्नानां समाहारश्चतुर्दशरत्नी तस्या मध्ये कौस्तुभकस्य मणिविशेषस्य कोप्यनिर्वचनीयः तपसः परिणामः परिपाकोऽस्ति यद्यतः अस्य कौस्तुभस्य श्लिष्टा आलिङ्गिता या रमा लक्ष्मीस्तस्याः कुचयोः पत्रलतायाः पत्रलेखाया अङ्कश्चिह्नं यत्र तादृशे तवोरसि चिरं वासोऽस्ति ।

101 त्वच्चरणेति । त्वच्चरणरूपाम्बुरुहयोर्मरन्दो मकरन्दरूपः, मरन्दो मकरन्दश्चेति हैमः, धुतो दूरीकृतस्तापानां समूहो यया सा दिव्यधुनी गङ्गा मालतिकया पुष्पविशेषेण कलिता निर्मिता स्रग् मालेव शशिमौलेः शिवस्य मौलिं शिरः उच्चैरलङ्कुरुते । छन्दोऽपि मालतिका ।

102 धृतेति । हे मधुरिपो धृता वरा श्रेष्ठा वनमाला स्रग्विशेषः काननपङ्क्तिश्च येन मेघमालावत् गोपपीडनार्थवर्षणजातमेघपंक्त्या चोद्धुरा उत्कृष्टा श्रीः शोभा यस्य तरला चञ्चला या तडित् तद्वत्तया चोदारेणाम्बरेण वस्त्रेणाऽऽकाशभावो न चातिभव्यः सुन्दरः त्वं गोपानां सङ्गोपनार्थं करे धृतं तुङ्गं गोवर्द्धनं नामाद्रिमनुकुर्वन् जयसि ।

103 अनु इति । अनुयमुनं यमुनासमीपे अनन्ताभिराभीराणां गोपानां कान्ताभिस्सह उच्चैः विहरमाणः हि रासलीलया विलसनशीलः त्वं स्वलक्ष्म्या शरदि ऋतौ कपिशवल्लीभिर्माधवीभिः, कपिश स्त्रिषु श्यावे स्त्री माधव्यां सिल्हके पुमान्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इति मेदिनीं, कपिशवर्णाभिर्वा वल्लीभिर्व्रेल्लित वेष्टितं पल्लवानां श्रीभिः रुचिरतमं तमाल वृक्षविशेषं अतिशेषे अतिक्रामसि ।

104 मुनीति । मुनिगणानां मनसोपि दुरापमप्राप्यं स्वरूपं यस्य, कपटेन मायया नटिता अभिनीता डिम्भानां बालानां क्रीडितस्य क्रीडाया आडम्बरस्याटोपस्य श्रीर्येन, मातरि यशोदायां मृदो मृत्तिकाया अशनेन रुषितायां क्रुद्धायां सत्यां त्वया मृद्भक्षणेऽपलपिते परीक्षायै मात्रा मुखव्यादाने आदिष्टे स्वीयवक्त्रे प्रकटिता जगती त्रैलोक्यं येन स त्व कस्य स्मयाय विस्मयाय नासि ।

105 यदिति । यस्य तव मायाया गुणाः सत्त्वादय एव पाशास्तैर्बद्धमखिलं भुवनं सम्यग्भ्रान्ते संसारः संसरणं तद्रूपजालस्यान्तरे परिबंभ्रमीति अतिशयेन पुनः पुनर्वा भ्रमति । भ्रमतेर्यङ्लुगन्ताल्लट्, नुगतोनुनासिकान्तस्येति नुक्, यङो-वेतीट् । तं त्वां रूपं विभंत्सुः, बध्नातेः सन्नतादुः सन्यत इतीकारः एकाचो-बश इति भष्भावः, सा नन्दस्य प्रमदा यशोदा यदा अपसीमैरनन्तैः दामभी रज्जुभिरपि त्वद्यन्त्रणे न प्राभून्नाशक्नोत् तदैव अङ्गानि लघयन् लघूनि कुर्वंस्त्वन्नोऽस्माकमघञ्जंहि नाशय । शार्दूलम् ।

106 मा भूवन्निति । अस्य भगवतः वदनपदकररूपेभ्योंऽभोरुहेभ्यः अजिह्मवीर्यमद-पेक्षयाधिकशक्तया, जिह्मः कुटिलमन्दयोरिति कोशः, सहस्रं सहस्रसंख्याः ब्रह्माणः भूयो माभूवन्निति रणरणकेनोत्कण्ठया औत्सुक्यं रणरणकोत्कण्ठे इति हैमः, उत्तानं व्यग्रं चित्रं यस्य, अतः त्रासेन भयेन उत्कंप्राणि अङ्गानि यस्य, तेन धात्रा स्रवन्तो ये ऽनवरताः स्वेदबिन्दवस्तैरंचितानि मुक्तानि अङ्गानि यत्र कर्म्मणि तथा ध्यातं पद्मवदायताक्षं तत् पैताम्बरं भगवत्सम्बन्धि धाम स्वरूपं कुशलं प्रदिशतु ।

107 इतीति । स नृपतिः शत्रुशल्यः अतीवभक्तिरूपाद्भावान्मनः परिणामविशे-षात्प्रभवतीति स चासौ सुसम्मद आनन्दस्तेन गद्गदोक्तियुक्तं यथास्यात्तथा मधुवन्मधुराणि पदानि यत्र तथा अमन्दबहुलं इति पूर्वोक्तं सुचिरम् स्तुवन् सन् नन्दनन्दनं अवदन्त ।

108 इत्थमिति । अर्च्चकः पूजको विप्रः अमुष्य शत्रुशल्यस्य सुष्ठु भक्तिं प्रेक्ष्य फुल्लदृगन्तं प्रकटितकटाक्षं मुरारिं वीक्ष्य अस्मै शत्रुशल्याय उच्चैः सिद्धिमिव

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चम्पकपुष्पमालामार्प्पयत् अदात् । चम्पकमालैव छन्दः चम्पकमाला चेद्भमसाद्ग ।

109 वन्दनेति । तेन भूमिभुजा शत्रुशल्येन वन्दनपूर्वम्प्रणामपूर्वकं गृहीता मण्डितः कण्ठो यया भव्या कल्याणदा सा चम्पकमाला जैत्ररमाया जयलक्ष्म्याः बाहुलतेव अशोभत ।

110 मूर्त्तीमिति । स द्विजोऽर्च्चकः मूर्त्तां मूर्त्तिमतीं भगवतः कंसद्विषः प्रसत्तिं प्रसन्नतामिव तां मालां नृपते शत्रुशल्यस्य कण्ठे विनिधाय क्रमेण नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि योगाः वैधृतादयः सकला ये ग्रहा भौमाद्याः संक्रमा लक्षणया राशयस्तेषामुक्तेश्छलादस्मै नृपतये सन्ततमाशिषः अदित अदात् ।

111 भूयादिति । ते मन्दुरा वाजिशाला आद्यमश्विनी बहुलाश्वयुक्ता भूयात् मुनिनयनानि सप्तविंशं नक्षत्रं रेवती तत्पतेर्बलरामस्येव दोष्णोर्बलं लभेथाः । मुन्यादयः शब्दाः स्ववाच्यसप्तर्ष्यादिमितसंख्यायां निरूढा गणितशास्त्रे तेषां पूरणार्थे लक्षणापि प्रसिद्धेति । पाठान्तरे रेवतीपतेर्भ्राता कृष्णः तस्य भक्तो भवेः पुराणे पाद्मादौ यद्द्वाविंशं भं श्रवणः तत् सम्पदां नवधरणीसम्मितं मूलं स्तात् । यद्यपि नक्षत्रे कर्णे चार्थे श्रवणशब्दो भिन्नलिङ्गस्तथापि शब्दमात्राश्रवणात् काव्यत्वशून्येषु नक्षत्रयोगराशिद्योतकपद्येषु तादृशसमाधानानावश्यकत्वाच्च न दोषः । ते तव दहनशशिमितं त्रयोदशं हस्तः लोकेभ्य उन्मानं उत्सृष्टमानमपरिमित यत्प्रदाने व्यापृतमस्तु च पुनस्ते कीर्तिरष्टादशं ज्येष्ठा स्तात् त्वं सकलैः उक्तनक्षत्रैः परिमिता समा वर्षाणि संकलनेन शतसंख्याः पृथ्वीं शाधि, अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ।

112 यात्रायामिति । ते यात्रायां द्विषां शत्रूणां सप्तविंशः वैधृतं तत्कर्मकप्रसह्यग्रहणं, मुनिशशिगणितस्सप्तादशयोगः व्यतिपातः उपद्रवश्चास्तु व्यतिपात उपद्रवे योगभेदे इति हैमः, त्वत्कार्ये षोडशः सिद्धिः स्तात्, केशवो विष्णुस्ते तुभ्यं खनयनगणितं विंशं शिवं कल्याणं ददातु । अथ ते कुलं एकादशं वृद्धि प्राप्नोतु. अथ ते वैरिणां नित्यं नवमः शूलं रोगविशेषोस्तु. दनुजरिपोर्विष्णोः प्रसादात्त्वं सर्वैर्शैर्लक्षणया पूरणांशत्यागेन विंशतियुक्तैः सर्वैः पूर्वोक्तैरङ्कैः शतसंख्यैः अपवर्गे तृतीया तृतीयः आयुष्मान् भव ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

113 अहितेति । हे सार्वभौम सर्वभूमिख्याततरणिस्सूर्यस्तद्वत्तीव्रैः स्वप्रतापैः अहिताः शत्रव. कुमुदानि इव तेषां वृन्दं तमोवत् तिमिरमिवातिमन्दं रचय आशिषि लोट् शरच्चन्द्रवच्चारौ निर्म्मलायान्ते सम्बन्धिन्यां कवीनतिक्रांतातिकवि: सा चासौ गुरुर्महती कीर्तिस्तस्यां सत्यां बुधानामोघास्तु के नाम सुधाया अमृतहेलामवहेलां न विदधतु, अपितु सर्व एव। अत्र सार्वभौमादिपदेषु भौममन्दतरणितमः कविगुरुचन्द्रकेतु बुधशब्दैर्ग्रहाणां सूचनम् । रत्नावल्यलङ्कार, क्रमिकं प्रकृतार्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः । शेष कुवलयानन्दे ज्ञेयम् ।

114 य इति । असप्तमः अतुल अनुपम इत्यर्थः यो रामः तत्प्रसिद्धं दशमध्वजो मकरध्वजः कामस्तस्यारेः शिवस्य नवमं धनुः भञ्जन्सन् तुर्यः कर्को वह्निस्तद्वद्रकोरविशयाशंसा कीर्तिर्यस्य तस्येति शिवस्य परशुरामस्य वा विशेषणम्, कर्कः कर्के तने वह्नौ इति मेदिनी द्विगस्य वृषगामिनः छात्रस्य परशुरामस्य अष्टमवेदनां वृश्चिकतुल्यां वेदनां पीडां विरचयन् चञ्चन्यः पञ्चमः सिंहस्तस्येव मध्योऽस्यास्तया अन्त्यो मीनस्तद्वद्विलसन्त्यौ दृष्टी नेत्रे यस्यास्तया, भुवः षष्ठ्या कन्यया सीतया, तृतीयो मिथुनं युग्ममभूत् आद्यो मेषस्तस्यारयो ज्योतिः शास्त्रप्रसिद्धा वानरास्तैराप्तं शुभं सीताप्राप्तिरूपं येन स एकादशश्रोत्रः कुम्भकर्णं तं हतवान्स राम. शुभं दिशतात् ।

115 इति । स्थितिर्मर्यादा प्रिया यस्य स नृपतिः शत्रुशल्य इति पूर्वोक्तां वाञ्छितदुघां अभीष्टपूरिकां अघापहां अकल्याणहरां द्विजस्यार्चकस्य शुभाशिषं प्रतिगृह्य प्रपितामहीं श्रीरत्नमातरं अथ निजं पितामहं श्रीरत्नं विनयादुपास्थित उपस्थितवान् राजनि देवत्वारोपाद्देवपूजासङ्गतिकरणेत्यादिनात्मने पदम् । सजसाजगौ भवति मंजुभाषिणी ।

116 शरणीकृतेति । अथ अमुना शत्रुशल्येन शरणीकृतौ प्रणतौ स्वचरणौ यस्याः जरसा वार्द्धक्येनोपलक्षिता रसेन वात्सल्येन अतिभृतं पूर्णं मंजु कोमलं भाषते तच्छीला सुवत्सला च सा प्रपितामही निर्भरतरमत्यतिशयं परिरभ्य वात्सल्यादालिङ्ग्य अमुं शत्रुशल्यं अचिराद्विमलयाऽऽशिषा वक्ष्यमाणया अभूषयत् अयोजयत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

117 रौद्रेति । भवान् रौद्रो रुद्रनेत्रजो योऽनूनः महान् तनूनपादग्निस्तेनोपहृतानि दग्धानि अंगानि यस्य तस्यानङ्गस्य कामस्य जीवौषधिं, जगतो विजित्वरा गुणा यस्यास्तां, दालपीं दलपस्येमां नन्दिनीं पुत्रीं पाणौ कृत्य उपयम्य, नित्यं हस्ते पाणावुपयमने इति गतिसंज्ञात्त्वात्समासे क्त्वो ल्यप् शंकरः शर्वाणीं पार्वतीमुपयम्य शरभुवं कार्त्तिकेयमिव, शक्रः शोभनां शचीमुपयम्य सौनासीरं जयंतमिव तनुजं पत्रं प्रसूय नित्यं मोदताम् । शार्दूलम् ।

118 क्षितीति । स क्षितिपतिः नमस्यां पूज्यां अभिमतफलदात्रीं मूर्त्तां मन्त्रसिद्धिं नु इव तस्याः प्रपितामह्याः आशिषं अवनितले विलोलता लुठता मौलिना आसाद्य प्राप्य सद्यः पुनः पितामह्याः गोपीनाथमातुः अंध्रिमपि उच्चैरनंसीत् प्रणनाम ।

य इति वैवाहिकी विवाहसम्बन्धिनी प्रस्थितिः यात्रा 119 श्री रामसिंहनृपतेर्बुन्दीभर्त्तुर्निदेशेन । गङ्गासहायशिशुना चतुर्दशे पूरिता टीका ॥ इति श्रीचाहुवाणकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्ट-गङ्गासहाय-शिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ पञ्चदशः सर्गः ॥

1 कामदैरिति । अथ पितामहीप्रणामानन्तरम् कामदैः मनोरथपूरकैः सदैव वन्दितैर्नमस्कृतैः निजकुलोत्थैर्देवतैरनुमतोऽज्ञप्तः कलितो गृहीत उत्सवकाल-योग्यस्तद्रूपो वा आसवो मद्यं येन स्वसम्पदाऽभिभूतो जितो वासव इन्द्रो येन स शत्रुशल्यः प्रास्थित प्रस्थानमकरोत्, समवप्रविभ्यः स्थः इत्यात्मनेपदम् । अत्र सर्गे एकान्तरश्लोकेषु पादान्तयमकम् । "रो नराविह रथोद्धता लगौ" इति रथोद्धताच्छन्दः ।

2 एतदिति । एतदीया शत्रुशल्यसम्बन्धिनी कीर्त्तिरेव वल्लरी ततः स्यन्दमानः प्रस्रवन् यो मकरन्दः तद्वत्सुन्दरैः राजमौक्तिकमयैर्बृहज्जातिकमुक्ताफल-निर्म्मितैरुपलक्षितम् छत्रम् अस्य शत्रुशल्यस्य शिरसि व्यरोचत्ताशोभत ।

3 शैलेति । भुवि आशु शैलाद्यः पातस्तेन पृथग्भूता अम्बुनो जलस्य विभ्रमा भ्रमणानि यत्र तादृशान् नाकसरितो गङ्गाया भ्रमान् जलनिर्गमान् सन्दिशद्भिर्लक्षणयाऽनुकुर्वद्भिः यद्वा भ्रमान् भ्रान्तीर्जनयद्भिः, तत्र विभ्रमशब्देन विलासाः, अतिचारुभिश्चामरैरुपलक्षितस्स नृपः शत्रुशल्यः रुचा कान्त्या अमरैर्देवैरपि नान्वहारि नान्वकारि ।

4 तत्रेति । चित्राणि आश्चर्यभूतानि चरितानि यस्य तत्र तस्मिन् प्रभौ शत्रुशल्ये स्वमन्दिरस्य द्वारदेशमधितिष्ठति सति मानवैः परिजनैः विधानतो यथारीति बहुविधं बहुधासज्जितं यानं शिविकादि बहुविधं यानमिति वा अन्तिकन्निकटमनायि नीतम् ।

5 पाणीति । पाणिपीडनविधाने विवाहविधौ लालसातितृष्णा यस्य प्रमोदितः स शत्रुशल्यः स्वस्माद्धयीरूपादित्येव प्रतीयते अन्येषां यानानां निकरेऽलसः, किलेवार्थे, अच्छां श्रेष्ठां, कच्छे 'गणेश्वरात्पूर्वभागे समुद्रादुत्तरे शिवे कच्छ-देशस्समाख्यात" इत्युक्तस्वरूपे जातां हयीं वडवां, "योपध प्रतिषेधे गवयहय-मुकथमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध" इति जातिलक्षणो ङीप्; अध्यरुक्षत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

6 मण्डित इति । फणानाङ्गणैर्मण्डितः सकुण्डलीशेषः यं जगतो भरम्भार यत्नतोऽविभः अधारयत्, "भृञो लङ् हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः" तं जगद्भरं स्थितेर्मर्यादाया वलात् वहन्तमपि तं नृपं शत्रुशल्यं वामिका हयी वेगतः अवोढ धृतवती ।

7 तमिति । भूरिश्चासौ मुदानन्दस्तां गतं प्राप्तं, द्वितीयाश्रितेति समास; प्रयान्तन्तन्नृपमनु पश्चाद्वृद्धो यो नीरनिधिः समुद्रस्तद्वद्धं बहुलं, नदन्ति तच्छीलैः शत्रूणां गोत्रस्य कुलस्य धृतिर्धैर्यं घनमिव तददन्ति भक्षयन्ति तच्छीलैर्वंद्यानां श्रेष्ठानां वाद्यानां दुन्दुभ्यादीनां निकरैः कर्तृभिः समुद्गतमुदितं भावे क्तः ।

8 प्रस्थित इति । अथ मथितः नाशितः विलोडितश्च अरयो वारिधिरिवारिरूपो वारिधिर्वा येन सिंह (संह) नने वराङ्गरूपोपेतो यः सिंह संहननो हि सः इत्युक्तलक्षणे भुव ईश्वरे शत्रुशल्ये प्रस्थिते कृतप्रस्थाने सति कुञ्जराणामुपरीत्युपरिकुञ्जरं अव्ययमिति, योगविभागात्समासः, पिञ्जराः पीतवर्णाः ध्वजा मुहुर्विद्युतां द्युतिमबिभरुरधारयन् ।

9 अन्विति । अथ दृप्यतामुद्भटानां सपत्नकं शत्रुभूतं परं श्रेष्ठं परमन्यत् राजकं राजसमूहः तं शत्रुशल्यमन्वगात् अन्वगमत् वयन्तु लसन्मह उत्सवो यत्र तादृशे हरजये शिवकर्म्मकजपे मान्मथं कन्दर्पसम्बन्धिनं वपुषां व्यूहमेव मन्महे कामेन शिवजयार्थं कायव्यूहः कृत इति मन्मह इति ।

10 गन्धेति । तदनु ततः परं गन्धवाहः पवनस्तस्येव रयो वेगो येषान्तेषां वाहानामश्वानां श्रेणिरूपो बन्धः संस्थानम् तेन मधुरं सुन्दरं यथास्यात्तथा समीयुषी मिलिता संकुलीकृता व्याप्ता महान्त आपणा हट्टा यया सा, तस्य शत्रुशल्यचमूः सेना पण्यवीथिकां विपणिं ययौ आययाविति वा ।

11 खेलत इति । नवास्तरकालसंस्कृताः अलकाश्चूर्णकुन्तला यासान्ता मृगदृशः हरिणतुल्यनेत्राः पुरस्याङ्गनाः स्त्रियः खेलतो बालकान् आपणान् समपसार्य अश्वादिभयाद्दूरीकृत्य, सौधानां लक्षणया हर्म्याणां तुङ्गमुच्चंशिखरमेवोद्धुरंश्रेष्ठमङ्गनं तस्मात्तदारुह्येत्यर्थः, ल्यप्लोपे पञ्चमी, तं शत्रुशल्य दृशा नेत्रैस्समपिबन् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

12 मृष्टेति । मण्डितानि चित्रादिभिः स्वभवनानि यैस्ते वणिजाः, प्रज्ञादिः, मृष्टः मार्जितः सिक्तः कृतसेचनः सुष्ठु पथो मार्गो यत्रेति आपणे सम्प्रयान्तं लोकैर्वन्दितं अमुं शत्रुशल्यं अभिवन्द्य प्रणम्य अगणितान्यसंख्यानि उपायनानि उपदा आहरन् ददुः ।

13 मण्डितेति । नागरं नगरभुवं यौवनं युवतिसमूहः कर्तृ मण्डिता स्वागमनेन शोभिता आपणभूर्येन स्वं यदास्यं मुखं तत्कान्तिभिर्जितः सन् पूर्णस्तम्या रात्रेगी-श्वरश्चन्द्रो येन तमीश्वरं राजानं वरं विवाहोद्यतमवेक्ष्य अरं शीघ्रं अमनाक् बहुलं मङ्गलं गीतादि समतत सापूर्वात्तनोतेलुंङ्, तनादिभ्य इति सिच् लुक् अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः ।

14 शौक्तिकानीति । तत् पूर्वोक्तं यौवतं अंजसा सुखेन निजेऽञ्जलौ शौक्तिकानि शुक्त्युद्भूतानि मौक्तिकानि विनिधाय चारुणा वेषेण सुष्ठु विशेषितानि शोभि-तान्यङ्गानि येन तं कामदेवमिव तं शत्रुशल्यं समार्चयत् ।

15 तमिति । अम्बुना संभृतं पूर्णं कलश संवहत् प्रापयत् स्त्रैणं स्त्रीसमूहः अरीणां सत्पुरं नगरं दरं भयं नयन्तं प्रापयन्तं, नयतिर्द्विकर्मा गोपुरस्थं पुरद्वार-स्थितं अवनीपुरन्दरं भूमीन्द्रं तं शत्रुशल्यं प्रतिभृतं पूर्णं मुद्रसमानन्दरस-मेवानयत ।

16 तदिति । तत्पूर्वोक्तमम्बुजदृशां स्त्रीणां वृन्द ध्रुवमुत्प्रेक्षायां निजा ये उच्चाः कुचा वारिकुम्भा इव तद्गतताया उत्तुङ्गताया विजयिनः जेतृन् अस्य शत्रु-शल्यस्य कुम्भिनो हस्तिनः विलोक्य सहसा शीघ्रं ह्रिया लज्जया अपासरत् ।

17 तदिति । परेषां बलौघस्य वारणं निवारकं स्यन्दमानं प्रस्रवन्मदवारि येषान्ता-दृशा वारणा हस्तिनो यत्र दानस्य हस्तिमदस्य सौरभे सुरभौ गन्धे मिलन्तो मिलिन्दा भ्रमराः यत्र तत्तस्य शत्रुशल्यस्य बलं सैन्यं कर्तृ अलिन्दकं पुरद्वारा-द्वहिश्चतुष्कं पङ्किलं स्वाङ्गभूतहस्तिनां मदद्वारा सकर्दमं समतनोत् ।

18 स इति । द्विषन्त एव विषमाः कुम्भिनो हस्तिनस्तेषां केसरी सिंहः स शत्रु-शल्यः हारिणा सुन्दरेण हस्तिनखेन पूर्द्वारि मृण्मयक्रमनिम्नसुखावतरणार्थं कूटेन दन्तुरां विषमामपि द्वारभूमिं हास्तिकं हस्तिसंघः, अचित्तहस्तिधेनोरिति ठक्, आश्वमश्वसंघः, रथाश्च तद्रूपाः कंथा एव कन्थिका मृद्भित्तयः, कन्था

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मृण्मयभित्तौ चेति मेदिनी, तासां भरैः समूहैस्समामिव करोत् हस्त्यायुक्तनया द्वारभूमेस्समतेव जातेत्यर्थः हस्तिनखशब्दे श्लेषस्तु केसरिशब्दोपकारं करोतु ।

19 स्वीयेति । विकचैर्विकसितैः कदम्बकैर्वृक्षविशेषैः राजितं दीप्तं प्रफुल्लतरं यत्केलिकाननं कर्तृ स्वस्य काननस्येदं स्वीयं यद्दर्शनं तत्र समुत्सुकं लक्षणया-भिमुखीभूतमाननं यस्य तं शत्रुशल्यं सुमनसां पुष्पाणां कदम्बकैस्समूहैर्नन्दति स्म आनन्दयत् ण्यर्थान्तर्भावः ।

20 एष इति । शेषस्य फणानां भारेण समूहेनापि दुर्द्धरां भूधुरां भूमिभारं करे इत्यधिकरं दधतं किञ्चिदुन्नमितमुन्नतीकृतं वक्त्रमण्डलं मुखं येन एष नृपः विपिनस्य वनस्य उदधुरामधिकां श्रियं पश्यति स्म ।

21 तदिति । विधुराणां दुःखितानां चित्तस्य नन्दनमानन्दकं स्वस्य प्रभावेण शोभातिशयेन जितं चारुनन्दनमिन्द्रवनं येन तद्वनं सौवैस्स्वीयैर्विभवैः पुष्पादि-भिर्हेतुभिश्चितैर्बहुलीभूतैरागतैरिति यावत् उदञ्चितैः श्रेष्ठैरूर्ध्वोड्डीनैर्वा मधुकरैस्तस्य शत्रुशल्यस्य मुदमावहत् ।

22 तमिति । प्रसवानां पुष्पादीनां भारेण भंगुरा नम्रा वीरुधः प्रतानवत्यो लताः वनस्य अधिष्ठात्र्यो देवता इव उपवनस्योद्यानस्य भालने दर्शने उल्लसन्ती लोचने यस्य तं शत्रुशल्यं विकचानां विकसितानां पुष्पाणां संचयैः आर्चयन् अपूजयन् ।

23 यातीति । नीलशब्देन नूतनत्त्वं द्योत्य, तादृश नीरदस्येव समुत्तम श्रेष्ठो ध्वनः ध्वनिर्येषां ते, भावे घञ्, संज्ञापूर्वकत्वाद्वृद्ध्यभावः, ध्वनः शब्दे इति शब्दार्थचिन्तामणौ, द्विरूपकोशः, यमके अप्रयुक्तत्त्वं न दोषाय; आनकाः वाद्य-भेदाः राजनि शत्रुशल्ये सलीलं सविलासं अध्वना मार्गेण याति सति मदवतां मत्तानां नृत्यतां केकिनां मयूराणां किल सम्भावने काः कला नर्त्तनकौशलानि न व्यरचयन् अपि तु सर्वाः । आनकशब्देन मेघगर्ज्जितेनेव केकिनो ननृतु-रित्ति अर्थः ।

24 मारुतेति । पथि मार्गे अयं शत्रुशल्यः मारुतेन उन्मुखरैः कूजद्भिः कीचकैः वेणुविशेषैः दत्ता उद्भाविताः तानाः "त्रिस्तार्यन्ते प्रयोगा यैर्मूर्छनाशेषसम्भवाः । तानास्तेप्यूनपञ्चाशत्सप्तस्वरसमुद्भवाः" । इत्युक्तलक्षणाः यत्र तत् पिकैः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कोकिलैः उदञ्चितमुन्नीतं पञ्चमस्वरं ध्वनिविशेषं अधिकर्णयन् आकर्णयन् इत्यर्थः, कर्णमधिगतमित्यर्थकादधिकर्णशब्दात्तत्करोतीति णिच्, स्वीयानां गाथकानां गायकानां रागश्रवणजं सुखं व्यसस्मरत् विस्मृतवान् ।

25 निर्जयन्निति । वरं श्रेष्ठं नवं नूतनं सुधारसं निर्जयन् तरलाश्चञ्चला वीचयो यस्य तादृशं सवरं जलं दधत्, मेदिन्यां तालव्यादि दन्त्यादिपाठाद्दन्त्यादिरपि संवरशब्दः, निर्मल आशयः स्थानं यस्य स जयज्जलाशयः जैतसागरनामतडागः पथि मार्गे सन्निधौ निकटे तस्य शत्रुशल्यस्य दृशोरतिथिर्विषयोऽजनि जातः ।

26 तदिति । तस्य सरसो जयत्सागरस्य यानि सरसिजन्मानि पद्मानि तेषां सौरभस्य उत्कृष्टभारेणैव मन्दा गतिर्येषान्तैर्हिमानिलैः शीतलपवनैः गच्छतः अस्य शत्रुशल्यस्य घर्मादातपाज्जातो यः क्लमः ग्लानिस्तद्भवा उदबिन्दवः जलकणाः मुहुराह्रियन्त आहृताः ।

27 घर्म्मेति । घर्म्मरोधिभिर्निदाघहरैस्तरुभिर्लसन्ति वनानि उपवनानि यत्र सन्निधिस्थ निकटगं हिमं शीतलं मिष्टं मधुरं च सत् वनं जलं यत्र, वनं कानननीरयोरिति कोशः, सर्वाभिः सम्पद्भिरुपशोभिताः सत्य पुरो नगर्यः, ऋक्पूरित्यः, यत्र तादृशः सत्पथः श्रेष्ठमार्गः क्षितिभुजः शत्रुशल्यस्य पुरोऽग्रे अलसत् ।

28 कूकुदेनेति । कूकुदेन, "सत्कृत्यालङ्कृतां कन्यां यो ददाति स कूकुदः" इत्युक्तेन, दलपेन भूभुजा राज्ञा स भूपतिः शत्रुशल्यः अनल्पा बहुला कल्पिताः समृद्धीनां भोग्यवस्तूनां सिद्धयो यासु ताभिर्वसतिभिर्निवासस्थानैः पथिषु मार्गेष्वपि किल नागरं नगरजं सुखं प्रापितः ।

29 अस्येति । अहो नव्येभ्योपि नव्या रचिता उपचारा यैस्तैर्दलपस्यानुचारकैरनुचरैः कर्त्तृभिः महश्चयैरुत्सवसमूहैः करणैः पूजितस्य लसतः शोभमानस्यास्य शत्रुशल्यस्य तत्र मार्गे अहश्चयैर्दिनसमूहैस्तत्क्षणायितम् एकक्षणवदाचरितम् । अहो अहरिति ओत् इति प्रगृह्यसंज्ञा ।

30 आनतेति । ध्रुवमुत्प्रेक्षायां अस्य शत्रुशल्यस्य मार्गगां वसतिं निवासस्थान आनतानां त्रिदशानां देवानां वृन्दैर्विघ्नता स्वर्गस्य नव्या नूतना कृतिर्यस्य तेन गाधिजन्मना विश्वामित्रेण पूर्वं सृष्टां पश्चात्तेन प्रणतिवशान्मुक्तां मघवत्पुरी-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ममरावतीं मन्महे। विश्वामित्रेण पूर्वं त्रिशङ्कवधःपातनकोपान्नवः स्वर्गादिरारब्धो देवानुनयात्त्यक्तः इति कथा रामयणादावनुसन्धेया।

31 भूरीति। सुरपुरीममरावतीं जयत् मंड्रं पुरं कर्तृ भूरीणां सैनिकजनानां उपकारिकाः नानावस्तुसम्पादनादुपकर्त्र्यः दिव्यैर्भोगैः कलिता युक्ताश्च उपकारिकाः मार्गे शत्रुशल्यसत्काराय रचितराजसदनानि संव्यतीतमतिक्रान्तममुं शत्रुशल्यमाशु अरंजयत् दृष्टिपथमागतं मत्वाऽऽमोदयत्।

32 यत्रेति। यत्र मण्डुरे मनोभुवः कामस्य मोहननामकेऽस्त्र इव केलिविपिने क्रीडोपवने अतिमुक्तकः वृक्षविशेषः विटो जार इव स्मेराणि स्मितयुक्तानि वक्त्राणि येषां ताभिर्गणिकाभिर्मोदते विकसति हृष्यति च। नायिकास्मितेनातिमुक्तकपुष्पोद्गम इति कविप्रसिद्धिः।

33 यदिति। यस्य मण्डुरस्य वने उद्याने पवनेन लोलाः पल्लवा नवपत्राणि यासां विप्रलम्भिभिर्वियोगिभिर्हृता दूरीकृता हृदो मनसः विपदां दुःखानां लवा याभ्यो हेतुभ्यस्ताः वीरुधः लताविशेषा मृदुभिर्मरन्दैर्मकरन्दैर्ललन्ति विलसन्ति नच्छीलानां गायतां अलिनां भ्रमराणां अभिनयदाः नर्त्तने गीतार्थानुकरणचेष्टाविशेषदाः किलोत्प्रेक्ष्यते।

34 विच्युतैरिति। यत्र मण्डुरे रतान्ते तान्तयोः श्रान्तयोः कामिनो पवनेन धूतानि कम्पितानि यानि वृन्तानि स्वबन्धनस्थानानि ततः विच्युतैः पतितैः चित्ररुचिभिर्नानाविधकान्तिभिः प्रसूनकैः पुष्पैः कुसुमतलस्य पुष्पशय्यायाः विभ्रमो विलासः कल्प्यते।

35 यदिति। यस्य मण्डुरस्य विहारविपिने क्रीडोद्याने सुष्ठु केशराः किञ्जल्का यत्र जनानां मोहके मन्मथस्य शरे बाणरूपे सतः रसालस्य आम्रस्य शिखरे वनप्रियः परभृतः कोकिलः कूजितैः स्वरुतैः कस्य प्रियो न भवति अपितु सर्वस्य। वनप्रियः परभृतः कोकिल इत्यमरः।

36 यत्रेति। यत्र मण्डुरे पीनं बहुलं विलसत् यत्पयोजलं तस्य धरा धारिकाः पीनाः पृथवः विलसन्तः पयोधरा स्तना यासान्ताश्च नवानि यानि सन्ति वयांसि पक्षिणस्तेषां नवस्य सतः वयसो यौवनस्य च धराः मधुराः श्रेष्ठाः सारसाः पक्षिणः ईक्षणानीव मधुरसा रसानामिवेक्षणानि रलयोरभेदान्मधुराणि

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सालसान्याऽऽलस्ययुक्तानि ईक्षणानि च यासां ताः वापिका वाप्यः अङ्गना नायिका इव नृणां मानसे मनसि क्षणान् उत्सवान् सन्दिशन्ति प्रापयन्ति ।

37 यदिति । जलजैर्जलदवच्च नीलः कण्ठः लक्षणया शिखरभागः गलश्च येषां यस्य च तद्भावं हिमरश्मिः मौलौ उच्चत्वादुपरिभागे शेखरे च येषां यस्य च, तद्भावमपि, अपिः समुच्चये, बिभ्रत धारयन्तो यस्य मण्डुरस्य गृहाः ऊर्ध्वं लोला ये सिताः श्वेता केतवस्तद्रूपगङ्गया शाम्भवीं शैवीं चारुतां शोभामनुभवन्ति प्राप्नुवन्ति गङ्गयेत्यग्रे उपलक्षिता इति शेषो वा ।

38 पण्येति । यत् मण्डुरं पण्यानां क्रयविक्रयार्हाणां वस्तूनां पणने क्रयविक्रये उन्मुदा आनन्देनाकुलं व्याप्तं विणिजाकुलं सदा बिभर्त्ति च पुनः मणिकान्तिभिर्मिश्रकं मिलितं तामसीषु तमस्विनीषु रात्रिष्वपि दलत् दूरीभवत्तमिस्रं तिमिरं यत्र तमापणं च बिभर्त्ति । यमकनिर्वाहस्तु तमिस्रशब्दे तालव्यशकाराभावेपि कविसम्प्रदायेन सिद्धः "रलयोर्डलयोस्तद्वज्जययोर्वनयोरपि । शसयोर्मनयोश्चान्ते सविसर्गाविसर्गयोः" सबिन्दुका बिन्दुकयोः स्यादभेदेन कल्पनमित्युक्तेः ।

39 हन्तेति । हन्त हर्षे, सन्नत संलसन्त्या दलपस्य कीर्त्या तर्जितः तिरस्कृतः श्रीभरः शोभातिशयो यस्य स , शिवस्य शिलोच्चयः कैलासः निर्भयां यां पुरीं स्फटिकमयो यो वप्रः प्राकारस्तस्य लक्ष्यतो मिषात् भजति । बलवता तर्जितो हि कञ्चिदाश्रयतीत्याशयं प्रतीमः ।

40 अप्रबोधितेति । यत्र मण्डुरेन प्रबोधिताः प्राकट्यभयाद्गृहस्थाः सारिका मनुष्यवद्वक्तृपक्षिविशेषा अपि याभिस्ता अभिसारिकाः सङ्केतगामिन्यो नायिकाविशेषाः नीलरत्नानां रुचिः यत्र तादृशेन सुपथेन, पूर्ववत्पथशब्देन समासः, ज्योत्स्निकासु चन्द्रिकास्वपि विलसतः रसाद्रागादरं शीघ्रं सादरं मार्गप्रशंसा सहितं यथास्यात्तथा यान्ति नीलरत्नकान्तिभिरन्धकारात् ।

41 राजमानेति । राजमानाभिर्मणिमयभित्तिभिर्भासुरा दीप्राः प्रोच्छलन्त्यो बहलाश्च याः कान्तयस्ताभिर्भासन्ते तच्छीलेषु यस्य मण्डुरस्य गृहेषु रजनीषु रात्रिषु दीपकाः केवलं मङ्गलाय विलसन्ति, तमोनिरासो मणिभिरेव ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

42 यत्रेति । यत्र मण्डुरे रहसि एकान्ते रत्ननिकरेभ्य उद्भवो येषां तेंऽशवो यस्य तादृशस्तंभग रत्नस्तंभग इत्यर्थः सक्ततकः शिल्पिकृतः शुकः अतो बुद्धिस्था-द्रहस्यतो विजनाद्बिभ्यतीं तां बुद्धिस्थां नवां नवीनां चलदृशं नायिकां संरुणद्धि स्वदर्शनान्निर्भयां करोतीत्यर्थः । तदिदं रहस्यं नायिकयोरनुभवैकगम्यत्व-बोधनाय प्रतीमः ।

43 यत्रेति । यत्र मण्डुरे चित्राणां गारुत्मतस्फटिकादीनां मणीनां कान्तिभिर्दन्तु-राश्चित्रिताः अङ्गनगता भूमयो देशाः अङ्गनानां यो दिनमुखीयः प्रातः करणीयः मङ्गलहेतुक आलेपस्तस्य रङ्गैस्साधनैर्गोमयखट्टिकादिभिः शबली-कृताश्चित्रिता इव चकासति ।

44 तदिति । सुरपुरस्य स्वर्गस्याभिभावुकं तिरस्कारकं, शेषषष्ठ्या समासः, भासमानं जनानां भूरिभावुकं कुशलं यत्र, उदीक्षितं दृष्टं तत्पुरं मण्डुरं कर्तृ विवाहे दीक्षितमुद्यतं तं शत्रुशल्यं अचिरात् हृष्टचित्तमकृत अकार्षीत् किल ।

45 कुलकम् । मण्डयन्निति । खण्डितानि अरिभूतानां धरणीशानां मण्डलानि येन, पुरेषु वरं मण्डुरं मण्डयन् अलं कुर्वन्सन् शत्रुशल्यः स्वयं दलपतेर्मण्डुरे-शस्य मन्त्रिभिर्निवेदिते राज्ञः केलिविपिने क्रीडोद्यानेऽवसत् ।

46 विष्टपेति । दालपेन दलपेन दलपसम्बन्धिना विपिनेनोद्यानेन कर्त्रा सन्ततं निरन्तरं विष्टपत्रितयस्य त्रैलोक्यस्य गुप्तौ रक्षणे लग्नकः प्रतिभूः प्रतीक्षितं प्रतिपालितं विवाहलग्नं येन स शत्रुशल्यः मुदा आनन्देन ततं व्याप्तं रसं सुख-विशेषं मंजु सुन्दरं यथास्यात्तथा अनीयत प्राप्यत, नयते कर्मणि लङ् ।

47 मञ्ज्विति । मञ्जु सुन्दरं यद्वञ्जुलानां वेतसानां निकुञ्जं लतागृहं तत्र पुञ्जितं समूहीभूतं उद्गञ्जितं कृतगुञ्जनं यदलिकुलं तस्य काकलीरूपा कलाकौशलं यत्र तस्य काकलीभिः कले कलध्वनियुते इति वा, काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कल इत्यमरः, बंधुराः सुन्दराः स्फुटिता विकसिता-श्च ये बन्धुजीवकाः अशोकाः केशराःनागकेशरारसाला आम्रास्तैः शालिते शोभिते ।

48 सौरभेति । सौरभेण सुगन्धेन उद्धतानि लतौघानां जालकानि कलिका यत्र, प्रोल्लसन्तः किसलयानवपत्राणि यत्र, तादृशं द्रूणां वृक्षाणां जालं समूहो यत्र

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वापिकानामन्तरे मध्ये विराजीनि शोभनानि सारसानि कमलानि यत्र, सारसं सरसीरुहमित्यमरः, श्रेणिबन्धः पंक्त्याकारेण स्थितिस्तत्र, मुखराः कूजनवन्तोऽतशयिताः सारसाः पक्षिविशेषा यत्र।

49 स्यन्दमानेति । स्यन्दमानैः प्रस्रवद्भिः मकरन्दैः पुष्परसैर्मेदुरा व्याप्ताः सम्प्रसारिण्यः सम्यक्प्रसारणशीलाः सारणीः कुल्यः, कुल्या तु सारणिः इति हैमः, दधति धारयति चारुणि सुन्दरे तत्र तस्मिन्वने अस्य शत्रुशल्यस्य सैनिकैस्सेनाजनैः यथोचित वसतयो वासस्थानानि चक्रिरे ।

50 विशेषकम् । कामिनीरिति । अत्रोपवने अपहृता दूरीकृता उपमा स्वसादृश्य याभिस्ताः नवाः नूतनाः कामिनीः नायिका बिभ्रतः केऽपि मानवाः वराः श्रेष्ठा या नारिकेलिकाः तासां सत्फलानां आसवं मद्य सन्निपीय केलिकाः क्रीडाः अधुः ।

51 केपीति । कोमला ये पलाशिनां वृक्षाणां पल्लवास्तेषां छायाः तच्छायं, छाया-बाहुल्ये इति क्लीबता, तेन पीतो हृतस्तपनस्य सूर्यस्यातप एवामयो रोगो येषां ते सुरभिभि सुगन्धिभिर्मन्दैश्च मारुतैर्वीजिताः केऽपि जनाश्चिरात् नन्दनं वनमिन्द्रोपवनमनिन्दिषुर्निन्दितवन्तः ।

52 सारणीति । सारणीषु कुल्यासु रचितं चारु मज्जनं स्नानं यैस्ते केपि जनाः श्रमजाता तान्निर्गलीनिरस्त्यस्येति तत्त्वं वपुः शरीरं तूर्णं हिमस्य शीतस्पर्श-स्यालयैः स्थानभूतैः सुमसृणैस्सूक्ष्मतया स्निग्धैर्मालयैर्मलयचन्दनभवैः क्षोदकैर्लक्षणया लेप्यकर्दमैः अलिपन्, लिम्पतेर्लुङ् लिपिसिचिह्वइत्यङ् ।

53 वारुणीति । कण्ठे राजते तच्छीलया वरया पुष्पमालया हेतुभूतया, न उपमाया आलयः स्थानं यस्याः सा अनुपमा इत्यर्थः, कान्तिः कर्त्री वारुणी मदिरा तद्भवात् मदात्, बत वितर्के अतीवात्यन्तमरुणं लोचनं, जात्येकत्वं दधत् तारुण्यं तरुणसमूहं, समूहेऽण्, अश्रयत श्रितवती, मदपुष्पमालाभ्यां तरुणाः शुशुभिरे इत्यर्थः ।

54 सदिति । सन् यः सुधाया रसस्तस्य मुधाकरैर्वैयर्थ्यकारकैः फलैः क्लृप्तं भोजन-विधानं यैस्ते लसन्तीभ्यां क्रमुकः पूगः नागवल्लिका च ताभ्यामुपलक्षणतया

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

खदिरसारचूर्णाभ्यामपि रंजिता आननरुचो मुखशोभा येषान्ते परेऽन्ये जनाः चकाशिरे अशोभन्त ।

55 इत्थमिति । अथ इत्थं पूर्वप्रकारेण सम्मदस्यानन्दस्य सम्मदतुल्यानाञ्च झराणां लक्षणासमूहानां चौघस्य वाहिनी वहनशीला सुष्ठु अनुद्धताविनीता, अलङ्घिततटा च तस्य शत्रुशल्यस्य वाहिनी सेना नदी च अर्थवत् फलादि प्रवाहादि प्रयोजनवत्तद्वनं उपवनं जलं चोपास्य, अर्थवदितिक्रियाविशेषणं वा, सुष्ठु जनैरेव सुजनकैरुद्धतादभ्यस्तात् यातान्च पथः मार्गान्नव्यहीयन उन्मार्गगा नाभवदित्यर्थः ।

56 चञ्चदिति । चञ्चतां चित्राणां पतत्रिणां पक्षिणां चारु विरुतं कूजितमेव प्रेमार्द्रा वाक् यस्य, तेनामुना वनेन, किलोत्प्रेक्षायां, तस्मै भूपतये शत्रुशल्याय कुल्यानां मकरन्दैर्मेदुरैर्व्याप्तैर्जलैः पाद्यमर्घ्यञ्च तयोर्दानक्रमः कृतः, पादार्घ्याभ्यां यत्, किञ्जल्कैः पुष्पकेसरैरनुलेपनं कृतं मन्देनानिलेन उत्पातुकैः पतनशीलैः सुकुसुमैः रम्योऽञ्जलिः प्रकल्पि कल्पितः ।

57 निर्मर्यादानिति । अथ निर्मर्यादान् बहुलान् आर्यान्महतो दलपतिना प्रेषितान् प्रहितान् भोगान्भुञ्जानः निजभुजाभ्यां विजिताः द्विरावृतनवानां अष्टादशानां द्वीपानां भूपा येन सः, द्विरिति सुजन्तम् तरलतरदृशं अतिचपलदृशं रामासु स्त्रीषु अभिरामां श्रेष्ठां श्यामां दलपतिसुतां श्वोऽग्रेदिने स्वपाणौ करिष्यन् विवाहकर्मी करिष्यन् तस्याः श्यामायाश्चिन्तया तान्तं ग्लानं चित्तं यस्य स भूमिजानिः शत्रुशल्यः तद्दिनं कथमपि विरहखेदेन युगवन् मन्यते स्म ।

58 योन्तर्वाणीति । श्रीरामसिंहनृपते बुन्दीभर्त्तुर्निदेशेन गङ्गासहायशिशुना व्याख्यातः पञ्चदशसर्गः ।। इतिश्री चौहानकुलरत्नश्री महाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्टगङ्गासहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां पञ्चदशसर्गः ।।१५।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

षोडशः सर्गः

1 अथो इति । अथो स प्रसिद्धः पाथोजसखो रविः दृढं हरितो दिशो वधूरिव हरित एव वधूश्च विसृत्वरैः प्रसरणशीलैः करैः किरणैर्हस्तैश्च समालिङ्ग्य अनङ्गस्य कामस्य रंगे क्रीडास्थले यः श्रमस्तेन भङ्गुराण्यलसान्यङ्गानि यस्य तादृश इवेति शेषः विलम्बं जहन् सन् वारुणीं पश्चिमां मदिरां च चुचुम्ब प्राप पपौ च ।

2 चिरमिति । चिरं सपत्नीभिरिवेतरदिग्भिस्सह अहर्दिनं नयन् अथानन्तरं वियोगेन दूनां दुःखितामिव वारुणीं पश्चिमां नायिकामिव व्रजन् शठः कपट-प्रधानो नायक इवायमम्बुजबन्धुः सूर्यः अतिशालीनमति अतिविनीतबुद्धि तां, शालीनकौपीने इति साधुः, वारुणीं नतिं प्रणाम विनैव उच्चकैश्चुचुम्ब धृष्टत्वांशमिश्रितोयम् । अत्राप्रकृतपरैः शब्दैः प्रकृताध्यवसायः, अप्रस्तुतप्रशंसा तु नास्ति ।

3 दिगिति । अधुना चुम्बनकाले अनूनां समग्रां तनूं दिशोऽङ्गना इव दिश इवाङ्गना दिग्गता अङ्गनाश्च वा, तासामङ्गेभ्यो यदनुविलेपनं अङ्गराग-संक्रमणं तेनारुणां तनूं दधतामुना रविणा नायकेन च भृशं रुषं प्रापितया तया वारुण्यापि अहो अतिशालीनमत्यापि क्षणान्मुखे धीरा बहुला अरुणता रक्तता अधारि अत्रापि पूर्ववत्प्रकृतकल्पनाऽऽश्रयणीया ।

4 प्रतीचीति । जवाद्वेगात्प्रतीचि पश्चिमे सिन्धौ विनिमज्जतः रविरूपस्य द्विपस्य गजस्य उद्गतं उपरिभूतं यत् सिन्दूररजः किरणगणोरुणो बोध्यः तदेव सन्ध्यामिषतः नभस्तले आकाशे शोणतां व्यधत्त अकृत ।

5 सुचार्विति । चक्राङ्गानां हंसानां सखा रविस्तस्य चक्रिणा रथेन पश्चिमे गिरौ गमिगंमनं सुचारु यथास्यात्तथा प्राक्रमि प्रारब्धा, किमु पूर्वन्तु मानसोत्तरेभूत यद्यतः अद्य सन्ध्यासमये समुच्छलन्तो रथचक्राभिघातादुत्पतस्तः तस्य पश्चिम गिरेर्यत् गैरिकमयं शृङ्गं तस्य रेणवः वारुणीं पश्चिमामरुणयन्ति रक्ती-कुर्वन्ति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

6 रसेनेति । रुषेवारुणा वारुणी दिशः पश्चिमायाः सखीव सन्ध्या रसेन रागेण दिनं, अत्यन्तयोगे द्वितीया, दिशः संभुज्य भृशं रिरंसया रमणेच्छया ताः प्रत्येव यान्तं अमुं सूर्यं वञ्चतां द्विजानां पक्षिणां नादस्य कूजितस्य भङ्गिभिर्निनिन्द नायिकानायि(? य)कवृत्तान्तमेवोद्दिश्य कवेरुक्तिः ।

7 असाविति । तदा क्षणात् वारुणीसखैः पश्चिमदिक्स्थैस्तस्याः सहायभूतश्च मुखरैः कूजिद्‌वद्भिः बहुवक्तृभिश्च द्विजैः पक्षिभिर्ब्राह्मणैश्च प्रचेतो हरितः पश्चिमायाः शम्भली दूती असौ सन्ध्या घनाद्बहुलादनुरागाद्धेतोः अमुना सूर्येण सह स्वयं रमते इतीव उपाक्रुश्यत अनिन्द्यत ।

8 विहायेति । अनेन जलजन्मनां कमलानां, डलयोरैक्याद् मूर्खपुत्राणाञ्च बन्धुना सूर्येण इमाः पूर्वोत्तरदक्षिणादिशो विहाय प्रतीची कस्मात् श्रिता इति मानतो ध्रुवमुत्प्रेक्ष्यतेक्षणाद्दिशः मलिनानना रुष्टमुख्यः अन्धकारवत्त्वात्-श्यामीभूतप्रदेशाश्च अभूवन् ।

9 असौ इति । ध्रुवं द्विजव्रजस्य पक्षिसंघस्य ध्वानः शब्द एवमनुर्मन्त्रस्तस्योल्लसन् जपो वाचिकमन्त्रोच्चारणं यस्याः सा, असौ सन्ध्यैव आहितुण्डिकी व्यालग्राहिणी वधूनां मनांस्येव नाकवः वल्मीकानि, वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकमित्यमरः, तत्र गतान् मानरूपान् पन्नगान् सर्पान् तमोमिषात् समाकर्षति बहिर्निष्कासयति ।

10 यदिति । यद्वैद्या उष्णेनाग्न्यादिना तप्तस्याङ्गस्य उष्णमौषधं वदन्ति, "प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कायमुष्णं तथौषध" मिति, सुश्रुतात्, तद्वयं हि निश्चितं ऋतं सत्य मन्महे, यत् खरांशुना सूर्येण दग्धा हरितो दिशः तमसश्छलाद्देहे कस्तूर्यालेपनं वहन्ति । कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुरिति कस्तूर्या उष्णत्वात् ।

11 विलोक्येति । मित्रं सूर्यं सुहृदं च परदेशे संगतं विलोक्य ज्वलिष्यतां सशोकायाः कोकयश्चक्रवाकयस्तत्क्षमनन्निविरहरूपानलस्यार्चिषां सन्तमस्य सर्वतो व्याप्ततमसश्छटानां कान्तीनां छलात् अवसमंथेभ्यस्तमस इत्यच् धूममण्डली समुज्जिहीते उद्गच्छति किमु इत्युत्प्रेक्षायाम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

12 रवौ इति । सूर्ये चिरमिमां वारुणीं पश्चिमां मदिराञ्च चुम्बति प्राप्नुवति पिबति च सति ससम्भ्रमं कार्यशैघ्र्येण देशोपद्रवेण च सावेगं यथास्यात्तथा जनस्य पथा पूर्वस्याः अपरस्याश्चदिशः परिग्रहे आश्रयणे विवेकस्य गन्तव्य-विचारस्य लेशोपि न शेषितः तथा तमांस्यन्धकाराः अनयाश्च अजृम्भत-तमामतिशयेन अवर्धन्त, मद्यपे प्रभौ तथैव सम्भवात् ।

13 करैरिति । सरोजबन्धुना सूर्येण सहस्रेण करैः किरणैर्हस्तैश्च भृशं समालिङ्गि-तयाऽनया दिशा पश्चिमया नभोरूपेऽङ्गणे तारकाणां छलात् भङ्गुराणि स्वाश्रयसूत्रत्रुटनाद्विपर्यस्तानि यानि हीराणि मौक्तिकानि च तेषामुच्चयः समूहः समाकीर्यत अक्षिप्यत । अत्र दिशः कुपित कर्कश नायिकात्त्वं बोधितम् । सुरतसंमर्दे त्रुटितहारमुक्तानां विकरणे तु नायिकायां कर्तृत्वं न वर्ण्यते । विंशत्याद्याः सदैकत्त्वे सर्वा इति सहस्रशब्द एकवचनम् ।

14 स्वेति । कामः जगतो जिगीषया स्वशस्त्रभूतमिन्दुं तर्कुयन्त्रके निशानयन्त्रे चकार किमु यद्यतः एतस्य चक्रस्योत्तोजनतः समुच्छलन्तो ये स्फुलिङ्गा अग्नि-कणास्तद्वच्चण्डा उडवस्ताराश्चकासति ।

15 रतेति । तदा समये उडूनां ताराणां छलात् रतावसानेऽलसा या वारुणी-पश्चिमा दिगेव नायिका तस्यालसन्ती या विकीर्णा वेणी केशपाशस्ततो गलितैः पुष्पैश्चितेन युक्तेन नभसा आकाशेन नवः अभूतपूर्वत्वान्नवीनः खपुष्पस्य नीतिरसद्वस्तुन्येव दृष्टान्ततो तस्या अपि सम्भवः सद्वस्तुन्यपि दृष्टान्त-संभावना कृत. ।

16 नभ इति । केनचिज्जनेन कर्त्राऽद्य नभोरूपे कटाहे सान्ध्यः सन्ध्याभवराग-रूपो यो वह्निस्तेन करणेन सुधालेपद्रव्यम् विपाच्यते किन्तु इमास्तारकास्त-स्याः सुधायाः फेनाः किमु चस्त्वर्थे घनेनांशेन विधुर्विधास्यते करिष्यते किम् ।

17 विपादिति । दिग्भिरङ्गनाभिरिव तूर्णं विपदाकाशं पुरीमिवालङ्करिष्यतः स्वा-गमेन शोभयिष्यतः द्विजानामोषधीनां चाधिपस्य चन्द्रस्य विराजिनो ये लाजा भृष्टधान्यानि तद्वदाचरितवद्भिस्तारकागणैः मङ्गलक्रिया किल कृता किम् । लोके नगरीमागमिष्यति राज्ञि लाजादिभिर्मङ्गलं क्रियते ।

18 अधीनेति । अधीनो वशीभूतः मित्रो रविः मित्रं कान्तो यस्यास्तां चापरां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पश्चिमां दिशं विलोक्य संजाता रिरंसा रमणेच्छा यस्यास्तस्या स्फुरन्ती देहस्य रुक्कान्तिर्यस्यास्तस्या पुरोदिशा पूर्वया कलावता चन्द्रेण कुशलेन चोदाञ्चतो जनितो रागो रक्तिमाऽनुरक्तिश्च यस्यास्तादृश्याऽजनि जातम् ।

19 स्वेति । तदा स्वस्य शंभली भावुका दूती भविष्यन्ती या चारुः कौमुदी चन्द्रिका तया करिष्यमाणः प्रियेण चन्द्रेण सङ्गमो यस्यास्सा सुरेन्द्रदिक् पूर्वदिक् रूपा वासकसज्जिका अद्य मे प्रिय आगमिष्यति इत्याशया मण्डनादिकर्त्री नायिका काश्मीरेण कुङ्कुमेन कृतमङ्गलेपनं यया तादृशीव रक्ता रराज ।

20 सुकौङ्कुमीमिति । प्रथमं सुष्ठु कौङ्कुमीं कुङ्कुमसम्बन्धिनीं रुचमङ्कुरयन्नुद्भावयन्, ततः क्षणात् हारिद्रं हरिद्रासमूहस्तद्वद् विनिद्रतां लक्षणया शोभां दधदिति, अथापि अनन्तरं मंथेन मंथनेनाकुलो विलोडिता दुग्धवारिधिः क्षीरसमुद्रस्तस्य स्फुरन्तीनां तरङ्गावलीनां कान्तेर्भङ्गदम् ।

21 सुपूरेति । सुष्ठु पूरः प्रवाहो यस्य स चासौ कर्पूरस्य रसस्तद्वदतिशीतलं च पुनः क्षणात् कुमुदिनीनां हासो विकासस्तेन तद्वदाविर्भासि शोभनशीलमैन्दवमिन्दुसम्बन्धि रुचिवृन्दं कान्तिसमूहः हरितो दिश एव वध्वस्तासामुष्णरश्मिजां सूर्यतापभवां रुजं पीडामलमत्यर्थं व्यलुम्पत् । युग्मम् ।

22 उदेतीति । यावत् कुमुद्वतीपतिश्चन्द्रो नोदेति स्म तावत्पुरैव किरणरूपैरनुजीविभिः भूमण्डलगं परमुत्कृष्टं तमः, अखण्डि चकोराणां चञ्चुषु सुधारूपो रसोऽसेचि सिक्तः । राजप्राप्ते पूर्वमनुचररेव राजशत्रुमित्रयोर्निग्रहानुग्रहवत् ।

23 उदारेति । उदारा ये केदारा आलवालाः केदारः शिवक्षेत्रं च, के दारोऽद्रौ शिवक्षेत्र भूमिभेदालवालयोरिति मेदिनी, तत्रागतानि प्राप्तानि सता महसा तेजसा संमहो यस्य सूर्येण वा कृतं सम्मदमानन्दं अनुभवन्ति शश्वन्तं, किमु उत्प्रेक्षणे, दोषाकरस्य चन्द्रस्य दोषाणामाकरस्य दुष्टस्य च दर्शनात्पराचि पराङ्मुखानि अम्बुरुहाणि पद्मानि तत्क्षणादमीमिलन् संकुचन्ति स्म ।

24 अथेति । अथ क्षणात् उदयाद्रौ प्रचण्डो यश्चण्डीशः शिवस्तस्य शिरोमणेश्चन्द्रस्य मण्डलं, ध्रुवमुत्प्रेक्षायां, तदीयः शिवसम्बन्धीयः लालाटो ललाट-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भवो हुताशोऽग्निस्तस्य रोचिषः दीप्तेस्समाक्रान्ता, लक्ष्मया सक्रान्ता, विलोहिता द्युतिर्यत्र तादृशमिव उदियाय ।

25 दिशेति । अयं चन्द्रमा बन्धूकपुष्पनिभा अधरस्य अधोभागस्योष्ठस्य च त्विट् यस्यास्तया ऐन्द्र्या दिशा पूर्वया नायिकया चिरेणाऽचुम्बि किम् । यतस्तदीयौ पूर्वदिक्सम्बन्धिनौ दन्तच्छदौ ओष्ठौ तयो रागतः लोहितायन् रक्तीभवन्; लोहितादित्वात्क्यष्. नभस्तले उदितः ।

26 निजेति । ध्रुवं नूनं निजस्यानुजेन चन्द्रापेक्षया पश्चात् समुद्रादुत्पन्नत्वात्कनिष्ठभ्रात्रा अमरराजहस्तिना ऐरावतेन ऐन्द्रदिग्गतत्वात्सम्भावितमेलेनकुरङ्गवाहनः चन्द्रः समालिङ्गि आलिङ्गितः यद्यतः सिन्दूरस्य रसेन आर्द्रं यत्तस्यैरावतस्य वपुस्तस्य प्रभाणां, नित्यमिति सत्त्वम्, भरैः समूहैरस्य चन्द्रस्यातिशोणता अक्रियत कृता ।

27 सुधाकरेति । प्रदोषो रजनीमुखम् स एव रासायनिकः रसायनं शिल्पं यस्य तत्करणं शीलं वा यस्य स रासायनिकः, तदस्येत्यनुवृत्तौ शिल्पं शीलमिति वा ठक्, रसायनशब्दो जराहरणौषधे शक्तोपि नव्यग्रन्थेषु रसवेधेपि प्रयुक्तः, सुधाकरश्चन्द्रः यस्य तस्मिन्सुवर्णकारकपारदे तद्वेधक्रियायां कोविदः कुशलो नास्ति यतस्तेन सुवर्णत्वकृतान्यपि महीधराणाम्पर्वतानां अग्राणि अद्य क्षणाद्रौप्यतां रजतभावं यान्ति । अकुशलरसवेधवता कृतसंस्काराणां शीघ्रं परावर्तनात् ।

28 यथेति । यथा यथा एष कलाधरश्चन्द्रः कौशलवांश्च स्वयं पूर्वगिरेरुदयपर्वतस्याधित्यकामूर्ध्वभूमिमलङ्करोति तामधितिष्ठति तां मण्डयति च, तथा तथा अन्येषां भूभृतां पर्वतानां उपत्यका आसन्नभूमयः सख्य इव न चिरात् मुहुः स्मयन्ते प्रकाशं यान्ति मन्दं हसन्ति च । नायिकां कुशलनायके स्वयं मण्डयति अधीनता द्योतनाय नायिका सख्यः स्मयन्ते ।

29 प्रसह्येति । व्योमन्याकाशे प्रसह्य बलात्कारेण तारका लसन्तः विसारिणश्चलनशीलाः वैसारिणानां मत्स्यानां डिंभा अर्भकाः इव तारका एव मीनशिशवस्तेषां घस्मरमभिभवकरं भक्षकञ्च, मीनो वैसारिणोण्डज इत्यमरः, अद एतद्धिमरश्मेर्मण्डलं धात्रा ब्रह्मणा यादोनिधेर्यादो जलजन्तुरेव व्यधायि कृतः,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

किं तस्यापि समुद्रोत्पन्नत्वाज्जलजन्तूनाञ्च स्वतो निर्बलजलजंतुभक्षकत्वं हि हेतौ ।

30 अधारीति । यथा विषं लिहानेन भक्षयता मीनाङ्कं कामं मथ्नातीति क्विबन्तः तेन शिवेन तु गले नीलो वर्णो यस्य तत्ता अधारि धृता तथैव तमो ग्रसता इन्दुना चापि अङ्गीकृतः स्वचिह्नीकृतो यो रंकुर्मृगस्तस्य कैतवादन्तर्मध्ये तदेव तमो धृतं किम् ।

31 स्मरस्येति । तदोदिग्रूपाभिरङ्गनाभिर्विधोरुदयात् स्मरस्य कन्दर्पस्य दिनं विज्ञाय तस्य विधोः कान्तिर्ज्योत्स्ना सैव सुधामयोह्रदस्तत्र निमज्ज्य निजाङ्गात् तम एव मृगनाभिलेपनं कस्तूरीलेपः उदसारि दूरीकृत किं रात्र्यपगमे हि स्नात्त्वांगराग उत्सार्यते ।

32 अरमिति । अरं शीघ्रं हरित एवाङ्गनास्तासां गणैः सह रिरंसुः रन्तुमिच्छुः, किलेवार्थे, अत्रेर्मुनेर्नयनं कलाकरश्चन्द्र स्वस्य करैर्हस्तैः किरणैश्च तमोरूपं निचोलं प्रच्छदपटं विमोच्य दूरीकृत्य एभ्यो हरिदङ्गना गणेभ्यः कौमुदीं जोत्स्नामेव दुकूलं सूक्ष्मं श्लक्ष्णं वासो वितताऱ ददौ ।

33 अहो इति । अहो विधात्रा ब्रह्मणा विधुश्चन्द्रः सितः श्वेतः सान्द्रया घनया सुधया भृतः पूर्णः घनो मेघः कौतुकादकारि किम् यद्यतः असौ विधुः क्षणात् उदन्वतः समुद्रात् चन्द्रमणेश्चन्द्रकान्ताच्च षष्ठी वा, उच्चकैर्जलपूरं असावीत् उदपादयत् ।

34 इतोति । मनाक् किञ्चित् प्रियाजन्यो य आधिरुत्कण्ठातिशयरूपस्तस्य बाधया पीडया विधुरेण दुःखितेन अमुना बुन्दीपतिना, क्षितीशा राज्ञा क्विबन्तः, शत्रुशल्येन उपवनी निवासोद्यानं अनीदृशीं अविद्यमाना ईदृशी यतस्तामनीदृशीमनुपमामित्यर्थः, श्रियं शोभां नयन् प्रापयन्,द्विकर्म्मा नयतिः, दिवि आकाशे अयं लक्षणया उदयं अयन् प्राप्नुवन् स इन्दुश्चन्द्रः दारुणोऽदर्शि दृष्टः ।

35 अशेषेति । अशेषं यत्पीयूषं तन्मयैरंशुराशिभी रश्मिसमूहैर्दिशां क्लमं विशातयन् नाशयन्नप्येष ग्लौश्चन्द्रः ग्लपितं नाशितमरिमण्डलं येन उच्चैरन्तभृता धृता चिन्ता विरहपीडा येनं तं नृपं शत्रुशल्यं अजिग्लपत् दुःखयति स्म ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

36 विराजतीति। गुणानां प्रकाशादीनां ओघैरभिभूतास्तिरस्कृता दीपा येन तस्मिन्द्यौराकाशस्तद्रूपाया ललनाया ललन्तिका लम्बनापरपर्यायो मालाभेदः, लम्बनं स्याल्ललन्तिकेत्यमरः. तद्गतमणिरूपे चन्द्रे विराजति सति रत्नस्य श्रीरत्ननृपस्य सन्ततौ कुले दीपस्य शत्रुशल्यस्य रत्नसमूहे प्रतीपस्य च तु अन्तर्हृदये लसन् वर्द्धमानो य आधिस्तस्माज्जाता शिखा नितान्तमत्यन्तमदीपि दीप्ता, दीपजनेत्यादिना कर्त्तरि णिच्। "कार्योत्पति (त्पत्ति) स्तृतीया स्यात्सत्यपि प्रतिबन्धके" इति विभावनाभेदः।

37 तृणेति। मे मम कवेः अयमिन्दुः तृणमशनं यस्य तादृशो योऽकस्थः कुरङ्गस्तस्य सङ्गतः सङ्गाद्धेतोः तत्र सङ्गतो मिलित इतीन्दु विशेषणव्याख्याने हेतुगर्भितताकलया तृणस्य पूलिका एव मत इष्टः, यद्यतः अस्य भूपते शत्रुशल्यस्य स्वभावस्य यद्गाम्भीर्यं तेन कृशं स्मररूपमनलं सन्दीपयति स्म स्वल्पोऽप्यग्निस्तृणेन दीप्तीभवति।

38 किमिति। किंवा मंथेन मथनेनाकुलिताद्व्याकुलात्पयोनिधेः समुद्रादेष दृश्यमानः शशिनश्छलात् वाडवोऽग्निरेव निःसृतः हि, यतः रस आसक्तिर्जलांशश्च तेनार्द्रां व्याप्तां क्लिन्नां च तस्य शत्रुशल्यस्य गात्ररूपलतां प्रतापयन् सन् कलङ्कस्य कैतवात् धूमं बिभर्त्ति।

39 विषमिति। यद्यपि विषं शशी चोभौ सोदरौ समुद्रोत्पन्नत्वात्सहोदरावेव तथापि प्रथमं विषं भोक्तुर्भक्षयितुरेव विमोहकं वैचित्यापादकम्, महीपतेः शत्रुशल्यदृग्विषयीभवन् दृश्यमानमात्र एव मुहां वचित्यानां निमित्तं कारणमन्त्यश्चन्द्रस्तु अतः विषात् विशिष्यते।

40 प्रचण्डेति। विधिना ब्रह्मणा जलेशयानामपि पद्मिनीं उच्चकैः प्रचण्डस्तापो येषान्तैः स्वस्य महोभिस्तेजोभिर्दहन् शशी रवेरधिकारे परप्रतापनरूपे कृतः। अहो प्रभावस्यातिशयः प्रभोः प्रियः। यद्यपि पद्मिनीदाहो हिमेन वर्ण्यते न चन्द्रेण तथापि शैत्यदैवतस्य चन्द्रस्य तदभेदमध्यवस्य तथोक्तम्।

41 सरस्वत इति। सरस्वतस्समुद्रात् प्रभवन् प्रथमप्रकाशं प्राप्नुवन् स निशामणिश्चन्द्रः ध्रुवन्नूनं सरोरुहां कमलानां साहजिकः स्वाभाविकः रिपुः यद्यतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

एष निशामणिस्तूर्णं बुन्दीनृपतेः शत्रुशल्यस्य हृदम्बुजं विपदां दुःखानां वशंवदमधीनञ्चकार ।

42 कुमुद्वतीति । कुमुद्वतीबान्धवेन चन्द्रेण तुन्दिलायिता प्रवृद्धा या प्रियानिमित्तका आधि अधिका बाधा तादृशेनाऽऽधिना या बाधा पीडनमिति वा सैवाम्बुनिधिस्समुद्रस्तत्र अनारतं निमज्जन् नृपेषु सज्जनेषु चाग्रणीरयं शत्रुशल्यस्तदा कामपि तच्चित्रदर्शनादिकां तरीं नावन्नोरीकृतवान्नाङ्गीश्चकार, न.लभतेत्याशयः ।

43 अथो इति । अथो यथामानं मानानुसारेण विसृष्टा स्वस्वनिवासायानुज्ञाता बंधुता बन्धूनां समूहो येन, ग्रामजनेत्यादिना समूहे तल्, रह एकान्ते महामुहि महति वैचित्ये निमज्जन्तम् खण्डितयाऽन्यसम्भोगचिह्नितस्वसमीपागतकान्तया नायिकाविशेषेणेव निद्रया अपाकृतं त्यक्तममुं शत्रुशल्यं तदा वनस्य देवता अनुजग्राहानुकम्पितवती ।

44 मयूरेति । कुसुमानामिवाभा येषां यस्य च तादृशाश्चन्द्रका मेचकाः, चन्द्रकोभूषणविशेषश्च यस्य तत्र च तत् मयूरबर्हं यदीयमस्याः वनदेवताया इदं धम्मिल्लं संयतकचान् असंशयं अवैमि मयूराणां वने सम्भवाद्वन्यवस्तुभिरेव तदङ्गवर्णनात् स्वस्वरूपसम्पदा परिभूत पङ्कजं येन तत्कैरवञ्च यस्या मुखं कलयामि जानामि, कैरवे पङ्कजपरिभवः सादृश्यमात्रेणोह्यः ।

45 दृशाविति । सितेतरे नीले जलजे कपले यदीये दृशौ अवैमि, चम्पकपुष्पानामावलीमपि कपोलपालीं अवैमि, पालीशब्दः स्वरूपार्थे प्रयुज्यते, कौन्दीं कुन्दस्येमां कलिकां रदानां दन्तानामावलीमवैमि, स्मयमानां विकसन्तीं मालतीञ्च यस्याः स्मितमवैमि ।

46 मदेति । च पुनः कोमलं मदेनोल्लसन् यः कोकिलस्तस्य कूजितं यस्याः स्वरं चिरं कलयामि, बन्धुर सुन्दरं बन्धुजीवकं पुष्पविशेषं यस्या रदच्छदमोष्ठं कलयामि. किल नूनं मृणालयोः युग्मं यस्या भुजद्वयं कलयामि ।

47 यदिति । च पुनर्नवान् पल्लवान् यस्या अङ्गुलीर्वेद्मि, दाडिमस्य कोरकद्वयं स्तनद्वयं वेद्मि, कोरकशब्देन अप्रभिन्नं फलमेव कथंचिद्बोध्यं, च पुनर्गभीरां वापिकां यदीयां नाभिं वेद्मि, जलनीलिकां शैवालमपि सुष्ठु रोमराजिं वेद्मि ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

48 विराजीति । विराजि शोभनशीलं रम्भायुग कदलीद्वयं यस्या उरुयुग्मकं विभाति च पुनः अरुणं सरोरुहं यस्याः पदं विभाति सुगन्धिता सुगन्धस्तेन मुग्धानां लक्षणया मत्तानां मधुव्रतानां भ्रमराणां ध्वनिरपि यस्याश्चारुनूं-पुरो मंजीरो विभाति सुगन्धितेति, इदन्ताद्बहुव्रीहेर्भावे तल् ।

49 विराजदिति । विराजन्ति आरामजानि पुष्पफलादीनि वस्तूनि पूर्वोक्तरीत्या भूषणानि उपलक्षणतयाङ्गान्यपि यस्यास्तनोः श्रिया न्यक्कृत नीचैः कृतं नाकस्य स्वर्गस्य यौवतम्, युवतीसमूहो यया सा वनामरी वनदेवता जाति-लक्षणो ङीष्, तदा अशोकवृक्षादवतीर्य नृपस्य शत्रुशल्यस्य पुरोऽग्रे आविरभूत् ।

50 किमिति । अद्य हरेरुरस्तः वक्षस इयम् भूलोकस्य विलोकने उत्सुका कमला लक्ष्मीरागता किम्, अहो अथवासौ हरस्य शिवस्यार्द्धाङ्गमद्रिजा पार्वती आगता, वाथवा, विधिवक्त्रं चुम्बति तच्छीला सरस्वती आगता ।

51 दशामिति । हरेरिन्द्रस्य दशामेव सरोरुहां कमलानां स्रजा मालया प्रजातान्या-भरणानि यस्या इन्द्रेण सहस्रनेत्रैः स प्रेम दृष्टेत्यर्थः सा शचीन्द्राणी नु किम् किंवा अमुत्रास्मिन् केलीविपिने तपस्यतस्स्मरस्य सहचारिणी रतिः, अदसस्तु विप्रकृष्टमिति तु असौ महेन्द्रादीत्यादौ व्यभिचारात्तदादिशब्दसमभिव्याहार-स्थले बोद्धयम् ।

52 इतीति । इति क्षणादमुना क्षोणिभुजा राज्ञा शत्रुशल्येन ससंशयं चेतसि चिरं विभाविता चिन्तिता, क्षणादिति संशयोत्पत्तौ चिरमिति संशयस्थिताविति न विरोधः, हसितेन मुहुः कौमुदीं हसन्ती हास्यविषयं कुर्वती सा वनदेवता वचोरूपाभिः सुधाभिस्तं शत्रुशल्यमुच्चकैरसिचत् ।

53 महीति । हे महीमहाराज भवाञ्जगत्त्रयं उपार्जितया सत्या जयश्रिया विराजतां अपि च स्फुरन्ती तावकी कीर्तिरूपा कौमुदी नोऽस्माकं मुदम्बुधेरानन्दसमुद्रस्य तुन्दिलतां उपचयं दधातु विदधातु ।

54 अपावीति । दिष्टया भद्रं त्वयाऽधुना भवत्पदयोरनुग्रहेण पूतम्पवित्रम्भूतलं यस्यास्सा उपवनी अपावि लक्षणया अधिष्ठिता, अहो अस्य वनस्य देवताऽहं चाद्य त्वया नाथेन परमुत्कृष्टं सनाथिता सनाथीकृता अनुगृहीता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

55 महीन्द्रेति । हे महीन्द्र, अहो कच्चित् प्रश्ने अद्यानया त्वदीयसम्भावनया त्वन्निवासावाप्तशं भया परं लसन् सदाकाले भवः चार्ुविभ्रमः शोभाविशेषो यस्याः सा पटीयसी श्रेयसीयं विलासवाटी भवते रोचते, रुच्यर्थानाम्प्रीयमाण इति सम्प्रदानता ।

56 अनामयमिति । समस्तलोकानामामयस्य दुःखस्य हरणशीलं तेजो यस्य तस्य तेऽनामयं कुशलन्तु स्वत एव निश्चितम् विपत्त्रिमां पक्वां लवलीं लताविशेष जयन्ती पाण्डुतयाभिभवन्ती असौ कपोलपाली तु संशयं खेदसन्देहं कुरुते ।

57 तवेति । अद्य केवलं बिराजिनी या नैसर्गिकी स्वाभाविकी कान्तिस्सा सारः स्थिरांशो यत्र तया तव अङ्गकानामङ्गानां, अनुकम्पायां कन्. क्षामतया कृशतया विभावरी रात्रिरेव नायिका तस्याः केलिकलाभिः क्रीडाकौशलैः सम्बन्धैश्च लसन्ती छविर्यस्य तस्य प्रभातचन्द्रस्य रुचिः जीयते रात्रौ सशोभस्य चन्द्रस्य प्रातरिवाधुना ते कृशता दृश्यते इति विवक्षितम् ।

58 मनीषितेति । यद्वस्तु सुरराजस्येन्द्रस्यापि दुर्लभैः चिरं भवतो निदेशस्य आज्ञायाः स्पृहयालुभिर्मनीषितार्थैरभीष्टवस्तुभिः सदैवार्च्यमानस्य पूज्यमानस्य तवापि अनाथतां प्राप्तुमशक्यतां भजते अहो तद्वस्तु कुतस्त्यं, न कुतोपि भवतीत्यर्थः ।

59 तनीयसीति । ध्रुवं तनीयसी तन्वङ्गी इयं बुद्धिविषया दलपस्यनन्दिनी तव हृदि निलीना गुप्ता वर्त्तते, अकुण्ठिता अप्रतिहता या ज्ञानदृक्तया अपि भूषितास्तादेवता अपि यां न रूपयन्ति निरूपयितुं न शक्नुवन्ति, तनीयस्त्वात् अलौकिकत्वाद्वा ।

60 असौ इति । हि यतः असौ दलपनन्दिनी निजाङ्गानां रुचिः कान्तिरेव मन्त्रस्तस्य वहनशीला मोहनी मोहनकर्त्री मदनस्य मायैव यद् भवान् इमां हृदैव मनसैव समागम्य आशु शीघ्रमेव अमुह्यत् तदत्र मोहे कः स्मयो विस्मयः न कोऽपि ।

61 इतीति । तदा वच ईरयन्ती कथयन्ती प्रभोः शत्रुशल्यस्य श्रवसी कर्णौ सुधाममृतमाशयन्ती भोजयन्ती, प्रत्यवसानार्थत्वादणौ कर्त्तुः कर्मत्वम्, असौ विपिनाधिदेवता वनदेवी उदारं महद्रूप सौन्दर्यं यस्यास्तां दलपस्य नन्दिनीं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उपश्लोकयितुं श्लोकैः स्तोतुं प्रचक्रमे प्रारेभे, प्रोपाभ्यां समर्थाभ्यामित्यात्मनेपदम् ।

62 अनन्येति । यतः अविद्यमानं अन्यसाधारणं अन्यनायिकातुल्यं रामणीयकं रमणीयत्वं यत्र, अलौकिकमित्यर्थः, तादृशः, योपधादिति वुञ्, मनोभुवः कामस्य मानसः मनः कल्पितः सर्ग एवास्ति अहो तल्ललनामु ललाम् भूषणम्, नान्तः शब्दः, श्यामां विदुषां वाचोऽशेषतः सम्पूर्णतया कथं स्पृशन्तु मानससर्गस्य परोक्षप्रायत्वात् तस्य च साकल्येन वर्णयितुमशक्यत्वात् ।

63 हरेति । प्रमद आनन्द एवामृतं तेनोम्भिताम्पूर्णां, उम्भपूरणे क्तः, इमां श्यामां हरस्य यो नेत्राग्निस्तस्माद्भीतस्य स्मरस्याश्रयणीयां दुर्गभूमिकामवैमि, यद्यतः अहो एतदीयानामङ्गकान्तेः कीर्तिषु तव चेतसापि रागान्न्यमज्जि निमग्नम्, भावे लुङ् ।

64 गरीयसेति । यद्यपि गरीयसाऽतिगुरुणा रूपस्य भरेण भूषिताऽपि अद्य तुलामुपमां तोलनपात्रञ्च नारोहति चित्रमहो तथापि प्रभाभरैरनल्पं बहुलं गुरु चाबलानां स्त्रीणां कुलमल्पीकुरुते अभिभवति लघयति च; तुलारूढं गुरु हि द्वितीयं लघयति न पुनरनारूढम् ।

65 यदेति । यदा पितामहो ब्रह्मा पुनस्तरुणः स्यात्स च यदि शृंगाररसस्य श्रुतिम्पठेत् तदा तत् ललनाललाम विधातुं कदाचिदेतस्य ब्रह्मणः विदग्धता चातुर्यं भवेत् सम्भावनं यदीत्यंस्यादित्यूहोजन्य प्रसिद्धये ।

66 प्रतीति । स्फुरन्ती शाङ्करस्य शिवललाटगतस्य वह्नेः कालिकादग्धतया कृष्णता यस्य स मान्मथः कामसम्बन्धीकरः प्रति प्रतीकं प्रत्यङ्गं प्रगुणमत्यर्थमुज्ज्वलान्यंगानि यस्तास्तां प्रतीकशब्देनाङ्गावयवा गृह्यन्ते पटु यथा स्यात्तथा स्फुटतो विकसितश्चम्पकस्य कम्पका अभिभावुकाच्छविर्यस्यास्ताभि इमां श्यामां कथं निर्म्मातु ।

67 तदीयेते । वशितो वशीकृतः उर्वश्या मदो येन तस्मिन् तदीये श्यामीये रूपे मे ममाद्य मेनका अप्सरोविशेषः काचिदपि न प्रतिभाति अहो घृताची अशरसस्तु परं केवलं पराची पराङ्मुखी प्रतिभाति सुमंजुघोषा अपि भृशम्परुषा परुषस्वरा किन्न प्रतिभात्यपितु प्रतिभाति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

68 असाविति । इयं श्यामा अद्य सतां असौ हेममयी लता भवेत्सा हेमलता तु मृदुर्न, एषा किल तडिद्विद्युद्भवेत् इयं तडित् अम्बुदं मेघं विना न, इयं सुकेतकी भवेत् सा केतकी विकण्टका कण्टकरहिता न हि इति संशयं कुरुते ।

69 प्रतप्तेति । तस्या मृगीदृशः श्यामायाः प्रतप्तं यज्जाम्बूनदं स्वर्णं तद्वत्सुन्दरीं वपुषो द्युतिं विलोक्य चिन्तयते इति शेषः समानकर्तृकतये मे हृदि क्षणप्रभा विद्युत् क्षणमपि तत्तुल्यतया न भाति केतकं स्वर्णकेतकं वा तुलनाया निकेतनं न ।

70 वच इति । कवीनां वच इव वक्रतया कौटिल्येन वैदग्ध्येन चाञ्चितं शोभितं अहो सतां हृद्रूपमम्बुजमिव स्निग्धं तस्याः कचपाशं केशकलापं पाशः पक्षश्च हस्तश्च, कलापार्थाः कचात्परे इत्यमरः, तस्या मुखेन्दोर्वित्रस्तां तमोरूप लतायास्ततिं अवैमि ।

71 तदीयेति । अस्याः कचानामुच्चयः समूहः तदीया य नासाया हिमः शीतः सौरभेण सुगन्धेनोल्लसश्च यः समीरस्तस्य धीरं यदाचमनं तत्र समुत्सुकः ललाटिकायाः पत्रपाश्यापरपर्यायभूषणविशेषस्य व्याजेन लसन्फणागतमणियं-स्य सः कालियनामा उरगः किमु ।

72 रतीशितुरिति । असौ श्यामा रतीशितुः कामस्य सर्वंकः समरतो यो गर्वः सर्व-जनवशीकरणरूपस्तस्य गञ्जनं विरसनं दधानं विदधानं मयूराणां सुरता-भावात् अभिधानं नीलकण्ठ इति शिवस्यापि वाचक नाम चन्द्रकाः मेचका-श्चन्द्राश्चतेर्हेतुभिः उच्चैः स्मरारेः शिवस्य भ्रमं ददत्तन्नीलकण्ठकं मयूरं बत वितर्के स्वस्य केशराशेः कचकलापंर्जयति, यद्वा अभिधानेन नाम्ना चन्द्रकैश्च सर्वंकस्य शिवस्य गर्वगञ्जनं तत्तुल्यत्त्वात् अतो रतीशितुः कामस्य स्मरारे-र्भ्रमं ददतमित्यन्वयः, सर्वशब्दोदन्त्यादिरप्यमरटीकायां दृष्टः ।

73 अलीकेति । अहो यतस्तया अलीके ललाटे अनृते च लग्नः कुटिलो वक्रो जिह्मस्वभावश्च मलीमसः कृष्णवर्णो मलिनश्चापि कचोच्चयः केशसमूहः मूर्ध्निधृतः आदृतश्च अतो हेतोः स कचोच्चयः जनेन भूषकजनेन पुष्पैर्भूष्यते हि यतः सदा सत्कर्तृक आदरः किं किन्न करोति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

74 तदीयेति । हि यतः सुधांशोरिन्दोर्लोभेन तदीयवक्त्रोपरि कुन्तलानां छलात्सं-भ्रमं भ्रमन् अयं सिंहीतनुजः राहुर्विभाति तत्ततोऽस्य कुशाग्रवद्बुद्धिर्यासां ताभिरालिभिस्सखीभिबद्धः ।

75 पुर इति । चमरीमृगीविशेषः यदि स्वचामरं पुरोऽग्रे करिष्यत्तदपि पुरस्कृत-मपि यदि मृगदर्पकैः कस्तूरीभिः अलिक्ष्यत, यदा इदं कस्तूरीलिप्तमपि उज्ज्वलैस्तिलैर्लक्षणया तत्तैलैरांजिष्यत् अभ्यक्तमकरिष्यत्, तदा अस्याः कुन्तलैः शिरोधृतसुगन्धिस्निग्धैः सह तुलां ऐष्यत्, कुन्तलैरिति सहयोगे तृतीया इति वा तुलोपमाभ्यामिति स्युंदासप्रसक्तिः ।

76 कृतेति । कृतो रचित एतस्याः श्यामाया आस्यरूप इन्दुर्येन स चासौ रतीशः कामस्तस्योपरि रोषत ईर्ष्यया नवमैन्दवं बिम्बं सृजन् स विधिः असाधु असम्यक् जातमिदं ऐन्दवं बिम्बं क्रोधाद्द्विधा विधाय एकं शूलिनः शिरस्यधात् द्वितीयं भालस्य ललाटस्य मिषाच्च तस्याः श्यामाया मुखे अधात् । अन्योपि शिल्पी कस्यचिदीर्ष्यया द्वितीयं वस्तु कुर्वाणः तस्याः समीचीनतायां कोपा-त्तद्भङ्क्ता तच्छकले अन्यत्र क्षिपतीति ।

77 वृतेति । अहं नतभ्रुव श्यामाया सुरेखितां सुष्ठुरेखायुक्तां भालतटीं वृतोऽव-तारो भूमावतरणं येन तस्य शिशोर्बालस्य मनोभुवः कामस्य पठ्यमानविमो-हनविद्यायाः अक्षराणां लेखरूपे कर्मणि चामीकरस्य स्वर्णस्य चारु पट्टिका-मवैमि ।

78 अवैतुमिति । अमेयं तुलयितुमशक्यमेतद्गतं श्यामास्थं कान्तिगौरवं अवैतुं ज्ञातुं आवेशेन पाण्डित्याभिनिवेशेन जडैः लुप्तविवेकैः कुपण्डितैः हृदा मनसा या तुलना तोलनसाधनयन्त्रम् धृता तया तुलनयैव तस्याः श्यामाया भ्रुवोश्छ-बलात् द्विधाभूतं, सा तुलैव ह्रिया भग्ना श्यामा भ्रूरूपेण भातीति ।

79 पितेत । यदीयः यस्य पञ्चबाणस्यायं पिता विष्णुः चतुर्भुजश्चतुःसंख्यबाहुः प्रथितः स पञ्चबाणः कन्दर्पोपि ध्रुवमुत्प्रेक्षायाम् चतुर्भुज एवास्ति, यद्यतः हरकर्तृकादपकाराद् द्विगुणीभवन्ती या क्रुध् क्रोधस्तया तदीये श्यामा सम्बन्धिन्यौ भ्रुवौ धनुषी करोति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

80 तदिति । कुटिले सितेतरे श्यामे च तदीये भ्रुवौ तस्याः श्यामाया अक्षिणी एव नीलोत्पले तन्मध्यतस्तन्मध्ये श्यामला या तारका कनीनिका तस्याश्छलाज्जवान्निमज्जतोऽमुष्य चिन्त्यमानस्य मधुपस्य भ्रमरस्य पक्षौ मन्महे ।

81 यदेति । यदा बत वितर्के असिताम्बुजन्मनः नीलकमलस्य संवर्त्तिकयोः नवदलयोः, संवर्तिकानवदलमित्यमरः स्मरस्य कामस्य धनुर्द्वयी स्यात् यदि च तयोः संवर्त्तिकयोः सितेतरन्नीलं केसरं किञ्जल्कः स्यात्तदा विनतभ्रुवः श्यामाया भ्रुवोस्तुल्या तुल्यता स्यात् ।

82 शरत्रयेणेति । शरत्रयेणैव जगत्त्रयं त्रिलोकीं जयन् झषांकनः कामः स्वजैत्रस्य आत्मजेतुस्तव शत्रुशल्यस्य जिगीषयाऽधुना तदीयं श्यामासम्बन्धि यद्दृग्द्वन्द्वं तस्य मिषात् शेषामिषुद्वयीं बिसृजन् बिभाति ।

83 स्थितमिति । यत्तस्या अक्षिभ्यां यन्मन्दाक्षं लज्जा तेन सशङ्कः शङ्का युक्तो योरङ्कुर्मृगस्तेन अह्नाय शीघ्रं मृगाङ्कस्य चन्द्रस्य मण्डले स्थितम् ततः तेन पशुना रङ्कुना तस्येन्दुमण्डलस्य तस्याः श्यामायाः आस्यस्य मुखस्य दास्येपि चिरात् अनौचिती अयोग्यता न विलोकिता इति जाने ।

84 येति । नीलमुत्पलं कर्त्तृ श्यामलया मलिनया स्वया स्वीयया रुचा कान्त्या जलेषु पानीयेषु, उलयोरैक्याज्जडेषु मूर्खेषु च, वासेन हेतुना दर ईषदादरात् अनादरादित्यर्थः विपश्चितां धीमतां तस्याः श्यामाया अक्ष्णोर्लक्ष्म्याः प्रतिपक्षस्य भावप्राधान्येन प्रतिपक्षत्त्वस्य कल्पनाया विकल्पं भ्रममल्पीकुरुते निरस्यति, मलिनकान्तित्त्वाज्जडेषु स्थितिमत्त्वाच्च नीलोत्पलं श्यामाक्षि सादृश्यन्नोपैति इति विपश्चितो निश्चिन्वन्तीत्यर्थः ।

85 परस्सहस्रैरिति । ध्रुवं नूनं परस्सहस्रैस्सहस्राधिकैरपि सुदुर्लभं तस्या अक्ष्णोःसारूप्यं समानरूपत्वं अवाप्तुमुत्सुकं उत्पलं हिमानीं हिमसहतिं विशत्सत्, हिमारण्ययोर्महत्त्वे इत्यानुक् ङीष् च, चिरादुद्गारो यः केदारः उत्पलप्ररोहसरः क्षेत्रविशेषश्च तत्र गतं तपस्यति तपश्चरति ।

86 विधायेति । जलजासनो ब्रह्मारुचां कान्तीनां सारेण तस्याः श्यामायाः अक्षिणी विधाय अयमशेषं पात्रे शेषभागं जले आशु अमार्जीत् किम् अन्यथा नील-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सरोजम् मीनश्च तयोः सुदृशः श्यामाया दृशोर्लक्षणया तत्सादृश्यस्य लवः कुतः स्यात् ।

87 तदिति । अहो सान्द्रे विराजिनी च पक्ष्मणी ययोस्ते तस्याः श्यामाया अक्षिणी विलोक्य हृणीयमाना लज्जमाना, हृणीङ् लज्जायाम् कण्ड्वादि, हरिणी वनस्याङ्के मध्ये उत्सङ्गे च संस्थितापि सशङ्कं भयजशङ्कासहितं यथास्यात्तथा तृणीयं तृणसम्बन्धिनं मुष्टिं शरणी करोति सशङ्कमित्यनेन तत्रापि चक्षुर्भयाच्छरणागतवत्तृणाशन योग्यमेवेति ।

88 स्वभावेति । स्वभावत एव लोला चञ्चला अधुना च मनाक् किञ्चित्स्फुरन्ती या यौवनरूपा वारुणी मदिरा तद्वशाद्विकृतिं गता अतः विलङ्घितः श्रौतपथो वैदिकरीतिः कर्णमार्गश्च यया साऽस्याः श्यामाया दृक् जगतः स्मृते स्वेतरवस्तुस्मरणस्य धर्मशास्त्रस्य च कथाङ्कथमवशेषयेत्, श्रुतित्यागितः स्मृतेर्दूरायास्तत्वात् ।

89 तते इति । नु द्वयमुत्प्रेक्षणे एव तते विस्तृते नतभ्रुवः श्यामाया अक्षिणी तौतातिकतन्त्रे मीमांसाशास्त्रविशेषे उच्चैरधीतिनी किं अधीतमाभ्यामित्यधीतिनी इष्टादिभ्यश्चेतीनिःक्तस्योन्विषयस्य कर्मण्यु (प) संख्यानमिति तौतातिकतन्त्रे इति सप्तमी यतः इमे अक्षिणी अद्य श्रुतिपारगे कर्णान्तिगे वेदावसानगते चापि परमत्यर्थं मुनेरपि स्मृतेश्चित्तवृत्तेः मुनिकृतधर्मशास्त्रस्यापि च प्रबाधते "श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव बलीयसी" त्युक्तेः विरोधे त्वनपेक्षस्यादसति ह्यनुमानमिति न्यायाच्चेति विरोधाभासस्तु नोपपद्यते ।

90 अलमिति । अहो अलङ्कृत प्राप्तोऽनुसृतश्च श्रौतपथः कर्णमार्गो वेदरीतिश्च येन तत्तस्याः श्यामाया विलोचनं विलोलतां चपलतां यथेष्टाचरणं चाञ्चति प्राप्नोति, शुचिः श्वेता शुद्धा च या द्विजाली दन्तानां ब्राह्मणानाञ्चपङ्क्तिः तस्या सविधे समीपे संवसन्नपि अतीवरागी रक्तवर्णोऽन्यनायिकालम्पटश्च मृगीदृशः श्यामाया अधर इव ।

91 गृहीतेति । तस्याः श्यामायाः लोचनगतकृष्णतारकां गृहीतं तस्या भ्रूरूपं धनुर्येन तस्य धनुः शब्देनात्र धनुराकारो द्विमौर्वीको गलोल इति ख्यातो गृह्यते स्वस्य आत्मनः कामस्येत्यर्थः रूपस्य चोरे भवति त्वयि शत्रुशल्ये ईरयिष्यतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रहरिष्यतः मनोभुवः कामस्य सुष्ठु वर्त्तुलाया श्यामाद्दषत् नीलमणिः तन्मयीं गुलीं गुलिकांम लोला इति प्रसिद्धां प्रवेद्मि ।

92 अपाङ्गेति । अहो इयं नतभ्रुवः श्यामाया अपाङ्गस्य कटाक्षस्य भङ्गीपञ्चशररक्ष कामस्य न शरायते बाणवन्नाचरति किम् वाथवा मनोहराऽदसीया श्यामीया नासिका तस्य कटाक्षशरस्येरणार्थं चालनार्थं न नलिकायते किम्. नलिका यन्मध्ये निधाय बाणः क्षिप्यते सा इव नाचरति किम् एतेन शराणां नाली-कत्वं सूचितम् ।

93 तदीयेति । अहं कविः त्रिजगतां या नितम्बिन्यः स्त्रियस्तासां स्वीयंरूपस्य यो दर्पस्स एवान्धतमिस्रमन्धतमसं तस्य घस्मरां अपहन्त्रीं तदीयां नासां दीपस्य शिखां अवैमि, यत् यतः अत्र नासायां शुकः कीरः तथा तिलस्य पुष्पं च मशको लक्षणया पतङ्ग इवाचरति, स्वशब्देनात्र तासां नासिकैव लक्ष्यते काव्ये विशेष शोभया सामान्यशोभापाकरणावर्णनात् मशकीभावोथभि मवमात्रं लक्षयति, सादृश्यमूलकवैरस्य वध्य घातकतया कुत्राप्यवर्णनात् ।

94 नवेति । यौवनरूपवारिणोक्षिते सिक्ते मृगीदृशः श्यामाया अङ्गे नवस्य उदितमात्रस्येन्दोर्निन्दाकरं यद्गण्डमण्डलं कपोलफलकं तस्यच्छलाद्विपक्विमं पक्वं नारङ्गफलं विभाति किल ।

95 अमर्षंत इति । सुदृशः श्यामायाः रदच्छदौ ओष्ठौ पूर्वं अमर्षतः कोपादमर्षत इव च दारुणो यो वामदेवस्य शिवस्य दृग्रूपेण दवेन दग्धस्य पश्चात् अस्या वपुरिदं वपुस्तस्य कान्तिरेव सुधा तत्सेकादाप्तं जन्म येन तादृशस्य रतीशशाखिनः कन्दर्परूपवृक्षस्य द्विपल्लवी उद्भिद्यमानाङ्कुरपल्लवद्वयं किम् ।

96 वशीकृतेति । वशीकृता उद्यती त्रिजगतो जयश्रीर्येन त्वया सह मुहुस्सुरतरूप-माहवं युद्धं तितांसोः चिकीर्षोः मृगीदृशः रदनच्छदस्यौष्ठस्यच्छलात् रागमयी रक्तवर्णा पताकिका भूयो विभाति ।

97 द्रुमत्वेति । वत वितर्के द्रुमत्वजात्यैव जडोपि यो विद्रुमः साहसात्तस्या ओष्ठयोः कान्त्यै स्पृहयाम्बभूव, कस्यापि तुच्छस्यास्य विद्रुम इत्यभिधापि स्वं स्ववाच्यं वस्तु तत्र द्रुमेष्वपि विशिष्टं द्रुमं जडं अचष्ट किम् विद्रुमवृक्षः समुद्रान्तरे प्ररोहति बहिरानयने कठिनीभवतीति मियासुल्लातसंज्ञे पारसीग्रन्थे दृष्टम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

98 जपेति । हे रसज्ञ सुधाया मुधा त्वस्य वैपर्य्यस्य प्रतिभूर्लग्नकः उल्लसन् रसो यस्य तादृशे तस्या अधरे पुरोग्रे स्थिते सति जपायाः प्रसूनस्योपमितिः सादृश्यं प्रजल्पना कथनमात्रं बिम्बवधूकयोः फलपुष्पविशेषयोः तुलापि बन्धुरा श्रेष्ठा न वर्णमात्रे सादृश्यं न रसे ।

99 अहो इति । अहो तस्या रदच्छदौ ओष्ठौ भवद्विषयकरागतोऽनुरागाद्रंजकद्रव्याच्चाशु रक्ततां गतस्य अद्य अभीष्टं यन्मित्रं त्वल्लक्षणं मित्रस्सूर्यश्च तस्योदयतः प्राप्तेरुद्गमाच्च माद्यतः हृष्टस्य फुल्लस्य च तस्या हृदयरूपस्याम्बुजन्मनः कमलस्य मयूखलेखे किरणरेखे किम्, सूर्यसम्बन्धात्स्वच्छद्रव्यस्यान्यत्र किरणोद्गमवत् ।

100 विधिरिति । तत्ततो हेतोः मधुसङ्गस्य माधुर्यसम्बन्धस्य निर्म्मितौ कृती कुशलो विधिः अस्या वरेऽधरे मधुरां माधुर्यवतीं स्विकां स्वीयां कलां समापयत्, किम् यद्यतोऽनेनाऽधरेण क्षणाद्रसालस्य आम्रस्य फलं रसेऽलस मन्दं कृतम् ।

101 कला इति । कलेशस्य चन्द्रस्य षोडशकला विलोक्य तस्याः श्यामाया रूपं विधु ततः कलेशादधिकं विधित्सुना चिकीर्षुणा स्मरेण तदीयानां दन्तानां छलतः षोडशकद्वयीमिता द्वात्रिंशन्मिताः कलाः कृता ध्रुवम् ।

102 अवाप्तेति । अवाप्तो दर्शे अमावस्यायां प्रलयो येन स सुधाकरश्चन्द्रः ध्रुवं चूर्णशब्दः पर्यायभूतो यस्या सा सुधा लेपद्रव्यं तेन कृतः, अमृतकृतत्त्वे तु प्रलयो न स्यात्, स्फुटमुल्लसन्तो दन्त एव सुधाया अमृतस्य पृषतां बिन्दूनां कणा यत्र तत् तस्या सुदृशः श्यामाया मुखन्तु सत्यः सुधाकरः सुधाकरा कर्त्री यस्येति, सुधाकर इति दृष्ट्या इयमुक्तिः कर्मव्युत्पत्तिस्तु दुर्लभा ।

103 विभिन्दतीति । सुन्दरस्य कुन्दस्य सम्पदं शोभां विभिन्दती न तनुः सूक्ष्मा नवातिघना अस्या रदालिर्दन्तपंक्तिः कुमारः भावप्रधानतया कौमारं तारुण्यं चेति वयोद्वयेऽधुना कतरदेकं वरिष्यते, तदहं न वेद्मि कौमारतारुण्यसन्धिविवक्षितो भवेत् ।

104 कृशेति । हीरमणेरपि प्रभां निरुन्धती विशदोज्ज्वला कृशोदरी या कृशोदरी श्यामा तस्येयं रदावली यूनां मनांसि मनस्तवाद्येति पाठे अद्य तव मनः स्ववशेविधास्यतः करिष्यतः मनोभुवः कामस्य कार्म्मणं वश्यकरणादि तन्निमित्ता

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मालिका हीररत्ननिर्मिता जपमाला किमु, अत्रोपमावलेन विशेषाभिधानाद-स्थमालात्वमनिष्टन्नापाद्यते ।

105 शिरीषेति । रूपस्योच्चयेन वृद्ध्या चारुताजुषः अस्या इति शेषः वपुः शरीरं शिरीषस्य वृक्षविशेषस्य कोषात्कुड्मलादपि कोमलं निरूप्य निश्चित्यास्य वपुषः असूयया इव गिरा वाण्या ततोपि गरीयसी गुरुतरा मृदुता उररीकृता इति मन्ये ।

106 लसदिति । लसत रस आनन्दाख्यं ब्रह्म यत्र तस्याः श्यामायाः स्वरस्य कण्ठ-ध्वनेः श्रुतौ श्रवणे सति परिवादिन्याः सप्ततन्त्रीयुतवीणायाः निन्दावत्याञ्च स्वनं को वा शृणोतु, द्विजः पक्षी ब्राह्मणश्चाप्यग्रयनिकः कोकिलः यतः बलि-पुष्टैर्काकैर्दासैश्च पोषितः, अतः इमां कथं वा समासादयतु स्वरतुल्यताद्योत-नाय सामीप्यं भजतु ।

107 तदास्येति । तस्याः श्यामाया आस्यमेव विश्रान्तिगृहं यस्यास्सा सरस्वती चिरेण यां विपंचीं वीणां वादयते तदीया वीणासम्बन्धिनी मृदूनां तानानां सन्ततिरेव अस्या नतभ्रुवः श्मामाया वचसां सुचातुरी न किं, अपितु सैव ।

108 तदीयेति । तदीयेन श्यामीयेन वक्त्रेन्दुना जितेम्बुजे कमले स्थिता विधेः पार्श्वगा सा सरस्वती जडा मूर्खा जलजन्मनः कमलस्य जित्वरे सुदृशः श्यामायामुखेन्दौ कृतमासनं स्थितिर्यया तामिमां तद्वाग्रूपां सरस्वतीं तु बुधां पण्डितां जानामि ।

109 कृतेति । यत् श्यामा निर्माणसमये कृतो य एतस्या आस्यरूप इन्दुस्ततो निमी-लद् यदम्बुजं ब्रह्माधिष्ठितपद्मं तेन स्फुरत्सुदुःस्थं दुःखेन स्थितं आसनं तत्र तस्थुषः स्थितस्य विधेः संभ्रमवशाद् दृढं तस्याः श्यामाया वदने अङ्गुलिरपतत् तत्ततो हेतोः मृगीदृशः श्यामायाः चिबुकं अवनम्रम् ।

110 यथेति । यथानया श्यामया मुहुर्विधेर्ब्रह्मणः नितम्बिनीनां स्त्रीणां सृष्टिः दरिद्रिता दूरीकृता द्युतिर्यस्यास्तादृश्यकारि कृता तथा तेन विधिनाप्यद्यचिरं अस्या मृगीदृशः श्यामाया वदनस्योपमाविधिः सादृश्यं दरिद्रितः, मृगीदृश इति दृश उपमा लाभेपि वदनस्य तदलाभादनुवादायुक्तत्वदोषो नास्ति ।

111 दिवेति । स्मरः काम दिवारजन्यो दिनरात्र्योः क्रमेण मलिने शोभाहीने ये इन्दुपङ्कजे चन्द्रकमले ततः स्फुटं स्फुरत् पाटवं यस्य तस्य धातुर्मत्सरात्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तयोरिन्दुपङ्कजयोर्द्वयोरपि अयातयामा रात्रिन्दिवम् अक्षीणा श्रीर्यत्र तत्. तस्याः श्यामाया आस्यस्य मुखस्य शिल्पं करणचातुर्यं विदधत्कुर्वन् प्रगल्भते अतिशेते । अत्र पूर्वार्द्धे चन्द्रकमलयो रात्रिदिनमात्रशोभितत्त्वं विवक्षितमिति ।

112 प्रसह्येति । प्रसह्य रुद्रेणापहृता एका सती कला यस्य, मुहुश्च राहुकृतग्रासं व्रणेन दीर्णं मण्डलं यस्य स सुधाकरश्चन्द्रः साम्प्रतमिदानीम्भयेन तन्मुखीभूय श्यामामुखतां प्राप्य सुखाकरमानन्दसमूहं संश्रयते ।

113 सलीलमिति । सलीलं यथास्यात्तथा अन्तःसलिलं जलमध्ये कृत आलयो येन तद्यदम्बुजं कमलं रिपुतः सितद्युतेश्चन्द्रात् भयमापत्, सम्प्रति तदम्बुजं तस्याः श्यामाया आननीभूय, हन्त हर्षे, कलाकरं चन्द्रं बलाद् बाधते अभिभवति ।

114 स्फुरदिति । स्फुरन् द्विजानां दन्तानां ब्राह्मणानां चौघः समूहो यत्र, तयाऽधररागरूपया सन्ध्यया सह उज्जिहाना उद्यती स्मितरूपकौमुद्याद् युतिर्यस्य सोऽस्या मुखेन्दुः भवतस्तव मनोरूपं चकोरं उत्कोरकित उद्गतकोरक इवोन्मेषशाली उत्सवो यत्र तादृशं, किन्न तनुयादपितु तनुयादेव ।

115 तदीयेति । तदीयः श्यामीयः रात्रिन्दिवे अचतुरेत्यादिना निपातसुन्दर उल्लसन्मुखरूप-इन्दुस्तत्र धवलस्य स्मितस्य च्छलात् मुदा प्रीत्या निरता सती कलङ्किनि सचिह्ने सदोषे चेन्दौ कृतावहेलाऽनादरो यया सा, कौमुदी इहास्मिन् विधौ पदं न धत्ते किमु ।

116 कपोलेति । सुदृशः श्यामायाः कपोलगतपत्रान् मकराकाररचनाविशेषात् य करेण उल्लसन् ध्वजो, यस्य, भ्रुवा धनुष्मान्, दृशा शरी बाणयुक्तः, तस्याः आस्यरूपे दुर्गे ससुखं वसन् स्मरः कामः भवतः सपत्राकरणं वेधमीहते किम्, सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने इति डाच् ।

117 अदृश्येति । अदृश्यः सौन्दर्यरूपो रसो जलं यत्र तादृशेऽन्यस्याः कामिन्याः शरीररूपे मरूपवर्त्तने मरुदेशे, देशवर्तनी तूपवर्त्तनमित्यमरः, तृषितस्तव मनोरूपोऽध्वनीनः पान्थस्तस्या श्यामाया वरकर्णरूपयोः कूपयोरतिथि किन्न भवेत् । अन्यत्र जलमलब्ध्वा कूपोपरि मरुपान्थो गच्छत्येव ।

118 तदिति । अहो तस्याः श्यामाया आस्यस्य सौन्दर्यरूपे सुधाम्बुधावमृतसमुद्रे अदः श्रवसोश्छलं यस्य तदावर्त्तयुगं जलभ्रमयुग्मं जयति, पत्रावर्त्तयुगे तु

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्विषता बलं सैन्यमेवाम्भोनिधिस्तस्य पारगामिनस्तवापि चित्तेन न्यमज्जि निमग्नम्, तादृशस्य चित्तेनापि समुद्रपारगामिनैव भवितव्यमित्यभिप्रायेण योज्यम् ।

119 यदिति । यद्यत: एके नैव पाशेन विशेषित उद्यमो यस्य स जलानां पानीयानां जडानाम्मूर्खाणाञ्च पतिर्दिगीश्वरः पश्चिमदिक् पतिरभूत्, असौ सुदृक् सुचक्षुः श्रेष्ठज्ञाना च श्यामा तु श्रुती कर्णाविव द्विपाशी पाशद्वयं तया दशदिक्पतेस्ते तव हृदयेश्वरी किन्न भवेत् अपितु भवेत् । यदुपकरणं मूर्खमप्यैश्वर्यं प्रापयेत्तद्द्विगुणं सत् पण्डितं तु अतिबहुलमैश्वर्यम्प्रापयेदत्र किमाश्चर्यम् ।

120 परीति । परिस्फुरन्ति यानि माणवकीयानि अर्द्धहारसम्बन्धीनी(नि) मौक्तिकानि तेषां छलेनोल्लसन्तः स्वच्छा मरन्दसीकरा मकरन्दबिन्दवो यस्य स, अवटोः कृकाटिकायाः श्रिया शोभया चटुलः सुन्दरोऽस्याः श्यामायाः शिरोधिः कन्धरा स्फुटं यदेतस्या आस्यरूपमम्बुजं तस्य नाल एव किम् । अर्द्धहारो माणवक इति, वप्रवटुर्घाटा कृकाटिका इति चामरः ।

121 मृगीदृश इति । मृगीदृशः श्यामाया अयं बुद्धिविषयो गलः कण्ठः जगज्जयार्थं यास्यतः मदनस्य कम्बुः शङ्ख एव, किन्नाऽपितु अस्त्येव, यद्यतो हेतोः ततो गलाज्जगत्रय्या मोहने कार्मणभूता श्रुतिः श्रवणं यस्य सस्वरः ध्वनिरूपः उच्चरति निस्सरति ।

122 नृपाग्रणीरिति । हे नृपेष्वग्रणीर्मुख्य जगत्रय्या गाथकानां गायकानां गर्वस्य गञ्जने निरसने विराजिनी सङ्गीतस्य कलाकौशलं यत्र तादृशे, तस्याः श्यामाया गले अद्य, तिस्रो रेखाः समाहृता इति त्रिरेखं, तस्य लक्ष्येण मिषेण चिरं ग्रामाणां यथा कुटुम्बिनः सर्वेप्येकीभूता भवन्ति हि तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते" इत्युक्तलक्षणानां नन्द्यावर्त्तजीमूतसमुद्रसंज्ञानां मनोहरा त्रयी लक्ष्यते ।

123 मृणालेति । स प्रसिद्धो विधिर्मृणालस्य विसस्य जालान्मृदुतां विकृष्य तस्याः श्यामाया बाहुलते इव तयो, कृतौ रचने कृती कुशलोभूत् किम्, यद्यतः बत वितर्के तया मृदुतया रिक्तस्य शून्यस्याऽस्य मृणालस्याऽन्तर्मध्ये अन्तः शुशिरः (? सुषिरः) मध्याच्छिद्रयुक्तः शिराणां गणः दृश्यते ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

124 अहो इति। अहो लरुच्चद्वालमृणालं तद्वत्कोमला सुदृशः श्यामाया भुजरूपा द्विपाशी पाशद्वयमतिशोभते अलङ्कृतः कण्ठपीठो यया तया भुजद्विपाश्या तव मनसो बन्धो विधास्यते। कण्ठपीठालङ्करणेन मनसो बन्ध इत्यद्भुतपाशता।

125 विमन्दता इति। कोकनदस्यारुणकमलस्य शोणतां विमन्दताऽभिभवता रज्यन्ती नखानां कान्तिर्यत्र तेन अमुना करेणोपलक्षिता अत एव ज्वलनास्त्रं दधानेवाऽसौ श्यामा अङ्गना सुरूपलक्ष्मीमन्यस्त्रीसौन्दर्यं दग्धुमीहते। ज्वलनास्त्ररूप्यसम्पत्तये पूर्वार्द्धे उपलक्षितेति शेषो योजितः।

126 निषङ्ग इति। स्मरस्य मङ्गलश्रियः उत्सवशोभारूपायाः कृशाङ्ग्याः श्यामायाः करः हैङ्गुलः हिङ्गुलेन रक्तः आनङ्गोऽनङ्गसम्बन्धी निषङ्गः तूणीरः, यद्यतः अत्र करे रज्यद्भिर्नखैर्बन्धुराः शोभना या अङ्गुल्यस्तासां छलाच्छराणां पञ्चकं प्रतिभाति।

127 सदिति। एतस्याः श्यामायाः करः विधेर्लावण्यस्य कलाकौशलं तस्य विधौ सतीनामङ्गुलीनां व्याजो येषान्ते, सुष्ठु विद्रुमाणां प्रवालानां द्रुमा यत्र विराजिनः मीनाश्चिह्नतः स्वरूपतश्च मत्स्या यत्र विलसन्ति सरोरुहाणि कमलचिह्नानि कमलानि च यस्मिन् तत् सारस्वतं, सरस्वत्या इदं सारस्वतं, सर एव किन्न। सरस्वतीशब्देनात्र प्रसङ्गसम्पत्तये विधेर्बुद्धिरेव गृहीतव्या प्रतीयते।

128 सुरश्मीति। कान्त्युत्कर्षात्सुष्ठु रश्मिणः काश्मीरस्य कुङ्कुमस्य रसेन रसवद्वाऽरुणो रणतः क्वणतः कङ्कणस्य कैतवाच्छलात् प्रियमभीष्टं रणन् बोधयन् तस्याः श्यामायाः करः स्मरस्येषुभिर्बाणैर्दूनस्य तप्तस्य तव अभयाय द्रुहिणस्य ब्रह्मणः स्वहस्तलेखः किम्।

129 नखेति। नखानां छलादङ्कुराणां पञ्चकेनाऽञ्चितश्शोभितः च पुनर्नवान् पञ्चाङ्गुलिरूपान् पल्लवान् दधत् भवतस्तव तपोरूपपञ्चसुरद्रुमीमयः पञ्चसंख्यकल्पवृक्षसमूहरूपोऽस्याः करस्तव ग्रहणात् त्वत्कर्तृकस्वीकारात् फलिष्यति सफलीभविष्यति। करशब्दस्य तवेत्यनेन सामीप्येऽपि वर्णनीयानुसारेण अस्या इत्यनेनैव सङ्गतिर्योग्या।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

130 वसन्तमिति । नवं वयस्तारुण्यमेव वसन्तमासाद्य अधरस्य मिषादङ्कुरिता नवाङ्कुरयुक्ता अङ्गुलिच्छलाच्च पल्लविता नवपत्रयुक्ता नतभ्रुवः वपूरूपालता अद्य कुचरूपौ चारुकोरकौ कलिके धत्ते किल ।

131 लसदिति । अहो सुदृशः श्यामायाः उभौ कुचौ लसद्यत्तदीयमङ्गं तदेव सुधाधयो ह्लदस्तत्र मज्जतः शिशुत्वमेव खेलन् कलभः करिशावस्तस्य, जलात् किञ्चित् बहिः परिस्फुटौ कुम्भौ अवेहि ।

132 सुतुन्दिले इति । अद्य अस्याः श्यामाया वदनरूपेन्दोः सन्निधौ सुतुन्दिले प्रवृद्धे तव रागरूपेऽम्बुनिधौ तत्रैव निमज्जनं विशङ्कमानेन विरञ्चिना ब्रह्मणा सुतनोः श्यामायास्तनयोर्द्वयमेवान्तरीपं जलान्तस्तटं कृतं किम्, अन्तरीपं यदन्तर्वारिणस्तटम् इत्यमरः ।

133 विमूल्येति । बाल्यं वयः कौमारं विमूल्य निर्मूलं कृत्वा वपुः श्यामाशरीरमेव पुरं विविक्षितः प्रवेष्टुमिच्छतः सख्युर्मित्रस्य नवस्य वयसः यौवनस्य हेतोः स्मरेण कामेन मृगोदृशः श्यामायाः कुचच्छलान्माङ्गलिकौ मङ्गलद्योतकौ कलशौ अकारिषाताम् किम् । शत्रुं विनाश्य तन्नगरं विशतो जिगीषोः मित्रेण मङ्गलकरणवत् ।

134 अहो इति । अहो सुपीना पृथुला सुतनोश्श्यायामायाः स्तनद्वयी प्रसभं बलात्कारेण कुम्भिनो हस्तिनः कुम्भौ न जिगाय न जितवती किम्, अपितु जिगाय, यद्यतः मुक्तामयस्य हारस्य कैतवात् एतयोः कुम्भिकुम्भयोर्य उद्यन् जयस्तत्कर्तृक-पराभवस्तत्सम्भवं यशो बिभर्त्ति ।

135 तदिति । तस्याः श्यामायाः उद्यन् दीप्यमानो य आस्यरूप इन्दुस्तस्य विलोकनात् हृदा मनसा भयं दधानौ, विरहः परस्परवियोगस्तज्जव्यथाया असहौ कुचावेव रथाङ्गौ चक्रवाकदम्पती, पुमान् स्त्रियेत्येकशेषः, शितिरत्नस्य भूषणगतेन्द्रनीलस्य च्छलाद्विषं भोक्तुमिव व्यवस्यतः ।

136 कुचाविति । तपसां परार्द्धैः सुलभौ, रसेन रागेण जलेन चोम्भितौ पूर्णौ, कृशाङ्ग्याः श्यामायाः कुचौ काञ्चनौ कलशौ नु किम्, यद्यतः अत्र कुचयोः मेचकं कृष्णं रत्नमिन्द्रनीलं तस्य च्छलाद्रहस्यावस्तुशंसिनी स्मरस्य मसी या मसीसम्बन्धिनी मुद्रास्ति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

137 कृशमिति । योगबलादिवेति शेषः, अनङ्गतां अङ्गराहित्यमुपेयुष उपेतस्य स्मरस्य साक्षादपिधानस्य तिरोधानस्य कौशलरूपं कृशं सूक्ष्मं कृशाङ्ग्याः श्यामायाः उदरं स्फुरन्ती दृक् ज्ञानशक्तिर्येषां मुनीनामपि दृशं दर्शनशक्तिमकुण्टयत् किन्नु ।

138 जगत्त्रयेति । अहो जगत्त्रये तस्याः श्यामायास्तुलनायाः सादृश्यस्य निराकृतेर्निषेधस्य प्रगल्भं जल्पाकं सूचकं मृगीदृशः श्यामाया वलित्रयं साम्प्रतं कृशस्य लक्षणया अदृश्यस्यापि उदरस्य सत्ता सद्भावं प्रमाणीकुरुते ।

139 अनेकेति । शुभंयुभि शुभान्वितैः; शुभंयुस्तु शुभान्वित इत्यमरः; अहं शुभमोर्युस्, इति युस्. जगतामनेकैः कार्यैर्भृते पूर्णे भवतश्चेतसि विविक्षया प्रवेष्टुमिच्छया तनुतां सूक्ष्मतां भजन्नपि तदीयो मध्यः पुनः प्रकाममतिशयेन तानवं सौक्ष्म्यं अभ्यस्यति ।

140 विधेरिति । नोऽस्माकम्मतेन नवीनशिल्पस्य निर्मितौ कृतौ कुशलः स कामः विधेर्ब्रह्मणः द्व्यणुकस्य क्रमात्, प्रथमं द्व्यणुकस्तत त्र्यणुक इत्यादिरीत्या, कृतिं रचनां विलोक्य अद्य मृगीदृशः श्यामायाः सुमध्यं एकाणुमयं एकपरमाणुरूपं विधातुमुत्सहते ।

141 शरैरिति । मृदुभिः प्रसूनैरेव शरैर्भवतो जयेऽक्षमः स कामः साम्प्रतमिदानीं रुषा गभीरं यत्तस्याः श्यामायाः नाभिसरोजं स एष कोषः पिधानं तस्माद्रोमलतामेव कृपाणिकां छुरिकां विकर्षति ।

142 उदारेति । वेधा उच्चकैरुदारां श्रेष्ठां रोमावलिमेव रज्जुं सुष्ठु नाभिमेव कूपं स्तनौ एव कलशावपि विधाय तदङ्गमेव उद्यानरूपं वनीं प्रभाभिरेवामृतैः सेक्तुमीहते किमु ।

143 विमूल्येति । अद्य तस्याः श्यामायाः अङ्के गभीरं यन्नाभिरूपं बिलं तस्मात् स्फुटत् निस्सरत् त्रुटच्च रोमसमूह एव शृङ्खलं यस्य स प्रमत्तो मत्तस्तारुण्यरूपो गजः बाल्यमेव दृढं बन्धनं कीलं बलाद्विमूल्य खेलति ।

144 भ्रुवेति । धाता ब्रह्मा सुदृशः श्यामाया भ्रुवा मदनस्य धनुश्चापं, रोममालया ज्यामपि नसा नासिकया च तूणं, दृशा चक्षुषा शरान्, विधाय नितम्बयोः कैतवात् मदनस्य रथे चक्रे रथाङ्गविशेषौ युनक्ति किन्नु ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

145 चिरादिति । चिरात्सदैवाऽसारा मध्ये सारेण रहिता अश्रेष्ठा च कदली बलीयसीं ससारां तस्याः श्यामाया उर्वोर्लक्ष्मीं कथमवलम्बताम्, बताद्य प्रतिषेधस्यालाभस्य शंसिनी रेखा बिभ्रता करभेण मणिबन्धादाकनिष्ठ करबहिर्भागेनापि असौ तदूरुलक्ष्मीर्न लभ्या, रेखाणां निषेधकत्वं विवक्षावशादेव ।

146 तपस्ययेति । तस्या उरुयुग्मं तु तपस्यया तपश्चर्यया तदङ्गमेव मोहनमस्त्रमासाद्य अद्य जगत्त्रयं जयतः मदनस्य काञ्चनं स्वर्णाक्तं लसज्जयद्योतकं स्तम्भयुगं मन्महे ।

147 अनङ्गेति । मृगस्येव वल्गुनी सुन्दरे चक्षुषी यस्यास्तस्याः श्यामायाः गुल्फौ ग्रन्थिविशेषौ अनङ्गः काम एव भूपालस्तस्य विहारः क्रीडा तदर्थककन्दुकौ अवैमि, तदीये जङ्घे च ध्रुवं नूनं तयोः कन्दुकयोरुत्क्षेपणकर्मणि चालने उद्ध्र्वक्षेपणे च क्षमे समर्थे योग्ये च अनघे श्रेष्ठे यष्टिके अवैमि ।

148 अकृत्रिमेति । अकृत्रिमया स्वाभाविकया स्वस्याङ्गानां रुचा अन्यासां सुचारुतां सौन्दर्यं भृशं हरन्त्या अभिभवन्त्या हरिणीदृशः श्यामायाः चकिता सरोरुहश्रीः कमलशोभा ससंभ्रमं सावेग यथास्यात्तथा शरण्यं रक्षकं अस्याः चरणमाश्रयत् किम् ।

149 पद इति । नवं दलं पत्रं यद्यतो हेतोः अस्याः श्यामायाः पदः पादस्य लवतां शोभालेशभाक्तां गतं ततः भुवि पदो लव इत्यन्वर्थतया पल्लवनामकम् भवत्, बत वितर्के,बाल्यान्मौर्ख्याद्धेतोरद्य तस्य पदस्तुलां सादृश्यं लिप्सु तु प्रकृष्टबालत्वात् प्रवालसञ्ज्ञां बिभृते धारयति ।

150 अवाप्येति । पद्मं कमलं सुभ्रुवः श्यामायाः पदरूप सद्म दुर्गस्थानं, पदसद्मशब्देन पदत्वं वा विवक्षितम्, अवाप्य स्वस्यान्तकरं सङ्कोचकं सुधाकरं चन्द्रं तथा प्रकारेणाजयत् यथा नखानां मिषात् प्रकटा उल्लसन्त्यः कलाः यस्य सोऽसौ सुधाकरोप्यधुना स्वस्य चरणतापन्नपद्मस्य सेवां कुरुते । अत्र नखरूपकलादर्शनाच्चन्द्रानुमानम् तत्कृतकलारूपो पदाप्रेषणं वा विवक्षितम् ।

151 इतीति । विरञ्चिना इत्युक्तप्रकारेण कचान्केशानारभ्य नखावधि पादनखपर्यन्तं स्फुरन् प्रकर्षो यस्यास्तादृशी अङ्गानां रुचिर्यस्यास्सेयं श्यामा अर्कवशे-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्थितानां राज्ञां शिरोमणेस्तव कृते जगति स्थिता रुचः शोभाः समुच्चित्य संगृह्य कृता वंशस्थं छन्दोपि ।

152 वेल्लदिति । हे राजन्येषु क्षात्रियेषु मान्य, वेल्लत्कम्पमानो धम्मिल्लः संयतकचा एव राहुर्यत्र, बदनम्मुखं हिमरुचिश्चन्द्रो यत्र, लोहितं रक्तमङ्गं यस्य भौमश्चाधरो यत्र, केतुर्ध्वजो ग्रहविशेषश्च तद्वद्वचालोला दृष्टिर्यत्र गुरुर्महान् बृहस्पतिश्च जघनतटो यत्र, सौम्या मधुरा सत्काव्यसदृशी बुधशुक्ररूपा च वाणी यत्र, भास्वती दीप्यमाना भास्वान् सूर्यश्च श्रोणिः कटिर्यत्र, सुष्ठु मन्दामन्दः शनिश्च उल्लासिता पदयोर्गतिर्यत्र, स सग्रहः पूर्वोक्तग्रहाभिधानसहितोऽस्या विग्रहः शरीरम् त्रिभुवनस्य जयिनी साक्षात्कामस्य शिक्षैवेति मन्ये । इति शब्दः प्रथमा सम्पत्तयेऽध्याहृतः ।

153 सुस्निग्ध इति । नृपते, सुष्ठु स्निग्धाश्चिक्कणाः प्रेमवन्तश्च चिकुराः केशाः, अतिनते नम्रे विनीते च भ्रुवौ, श्रुतेः कर्णस्य वेदस्य च पारगं चक्षुः कलाधरं चन्द्रमतिक्रान्तं अतिशयितं कौशलवच्च वक्त्रम्मुखं. शुचितरा अत्युज्ज्वलाः शुद्धाश्चैता द्विजानां दन्तानां श्रेणयः, श्लेषस्तु चिकुरादिष्वसम्भवादत्रापि न व्याख्यातः. सद्वृत्ता वर्त्तुला सदाचारा च स्तनमण्डलीति तस्याः श्याम(मा) या अङ्गानां छलात् नूनं त्वच्चितमेव वित्तं द्रुतं शीघ्रं हर्त्तुं एव दाम्भिकानां वर्गस्समूहो मिलितः ।

154 धम्मिल्लेनेति । या धम्मिल्लेन विधुन्तुदं राहुं, मुखरुचा चन्द्रं, दृशा चकोरं, किञ्च कुचद्वयेन करिणां कुम्भौ, सुमध्येन सिंहं, ऊर्वोर्युगेन रंभां कदलीं विजयते; सेयं त्रैलोक्यस्य जैत्री छविर्यस्याः सा श्यामा श्व आगामिदिने दशदिशां पत्युरपि भवतस्तव, दशदिगीश्वरादपि त्वत्तश्चेति षष्ठीपञ्चमी श्लेषः, करं हस्तं बलिञ्च लब्ध्वा मोदताम्, तुरप्यर्थे ।

155 अङ्गेति । हे राजहंसावतंस नृपतिरूपहंसश्रेष्ठ, त्वं स्मारतापाद्धेतोः अङ्गानां मुखादीनां प्रत्यङ्गानां चक्षुरादीनां च रिङ्गन्ती प्रसरन्ती या गहना अगाधा सुभगता सौन्दर्यं सैव सान्द्रो घनः पीयूषस्य पूरः यस्यां, आनङ्गं कामसम्बन्धि यदुत्तुङ्गं रङ्गस्थलं केलिमन्दिरं तत्र तरलतराऽतिचञ्चला या अपाङ्गभङ्गी कटाक्षरचना सैव तरङ्गा यस्यां, फुल्लद्वक्त्ररूपमरविन्दं पद्मं यस्यां, गले

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कलितानि धृतानि यानि लसन्ति मौक्तिकानि तान्येवोदारो महान् फेनो यस्यां, तामेनां श्यामामेव सरसीमनुसर ।

156 लसदिति । स नरपतिः शत्रुशल्यः लसन्ती या उपवनी देवी तस्या अतीवभव्यां श्रेष्ठां इति पूर्वोक्तां वचोरूपां सुधां स्वयं श्रवः कर्णस्तद्रूपाञ्जलिना पायं पायं अभीक्ष्णं पीत्वा विदितं ज्ञातमपि अच्छं श्रेष्ठं प्रियाया गुणवर्णनं पुनः पृच्छन् सन् हृदि च तां सुदशं श्यामां ध्यायं ध्यायं अभीक्ष्णं ध्यात्वा यामिनीं रात्रिं निनाय ।

157 योन्तर्वाणीति । श्रीरामसिंहनृपतेर्बुन्दीभर्त्तुर्निदेशेन गङ्गासहायशिशुना षोडशसर्गे समापिता टीका ।। इति श्री चाहुवानकुलरत्न—श्रीमहाराजाधिराज-श्री रामसिंह-नृपादिष्ट गङ्गासहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां षोडशस्सर्गः ।।१६।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ सप्तदशः सर्गः ॥

1 अथेति । अथानन्तरं सम्मद आनन्द एवासवस्य मद्यस्य मदस्तेनाहृतं चेतो यस्य, तादृशोऽपि स्थितिविज्ञोमर्यादावेदी निजसम्पदा दिगीशान् इन्द्रादीनपि शिथिलयन्नभिभवन् स दलपो नाम धरणीपती राजा चतुरान् स्वान् सचिवानधिकारिणः अचिरादवोचत् ।

2 सवितुरिति । भवन्तः स्वचरितेन सवितुः सूर्यस्य कुलं वंशं पुनानं शोभयन्तं निजसम्पदा सुरपतिमिन्द्रं चाऽप्यर्थे धुनानमभिभवन्तं दुहितुः श्यामाया वरं अमुं नृपशत्रुशल्यं अद्य यथायोग्यं परिचरन्तु सत्कुर्वन्तु ।

3 वरेति । वरैर्मौक्तिकैर्ग्रथितास्तोरणमाला द्वारबहिर्भागोपरिधार्यवन्दनमालास्तासां या विमलाश्छवयः शोभास्तासां छलेन हसन्ति वदनानि येषां, तानि मे भवनानि गृहाणि सुष्ठु पल्लवितैर्विवृद्धैर्जातपल्लवैश्च प्रमदद्रुमैरानन्दरूपवृक्षैरिव उच्चैः केतुभिर्ध्वजैर्भूषयत ।

4 शुचीति । शुचि शुद्धं यत् शातकुम्भं स्वर्णं तन्निर्मिता ये सलिलैर्जलैर्गर्भिताः पूर्णाः कुम्भास्तैः प्रतिहारभूमिं द्वारदेशमपि आशु सत्कुरुताऽलङ्कुरुत, च पुनः विरजःयथा धूलिरहितमार्गा विलसन्तीश्च ता आपणवीथीर्विपणीः सुष्ठु बंधुरः सुरभिर्गन्धो येषु तैः सलिलैः सिञ्चत ।

5 प्रतीति । किञ्च भृतशोभा अलङ्कारादियुक्ताः मृगदृशः स्त्रियः प्रतिमन्दिरं कलां मधुरां मङ्गलद्योतकगीतिं रचयन्तु, नवो नूतनो नीलश्च यो नीरधरो मेघस्तस्येव धीरो गभीरो निनादो यस्य तच्चतुर्विधं ततानद्धसुषिरघनात्मकं वाद्यं सरसं ससौष्ठवं रसतु ध्वनतु ।

6 इतीति । इति पूर्वोक्तं यत्तस्य दलपस्य निदेशनमाज्ञा तस्य वशंवदमधीनं चित्तं येषां तैः, सचिवैरधिकारिभिस्तथा उच्चैर्बहुला संभृतिः सामग्री व्यरचि संचिता, यथा स्वयमतिथीभवत् इन्द्राणां परार्द्धमपि अनया संभृत्या सुखतः कार्पण्यराहित्येन परिपूज्यं सत्कर्तुं शक्यं किल ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

7 प्रतीति । परमुत्कृष्टमुदारं महत्तद्दलपतेर्नगरं मण्डूरं प्रत्येकं सौधानां राजसदनानां मूर्द्धसु परिबद्धा याः पताकास्तासां चलन्ति अञ्चलानि अग्राणि येषां तान्यंबराणि वस्त्राणि एव कराङ्गुलिकास्ताभिः द्रुतमुच्चैस्त्रिदिवस्य स्वर्गस्य द्युतिं शोभामतर्ज्जयत् अङ्गुलीचेष्टाभिरिवाभ्यभवत् ।

8 अनण्विति । अनणु बहुलं स्फुरन्तो ये मणिगणीया मणिगणभवा मयूखा उल्लसन्नङ्गराग इव तादृशोऽङ्गरागश्च तेन सुभगा सौन्दर्यवती उदञ्चिताः शोभिताः विचित्रा विभूषा ध्वजादयो निष्कादयश्च यस्याः सा, इयं नगरी मण्डूरं (?–पुरी) धृतमूर्तिः शरीरवती उज्ज्वलरसस्य शृङ्गारस्य सखी सहचरीव अचकात्, चकास्तेर्लङ् विथनस्तेरिति सस्पदः ।

9 प्रतिहारेति । मसृणः स्निग्धः उल्लसन् घुसृणस्य कुङ्कुमस्य सान्द्रो धनो विलेपो लेपनमङ्गरागश्च यस्यास्सा, भवनानां प्रतिहारभूर्द्वारदेशः अपि परमुत्कृष्टं शुचिषु तोरणेषु द्वारवहिर्भागेषु ग्रथिता ये मौक्तिकानां गुच्छा स्तवकास्तेषां छवेः शोभायाः कैतवात् संमदस्यानन्दस्य द्योतकं हासं अकृत कृतवती ।

10 विकलीकृतेति । महीन्द्रस्य दलपतेः पुरे मण्डूरे, किलाऽलङ्कारेः विकलीकृतोऽभिभूतः अतिकलोऽतिमधुरस्वरः कोकिलस्य कण्ठो याभिस्ताः कमनीयया रम्यया कान्त्या कलिता युक्ताः कान्ताः स्त्रियः महस्य विवाहोत्सवस्य देवता इव मृदुभिः श्रेष्ठैर्मङ्गलैरुल्लसितः शोभितो रङ्गो गानभूमिर्यत्र कर्म्मणि तथा अगायन् ।

11 प्रमदेति । तत्र दलपस्य राज्ञः नगरे प्रमदो विवाहोत्सवस्तत्र क्रियाः कार्याणि तासां विधौ करणे विहस्ता व्यापृता यथाश्रुतं व्याकुला वा समस्ता ये अभिजना अभियुक्तजनास्तेषां उच्चरन् यः कलकलः कोलाहलस्तेन उद्धतं प्रवृद्धं मेदः लक्षणया वैपुल्यं यस्य, "तपर्त्तुपूर्त्तावपि मेदसां भरा" इति नैषधी ये साशयं प्रयुक्तस्य मेदःशब्दस्यात्रापि प्रयोगान्न दोषः, अतएवाऽतिगरीयान्गुरुतरः अतिवन्द्यानां श्रेष्ठानां वाद्यानां दुन्दुभ्यादीनां निनदः द्रुतं शीघ्रमैन्दत् अवर्द्धत ।

12 समताडयन्निति । अनघाः श्रेष्ठास्ताडघानां वादकशिल्पिनां संघाः, पाणिघताऽघौ शिल्पिनीति ठक्, दृढैर्दण्डैः कोणैः पटध्वनिभृतः श्रेष्ठशब्दोत्पादकान्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पटहान्समताडयन् अवादयन्, वराः श्रेष्ठाः भैरिका भेरीवादनशिल्पाः, शिल्पमिति ठक्, वदनादुत्थैर्जातैः पवनैः फूत्कारैः वराः भेरी सरभसं वेगेन समपूपुरन् पूरयन्ति स्म भेरीशब्देन कविर्गोमुखं गृह्णाति ।

13 विततमिति । अस्मिन्नगरे विततं विस्तृतं ततं वीणादि सततं अस्वनत्, घनं कांस्यादि च सघनं ससान्द्रत्वं यथास्यात्तथा समघोषीत्, अरं शीघ्रं अपिनद्धं आनद्धसज्ञं चर्म्मणा पिनद्धं मुरजादिघनो मेघस्तद्वद्धीरं यथास्यात्तथा अध्वनत्, समीरेण मुखवायुना भृतं पूर्णं रन्ध्रं छिद्रं यस्य तत्सुषिरं वंशादिकमराणीत् चतुर्विधवाद्यवर्णनम् ।

14 अतीति । पुटभेदने मण्डूरे अतिसान्द्रमतिघनं मन्द्रं गंभीरं च रसितं शब्दः येषां उपनृत्यन्त्यो वरनर्त्तक्य इव चपलाश्चारवस्तडितो वरनर्तक्यश्चपलचारु तडित इव च यत्र तैर्वारिदानां मेघानां वृन्दैस्सह पटहानां व्रजस्य अमन्दं बहुलं अभेदः अभवत् ।

15 तरलायितेति । तरलश्चञ्चलस्तद्वदाचरितचन्तोऽभिजनाः अभीष्टजना केकिनो मयूरा इव तेषां कदम्बः समूहो यस्मात् सस्तनयित्नूनां मेघानां नूनो नवीनो निकरस्समूहस्तस्य ध्वनिवद्धीरः गम्भीरः यः अयं पटहव्रजः उच्चरन् उद्भवन् सन् दलपशब्देन लक्षणया तन्मनो गृह्यते दलपमनश्चातकचंचूरिव तां प्रमदा आनन्दाः सान्द्राः सुधा इव ताभिः समपूपुरत् रूपकं तु द्वितीयपादो वारयति ।

16 उचितमिति । अतिगभीर एष वाद्यनिनदः, किलोत्प्रेक्षायाम्, अद्य उचितं परस्परयोग्यं मिथुनं श्यामाशत्रुशल्यरूपं युयुक्षोर्योजयितुमिच्छोश्चतुराननस्य ब्रह्मणः स्तुतिपाठे कविः कुशलः द्विसहस्रसंख्या रसना जिह्वा यस्य स शेष एवासीत् शब्दशब्दवतोरभेदाध्यवसायः ।

17 अपीति । हे श्यामे, नोऽस्माकमपि सुगोप्यं यद्धृदयं मनस्तत्र त्वं येन रमणेन प्रियेण शत्रुशल्येन सह चिरेण रमसे क्रीडसि अद्य स शत्रुशल्य एव ते पाणिं हस्तं स्फुटं प्रत्यक्षं कलयिष्यति ग्रहीष्यति, अतो व्रज मङ्गलविधये चल, हृदि कामपि शङ्का संशयं वाग्दानात्पूर्वमभ्यस्ततरां पिता शत्रुशल्यायैव मां दास्यत्यन्यस्मै वा इति स्वरूपाम् मां भजस्व, माङ् भिन्नम्माव्ययम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

18 इतीति । इति मङ्गलाय विवाहोत्सवाङ्गभूनाय विषये प्रसाधनकरणाय प्रहिताभिर्यात्रादिभिः प्रेषिताभिः प्रहसन्मुखीभिः अतिशयितं नर्म्मकर्म्मणि परिहासवाक्यादौ कुशलाभिर्दक्षाभिः सखीभिः प्रियस्य कामुका इच्छावती सा दलपतेर्दुहिता इति पूर्वश्लोकोक्तं वचोऽभाणि कथिता । युग्मम् ।

19 त्रपयेति । त्रपया लज्जया निजं स्वीयमाननं मुखं नमयन्ती कमपि सात्त्विकभावं "स्तम्भः स्वेदोत्थरोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः । वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥" इत्येषामन्यतमं प्रतिरुन्धन्ती गोपयन्ती असौ श्यामा स्मयमानाः सखीः तरुणं फुल्लं यदरुणमम्बुजं तेन सदृग्भिस्तुल्याभिः कुपिताभिरिव निजदृग्भिः, व्यापारबाहुल्याद् बहुत्त्वम्; अभीक्ष्णमैक्षत् ।

20 अथेति । अथ वयस्याः सख्यः त्रपाभरो लज्जातिशय एव वगुंठपटो मुखपिधानपटस्तेन पिहितां छन्नां, "वष्टि भागुरिरल्लोपमित्यकार लोपः," प्रियस्य शत्रुशल्यस्य यः सङ्गमो लक्षणया तन्निश्चयो मनोराज्यविषयो वास एवामृतं तेन जडीभवन्ति आनन्दस्तिमितानि भवन्ति अङ्गानि यस्याः, मधुराङ्गीं सुन्दराङ्गीं तां श्यामां कथञ्चिदुपायेन प्रवरां प्रसाधनस्य स्नानालङ्करणादेर्भुवं स्थानं अनयन्त, नयतिर्द्विकर्मा ।

21 भृतेति । अथ प्रवरा वृद्धाश्च पुरन्ध्र्यः स्त्रियः तां श्यामां भृताः पूर्णा ये भर्म स्वर्णं तस्य भद्रकलशास्तेषामन्तिकभूमौ समीपे विलसति शोभमाने चतुस्स्तम्भमण्डपे सुपरिष्कृतायां वेद्यां, सम्परिभ्यां करौ तौ भूषणे इति सुट्, परिनिविभ्य इति षः, उपवेश्य यथाकुलधर्मं कुलधर्मानुसारेण समभूषयन् स्नानादिना प्रसाधयन्ति स्म ।

22 अतीति । तदानीमनङ्गः कामः अतिगौरं अदसीयं श्यामासम्बन्धि, वृद्धाच्छः अङ्गं विरहस्य या असहा असविद्यमानः सहः सोढा यस्याः दुःसहा इत्यर्थः, आर्त्तिस्तया परितः पाण्डुवर्णं निरीक्ष्य हरिद्रामयं हरिद्राप्रचुरं यद्वर्णकं, विलेपनमुद्वर्तनमेवात्र गृह्यते, तस्य कपटेन कनकस्य स्वर्णस्य द्रवैरिव लिलेप ।

23 अथेति । तस्याः श्यामायाः शिरसि निहितं निक्षिप्तं यत्कौसुमं पुष्पवासितंतैलं तस्य प्रसरन् यः सुगन्धस्य भरस्तत्र पातुका पतनशीला भृङ्गा मेचकिताः पूर्वं श्यामा अपि स्नेहेनाधिकश्लक्ष्णतापादनेनातिश्यामीकृताः, उत्करोतीति

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

णिजन्तात्कर्मणि क्तः, ये कुन्तलाः केशास्त एव सवर्णत्वाद्बन्धवस्तान् समुपेत्य गुंजितस्य मिषात् कुशलान्यपृच्छन् किम् ।

24 निजेति । अथ ताः पूर्वोक्ता ललनाः स्त्रियः रुचिराङ्गीं श्यामां निजौ स्वीयौ जैत्रौ जेतारौ यौ तस्याः श्यामायाः कुचौ तयोर्विलोकनेन जातया त्रपया लज्जयेव नम्राणि वदनानि येषान्तर्विलसत्सुगन्धि सलिलं येषु तैः कुम्भैरचिरात्स्नपयाम्बभूवुः ।

25 सितेति । सितः श्वेतो यः सीकराणां जलबिन्दूनामुत्करः समूहः तस्य किरा विक्षेप्त्री, इगुपधेति कः, अतएव परिपीताः शशिनः सुधा अमृतानि क्रमाद्वमत उद्गिरतः तमसोऽन्धकारस्य रुचिं कान्ति उच्चैः प्रसह्य दधती सुचकोरस्येव चञ्चला दृक् यस्याः तस्याः श्यामायाः चिकुराली केशपंक्तिः अतिचकाशे ।

26 प्रविकीर्णेति । प्रविकीर्णाः केशाः भृशं भासनशीलं तमिस्रं तिमिरमिव तादृक्केशसदृशं तमिस्रं च यत्र, अन्तरे मध्ये भासनशीला वारिपृषता जलबिन्दवः उद्धततारा इव पृषतवदुद्धततारा‍श्च यत्र विलसद्दुकूलं नवा कौमुदिका च यत्र सासौ श्यामा शरदः ऋतुविशेषस्य प्रदोषसमयं हसति स्म ।

27 घुसृणेति । अद्य असुरभि सुगन्धहीनं काञ्चनं कर्त्तृ घुसृणं कुङ्कुमं तन्मिश्रेणाङ्गरागेण सुभगं सुन्दरं सुरभि चेत्यर्थः सुदृशः श्यामायाः अङ्गं कथं तुलयेत्, तुलाशब्दात् तत्करोतीति णिच्, यदि नाम कथञ्चिन्नवं केतकं स्वर्णकेतकीपुष्पं कण्टकं त्यजति तत्तदा तस्य सुदृगङ्गस्योपमामुषैतु ।

28 अथेति । अथ प्रसाधनविधौ शरीरसंस्करणकर्म्मणि मिथ ईर्ष्यया स्वां स्वामधिकां कुशलतां विदधानास्तास्ताः स्त्रियः सफलतां जनवशीकरणशक्ति नेतुं प्रापयितुं, किमु उत्प्रेक्षायाम्, मदनस्यास्त्रभूतां मृगदृशः श्यामायाः कचधोरणीं केशपंक्ति समधूपयन् अधिवासधूपैस्समस्कुर्वन्, अस्त्रमपि प्रयोगार्थं धूप्यते ।

29 निजेति । तदा धूपनसमये चतुरा आलिः निजसौरभेण आहूतं आकृष्टं यन्मधुव्रतजातं भ्रमरसमूहः, जातं जातौघजनिष्विति हैमः, तेन द्विगुणीभवन्ती सुमलिना श्यामाच्छवियेंषान्तंर्धूपैस्सह अविशेषं भेदाभावमाश्रितवतीं चिकु-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रालीं केशपंक्तिं कथञ्चन महता प्रयत्नेन बबन्ध मलिनजनैरविशेषमाश्रितानां बन्धनमपि योग्यम् ।

30 चिकुरेति । चलदृशः श्यामायाः चिकुरोत्करः केशसमूहः कचपाश्यायां बालपाश्यानामकसीमन्तभूषणे केशबन्धनमुक्तावलौ इति स्वामी, बालपाश्या पारितथ्येत्यमरः, स्थितस्य मौक्तिकानां प्रकरस्य कैतवकेन कपटेन बिलसतो विधुन्तुदस्य राहोः पराजयात्तत्कर्म्मकपराभवाज्जातं सहजं स्वाभाविकं यश एव बिभराम्बभूव ।

31 इदमीयेति । अहो चतुराभिः आलिभिः इदमीये श्यामासम्बन्धिनि, वृद्धाच्छः, ललाटतटरूपे हाटकपट्टे स्वर्णफलके विहितो रचितः कुरुविंदस्य माणिक्यस्य कन्दलस्य नवाङ्कुरस्येव रुचिर्यस्य कुरुविन्दः पद्मरागे इति कन्दलं तु नवाङ्कुरे इति हैमः, घुसृणीयः कुङ्कुमजः तिलकः सः अस्यां श्यामायां ललाटिकां पत्रपाश्यां ललाटभूषणं निरजयत् निर्जितवान् ।

32 रतीति । रतिरङ्गे केलिनिलये मङ्गलरूपः नवेन नूतनेन अञ्जनेन युक्तः सुदृशः श्यामायाः अपाङ्गयोर्नेत्रान्तयोर्विभङ्गः रचनाविशेषः अति अशोभत अहं कविस्तु तं अपाङ्गविभङ्गं रतिजानेः कन्दर्पस्य विजये विषेणाक्तं युक्तं विशिखं बाणं जाने सम्भावयामि बत ।

33 लसदिति । तदा अचिरेण खञ्जनकस्य गञ्जनेऽभिभवे दक्षैः लसताऽञ्जनेन अञ्चितैः शोभितैस्तस्या श्यामाया अक्ष्णोः कटाक्षैरन्तैः विजितं असितं नीलमम्बुजन्म कमलं तस्याः श्यामाया अवतंसस्य कर्णपूरस्य मिषेण श्रुतिकूपे कर्णविवरसमीपे न्यवसत् । अन्योऽपि विजितः कूपे पततीत्यर्थः प्रतीयते ।

34 मणीति । मणिखचितेन कुण्डलद्वितयेन मण्डितं अस्या मृगदृशः श्यामायाः श्रवणद्वयं जगतीं लोकं जिगीषोर्जेतुमिच्छो रतिनायकस्य कामस्य उच्चैरमलमुज्ज्वलं चक्रयुग्मं दधादिव अतिचकाशे ।

35 नवेति । चकितैस्सभयैरिव वरो यो वीटिकारचनविधिस्तेन लसद्भिः फलीवल्लीदलैर्नागवल्लीदलैः नवपल्लवानां व्रजस्य समूहस्य विजित्वरो जेता रागो रक्तिमा यस्य अधरं न्यूनं सुधाया मधुरत्वं यस्मात्तस्मिन्सुदृशः श्यामाया अधरे

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रागो रक्तिमाऽनुरागश्च न्यधायि स्थापितः इयमेव। नीतिर्यत्प्रबलजिग्वर शूरं विलोक्य प्रीतिच्छलेन स्वस्य रक्षणम् ।

36 चतुरेति । किलोत्प्रेक्षणे कलकण्ठ्या मधुरकण्ठ्याः श्यामायाः कण्ठः तदा चतुराभिरेतस्याः श्यामाया आलिभिर्विहितं स्थापितं यत् असितरत्नैर्नील-मणिभिरुद्भटं शोभितं यत्पट्टसूत्रं कण्ठभूषणविशेषस्तस्य कपटात् द्विजो ब्राह्मणः पक्षी च यः पिकः कोकिलस्तस्याऽभिभवादुत्थामुद्भूतामाविलतरां मलिनतरां अपकीर्तिमवहत् ।

37 वरेति । वराणां मौक्तिकानाममलो निर्म्मलो मनोहरस्सुन्दरश्च यो हारः स एवामरसिन्धुर्गङ्गा तस्या बन्धुरे सुन्दरे समागमे लोला सतृष्णा चपला च इयं बुद्धिस्था असितशब्देन नीलमणिस्तेनोल्लसन्गुणः कण्ठसूत्रमेव कलिन्दसुता यमुना अस्याः श्यामाया गलं तीर्थराजं प्रयागमकरोत् किल ।

38 शरदिति । नृपशत्रुशल्यस्य यशसा सदृशो यः करिरदः हस्तिदन्तः पूर्वं क्षरत्कालिकेन्दोरिव रुचा कान्त्या समराजत् अशोभत, स करिरदः सुदत्याः श्यामायाः वलयीभवन् कङ्कणभावं गच्छन् ध्रुवमनुरागतः शोणोऽजायत । हिंगुलेन कृतरक्ततायां अनुरागहेतुकत्वमुत्प्रेक्ष्यते ।

39 वरेति । अथ आलिभिः सखीभिरस्याः कुचयोः सीमा, लक्षणाया स्वरूपमेव, तथा प्रकारेण वरैः श्रेष्ठैः वर्णकैरङ्गरागविशेषैः कञ्चुलकितः स्तनधार्य वस्त्र-युक्त इव कृतः यथा आशुचित्रैर्विविधै रत्नैः खचितोऽपि सुचोलः कूर्पासकोऽपि विफलीकृता कान्तिर्यस्य तादृशः समभूत् ।

40 प्रतिवासरमिति । तदा आभिस्तत्सखीभिः सुतनोः श्यामायाः मध्यकमङ्ग तरुणिम्ना तारुण्येन उन्नतिभाजोः स्तनयोर्भरेण प्रतिवासरं तनुकृशतामापद्य-मानं वितर्क्य अदो मध्यभङ्गं मुखराः किङ्किण्यो यस्यास्तस्या काञ्च्या अचिरादबन्धि बद्धं किम् ।

41 मदेति । अहो यः हंसकः पादकटकः मरालश्च सुकवीनां सार्थसमूहं, मदेन मन्दो यस्तस्याः श्यामाया गतेर्विलासस्तस्य तुलायामुपमायामकदर्थयत् अक्लेशयत्, स एव हंसकः चकितो भीतः सुदृशोऽलङ्कृतिभूतः सन् चरणौ शरणीचकार किम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

42 उपमेति । उपमा सादृश्यं तस्याः प्रकल्पनेन जनितया रुषा क्रोधेनेव सुशोणात्कराच्चकितो भीतः सदरुणाम्बुजरागः श्रेष्ठरक्तकमलरक्तिमा तदानीं प्रसाधनसमये नवो यो यावको लाक्षारसस्तस्य कपटेन अम्बुरुहाक्ष्याः श्यामायाः पदमम्बुरुहमिव अभजत् ।

43 सहजेति । इत्थं पूर्वोक्तरीत्या कुशलाभिरालिभिस्सखीभिः सहजा स्वाभाविकी उल्लसन्ती ललिता कान्तिर्यत्र तस्मिन् सुदृशः श्यामाया काये शरीरे स्वानां कलानां कौशलानां प्रकाशनायैव भूषणानां भारो न्यवेशि स्थापितः, तन्व्याः श्यामायाः स्तनोः शरीरस्य भूषणाय तु न न्यवेशि; सहजशोभावत्त्वेन भूषणानपेक्षणात् ।

44 अतीति । सा सुदती श्यामा गुरोरुपदेशात् अतितीक्ष्णधीर्बुद्धिरिव, सुपुत्राद्विमला अन्वया स्थितिः कुलमर्यादेव, सत्कृता बुधैः स्तुता लसन् रसो येषु ते शब्दा यत्र तादृशसन्दर्भात् कवितेव, परिकर्म्मणः प्रसाधनादतिशुशुभे ।

45 कुलेति । त्रपया लज्जया नतम्मुखं यस्याः सा श्यामा ततो गुरुवर्गात् अमराणां देवानां प्रसादस्य सुहृदं तुल्यां शुभस्य कल्याणस्य गुरुं दानसमर्थामाशिषं लभमाना प्राप्नुवती सती कुलदेवताना चरणयोर्वन्दनं प्रणामः पूर्वो यत्र कर्मणि तथा गुरुवर्गपुरोहितभार्यादिकं प्रणनाम, कुलदेवताः प्रणम्य गुरुवर्गं प्रणनामेत्यर्थः ।

46 अथेति । अथ दलपो मण्डूरेशः मङ्गलद्योतके लग्ने सन्निधिं निकटं व्रजति सति, तरणौ सूर्ये च जलेशस्य वरुणस्य वनिता पश्चिमा दिक् तस्या रसे आसक्तौ पश्चिमसमुद्रजले च मग्ने सति, अस्तमिते सतीत्यर्थः, तं सवितुः कुले वीरं श्रेष्ठं शत्रुशल्यं द्रुतं शीघ्रं तनुजायाः श्यामाया विवाहविषये आजुहाव आकारयामास ।

47 चरेति । चरस्य दलपप्रहितजनस्य वाक्सुधेव सैवासवो मद्यं तेन ससम्भ्रमं सावेगं चित्तं यस्य, परमत्यर्थं अर्थिसात्कृतमर्थिभ्यो दत्तं लसन्तो मणयो यत्र तद्वित्तं येन स, दशदिशो दर्यो गुहा इव तेषु मुखरः शब्दायमानो वाद्यानां निनादो ध्वनिर्यस्य स धरणीश, शत्रुशल्यः, दालपं पुरं मण्डूरं विवेश ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

48 अथेति । अथ क्षितीशितरि पृथिवीशे तत्र शत्रुशल्ये विवोढुं विवाहं वर्त्तुं धरणेभूमेर्मण्डनरूपं मण्डूरं पुरं विशति सति, वत हर्षे, विलसत्कुतूहलरसेन कौतुकोत्कर्षेन उन्मनसः उत्कण्ठितस्य पुरयौवतस्य नगरस्त्रीसमूहस्य संभ्रमभूमा आवेगबाहुल्यमभूत् ।

49 अथेति । अथ तस्य शत्रुशल्यस्य विलोकनविषयके कुतूहले लोलाः चञ्चलाः कमलादधिका च्छविर्ययोस्तादृश्यौ दृशौ यासान्ताः सुदृशः स्त्रियः अत्रैदृशस्थले पुनरुक्तिवारणाय रूढिराश्रयणीवा, सुधाकरेणापि सुधाकरेणेति नैषधीयम्, स्वस्य रुचा कान्त्या स्मरभ्रमस्य कामोऽयमिति भ्रमस्य करं तं शत्रुशल्यमवेक्ष्य द्रुतं स्वहृदि रतिभावं रतिर्नाम कामस्त्री तद्भावं चकमिरे शत्रुशल्ये कन्दर्पभ्रान्त्या स्वयं रतित्वमैच्छन्नित्यर्थः ।

50 अवरोधेति । अवरोधोऽन्तःपुरं तत्र वासेन निवासेन, तद्वासमर्यादयेत्यर्थः, परिबद्धानां वगुण्ठानां मुखावरणवस्त्राणां प्रविधूनने इतस्ततश्चालनेन नेत्रनिरावरणत्वकरणे आकुलौ करौ यासान्ता यद्वा अवरोधवासोऽन्तःपुरस्थानं तत्र परितो बद्धो यो वगुण्ठ आवरणवस्त्रमित्यादि, रुचिराङ्ग्यः सुन्दरमूर्त्तयो नार्यः स्त्रियः विलसति शोभमाने गवाक्षे निहितैः स्थापितैर्नयनैरब्जैरिव तोरणस्रजं वन्दनमालामिवातन्वत ।

51 मधुरेति । मधुरं शनैः शनैरेकदेशकलनाच्छिथिलं यत्प्रसाधनविधानं तेन विकीर्णां कवरीं केशपाशं आशु शीघ्रं लसदंसे स्कन्धे कलयन्ती धारयन्ती विलसन् सकंकतिकः प्रसाधनीसहितः पाणिर्यस्याः सा काचन मृगलोचना स्त्री चारु सुन्दरं तं शत्रुशल्यमपश्यत् ।

52 रतीति । तदा रतिजः सुरतजन्यो यः प्रजागरस्तेन स रागे रक्ते विधूर्णन्ती नयने यस्याः, अनवेक्षितो न दृष्टः नत उन्नतश्च मार्गो यया, स्खलनेन उल्लसन्हसो हासो येषां तादृशैः सखीजनैर्दृष्टा काचित्प्रमदा मदेनाऽलसं यथास्यात्तथा इयाय ।

53 अशनायितमिति । अशनमिच्छतीत्यशनायितो बुभुक्षितस्तमतीव रुदन्तं शिशुं बालं सरभसं सावेगं स्तनपानतः प्रविमोच्य स्फुटं दृश्यमानं कुचमण्डल यत्र कर्म्मणि तथा सम्यगुपेयुषी प्राप्ता अन्या स्त्री विटानां पिङ्गानां दृशां लोचनानां महोत्सवरूपा आसीत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

54 इतरेति । घनं यज्जघनस्तनं तस्य भारादधिरोहिणीषु निश्रेणीषु कथमपि महता कष्टेनातिमन्दं यथास्यात्तथा पदं ददती इतराऽन्या स्त्री तदा उपकारिकां शत्रुशल्यव्यवधायकं राजसदनमुपकारकर्त्रीं चापि कृतो निजोतिशयितोऽपकारः शत्रुशल्यदर्शनप्रतिबन्धो यया तादृशीं हृदि मेने ।

55 लिखितेति । स्वमनसो विनोदे निपुणा स्वलिखितं अर्द्धं पञ्चशरस्य कामस्य चित्रं करे यस्याः साऽन्या स्त्री गवाक्षात् एतं नृपं शत्रुशल्यं तस्य पञ्चशरस्य विजयिनं प्रविलोक्य उज्झितस्त्यक्तो मदः कामसौन्दर्याभिमानो यस्याः तादृशी सती स्मरशिल्पं स्वमनोविनोदहेतुककामचित्रलेखकलां द्रुतं शीघ्रमौज्भत् अत्यजत् ।

56 अपरेति । त्वरया अतित्वरया अतिशयेन दोलितश्चालितो मध्यो यत्र कर्मणि तथा द्रुतं शीघ्रमित्वरी गमनशीला, इण् नश्जिसर्त्तिभ्य इति क्वरप् टिड्ढति ङीप्, रतेः कामस्त्रियाः विजित्वरं रूपं यस्याः प्रसृताः ये श्रमजन्या अम्बुकणाः स्वेदबिन्दवस्तैर्मण्डितौ गण्डौ यस्यास्सा अपरा तु तं शत्रुशल्यमवेक्ष्य सात्त्विकभावं स्तम्भादिकं व्यधित धृतवती ।

57 द्रुतेति । द्रुत धावनेन उन्मुखरं सशब्दं यन्नूपुरं तस्य शिंजया स्वनेन मुखराः सशब्दाः, उल्लसन्ती पदयोर्गतिर्यस्यास्तस्या इतरस्याः कस्याश्चित् मुदिता लक्षणया स्फुटीभूता कुचयोः सीमापर्यन्तभागः अभितो विलोलतरोऽतिचञ्चलो हारस्तस्य मयूखानां छलतः जहास हसति स्म, प्रेम्णा उल्लसति स्मेत्यर्थः ।

58 मुखेति । मुखस्य रंजनं रागजनकं ताम्बूलं तस्या ग्रहणे लोलो व्यापृतः करो यस्याः सम्यगदभ्रेण बहुलेन संभ्रमरसेन आवेगातिशयेनाऽऽकुलं चित्तं यस्याः स्मितमुखी अन्या काचित् कलिता गृहीता वीटिका यया तया करशाखयाङ्गुल्या अमुं शत्रुशल्यं स्वसखीभ्यस्ता उल्लासयितुं समदर्शयत्, क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी ।

59 मदनेति । मदनेन कन्दर्पेण अमनाक् बहुलं अनलसमनवरतं च यथास्यात्तथा ज्वलन्त्यङ्गानि यस्यास्तस्याः परस्याः कस्याश्चित् उच्चैः उन्मनसा उत्कण्ठितेन मनसा कर्त्रा, गले चञ्चला या स्रग् माला तद्गतानामसिताम्बुजानां नीलकमलानां दम्भान्मिषात्तदवेक्षणाय शत्रुशल्यदर्शनाय नयनानि प्रकटीकृतानि नेमानि कमलानि, किन्तु तस्या मनसो नयनानि इत्यपह्नुतिः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

60 तदिति । तस्य शत्रुशल्यस्य अवेक्षणेन उत्पुलकौ उद्भूतरोमाञ्चौ अतः पुष्यन्तौ वर्द्धमानौ उरोजौ स्तनौ यस्याः सा सुचतुराङ्गना सुचोलं कूर्पारकं प्रकटं त्रुटन्तमवलोक्य आलिङ्गनेभाः परिविश्यती सती अहो चातुर्यं मुहुः सौचिकं चोलनिर्म्मातारं प्रणिनिन्द निन्दितवती, उपसर्गादिसमासेपीतिणः, तेन संकुचितश्चोलः स्यूतोऽत संमदवशात् त्रुटतीति ।

61 रतीति । घनं पक्ष्मलिते मान्द्रीकृते सिध्मादिलजन्तात्तत्करोतीति णिच् ततः स्तः अक्षिणी यस्याः सा कापि रतिजाया यस्य तस्य रतिजानेः कामस्य मानजयिनं मदभञ्जनं तं क्षितिजानि शत्रुशल्यनृपं अवेक्ष्य सहजसुन्दरगात्रीं स्वभावरमणीयमूर्त्तिं दलपतेर्नन्दिनीं श्यामामपि रतितोऽधिकां निरणैषीत् निर्णीतवती ।

62 इतीति । इति प्रकारेण पुरवधूनां नयनरूपैरब्जैः कमलैः पूजितः धरणीपतिः शत्रुशल्यः मृदुना मन्देन गन्धवाहेन पवनेन चलैस्तोरणैर्लक्षणया वन्दनमालिकाभिरेव हस्तैर्द्रुतमाह्वयन्तं बन्धुमिव दलपतेः प्रतिहारं द्वारमपश्यत् ।

63 पवनेति । अत्र द्वारे स नृपः शत्रुशल्यः पवनेनोल्लसन्तश्चलन्तः किसलया अङ्गुलिका अङ्गुल्य इव तत्तुल्याङ्गुल्यश्च तासामोघेन स्फुटं दर्शितो योऽभिनयस्य गीतानुसारिचेष्टा वशेषस्य विभ्रमो विलासस्तेन भव्यां श्रेष्ठां, मुखराः गुञ्जन्तो द्विरेफा एव विवक्षितविवेकेन भ्रमरगुञ्जनमेव तत्सदृशी च कलामधुरा गीतिरिव सा च यस्यास्तां रंभां मङ्गलार्थमारोपितां कदलीं तन्नामिकां च अमरलासिकां देवनर्त्तकीमिव अमंस्त ।

64 अथेति । अथ प्रतिहारे द्वारे समुपस्थितं प्राप्तमेतं शत्रुशल्यं शुश्रुवान् श्रुतवान् दलपतिः पदातिरेव समुपगम्य दोष्णोर्भुजयोर्युगं प्रविसार्य तूर्णं विलसत् यत्तस्य शत्रुशल्यस्यांयं तस्य परिरम्भ आश्लेषस्तज्जन्यं सुखाब्धिमगाहत ।

65 बहुमानेति । सुरराजस्येन्द्रस्य सम्पदोऽभिभावुका भूतिरैश्वर्यं यस्य सोऽयं दलपः प्रतिमानं संख्यामतिक्रान्तं उपेतं गृहमागतं सुहृदां बन्धूनां समाजं सघं बहुमानपूर्वमादरपूर्वं सभायामुपवेश्य सुचतुरैः श्रेष्ठैरुपचारकैस्ताम्बुलादिभिरार्च्चत् सदकरोत् ।

66 पुरुषेति । बह्वीनां वाहिनीनां सेनानां नदीनां च परिवृढः स्वामी मणिभी रत्नैः पूर्णपुरुषेषूत्तमाय विष्णवे चामुष्मे शत्रुशल्याय साक्षात्कमलां लक्ष्मीमिव निजां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कन्यां श्यामां परिदित्सुर्दातुमिच्छुरसौ दलपः श्रुत्युक्तविधेर्यैः क्रमस्तेन पूजां अर्थाच्छत्रुल्यस्योपचक्रमे प्रारेभे, प्रोपाभ्यां समर्थाभ्यामित्यात्मनेपदम् ।

67 कृतेति । कृतः बन्धः श्रेष्ठः पाद्यविधिरुपलक्षणतया विष्टरार्घपाद्याचमनीय-विधिर्येनैष दलपतिर्द्रुतग्मधुपर्क्कमाहरत् आनयत् शत्रुशल्यः कान्तायाः श्यामायाः अधरस्य माधुरी माधुर्यं तस्या मधुरो मनोहरो बन्धुः सदृश इति धियेव अविलम्बतः परिचुचुम्ब अर्थान्मधुपर्कम् ।

68 इतरेति । तदा दलपनाम्नि दलपाख्ये सुराज्ञि सतीत्यर्थः न पूजनादिति समासान्तनिषेधः गुरुणा पुरोहितेन इतरेतरस्य परस्परस्य वरं मन्मानसरूपं रत्नं तस्य चोरयोस्तयोः श्यामाशत्रुशल्ययोः करयुग्मं माङ्गलिकौ मङ्गलप्रयुक्तौ यौ कङ्कणौ दोरकौ तयोर्दम्भात्समबन्धि बद्धम् सुराज्ञि देशे चौरहस्तो बध्यत एव ।

69 अतीति । अथ एतयोः वरवध्वोः श्यामाशत्रुशल्ययोः करयुगं अतिकर्कशैः कुशैर्दर्भैः परिबध्नन् सन् गुरुः पुरोहितः तरुणं यदरुणं अम्बुरुहं कमलं तस्य दर्पस्य विमर्दे धृतो योगोऽवयवशक्तिर्येन तं अस्य करयुग्मस्य कुशलत्वं प्रवीणत्वं विदधे, पूर्वं रूढ्यैव कमलदर्पविमर्दे कुशलमभूत् अधुना तु कुशं लातीति योगोऽपि जात इत्यर्थः ।

70 कनकमिति । वनीयकानां याचकानां वनीं समूहमनु लक्ष्यीकृत्य कनकं स्वर्णं वर्षन् यः वरस्य शत्रुशल्यस्य करः अवन्यां पृथिव्यां ये वदान्या दानशीलास्तेषां निकरे उत्तरः श्रेष्ठः उपरिभागगामी चैव समदर्शि लोकैर्दृष्टः स वरकरः वधूकरं प्रतिगृह्णन् सन् विधिविशात् वरहस्तोपरि कन्याहस्तं कुर्यादिति शास्त्रवशाद्दैववशाच्चाध आसीत् ।

71 वरेति । जगतीतले वर्त्तमानाः श्रुताः प्रसिद्धाश्चक्रवर्तिनो राजानस्तेषां वशे वशीकरणे कार्म्मणमिव कर्म्म यस्य स एष वरस्य पाणिर्हस्तः विनतो नम्रः सन् स्वस्य वशीकृतौ वशीकरणे क्षमतरा समर्थतरा या छविः कान्तिस्तया धीरं सुन्दरं वधूकरं उच्चैरुपरिभागे अभृत अधृत ।

72 श्वसुर इति । श्वशुरेण दलपेन प्रदत्ता मणियुक्ते कुण्डले चूडा चूडामणिश्च यस्मै स वरः शत्रुशल्यः या अमुना श्वसुरेणाधिकण्ठं कण्ठे निहिता स्थापिता तां वरां मौक्तिकस्रजं मुक्तामालां कान्तायाः श्यामायाः विलसन् विसस्य मृणालस्येव म्रदिमा मार्दवं यत्र तां बाहुलतामेवामन्यत ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

73 तपसेति । तपसा प्रसादयुक्तं वदनम्मुखं यस्यास्सा मदनारेः शिवस्य दयिता पार्वती नितान्तमत्यन्तं अमतानां शत्रूणामन्तकरं विनाशनं यमसिं खड्गं ध्रुव- मुत्प्रेक्षणे दलपतयेऽदरां कूकुदः, सत्कृतालङ्कृतां कन्यां यो ददाति स कूकुद इत्युक्तलक्षणस्स दलपतिर्द्रुतं शीघ्रं तमेवासिमस्मै शत्रुशल्याय ध्रुव अदित अदात् ।

74 विलसद्रिति । धनदस्य कुबेरस्य जित्वरी सम्पदस्य स उदारो महान् वदान्यो वा स दलपतिर्विलसन् सशक्तिकः क्षुरिकासहितः कृपाणो यस्य तममुं महीन्द्रं शत्रुशल्यं कुतुकेनानेकं यौनक पारवर्हं समजिग्रहत्, पूर्ववत् ग्रहेर्ज्ञातार्थतया निर्वाहः ।

75 धरणीति । एष दलपतिः क्षितिवासवाय महीन्द्राय वराय शत्रुशल्याय विल- सन्ती द्युतिर्यस्य तद्धरण्यां यो विहारस्तस्य रस आस्वादस्तत्र लालस उत्कटेच्छा युक्तं चित्तं यस्य तत् वरं श्रेष्ठं सुरयौवतं देवाङ्गनासमूहमिव कनकमयभूषणै- र्दीप्रं दासीशतमार्पयत् ।

76 प्रविसारीति । अयं दलपः अस्मै शत्रुशल्याय हेममहीध्रात्सुमेरोस्सारमप- हृत्येव प्रविसारिणी प्रसरणशीला सारतरा श्रेयसी या कान्तिस्तया विराजन् यो मणीनां पुञ्जस्तेन राजता सुवर्णेन सुष्ठु वर्णः शोभा यस्य तद्भोजनार्थकं सुष्ठु भाजनं पात्रं समदत्त ।

77 क्षितीति । उदारश्चासौ नरेशः स दलप एत शत्रुशल्यं यः पतद्ग्रहः क्षिति- नाथस्य शत्रुशल्यस्य वक्त्रं मुखं तस्माद्विगलद् यद्दलपूगं ताम्बूलयुक्तपूगफलं तस्यन्छलं यस्य तेन पद्मरागेण माणिक्येन खचितो भविता तं दरेण भर्म्मणा कनकेन निर्मितं पतद्ग्रहं निष्ठीवनपात्रं द्रुतमजिग्रहत्, निर्वाहः पूर्ववत् ।

78 मदेति । दलपेन वराय मदस्य सौरभे उल्लसितः संभ्रम आवेगो येषान्तेषां भृङ्गाणां प्रकरस्य स्फुरद्भिर्मधुरैर्गुञ्जितरूपैर्मन्त्रैः सततं वसन्तस्य विभव शोभां स्थिरयन्तः स्थिरीकुर्वन्तः, यद्यपि तत्करोतीति णिचि इष्टवद्भावात् स्थापयन्त इत्यापत्तिस्तथापि "अत्युत्सुकं नृपसुतास्तनकोशयुग्मस्पर्शोत्सवे स्थिरयमाण इवात्तधर्यं" इति वालभारतादिदर्शनाद्बाहुलकान्न दोषः महेभाः महागजा ददिरे दत्ताः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

79 अतीति । जनता जनसमूहस्तदा अतिभूरिभिर्भासुराभिर्मणिभिः रमणीयैः अद्भुतस्य भर्म्मणः स्वर्णस्य भूषणैर्विभूषितः वेषो यस्याःस्तां गजतां गजसमूहं तुल्यामिति प्रविरूढौ पुनरुत्पन्नौ पक्षौ यस्य स कनकाद्रिः स्वर्णशैलस्तस्य सनाभि सपिण्डां यावत् किन्न मेने, अपितु मेने । जनता गजतेत्युभयत्र समूहे तल् । उत्प्रेक्षेयं पक्षस्थानीयः कुप्यस्तु स्मरणीय एव ।

80 दधत् इति । स दलपः प्रकीर्णकानां चामराणां विघूर्णिनां भ्रमणशीलानां घृणीनां रश्मिस्थानापन्नकेशानां कपटात् प्रभञ्जनकस्य वातस्य गञ्जनं तिरस्कारस्तज्जन्यकीर्ति दधतः दधानान् सहोदरधिया सिन्धुशब्दवाच्यदेश समुद्रयोरभेदाध्यवसायान्मणयोऽस्मत्सहोदरा इति धिया, मणिभिः उच्चैः कृतसङ्गान् भूषितान् बहुसैन्धवानश्वान् वरसात् वराधीनानकृत ।

81 मदनेति । मदनस्येषुभिर्मेदुरं व्याप्तं सत्तरो वेगो येषान्ते ये वरस्य शत्रुशल्यस्य कामाः मनोरथाः आशु वध्वाः श्यामायाः सविधं समीपं गता निगमनानि विदधुः कृतिनः कुशलाः अमी वरकान्त्याः तदीययौनकसमये दलपेन दिष्टा दत्ता ये तुरङ्गास्तेषां छलतो मिषात् पुरोऽग्रे बभुः, कृतिनः इति वरविशेषणं तु वृत्तिगतत्वान्न भवति ।

82 बह्वीति । बह्वीनां वाहिनीनां सेनानां नदीनाञ्च परिवृढः स्वामी अनघायसुकृतिने भूमघवते महीन्द्राय वराय शत्रुशल्याय सुबहुहास्तिकं हस्तिसमूहं, अचित्तहस्तीति ठक्, आश्वसमूहं, तस्य समूह इत्यण्, मणीनां वृन्दञ्च वितरन् ददत्सन् उच्चैः अम्बुधिममन्दयत् तुच्छीचकार, समुद्रेण इन्द्राय एकहस्तीतुरगदानात् विष्णवेप्येकमात्रमणिदानात् ।

83 अदुनोदिति । विषमो दुस्तरो यो विरहज आधिर्मनोदुःखं बहुतिथा बहुपूरण्यः, तस्य पूरणेऽटि बहुगणेति तिथुक्, तियोर्दिनानि, अत्यन्तसंयोगे द्वितीया, उभयोर्वरवध्वोः श्यामाशत्रुशल्ययोर्मनः अदुनोत् उपातापयत्, इमौ द्वावपि वधूवरौ तमेवामुमाशुशुक्षणिमग्निभूतं अनुनेतुं प्रसादयितुं विधिप्राप्त मन्त्रैः प्रदक्षिणं दधतुः विदधतुरित्यर्थः ।

84 श्रुतिरिति । यत् तदा श्रुतिः 'आरोहे मम श्मानमश्मेवत्त्वं स्थिरा भवेति वेदः, तां प्रसिद्धां इमां सुदृशं श्यामाम्प्रति अश्मवत्पाषाणवत्स्थिरतामाशशास अनुशास्ति स्म, शासु अनुशिष्टौ इत्यस्माल्लिट्, तदद: आशासनं ध्रुवं सत्य-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रभावात् विरहरूपं विरहसदृशञ्च दुःसहं सिन्धुं समुद्रं अतीतरत् तरति स्म, स्वार्थे णिच्, पाषाणा अपि श्रीरामप्रभावात्समुद्रमतरत् इति प्रसिद्धं; अहल्याविषयं वा योज्यम् सिन्धुशब्दः परं कुत्रापि सार्थको न स्यात् ।

85 उभयोरिति । तदा परस्परस्य वपुषः शरीरस्य या द्युतिः सम्पत् कान्त्युत्कर्ष-स्तस्य श्रवणाद्यस्तयोरुभयोः श्यामाशत्रुशल्ययोरनुरागः सीमां मर्यादामुदलङ्घत उल्लङ्घते स्म गुरुः पुरोहितः वसनबन्धनमाचारप्राप्तमञ्चलग्रन्थिबन्धनं तस्य दम्भान्मिषात् तं मर्यादालङ्घिनमेतयोरनुरागं सुदृढमबध्नात्, मर्यादातिपाति हि गुरुणा बन्धनीयः ।

86 सदिति । एषा श्यामा धवस्य पत्युः शत्रुशल्यस्य निदेशतः आज्ञातः अर्ककुलस्य सद्गुरुर्वशिष्ठस्तस्य दारान् सुष्ठु पतिव्रतायाः श्यामायाः गुणगणाद्भीतेः स्वपराभवभयादिव कृतं साधु श्रेष्ठं विष्णुपदमात्रमाकाशं भगवच्चरणं च शरण्यं रक्षकं यया तां सतीमरुन्धतीं ताराविशेषं समपश्यत् ।

87 तरुणेति । सा करभोरुः श्यामा स्वकं यच्चेतस्तद्रूपायां समिधि काष्ठे उत्स-मिद्धो ज्वलितो यो विरहाग्निस्तस्य कणानामिवाभा यस्य तं तरुणं फुल्लं यदरुणमम्बुजं तद्वद्विराजी शोभनशीलो यो विनेयानामग्नौ क्षेपणीयानां लाजानामञ्जलिस्तत्र राजन्ते तच्छीललाजानां निकरं द्रुतं अग्निसादकृत जुहाव ।

88 निहितेति । अथ तया श्यामया निहिता आहुतयो यत्र तस्य हुतभोक्तुरग्नेश्चितो भूमा बहुत्वं यया सा धूमततिः आशु जजृम्भे ववृधे, अहो धृतमूर्तिमती सुतनोः श्यामायास्तनूं दहतो विरहाग्नेरपकीर्तिरेव किम् ।

89 अनयोरिति । तदानीं अनयोः श्यामाशत्रुशल्ययोः करयोर्व्यतिकरेण सम्मेलनेन सात्त्विकभावोदयेन यत् बहुलं घर्मसलिलं स्वेदः प्रससार, निजां तनुजां पुत्रीं श्यामां वितरतो ददतः दलपस्य पाणिगैर्जलैः सङ्कल्पनिमित्तैः एतत् घर्मसलिलं द्रुतं समगोपि गोपितम् । मीलितमलङ्कारः ।

90 समुदञ्चीति । समुदञ्ची वर्द्धनशीलो यः पञ्चशरः कामस्तज्जनितं चापलं अनवस्थितिः तद्भाजोरनयो श्यामाशत्रुशल्ययोर्विपुलः पुलकानामोघ आस

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चकाशे, वन्दिजनैः कृता लक्षणया गीता तत्कुलयोः कीर्तिस्तरयाः श्रवणेन स्रुत-मक्षिसलिलमौचित्यादानन्दवाष्पं येषां तैर्लोकैस्सपुलकौघो न समवेदि विदितः ।

91 अवियातेति । अवियातः उभयोरपि शालीनतया नात्यन्तमुद्भूतः न विगतो वा, धृष्टे धृष्णुर्वियातश्चेत्यमरः, मन्मथात् समुत्थो विकारः स्वेदकम्पादिर्य-योस्तावेतौ श्यामाशत्रुशल्यौ अवलोकने वरवधूदर्शनविषये आकुला उत्सुका याः कुलवध्वस्ताभिः कृतस्य रन्ध्राणां छिद्राणां प्रकरस्य समूहस्य च्छलेना-ङ्कुरितं वरकन्यादर्शनायोद्भावितं नेत्रसहस्रं येन तत् कुतूहलस्य कौतुकस्य रहो गृहं कौतुकागारमिति यावत् यत्तु: अत्र गृहरन्ध्राणि तन्नेत्रत्वोत्प्रे-क्षितानि ।

92 इहेति । इह कौतुकागारे सुचिरं बहुकालं तदीयया श्यामासम्बन्धिन्या सखितया सौहृदेन त्वतलोर्गुणवचनस्येतिपुंवत्, उज्झितलज्जा त्यक्तत्रपा नर्म्मणि हास्ये चपला कृतो हसो हास्यं यया सा कापि चपलाक्षी रचिता वीटिका चर्वणयोग्यतायै खदिरसारादियोगपूर्वमाकारविशेषो यस्य तं मुखरागं ताम्बूलं मिथुनं वरवधूयुग्मं मिथः परस्परं समजिग्रहत् शत्रुशल्यहस्तेन श्यामायै श्यामाहस्तेन च शत्रुशल्याय ग्राहयति स्म, निर्वाहः पूर्ववत् ।

93 परयेति । परया स्त्रिया परस्परस्य सुनामनि पृष्टे सति, कन्यायै वरनामनि वराय च कन्यानामनि पृष्टे सतीत्यर्थः, द्रुतं शीघ्रमाभ्यां वरकन्याभ्यां त्रपया लज्जया शिरो विनमितम्, अथ अन्यया सा नामप्रष्ट्री निजगदे गदिता तदे-वाह हे सखि, इदानीं मिथः प्रणतं कृतप्रणामं एतन्मिथुनं वरवधूयुग्मं पश्य ।

94 अपरेति । अपरा स्त्री हुतो यो हुताशनोऽग्निस्तस्य भूत्या भस्मना छुरिताः सङ्गता अलकाः यस्य तं वरं शत्रुशल्यं मुकुरं दर्पणं परिदर्श्य दर्शयित्वा परा-मन्यां स्त्रियमगदत्, तदाह अयि सखि, यः निजं स्वीयम्भालं पुरुषायितं बन्धविशेषं नयति पुरुषायितबन्धसुरतव्यापारितचरमिव दर्शयति स कतरो वा द्वयोर्मध्ये क इति वदेति शेषः पुरुषायितबन्धे नायकस्य नायिकासादृश्यं भवतीति सुरतक्लान्तनायिकामुखसदृशं शत्रुशल्यस्य मुखं दर्पणे दर्शयामा-सेत्यर्थः ।

95 त्रपयेति । परयाऽन्यया कर्त्र्या त्रपया वदनं विनम्य धृतम्मौनं येन तन्मिथुनं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्यामा शत्रुशल्यरूपं आशु अगद्यत अकथ्यत, यदि युवां इतरेतरं परस्पर कृतो मानो याभ्यां तादृशौ जातौ तदावां युवामनुनेतुं प्रसादयितुं कतरो जनः व्रजतु ।

96 उपहस्यमानमिति । इति प्रकारेण ताभिरभीक्ष्णं उपहस्यमानं तन्मिथुनं सम्यग् अमन्दः बहुलो यः सम्मद आनन्दस्तेन सुगद्गदा या वाणी तस्या वरा या माधुरी माधुर्यन्तस्याः प्रकटनं प्रकटीभवनं तस्य भियेव अनुत्तरन्तूष्णीम्भाव-मेव शरणीचकार आलम्बे ।

97 उपनीतमिति । अथ तदा उच्चैरतिशयेन इतरेतरस्य परस्परस्य चिरं वांछितो यस्सङ्गस्स एवामृतं तस्य लाभान्निर्यती दूरीभवन्ती अशना या बुभुक्षा यस्य तादृशमिवैतन्मिथुनं कर्त्तृ उपनीतमानीतमपि चतुर्विधं भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्य-रूपं भोज्यमभूरि स्वल्पमेव बुभुजे ।

98 अथेति । अथ स्वपनेन निद्रया घूर्णिते नेत्रे यस्य तादृशे स्वसखीजने विजगृहा-नुपयाते सति रहसि विजने स्थितावपि तौ वधूवरौ मुहुरुच्चैस्त्रपया लज्जया वलितं संवृत्तं आननं यत्र कर्म्मणि तथा तस्यां निशि सुषुपतुः ।

99 साम्मुख्येति । प्रथमं साम्मुख्यस्य स्पृहयालु अभिलाषि मानसं यत्र तादृशमपि त्यक्त आभिमुख्यस्य सम्मुखी भवनस्य क्रमो यत्र, ततः क्षणमात्रं मन्दः स्पन्द-श्चलनं तेन युते ईक्षणे यत्र अथानन्तरं अमीलन्तौ न निमीलन्तौ चलावपाङ्गौ नेत्रान्तौ यत्र तादृशं, अहो ततः क्षणं पार्श्वयोरभिवृत्तिः परिवर्त्तनं तस्याश्छला दन्योन्यस्य कृतोऽङ्गसङ्गो यत्र तादृशं तयो रहः एकान्तशयनं विचित्रं नाना-विधमासीत्, शार्दूलम् ।

100 वैमुख्यादिति । वैमुख्यात्पराङ्मुखशयनादनधीतो न प्राप्तो दर्शनविधिर्यत्र, मन्दाक्षेण लज्जया मन्दायितो मन्दीभूतोऽन्योन्यमालापस्य भाषणस्य रस आनन्दो यत्र दरस्य प्रथमसङ्गसाध्वसस्य काव्येषु प्रसिद्धस्यादरेणाधिक्येन परित्यक्तमङ्गसंश्लेषणमालिङ्गन यत्र, दूरादुज्झितं त्यक्तं चुम्बनं यत्र, द्रुतं शीघ्रं गलन्दूरीभवन् लीलायितस्य लीलावदाचरणस्य प्रक्रम आरम्भो यत्र, तादृशोऽपि अन्तर्मनसि सम्मदेनानन्देन घूर्णितः प्रसृतस्तयोः श्यामाशत्रु-शल्ययोः स्वापक्रियाया विभ्रमो विलासः अजनि जातः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

101 सौजन्येति । सौजन्येन सज्जनतया उद्धताः श्रेष्ठा या जन्यानां "जनेती" इति प्रसिद्धानां जामातृवत्सलानां, जन्यो जामातृवत्सले इति हैमः, राजिः पंक्तिस्तया हसने हास्ये "सीठणा" इति प्रसिद्धगीते आलोला चपला या स्वस्य बालावली स्त्रीसमूहस्तस्याः प्रत्यादेशे प्रतिहास्यनिवारणे वशंवदेनाधीनेव तत्परेण अतिशयितमाशिता भोजिता ज्ञातयः स्वपरपक्षक्षत्रिया येन तंन दलपेन, त्र्यहं त्रीणि दिनानि आत्मधामनि स्वगृहे आवास्य स्थापयित्वा कृतमनेकोपहारैर्वस्त्रभूषणदिभिरर्हणं यस्य स शत्रुशल्यनृपतिः प्रीत्यार्थिभ्यश्चारणादिभ्यः बहु वसुद्रव्यं व्यतारीददात् ।

[इति सप्तदशसर्गटीका प्रकाशाख्या समाप्ता]

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अष्टादशः सर्गः

1 अथेति। अथ प्रभाते विबुधानां मागधानां स्तावकविशेषाणां श्रेणयः प्रथमे ये विभ्रमा विलासास्तेषामनुपमोऽलौकिको यस्संमद आनंद एवाम्भोनिधिरसमुद्रस्तस्य प्रगाहनविधिरवगाहनकरणं तेन स्फुरन्निर्बाधबहुलो यः श्रमस्तस्यादरात् अतिशयात् हेतोः चिरं कृतः शयः शयनं येन तं महाशयम्मनस्विनं प्रेयया श्यामया सयुतममुं शत्रुशल्यं उदबूबुधन् बोधयन्ति स्म। पृथ्वी छंदः।

2 सुधेति। तदा अगाधा गभीरार्था उक्तयो येषान्तैस्सुमगधैः स्तावकैः कर्तृभिः सुधाया यो मधुरिमा माधुर्यन्तस्य सन्महद्यत् अपमानदानमसत्कारकरणम् तत्रोद्धता प्रगल्भा या प्रियाया अधरजन्या माधुरी माधुर्यम् तया सह या सहजबंधुता स्वाभाविकमैत्री तया बंधुरैः सुन्दरैः अतएव पदं पदं प्रति द्रवन् स्रवन् यो रसस्तस्य विलासः शोभाविशेषस्तत्सारभूतान्यक्षराणि येषान्तैः पदैर्गिरः आशु जगिरे गीताः।

3 चिरमिति। हे विजयिनामुत्कर्षवतां तेजसां पते राजन् सूर्य च त्वमधुना चिरंजय जय उत्कर्षमुद्भावय रसेन निद्राद्यसक्तया अलसं यत्स्वमुखपुंडरीकमिव स्वमुखमेव पुण्डरीकं च तस्य श्रियं प्रसारय दर्शय विकासय च परमुत्कृष्टं नयने चुंबति व्याप्नोति तच्छीलं निद्रारूपं निद्रासदृशं च तमोंऽधकारं द्रुतम्परिहर तव उदये उत्तरलं वर्द्धमानं तर्षस्याभिलाषस्य चक्रं समूहो येषां तान् द्विजान् ब्राह्मणादिवर्णान् उत्तरलस्तर्षो येषां तान् चक्रद्विजान् चक्रवाकाख्यपक्षिणश्च प्रमोदयानंदय सूर्य, त्वं व्यङ्ग्यम्।

4 उदंचीति। भो राजन् सूर्य च उदचि शोभनशीलं यत् यन्मृदुलं कोमलं स्मितं तद्वदुल्लसिता लीला विकसनशोभा यस्य तद्यन्नीलोत्पलं तस्य प्रहासे शोभाजयेन हसने विकासे च धृतं साहसं शीघ्रता यैस्तैः, लीलेत्यंतमौचित्यवशात्संबोधनं वा, अलसः शनैः प्रवर्त्तमानः पक्ष्मणोः शिक्षाक्रम उन्मेषणं येषु अलसानि पक्ष्माणि येषान्तेषां निद्राणानां शिक्षाक्रमो जागरणं येभ्यस्तैश्च विराजिभिः शोभनैर्निजदर्शनैरीक्षणव्यापारैरुदयव्यापारैश्च परमा दर्शनीया

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रीरुत्कर्षो यस्यास्तामिमां प्रभातस्य सुषमां शोभां साम्प्रतमनुगृहाण सफलतां नय ।

5 उदारेति । इह महोज्ज्वले प्रकाशवति उषसि प्रभाते उदाराणि श्रेष्ठानि दर ईषत् दन्तुरन्ति विकसन्ति सन्ति अरविंदानि पद्मानि तेषां वृन्दस्य उल्लसन्मरंदो मकरन्दस्तज्जन्यमदस्य सम्मदेन आनंदेन अलसं मन्दं यत् विलासयुक्तं लास्यं नृत्यमिव गमनन्तेनोद्धत उत्कृष्टः अतः कामिनो रहस्यं यद्रतं तज्जन्यं श्रमं परमत्यर्थं परिहरन्निरस्यन् सुखः सुखकरः गंधवाहः पवनः वहति चलति दंतुरदिति उरच्, निष्पन्नादुन्नतदंतवाचकाद्दंतुरशब्दादाचारक्विपि शता ।

6 प्रवत्स्यतीति । निजप्रिये प्रमथनाथस्य चूडामणौ चंद्रे प्रवत्स्यति अस्तं गमिष्यति देशांतरं गमिष्यति च कृशतमाल्पावशेषाऽतिकृशा च द्विजानां पक्षिणां रुतमेवोद्धतं बहुलमाक्रंदितं रोदनं यस्यास्सेयं तमी रात्रिः पांडुरास्तारकाः चिरेण गलितांजने ये स्वनयने ताभ्याम् अतिमानमत्यर्थं स्रवतः सुवाष्पभरस्याश्रुसमूहस्य सीकरान् कणान् किरति तिरोधत्ते क्षिपति च ।

7 अखंडेति । हे धराखडल महींद्र प्रचंडविरहेणोल्लसन् यो युवतेर्गण्डः कपोलस्तद्वत्पांडुरं अखंडस्य शशिनो मंडलं बिम्बं विजयते शोभते, हे नृषु वर श्रेष्ठ तारकाणां गण उदारा महती या सुदरिद्रता तया आतुरा ये विदग्धाश्चतुरास्तेषां वैदग्ध्यं चातुर्यं तद्वत्कृशतमायते कृशतम इवाचरति, न स्फुटं शोभते इत्यर्थः ।

8 क्षपेति । विधुश्चन्द्रः सांप्रतमधुना तव क्षपाकरस्य चन्द्रस्य गुर्वी महती या त्रपा लज्जा तस्य करैः कारकैर्मयूखैः किरणैः खेलद् शोभमानं यन्मुख तस्मिन्नुल्लसति इतः स्थानाल्लीयते किं च बत वितर्के अनूरोः सूर्यसारथेः करैः किरणैर्हस्तैश्चापि मंथिताभिभूता जातमंथा च यामिनी रात्रिरेव सुष्ठु यमुनाकृशानामृक्षाणां ताराणां छलात् किमपि फेनायते फेनमुद्वमति फेनाच्चेति वक्तव्यमिति क्यङ् ।

9 नेति । मित्रस्य सुहृदः सूर्यस्य च विरतिरभावोऽस्तं च प्रिया यस्य तादृशं न च पुनः विषादेन दुःखेन विषादे शिवे च लब्ध आलयः स्थानं येन तादृशन्न जातु कदाचिदपि न कलितः प्राप्तः क्षयो येन विभासी प्रकाशमानो द.षाणां दोषायां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रात्रौ चोदयो यस्य तादृशश्च तमसांधकारेण राहुणा च विधूरितं ग्रस्तश्च ईदृशं युष्माकं चाहुवाणानां यशोरूपं सुधांशुं चंद्रमवेक्ष्याऽतिलज्जितो विधुश्चन्द्रः इतो लीयते, ध्रुवमुत्प्रक्षणे ।

10 नभ इति । नभस्याकाशगता ये मुनीनां कामिनीजना स्त्रीजनाः तेषां वलीभवन्तस्तत्कृतदेवादिबलिभावमापन्ना ये तंडुलास्तेषां भ्रमेण प्रसभं तुंदिलः प्रवृद्धो यो भोजनलाभात् प्रमद आनंदस्तेन कंदलत् उद्भवत् रंहो वेगो येषां ते अंकुरवाचकात्कंदलशब्दादाचार क्विप्, ततः शता, अरुणस्य सूर्यस्य कराणां रश्मीनामालयः पंक्तय एव पारावताः कपोता सजवं सवेगं पुरोचल उदयपर्वत एव कुलायो नीडं तत उज्जिहाना उड्डीयमानाः संतः चटु लक्षणया प्रियं यथा(स्या)त्तथा उडूनि चिन्वते ।

11 गुणेति । दीपकैर्निशि प्रचुरं यत्तम आशु गुणस्य वर्तेः स्वस्थतादेश्च प्रगुणिम्ना प्राचुर्येण स्फुरता तरुणिम्ना प्रौढतया यौवनेन च उल्लसतां रोचिषां नाशितं बले निजगले तेजसामुदराग्नीनां च भक्षितं च सांप्रतं परिणता वृद्धा इव प्रतनुतां कार्श्यंगता अमी दीपकाः बहला महती या कज्जलस्याली पंक्तिस्तस्याश्छलात् तत्तम एव वमन्ति किमु, बलाद्बुभुक्तं हि वम्यते ।

12 निशान्ते । निशाया अन्तस्य नाशस्य समयव्ययो यस्या तादृशी छविर्यस्य स चासौ निशांतस्य गृहस्य, निशं तापयतीत्यमरः, दीपानामुच्चयः समूहः सुदुर्जन इव निरवशेषितः दग्धो दूरीकृतश्च स्नेहस्तैलं प्रेम च येन तादृश ईक्ष्यते दृश्यते दशाया वर्तेः जीवनपरिपाकस्य चान्तगः जरन्वृद्ध इव स्वस्य परिशाम्यन्ती या ओजसः ज्वालाया औदर्याग्नेश्च छटा तया हेतुना हतो निर्वाणो य उल्मुकस्तद्वन्मलीमसं कृष्णवर्णं कज्जलं भूरिशः बहुशः वमति ।

13 द्रुतमिति । द्रुतं रचितो जागरो येन स चासौ श्रुतेर्वेदाध्ययनस्य सुखस्वरेण ध्वनिना कर्णसुखोत्पादकेन ध्वनिना च अञ्चन् शोभमानो यो द्विजानां व्रजस्संवस्तस्योल्लसन्त्या असूयया झटिति स्वयं जागरूकः गृहवासि कपोतानाम्योतोत्करोऽर्भकसंघः प्रियस्य प्रथमसंगमेनातुरा या नवांगना तस्याः कुंथनं संक्लेकेशनं प्रियवियोगोत्पादनेन दुःखं तस्य श्रुति द्योतकवाचं पठति, यद्यपि प्रथम संगमे साध्वसवशादातुरा भवति तथापि वियोगमनेच्छतीति कुंथनेत्युक्तम्।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

14 भृशमिति । हे जनेश बत वितर्के अलीनां भ्रमराणां ततिः भृशमतिशयेन सम्यगनिशं निरंतरं निशां रात्रिमत्यंतसंयोगे द्वितीया, शयानां संकुचन्तीं स्वपतीं च अलसितां जातालस्यां, भावप्रधानोऽलसशब्दः, अनूरो वरुणस्य किरणानामुत्करेण समूहेन सह यः व्यतिकरपस्संबंधस्तेनोल्लसन् संभ्रमो यस्या स्तामतो जाग्रतीमिमां कमलिनीं मधुरगुंजितैः सखी रतिजं रहो रहस्यव्यवहारमिव पृच्छति ।

15 इत इति । बत विपत्तौ अहो खेदे विलोक्यतां दृश्यताम् इतोऽत्र प्रदेशे कुमुदिनीनां वनी स्फुरत्तमेऽतिप्रकटे तमो निद्रा तद्रूपेंऽबुधौ चकोराणां चारुभि उच्चयैस्समूहैः सह निमज्जति, चकोराणां चन्द्रप्रियत्वात्तथोक्तिः, परत्र प्रदेशे च पुरोहरित् पूर्वदिक् विखेदहृदयैः प्रसन्नचित्तैः रथांगयोश्चक्रवाकयोर्युग्मैस्सह मुखे प्रारंभदेशे वक्त्रे चानुरागं रक्ततां प्रीतिं विवृणुते प्रकाशयति । सहोक्तिः ।

16 प्रशाम्यतीति । हे विशाम्पते राजन् दिशां तुहिनदीप्तिश्चन्द्रस्तद्रूपे दीपे प्रशाम्यति सति सुभीरुः भीतियुक्ता अभिसारिका नायिकाविशेष, प्रियस्य निकेतनान्निस्सृता, अहो अथ जनैः उषः समयस्य मंगलीकृतं नलादीनां पुण्यश्लोकानां यश इव प्रातस्मरणीयत्वेन मंगलहेतवे गीतं ते यशः निशम्य मीलितत्वसम्पत्तये श्वेतवस्त्रेण वपुः पिधत्ते छादयति ।

17 रहस्येति । हरिणलोचनायाः नायिकाया कुचयुगे अमी प्रत्यक्षायमाणाः प्रभाकरस्य सूर्यस्य करेभ्यः किरणेभ्यः स्फुरन् यो दरो भयं तस्माद्धेतोः कृतो योऽस्तभूभृतोऽस्ताचलस्य भृगोः तटात् प्रपातः पतनम् तेन शकलीभवन् खंडितीभवन यः शशधरश्चन्द्रस्तस्य शंकायाः संभावनस्य कराः रहस्य सुरतमेव रणस्तत्र कार्म्मणस्य कर्म्मकुशलस्य, कर्मणि मंत्रादिसाधने कर्मकारके इति हैमः, स्वरमणस्य प्रियस्योल्लसतां पाणिजानां नखानां व्रणा स्फुटम्भान्ति । उत्प्रेक्षैवात्रालंकारः ।

18 त्रयीति । अपि च किं चेत्यर्थे त्रय्या वेदत्रयस्य पठने कर्म्मठाः प्रगल्भा उन्मठा उल्लसन्मठो निलयो येषां तादृशाः, प्रादिभ्यो धातुजस्येत्यादिना समासः, ये बटवो ब्रह्मचारिणस्तेषामुच्चकैः प्रोच्चरन्ती मुखान्निस्सरंती श्रुतिस्तस्या स्वराणां परंपरायाः क्रमस्य अनुकृतिनर्म्म अनुकरणरूपं हास्यम् तत्र कार्म्मः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मेव, यद्यतः असौ श्यामा तरणिवंशभुवः शत्रुशल्यस्य श्रीरामस्य चानुभावतः कर्म्मशीलो ध्वनिर्यस्य स द्रुतं दरिद्रा दुर्गना नष्टा इति यावत् निद्रा यस्य स कुक्कुटः स्फुटं रसेनाऽऽसक्त्या अलसितौ जातोत्थानालस्यौ यौ दंपती जायापती तयोः श्रवणशष्कुल्याः कर्णच्छिद्रवेष्टनस्य, वेष्टनं कर्णशष्कुलीति हैमः, निष्ठूरं कठोरं यथास्यात्तथा रटति ।

19 प्रसुप्येति । ससुखं यथास्यात्तथा उभयोः पार्श्वयोः वृत्तिः परिवृत्तिस्तस्या व्रतैर्नियमैर्निशां प्रसुप्य, अत्यन्तसंयोगे द्वितीया, विकुंचितं पुरोरतं यदद्वितयं यत्र तया सालस समालस्ययुक्तं यथा स्यात्तथा उत्थिताः करेण शुण्डया धृता प्रक्षिप्ता धूलिर्यैः कृतं विराजत् अंबूकृतं मुखशब्दो यैस्ते गजाः करिणः सचोत्कृति चीत्कारसहितं यथा स्यात्तथा मधुरं इक्षुकाण्डं भुञ्जते, स्वभावोक्तिः।

20 सेति । पश्चिमस्य पश्चाद्भवस्य पदद्वयस्य प्रसरणेन प्रसारणेन सहितं त्रिकं पृष्ठवंशाधरदेशं विनम्य नमयित्वा वपुः शरीरमायतं दीर्घं विधाय वलितोऽग्रपाद............ नीचीकृतः कंठो यत्र कर्मणि तथा मुखेन हृदयमालिङ्गच धृताः कंपिता उत्कटा महत्यः सटाः बाला यैस्ते चानन् प्रोथो नासा येषान्ते तव हया अश्वास्सहेषितं स्वजातिशब्दसहितं यथास्यात्तथा दूर्वाङ्कुरान् कवलयन्ति भक्षयन्ति ।

21 कियदिति । हे महीश अहो उद्धता प्रगल्भा वशितोऽधीनतां नीतः वल्लभो यया सा स्वाधीनकान्ता नायिकेव अद्य निद्रायां रतिः प्रीतिः कियच्चिरं कियत्कालपर्यन्तं भवतो नयनं परिरक्ष्यते आलिंगिष्यति, रथांगयुगस्य चक्रवाकमिथुनस्य मेलने सद्गमने प्रतिनिधिर्लक्षणया प्रतिभूः रुचां तेजसां निधानं सूर्यः पुरोहरितः पूर्वदिशः वदनबिंबस्य प्रथमभागस्य मुखमंडलस्य च चुंबनशीलः सन् पुरोग्रे पूर्वस्यां वा उदंचति उदेति ।

22 लसदिति । हे प्रभाकरस्य सूर्यस्य कुलेऽवतंस मुख्यप्रभो श्रीशत्रुशल्य लसद्यद् घुसृणं कुंकुमं तेन निर्मितं तिलकभूषणरूपं द्विजेशस्य चन्द्रस्य ब्राह्मणश्रेष्ठस्य रुचे कान्तेरिच्छायाश्च दूषणम् पूषणं सूर्यम् धृतवती भुजंगायिता भुजंगी व्यभिचारिणी वाचरितवती, क्यङन्तात् क्तः क्यङ्मानिनोश्चेति पुंवद्भावः, इयमैन्द्री हरित् पूर्वदिक् तद्न्यासां ककुभां दक्षिणादीनां सुभगतां सौभाग्यं निर्दयं दयारहितं यथास्यात्तथा दरिद्रयति दूरीकरोति स्वयमेव शोभते इति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

23 निभालयेति । हे विभो, निभालय, पश्य दिभाकरस्य सूर्यस्य कराणां किरणानामुत्करः समूहः प्रथममतिस्फुटं अग्रिमक्ष्माभृतः उदयाचलस्य मुख्यभूपतेश्च किरीटकुरुविन्दति मुकुट पद्मरागवदाचरति च पुनः क्रमात् द्रुतं शीघ्रं अमुष्योदयाचलस्य पादश्रियां प्रत्यंतपर्वतशोभानां चरणशोभानां च अलक्तकयति, यावकवदाचरति, तदनु धरारूपे चिकुरपाशके केशपाशे सांद्रसिन्दूरवदाचरति. सर्वत्र आचारक्विप्, कुरुविंदः पद्मरागे इति हैमः, पादाः प्रत्यंतपर्वता इत्यमरः ।

24 सुदुस्सहेति । सुदुस्सहः त्वया सूर्येण च सहैवोदयत स्वाभाविक इत्यर्थः यो वरः श्रेष्ठः करप्रतापः हस्तप्रभावः किरणतेजश्च तेनोद्धते समृद्धे द्विजगणेषु ब्राह्मणेषु द्विजगणैश्चाहितः स्थापितो दत्तश्चार्घः पूजा अजलिश्च येन यस्मै च तादृशे भवति त्वयि इह विभाति सति अधुना चिरं मथितः अभिभूतोऽदृश्यतां नीतश्च सत्पथः धर्म्माचारो मार्गश्च येन तत्परतमः शत्रुरूपं शत्रुतुल्यं च तमः, आद्ये उपमितसमासो वा, अति संत्रासतः सुगहनमुदरं यासान्ता गिरीणां दरीर्व्रजत् सत् दरीदृश्यते अतिशयेन दृश्यते, सूर्यः त्वं व्यङ्ग्यम् ।

25 समुद्रेति । हे विभो, हे भुवनेषुरत्न, कमलनाभस्य विष्णोर्नाभीभवः ब्रह्मा रत्नाभिधं तव पितामह तस्य श्रीरत्नस्य तुलाविधौ सादृश्ये लसद्यत्प्रमाणं तद्वदाचरंतं भवंतमपि इत्युभौ द्वौ युवां समुद्रेण परिमुद्रितस्य क्षितितलस्य धुर्य्यौ धूर्वहौ विदधे चक्रे ।

26 निरर्गलेति । यद्यपि ब्रह्मणो भुवो धुर्यौ द्वौ कृतौ तथापि निरर्गल अतिवृद्धो यः सतः अर्गलासंज्ञकस्य आगरानामपुरस्याधिपति शाहजादो राजपुत्रः खुर्रमस्तस्य यः ज्वलन् प्रतापः स एव लसन्नाशुशुक्षणिरग्निस्तस्य विनाशे धाराधरः मेघः च पुनरमुष्य शाहजादस्य यश एवाक्षरभूतः क्विप्प्रत्ययस्तस्यापहारे नाशे वेरपृक्तस्येति सूत्रेण लोपे च दाक्षी सुतः पाणिनिः ईदृशो रत्नस्तवोपरिभुवो भरं दधत्सन्सुखमुपैति ।

27 क्षितिमिति । लसन्नुदन्वान्समुद्रो यस्यां तां क्षितिं राजन्वतीं श्रेष्ठभूपवतीं विदधता, राजन्वान्सौराज्ये इति निपातः, गरीयसी गुरुतरा श्रीर्यस्य तेन मघवता इन्द्रतुल्येन त्वया अनघा श्रेष्ठा प्रवणानां बहिर्द्वारप्रकोष्ठानां भूरि-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

र्महती भूमिर्देशो यस्यां सा प्रगीतं प्रसिद्धं यद्गुणानां गौरवं महत्त्वं तेनोद्धतैः दिगीशानां लोकपालानां राज्ञां च वृन्दैः श्रिता मही नाकिनां देवानां पुरी अमरावतीवारचि यद्वा महीमघवता महीन्द्रेर्णेति राजविशेषणं अनघैः प्रघणैः भूरिर्महती चासौ भूमिश्चेति विशेष्यम् प्रघणेति नाकिपुरी पक्ष प्रकृष्टघने ति व्याख्याने णत्वं दुर्लभम् ।

28 श्रुतीति । यदपि हे मानवेन्द्र, मानसे मनसि श्रुतीनां प्रकरेण वर्णितं प्रवराणां धर्म्मोत्पादककर्म्मणामुत्करं समूहं प्रमाणयसि प्रमाणीकरोषि तथापि रिपूणां कामिन्यः स्त्रियस्तद्विषये रचितं तापो दुःखं तद्रूपं पापव्रतं येन स त्वं अधिक्षिति क्षितौ परश्रुतिं शत्रूणां श्रवणं प्रकृष्टवेदं चोच्चकैरधिक्षिपसि अवमन्यसे विरोधाभासः ।

29 रणेति । हे विशांपते राजन्, अमर्षेण परुषा त्विट् यस्य तेन त्वया रणांगणमुपेयुषां प्राप्तानां विद्विषां संयत् कथमलाविलूना न कथमपि इत्यर्थः, यद्यतः हे क्षितिप राजन्, ऐन्द्रपदगाः स्वर्गगाः सुरपुरंध्रीभिर्देवाङ्गनाभिर्नीरध्रिता अव्यवधानेन सङ्गता अमी विद्विषः दिव्यां भव्यां शुभां श्रियं प्रकाममत्यर्थमुपभुंजते ।

30 अखर्वतरेति । अतिशयितोऽखर्वो महान् सर्वतो मुखं प्रसारो यस्य स चासौ रयो वेगश्च अखर्वतरस्य सर्वतोमुखस्य जलस्य रयश्च तेन समुल्लसन्तीभिर्वाहिनीभिः सेनाभिर्नदीभिश्च समुद्धतं प्रकृष्टं परांबुधिम् शत्रुरूपं श्रेष्ठं च समुद्रं गाहमानोऽपि यः ज्वलति वर्धते अद्य रिपुकामिनीनां शत्रुस्त्रीणां रचितो मोहो येन तं तव प्रतापं प्रचंडतरस्यातिक्रूरस्य वाडवस्य समुद्राग्नेः प्रतिभटं स्पर्द्धिनं ऊहामहे वितर्कयामः ।

31 भवदिति । अहो आश्चर्ये विद्विषः भवतस्तव भुजयुगरूपादरणेर्मथनकाष्ठात्प्रभवन् उत्पद्यमानो य उच्छिख उर्ध्वज्वालः प्रज्वलन् प्रतापरूपो दहनोऽग्निस्तत्र द्रुतं निजान्स्वीयानसून् प्राणानेव आहुतीर्विधाय मुहुः प्ररुदतीनामंगनानां स्त्रीणां निपततामश्रूणां धारारूपजले तवावभृथं यज्ञान्तं स्नानं अनुभवन्ति यज्वत्वावभृथ स्नायित्वयोर्वियधिकरण्यादसंगतिरलंकारः ।

32 तपेति । अमी परे शत्रव एत्रार्कोपलाः सूयकान्ताः तव प्रतापरूपे तपने सूर्ये

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तपर्तुना ग्रीष्मेण कृता पूर्तिर्यैस्तैस्तैः उस्राणां किरणानां व्रजैः समूहैर्वितपमाने सति प्रतापपक्षे तु उस्रव्रजैरियतः परमिवेति शेषः कल्पनया संगच्छते, सुष्ठु करवालैः खड्गैर्भिन्नं यदन्तरं हृदयादि ततोऽसक्तस्रवतोऽसृजो रक्तस्य मिषात् परमनुपममद्भुतं विषमं चंचद्दीप्यमानमर्चिषां ज्वालानां चयं वमन्ति ।

33 अहर्दिवमिति । हे नरपते अपेतितां दूरीकृतां सुपातुका अवश्या गामिनी या प्रवरा यामिनी रात्रिस्तस्या नामापि येन, अपेतशब्दात्तत् करोतीति णिजन्ता त्तत्कर्म्मणि क्तः, तस्मिस्तव प्रताप एवाहर्य्यतौ सूर्येऽहर्दिवं रात्रिन्दिवं तपति सति अमर्षेण विषमभोजो येषां रणमुपेयुषां प्राप्तानां तेषां विद्विषां अनीक-निभे लक्षणया सेनारूपे नीवृत्तिदेशे कालरात्रिः कथ स्फुरति ।

34 प्रचंडतरेति । हे उत्तमचरित्र प्रचंडो ये तवारयः खड्गाः अतिप्रचंडतराणि वारीणि जलानि च तेषां सत्यो निशितास्तीक्ष्णा धारा दृढा महत्यश्च या धारास्तीक्ष्णदेशा जलाकारविशेषाश्च तासामुत्किरान् क्षेपकान् घनान् निविडान् बाहून् वा मेघांश्च कृत्स्नशः परान् शत्रून् अहहाद्भुते खंडितान् करोति विपक्षाणां शत्रूणां यास्तरलेक्षणाः स्त्रियस्तासां नयनरूपा निम्नया नदीः पूरयन् प्रवाहशालिनीः कुर्वन् तव प्रतापरूपस्तरणिस्सूर्यः चित्रीयते चित्रं करोति. नमोवरिवश्चित्रङः क्यङ्ङित्करणादात्मनेपदम् ।

35 समग्रेति । कमलजन्मना ब्रह्मणा अयं स्फुटो रविः समग्राणां कुलभूमिभृतां महेन्द्रादिकुलाचलान् समग्रकुलानां ये राजानश्च तेषां च वलयस्य मंडलस्य चक्रं समूह आक्रामता भ्रमणेनाक्रमणं कुर्वता वशयता च, ते प्रतापरूपतपनेन न समयितुं तुलयितुं, तत्करोतीति णिजंतात्तुमुन्, अधितुलम् तुलायां राशि-विशेषे मानयात्रे च कृतः, अद्य ध्रुवं नूनं मंदाक्षतो लज्जया प्रतिदिनं कृश-द्युतिर्यस्य तादृशः सन् अतीव मन्दायते मन्दवदाचरति ।

36 जगन्ति इति । जगन्ति लोकान् अवतः रक्षतः अत्रभवतः पूज्यस्य भवतस्तव-प्रताप एवोल्लसन्सहस्रकिरणः सूर्यस्तस्योस्रकैः किरणैरधिरणं संग्रामे प्रदग्धा अतः अदृश्य वपुर्येषान्तेऽपि द्विषः शत्रवः तस्य भवत्प्रतापस्यांशसदृशवदाचरंत-मेतं द्युमणिं सूर्यमीर्ष्यावशात् झटिति खंडशः कुर्वते । अत्र सूर्यमंडलभेदनमात्र-मौचित्यात् विवक्षितम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

37 प्रतीपेति । अहो भवत सकाशाद्यत्तत्प्रभयं प्रकृष्टं भयं तद्रूपेण हैमनानेहसा हेमन्तर्तु संबंधिकालेन सर्वत्राणतलोपश्चेति शैषिकावणतलोपौ । अहो प्रतीपनृपतिषु शत्रुराजेषु बहुलो महान् वेपथुः कंपः सीत्कृतिः सीत्कारश्च तथा प्रविदधे चक्रे यथा त्वदीयादपि प्रतापरूपो यस्तपे ग्रीष्मे सन्तपन् तपनः सूर्यस्ततोपि असौ वेपथुस्सीत्कारश्च किमपि न व्यपैति न नश्यति प्रत्युत विपरीतं परममुत्कृष्टमेधते वर्द्धत एव ।

38 विराजीति । हे पृथ्वीपते, विराजी शोभनो विजयो यस्य विराजी अर्जुनश्च भवान् निजभुजयोः प्रतापरूपंरनलंरिह विमतानां शत्रूणां मंडलीरूपं खांडवं वनविशेषं इह स्फुटं तथा प्रकारेण अदहत् दग्धवान् यथा उरु बहुलं संलसन्ती या तव असेः खङ्गस्य धीरा दृढा धारा तद्रूपजलैः निषिक्ते कृतसेके लक्षणया नाशिते चात्र विमतमंडलीखांडवे अंकुरस्य पुनरुद्भवस्य कथापि न भवति पृथ्वी च्छदश्च ।

39 चंडांशोरिति । हे शत्रुशल्य, ते प्रतापः चंडांशोः सूर्यादपि चंडा अंशवो यस्य तादृशोऽस्ति यतः अनेन प्रतापेन भृशं तप्ता द्विषस्तरणिं सूर्यं विशन्ति । सूर्यतप्तो हि छायामाश्रयत्ति ।

40 त्वष्टुरिति । हे वृन्दावत्या अवनींद्र राजन्, त्वष्टुर्विश्वकर्मणः कर्कशो यस्तर्कुः लक्षणयन्त्रम् तेन यत्कर्त्तनमुल्लेखस्तस्य कलया कौशलेन अनामृष्टा न तनूकृता पुष्टा द्युतिर्यस्य प्रसिद्धरविस्तु, संज्ञाप्रीतये विश्वकर्मणा शाणेनों ल्लिखितत्वात् पूर्ववत्पुष्टद्युतिर्नासीत् क्रूराणां नृपालानां कालरजनीं कालरात्रिं कुर्वन् छत्रिणो राज्ञः आतपत्रयुक्तांश्च संतापयन् दृप्तानामरातीनां शत्रूणां यानि कलत्राणि स्त्रियस्तासां नेत्रनिस्सृतसरितां स्रोतांसि प्रवाहान् संपूरयन् ते प्रौढो महान् प्रताप एव रवि, विजये विलक्षणत्वात् ।

41 अत्युच्चैरिति । हे बुन्दीश, अत्युच्चैस्तरवारिं खङ्गं अत्युच्चैस्तरं बङ्गलं वारि जलं च बिभर्त्ति पृषत्कानां बाणानां स्वार्थकप्रत्ययेन जलबिंदूनां चोत्करं समूहं हर्षविशेषतः वर्षन्नेव पुष्यन् पुष्टिं प्राप्नुवन् पृषत्कोकरं पुष्यन् हर्षविशेषतो वर्षन् अर्थात् पृषत्कोत्करमेवेति वान्वयः किमप्यनिर्वाच्यशोभं तत्प्रसिद्धं दिव्यं धनुश्चापमिन्द्रायुधं च दधानस्तव करः यस्य युष्मत्प्रतापरूपस्योल्लसतो

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वह्नेर्हेतुः कारणं तेन वह्निना शत्रुकलत्राणां नेत्रनिस्सृतसरितां तुःदीकृतिः पुष्टिर्विहिता, मेघादग्निरग्नेश्च जलमिति वैपरीत्यम् ।

42 ख्यातेति । मृधे युद्धे ख्यातोऽखर्वो महान् रयो वेगो यस्य तच्च तव आर्वण-मर्वणामश्वानां समूहः, समूहेण, तस्य सगर्वं योंघ्रीणां प्रघातः प्रक्षेपः तेन स्फुरन्त्यां धल्यां धीरं यथास्यात्तथावधीरिता विन्छिन्ना, वष्टि भागुरित्य-ल्लोपः, त्विड्‌म स्य तस्मिन् ब्रघ्ने सूर्ये पिधानमन्तर्द्धानं गते सति मद्यः द्योति-तानि दिशां मुखानि येन निजभुजाभिर्द्यतां द्विषां दुर्यशोरुपकालिन्द्या यमुनायाः प्रभवो यस्मादीदृशो नवोऽभिनवः युष्मत्प्रताप एव रविर्विजयते ।

43 वीरेति । हे वीर शत्रुशल्य, वैरिणां दारा निजनयनेभ्यो भूरुत्पत्तिर्यासान्ता उदारा महतीः वारां जलानां धारा न संस्रयेयुः तर्हि तवातिपृथू प्रलंबौ यौ बाहुदंडौ तयोः प्रताप एव प्रौढो महानग्निस्तस्य ज्वालानां जालैर्दृढतरं यत्तपनं सन्तापस्तस्माद्धेतोरुद्यन्नुद्दामो महान्पूर उत्सेको यस्येदृशो दुग्धोदन्वान् क्षीर-समुद्रः स्वस्य फेनैः अखिलमिदं जगन्मज्जयेदेव दुग्धोत्सेको हि जलं विना न शाम्यति । स्रग्धरा ।

44 सवितरीति । तिमिररूपेऽब्धौ मज्जतामेकस्मिन् बंधौ सवितरि सूर्ये प्रतीची-मनुलक्ष्यीकृत्य नियत्या दैवेन नीचीभावुके अस्ते सतीत्यर्थः विरहेण विधुरितं विकलीकृतमंगं यस्यास्सा रथांगी चक्रवाकी घुसृणं कुंकुमं तद्वत् शोणं रक्तं ते प्रतापमेव फुल्लोदृशः कोणो यत्र कर्म्मणि तथा उच्चैः पठति स्तौति, मालिनी ।

45 सद्य इति । हे वीर श्रीनृपशत्रुशल्य, स्वभर्तुः सन्निहिता सन्निधिवर्तिनी प्रौढा तरुणावस्थामतिक्रांतापि वैरिरमणा शत्रुस्त्री भवतो वरं प्रतापं श्रुत्वा सद्यो माद्यति इत्यादि चेष्टतेऽतो नवोढा इवाचरति । त्रस्तायाः नवोढायाश्च धर्म्मा इह प्रतिपिपादयिषिताः ।

46 खेलन्तीति । अद्य रणांगणेषु जयिनो वृन्दावत्या इन्द्रस्य ते दिशां भूषागतो यः कुरुविंदकंदलो माणिक्यमणिखंडः तद्वद्रुचः येषां ते प्रतापाः मुदा खेलन्तीति शंके यद्यतः कोटिशः शकलिताश्छिन्ना ये ते परवंशकाः शत्रुकुलानि एव कन्दु-क्षमातले भजते प्रौढो महान् य आघातः प्रहारः ताडनं च तद्वशात् त्विषां पतेः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सूर्यस्य मिषादंबरमाकाशं यान्ति सूर्यमण्डलभेदनाय न यान्ति, किन्तु कन्दुकवदुत्पत्याकाशमेव यान्तीति कैतवापह्नुतिः ।

47 आयुष्मन्निति । हे आयुष्मन्, अर्कबिम्बं सूर्यमंडलं अच्छातमविछिन्नं छो छेदने क्त, प्रोच्छलद्भिः नभस्याकाशे सुरधुन्या गंगाया धुर्याणां महतीनां धाराणामभिषेकात्सेचनादेकाकारैरुदारैर्महद्भिः युष्मदीयो यः प्रबलं बलं यस्येदृशो भुजस्तस्य स्फायमानो वर्द्धमानो यः प्रतापः लक्षणया प्रतापरूपोऽग्निस्तस्य ज्वालानां या मालाः पंक्तयस्तासां विलासेन च्छुरिता लक्षणया द्रवीभावं प्राप्ता ये रिपुभूतनृपाणां स्वर्णरचितहर्म्याचास्तेषांमिपडैः परिणतन्निष्यन्नन्तकंचाम: ।

48 धावन्तीति । दूनं श्रांतं यत्पीनौ स्तनौ जघनश्च तस्य भरेण क्लान्तो मध्यो यस्याः सुष्ठु मध्यदेशा मध्येकान्तारं वनमध्ये अद्धा झटिति धावन्ती सम्भ्रमेण भयावेगेन भ्रान्तं चेतो यस्याः सा तवाहितस्य शत्रोस्तरुणी द्राघीयसी अतिदीर्घा लंबमानेति यावत् या शाखिनो वृक्षस्य शाखा तस्या व्यतिकरेण संबन्धेनाघातेनेति यावत्, विगलतः पततो हारात्संपातुकानां मुक्तानां कैतवेन मिषेण अजस्रं स्वस्य परिवृढ पतिस्वस्य यशसां पुंजम् उज्झति त्यजति ।

49 हन्तेति । हन्त खेदे, अहं तावत् उर्व्यां भूमौ प्रथितस्य नृपस्य वधूरस्मि एष पापो व्युत्क्रमोन्यासक्तिः क्वेति वितर्कः, अयि चतुरजन, अस्यामटव्यां वने त्वां विना एकैव विहर्तुं त्रस्यासि बत इति त्रास, कश्चित् लोकः लोकेत पश्येत् इत्याशङ्का, भो चतुर, क्षणं क्षणमात्रं अलघूनाम्महतां तरूणां छाया अध्यास्यताम् छायाबाहुल्ये इति क्लीवत्ता, अधिशीङ्स्थासामित्याधारस्य कर्म्मत्वं तत्र लोट्, वनगता त्वद्वैरिणो नारी कमपि जनम्प्रति गंभीरो भावोऽभिप्रायस्तदसक्तिरूपो यत्र तथा वक्ति भावशबलता शृङ्गाराभासः ।

50 अध्वानमिति । रिपुस्त्रीकंचिद्वक्ति अध्वानं मार्गं शीघ्रं शंस कथय, स तु अध्वानमित्यस्य शब्दरहितमिति क्रियाशेषणं परिकल्प्याह हे अबुद्धे मूर्खे वचनविहितं यथास्यात्तथा कोनुजनः शंसेत् । सा आह हे बधो अहं मार्गं पंथानं पृच्छामि, स तु मृगाणां समूहो मार्गमिति समूहेण (?) तं त्वं प्रकल्प्याह अद्धा हरिणानां कुलं त्वद्दृशा एव तर्जितं तिरस्कृतम् । सा आह हे मुग्ध मूर्ख सुंदर

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वा इह वने निःशंकं स्पष्टं अयनं पंथानं वधि कथय स तु अयनं क्रान्तिरीत्यागम्यमान दिगुपलक्षितकालं प्रकल्प्याह दक्षिणमुत्तरं वेति इत्थं लोकैः विद्रवन्त्यो धावन्त्यस्तव हितानां सुदृशः वक्रोक्त्य वक्रोक्तिश्लेषकाकूभ्यां वार्थान्तरकल्पनमित्युक्त्या विप्रलभ्यन्ते प्रतार्यन्ते ।

51 मानरहितेति । युद्धेषु विकटाः ये सर्वे सुभटास्तेषां चारुमुकटगतहीरकतुल्य श्रीशत्रुशल्येति संबुद्धिः योषिद्रिपुस्त्री त्वत्सैन्यमागतमालोक्य अगति अनन्यगति यथास्यात्तथा त्वद्रिपुं स्वपतिं प्रति सुष्ठुमतेः सारभूतं इति पूर्वोक्तं वचो वक्तीति तृतीयेनान्वयः तद्वाक्यमाहु, हे कमितः कान्तः मानेन इयत्तया रहितादानेन मदेन सहिताः युद्धे महिताः पूजिताश्च कुंजरा गजा यत्र कल्पहरणे प्रलयकाले या विद्युतस्तद्वदरुणश्चंचन्तो ये केतवो ध्वजास्तेषां किरणैः पिंजरपवनवेगस्यापि लवनाश्छेदका ये भूरयो बहवो जवना जवाधिकाश्वास्तैः सङ्गतं युक्तम् अमितमगण्यं इतः त्वन्नगरात् अन्तिकं समीपमातगमस्य शत्रुशल्यस्य सैन्यं पश्य । छन्दः अंगतर्कंषट्कलिकं रगणयुक्तहीरकमिति हीरकं छन्दः ।

52 अयीति । अयि भोः अतिमत अतिक्रान्तमत हे गतनय नीतिरहित एष शत्रुशल्यस्तु अद्य जंभस्य दैत्यविशेषस्य विमतं शत्रुमिन्द्रमपि किन्न जयेत्. अतो हेतोः कुनयं अतिवलवता युद्धरूपं मुंच, सुनयं वलवद्रिपोराश्रयणं कार्यमित्यात्मकमाश्रयेः प्रधनं युद्धं च मुंच धनं चार्पय निधनस्य युद्धस्य साहसं उज्झ त्यज. हे दयित, अद्य राक्षसं, जातावेकत्वं रक्षश्शब्दात्समूहेऽण्, रक्षःसमूहं वा सुतमाम् अवश्यं सुष्ठु सुहितं तृप्तं कुरु अतिशयेतमपि किमे तिङ्व्यत्ययादाम्बद्रव्य प्रकर्ष इति आमः ।

53 भीतीति । भीतेर्भयस्य हरणमस्य शत्रुशल्यस्य चरणं शरणमाश्रयेः च पुनस्तस्य दासक इव भव साधु यथास्यात्तथा विभव स्वराज्यमर्थयेः याचस्व, शेषं व्याख्यातम् छंदश्च ।

54 तत्तदिति । हे नृप शत्रुशल्य, भवान् तेषु, तेषु पाकेषु मोदकादिषु पापेषु च रुचिर्यस्य सः खलेषु दुष्टेषु च कटुरप्रियः पटुर्दक्षश्च षट् संख्यान् रिपून् पंचेन्द्रियाणि मनश्चेतीमान्, कालयन् जयन् पालयन् च धर्मप्रधानाचारस्य विलोकनः द्रष्ण लोपनो नाशकश्च प्रतिफलन् पूर्यमाणः कामो मनोरथो यस्य प्रतिफलन्तापा

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

माकंडू रोगो यस्य न जहती न त्यजन्ती व्याकृतिर्व्याकरणशास्त्रं यं जहती व्यापृतिर्व्यापारोयं त्वच्छस्त्रैर्हंसनपादादिवर्तनात् विद्वल्लोकेषु पंडितजनेषु विदुषां लोपे च मनो यस्य कलानां कौशलानामयनस्य प्राप्तेः पलायनस्य च करःसाधवः प्रतीका अङ्गानि यस्य साधु प्रतीपो विरुद्धश्च सदृशे ईदृश एव त्वच्छत्री वयन्तु अधिकं ककारे विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः पंपकारं अधिकं अधिकं कम्पं वेपथुञ्च विद्यत्वत्पक्षे ककारः शत्रुपक्षे तत्स्थाने पकारः शेषं यथा स्थितं तथैव व्याख्यातम् ।

55 आक्रांतमिति । हे राजन्, भोगिनां सर्पाणां वनितादिभोगवतां च संघैराक्रान्तम् अविरतं विलसन्तो भुविस्थंडिले उषिता भूषिताश्च अशेषाः लोकाः भृतजनास्सेवकाद्याश्च यत्र द्वारस्थः स्फाराणां महतां खड्गिनां गंडकानां खड्गधारि पुरुषानां च प्रकरो गणो यत्र अतिचिरात् शिवानां शृगालानां कल्याणानां चौघैः राजमानं पुण्यलोकैर्लक्षणया पुण्यजनैर्यक्षैरित्यर्थः पुण्यप्रधानलोकैश्चाध्युष्टं कृतवासं सुबहुलानां धवानां स्वामिनां लक्ष्म चिह्नं यत्र सुवद्गलं धवला सुधालिप्ता क्ष्मा भूर्यत्र च तद्भावं उच्चैर्दधान विद्रुतानां पलायितानां विद्विषां सदन स्थानं सम्पदीव विलसति ।

56 स्फूर्जदिति । हे शत्रुशल्य ईश स्वामिन् यत् तरणिः सूर्यः स्फर्जन्ती या त्वदीया जैत्री यात्रा तस्यां अद्भुतेन जवेन वेगेन विलसन् गर्वो यत्र कर्मणि तथा अर्वावलीनामश्वसमूहानां अंघ्रघातेभ्य उत्थितैः रजोभिः स्वमात्मानं पिधत्ते तत्पिधानम् युष्मदीयचापान् उवतैः प्रबलतरैः शरैः प्रौढमतिशयितं निर्भिन्नानां वैरिणां प्रोद्यन्तः प्रोच्छलंतो मुंडानां लूनशिरसामोघ एव राहुस्तत्कर्तृकं यद्ग्रसनं तज्जनितो यो दरभरो भयातिशयस्तस्मादेवेति शंके ।

57 येति । व्योम्न्याकाशे या नीला पंक्तिर्लसति सा जलमुचां मेघानां पंक्तिर्नास्तीति जाने, किंतु द्यामाकाशं गता ततः स्वाराज्यस्य स्वर्गाधिपत्यस्य भ्रंशेन हेतुना भीतस्य त्रिदशपतेरिन्द्रस्य गलत् साश्रुतां व्रजत् यन्नेत्राणां साहस्रं तस्मान्निर्यतां निर्गच्छतां नीराणां जलानां प्रौढैः प्रवाहैः सपदि विलुलिता क्लिन्ना अतः पंकतां प्रापिता इयम् त्वद्यात्रायाः वाजिनामश्वानां राजेः पक्तेः प्रखरतरैरतितीक्ष्णैः खुरैरुद्धता धूलिरेवास्ति । अपह्नुतिः ।

58 नीहारन्तीति । भव्याः श्रेष्ठा भवतस्ते प्रसिद्धा यशमां राशयः नीहारन्ति हिमवदाचरन्ते सर्वत्राचारे क्विप् अभ्रमु वल्लभः ऐरावतः तस्य श्वेतत्वेन वर्णनात् स्पष्टम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

59 कृत्वेति । हे हृता तुला उपमा यस्य हे अनुपम हे बुन्दिजाने हे शत्रुशल्य अवनीन्द्र राजन्, कौतुकी कीर्तिरधिका चंद्रो वेति कौतुकवान् पद्मयोनिर्ब्रह्मा धवलां शुद्धां सुरधुनीमाकाशगंगां तुलाया दंडं कृत्वा धवलेति विशेषणं, श्वेत-वस्तूनां तोलने शुद्धैव तुलायोग्येति बोधनायेति प्रतीम, अच्छमूर्त्योज्ज्वलरूपया श्रीमतस्तव कीर्त्या सह एत सुधांशुमुच्चैस्तुलयन् तोलयन्, तुलाशब्दात्तत्करो-तीति णिच्, अस्मिन् सुधांशौ कीर्त्यपेक्षया ऊने सति पद्मयोनिः अस्य चन्द्रस्य पूरणाय तुषाराचलस्य हिमाचलस्येव रुचिरा रुग् यासां ताः स्फारा बहवस्ताराः पारितः क्षिपतीति जाने ।

60 लोहमिति । हे भव्यशोभ श्रेष्ठकान्ते, इह देशे लाभस्य लुब्ध्या लोभेन, वस्तुनि क्रेतुं गताभ्यामिति शेषः, सांयात्रिकाभ्यां पोतवणिग्भ्यां जलधेस्समुद्रस्य द्वीपात एकेन लोहं अन्येन चामीकरं स्वर्णं च भूरिशः आहृतं क्रीतम् अथ अधितरणि नौकायां भृतं धृतं, हंत खेदे हर्षे च चित्रमित्यप्यत्रैव योग्यम् उभयस्मिंस्तस्मिन् लोहे स्वर्णे च भवतः यशोभिः कालधौत्यं रजतभावं गतवति सति तत्र तयोर्मध्ये एकः लोहक्रेता स्वधनवृद्धया स्मितेन मधुरसुंदरम्मुखं यस्य तादृश आसीत्, परः स्वर्णक्रेता स्वहान्या साश्रुनेत्रोभूत, कलधौतं रूप्यहेम्नोरिति हैमः ।

61 मन्देति । अमन्दमतिशयितं मन्दा प्रज्ञा येषान्तै कविभिः अयं सुधांशुश्चन्द्रः अतिहठात्त्वदीय यशसां संचयानां प्रतिभटघटनायाः प्रतिद्वंद्विरचनाया सुद्विधाने करणे तुल्यतायामित्यर्थः सद्यः अविचारेणैव प्रोद्भावितः प्रकटीकृतः ततः अनुचितया तुलनया साम्यकरणेन जातः कोपो येषान्तरिव कविभिः पादां-गुष्ठेनाहतः एष सुधांशुः अद्यापि लांछनस्य चिह्नस्य च्छलेन उरो वक्षः व्रणन किणितं जातकिणं धत्ते इति मन्ये, अपह्नुत्युत्प्रेक्षयोरंगाङ्गिभावः ।

62 डिण्डीर इति । क्षीरसिंधोर्दुग्धसमुद्रस्य डिंडीरः फेनः श्च्युते दूरीभूते वसने यस्य निर्वस्त्रतयातिश्वेतस्य शिवस्याश्रयभूतः श्वेतशैलः कैलासः निर्मुक्तः कचुकरहितो देहो यस्य स शेषः, हृतो हरिणस्य किणः चिह्नं येन स पार्वणः पर्वणि पूर्णिमायां भवः शर्वरीशः चंद्रः बुंद्याः सौभाग्यद्योतक, भूषा रूपो मल-यजस्य चंदनस्य तिलकः क्ष्मारूपाया वध्वास्तारो महान् हारः सत्रः शीलस्य श्रीः शोभारूपनायिका तस्याः प्रकृष्टो हासस्ते यशसां संचयः समूहो जगत्सु प्रकर्षेण जयति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

63 अच्छाविति । उभौ पक्षौ मातृपितृवंशौ शुक्लकृष्णौ चाच्छौ शुद्धौ शुक्लौ च वितन्वन् कुर्वन् अनुदिनं प्रत्यहं रात्रिन्दिवमुदयन्प्रसरन्नुदयं प्राप्नुवँश्च चक्रस्य सैन्यस्य जनसमूहस्य वा चक्रवाकस्य च तोषं प्रचिन्वन् वर्धयन् धीरमतिशयितं यथास्यात्तथा दोषाणां दोषाया रात्रेश्चापनोदाद् दूरीभवनात् अदयं निर्दयं यथास्यात्तथा वाहिनीशां शत्रुसेनापतीन् वाहिनीनां नदीनामीशान् समुद्रांश्च विनिघ्नन् समुद्रवर्द्धक यं द्रष्यतिरेकारोदम् अतिथीनभ्यागतान् मदेन समृद्धया आसर्वतः पूर्णान् भद्रेण कुशलेन सहितान् सन् जय उत्कर्षप्राप्तिर्येषां तादृशान् प्रविदधत् कुर्वन् अथ च भद्रातिथिसंहितान् सती विदचमाना जया येषु तान्नं-दापूर्णाख्यान् दिवसान् अतिथीन् तिथीभिन्नान् प्रविदधत् अयं ते कीर्तिरूपः चद्रः इह लोके एकं केवलं द्वेषणानां शत्रूणामायुरेव रिक्तं शून्यं रिक्तसंज्ञं च तिथिं तनुते प्रसिद्धचन्द्राधिक्यादधिकरूपकम्। सूर्यचन्द्रान्तरभागद्वादशकस्य ति-थिरिति संज्ञा ज्यौतिषि काणान्ते च प्रतिपदाद्यानंदादिसंज्ञा इत्याद्यवगंतव्यम् ।

64 यदिति । यस्यांबुधेर्मध्यो द्रुतमेव मंदरमयेन, स्वरूपार्थे मयट् ग्राव्णा पाषाणेन हेतुना रुग्णायित रुग्णवदाचरितवान्, क्यङन्तात् क्तः, यः वडवाग्निना पीत शोषितः, य कुम्भोत्पत्तिस्वल्पादुद्भवो यस्य तेनागस्त्येनापि चुलुकित चुलुक-प्रमाणीकृतः हंत विनोदे, यं च मर्कटवटुर्हनूमान् अलंघत, यश्च देवैरिन्द्रादि-भिर्लुंठितः कृतरत्नापहारःसोंबुधिः त्वत्कीर्तिरूपसुधांबुधेरमृतसमुद्रस्य साम्यं कथं लभेत, अहो आश्चर्ये ।

65 निस्सीमेति । एषः निस्सीमेषु सर्वेष्वाशीविषेषु इन्द्रः शेषः अक्ष्णां नेत्राणां वृन्देषु बहुत्वं तु व्यापारपरतया समाधेयम्, तव उरूणाम्महतां गुणानां गणस्याकर्णनेन जनितैरर्णोभिरानंदाश्रुभिः प्रपूर्णेषु सत्सु अतएव मन्देषु श्रोतुमशक्तेषु सत्सु पुनः श्रवांसि अश्रवणसाधनानि कर्णान् अचकमत इच्छति स्म, अहो एषः अहिराजः शेषः सादरं यथास्यात्तथा पंकेरुहस्था पद्मालया लक्ष्मीस्तस्याः प्रियं विष्णुमनिशं सेवते तत्प्रीतात्प्रसन्नात् पीतांबरा विद्विष्णोः श्रवणानां कर्णानां गणम्प्राप्तुमेवेति शंके ।

66 ढौकन्ते इति । हे शत्रुशल्य, तव यशसां स्तोमाः सपत्नाननु लक्ष्यीकृत्य हरितो दिशः वनानि सरितो नदीश्च ढौकन्ते गच्छन्ति तुङ्गान् उच्चान् गिरीन् रोहन्त्यारोहंति स्पष्टं शेषम् यत्र यत्र शत्रवो यान्ति तत्र तेपि यान्तीत्यर्थः । शत्रूणामापत् यशसः प्रसरश्चोक्तौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

67 कालिन्दीति । हे उदार श्रेष्ठ हे मतिमन् इति हे क्षितीन्द्र कालिन्दीयमुनालसन् योऽजनाचल: दलत् विकसन्नीलमुत्पलञ्चैतदादीनि श्यामवस्तूनि विशदान्युज्ज्वलानि निर्मा ती कुर्वती अतोत्युज्ज्वला त्वत्कीर्तिः हन्त ततस्तेभ्य: कालिन्द्यादिभ्य: मालिन्यं परिगृह्य नु उत्प्रेक्षणे चिन्तया तांतिमतिग्लानियुक्ते, तमु ग्लानौ क्तिन् प्रत्यर्थिनां शत्रूणां सार्थस्य संघस्यानने मुखे नियतं उच्चकैः संस्थापयति ।

68 सारेति । हे क्ष्माया पृथिव्या ईश यत् सार: श्रेष्ठ आकारो येषान्तादृशा अंशव: किरणा यस्य स चासौ राकाया: पूर्णेन्दुपूर्णिमाया अभिक: कमिता चन्द्रः तस्य कराणां निकरस्य य उद्रिक्त: प्रकृष्टो द्रोहस्तिरोधापनं तत्र दक्षे कुशले त्वत्कीर्तिराशौ प्रसिद्धं चंद्रमभिभूय प्रकाशमाने लोकैर्भ्रान्त्या चन्द्र एवायमिति व्यपदिष्टेऽस्मिन् कीर्तिराशावित्यर्थ: भवतस्तवारीणां कुयशसो ऽपयशसः श्यामिका मालिन्यं चकास्ति तत्तत: हेतो: जगत्या लोकस्य पत्या स्वामिना त्वया विबुधानां पण्डितानां गृहं गृहम्प्रतिनिर्मितेषु स्वर्णस्य शैलेषु राशिषु मेरुषु च मुहुरहर्नायके सूर्येऽन्तर्द्धिर्धानं व्रजति सति सा पूर्वोक्ता श्यामिकैव प्रसृता सती तमिस्रा तामसी रात्रि: इति सत्यम् अयमेवार्थो विवक्षितः ।

69 प्रालेयेति । मधुरे श्रेष्ठे त्वत्कीर्ते:पूरे समूहे एव प्रालेयाचलस्य हिमालस्य तुङ्गशृ गात् विगलन् पतन् धौरेयो महान् धाराभरो यस्यां सा चासौ स्व:सिन्धुर्गङ्गा तस्यां निमग्नं वपुर्येषान्ते त त्र द्विष: विषादितां खेदवत्तां विषमत्तुं शीलं यस्य स विषादी शिवस्तद्भावं च प्राप्ता नु इवार्थे मोलौ शिरसि उत्कटां जटां दधति स्वगोपनाय अंगके भस्मालेपनं करतले चभिक्षार्थं कपालानां कर्पराणामावलीं दधति गंगानिमग्नानां शिवत्वं सम्भावितमेव ।

70 मन्थेति । मन्थेन मथनेनांदोलितश्चालितो यो दुग्धसिंधुस्तद्वन्मधुरास्सुन्दरा, निर्मोक: कंचुकस्तेन मुक्तो य उल्लसन् शेषो नागराजस्तद्वत् श्वेततरा:, त्रैलोक्यमेवालयमुज्ज्वलं विदधत: कुर्वन्त: धरामघवत: भूमीन्द्रस्य तव सत्कीर्तिपुंजास्तल्पे शय्यायां स्थिता: सन्त: रतस्य सुरतस्यांतसमये तत्क्षणात् सुदृशा नायिकया दुकूलभ्रमात् कृष्यन्ते इति चित्रम् ।

71 आनीतानामिति । रक्तांभोजाभपाणि: रक्तवर्णकमलतुल्यहस्तस्तव प्रदातुं दानकर्म्मीकर्त्तुमानीतानां मदकलकरिणां मतंगजानां गंडा: कपोला एव राजन् कलिन्दनामा यमुनोद्भवहेतुः क्ष्माभृत् पर्वतस्तस्मात् संस्यदमानं प्रस्रवत्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रततं वहु नम्नदजल तदेव प्रोल्लसन्ती सूर्यकन्या यमुना ताम् संकल्पसंबंधी अनलो महान् यो नीरोत्करः जलसमूहस्स एव सुरसरित् गंगा तया संगमय्य संयोज्य स्वस्य अङ्गनेति विबुधैः पण्डितै देवैश्च सुमहितमाद्दतम्प्रयागं व्यथाः अकार्षीः रक्तांभोजांभपाणिरिति विशेषण कुत्रचित्स्वयं दृष्टरक्तवर्णकसरस्वतीसंयोगबोधनाय ।

72 क्षुदिति । ये क्षुधाक्षुभित इतस्ततश्चलन् कुटुम्बो येषाम् नतो नीचैर्गतः मुख विद्यो येषाम् मृतेर्मरणस्य विषये लसन् भासमानः अविलंबो विलंबा भावो येषाम् अधिकं धृतो भग पराजयो यैस्ते ये शत्रव इति शेषः द्रुततरं तव कीर्तिरूपासु सुष्ठु गंगासु अंगान्यदधत दधति स्म त एते शत्रवः अचिरं शीघ्रं करे कलित धृतः कपालः येन तत परिधृतं शूलं रोगविशेषः शस्त्रविशेषश्च येन शिरसि जटाभिरलङ्कृतं वपुर्दधत सन्तः परेतानां प्रेतानामीशं मदनहरं शिवं सपद्यनुहरंते अनुकुर्वन्ति, हरतेर्गत ताच्छिल्ये इत्यात्मनेपदम्, दशवसुहयतुरगैर्भवंति । कलाभिर्यतस्त्रिभंगी ।

73 घंटेति । हे नृप शत्रुशल्य, घंटानां घोष एव गरिष्ठङ्गुरुतमं गर्जितं तेन गुरून् महतः वारामदजलानां भरान् वर्षतः भूषासु यत्कांचनं स्वर्णन्तेनपिंजरवर्णान् अजरान् वार्द्धकहीनान् यून इत्यर्थः त्वया दत्तान् कुंजरान् गजान् भवनानां गृहाणां द्वारेषु पश्यन्तः अतो मेघागमेनोन्मुग्धाः भ्रान्ता भ्रान्त्या मेघागमं जानत्यः पंडितानां योषितः स्त्रीयान् गृहान्, सत्तृणैः पिदधति छादयन्ति ।

74 स्वर्णेति । हे वृन्दावत्याः पते, यत् जर्जरा जीर्णाः तार्णास्तृणारचिता अपि कविनां गृहाः सपदि स्वर्णाद्रीयंति सुमेरुवदाचरन्ति यच्च त्रुटिताः छिन्ना कटितटीनां शाटका वस्त्राणि यासामतस्ताडका भाविरूपाः अपि कवीनां कान्ताः पौलोमीयंति इन्द्राणीवदाचरन्ति च पुनः यत् कुत्राप्यनधिगतमप्राप्तं धनं यैस्तेपि कवयोपित्वत्तो लब्धानि इभानां गजानां वृन्दानि यैस्तादृशास्सन्त सुत्रामीयन्ति इन्द्रवदाच(र)न्ति सतेदानस्य प्रकर्षः परितः स्फुरतीति पश्य, अत्युक्तिः ।

75 वरानिति । पूर्वं कदाप्यलाभात् अविदिता विभूषा विभेर्भूषणविन्यासस्य कलाकौशलं याभिस्ताः कलाभाजां विद्यावतां भार्याः पुरिपुरि नगरे नगरे भवत्कर्त्तुकदानस्य विभवादैश्वर्यात् वरान् मुक्ताहारान् शिरसि, घनेस्तनयोगात् निविडे बक्षसि रशनाः कांचीः, कपोले ताटंकान् भूषाविशेषान्,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अधिगलं कंठे अनल्पान् बहून् अंगदानां केयूराणां गणान् विपर्यस्य न्यस्यन्ति न्यास विपर्यय हेतुस्तु पूर्वं दारिद्र्यमेव न दानविभव इति बोध्यम् ।

76 स्निग्धेति । हे नरपते, स्निग्धाः सजला ये नीरदा मेघास्तेषामिव धीरं श्रेष्ठं धाम स्वरूपं येषां ते च ते त्वया दत्ता मत्तद्विपास्तैः प्रोद्यन् अत्युच्चहस्ति दर्शनादवेक्षक मनसि जायमानो विंध्यस्य समुच्छ्रय उत्थानं तस्य श्रवणतो भूयो भवन् सम्भ्रम आवेगो यस्य स्वस्य या आज्ञा, यावदहं नागच्छामि तावत्त्वयानोत्थातव्यमित्यात्मिका, तस्या गौरवमवश्यपालनं तस्य भंगेन दूरीकारेण भंगुरतरमतिविच्छेदयुक्तं ध्यानस्यावधानमेकतानता यस्य स कौंभिः कुंभस्यापत्यं मुनिरगस्त्यः जनैः कर्तृभिः कैर्वा उपायगणैः करणैः समाधीयतां स्वास्थ्यं नीयतां । अगस्त्यकथा काशीखण्डे अनुसंधेया ।

77 येषामिति । येषां कवीनां वेश्मनि गृहे जीर्णा या जूर्णस्य ज्वार इति प्रसिद्धस्यान्नस्य कणिकास्तासां दुःखेन कंडने तुषाकरणाघाते कुरंगीदृशां स्त्रीणां त्रुटचतां द्वित्राणां पुराणकंकणानां प्राचीनशंखवलयानां रणत्कारो लोकैरश्रूयत श्रूयतेस्म तेऽमी कवयस्त्वद्दानस्य यत् लीलावदाचरितम् तस्मात् भावे क्तः स्वल्पादपि दानादित्यर्थः सम्प्रति इदानीं करिणां हस्तिनां घटा घटना तस्या दानांबुमदजलेषु लुभ्यन्ती अतएव भ्रमन्ती या भृंगानामालिः पंक्तिः तस्याः कलगुंजितानि मधुरध्वनीन् शृण्वते । जूर्णाह्वयो देवधान्यं जोलालाबीजपुष्पिकेति हैमः ।

78 उद्दामेति । हे वीर दानवीर, उद्दामो महान् यो दारिद्र्यरूपो हुताशोऽग्निः तज्जन्यतापस्य दुःखस्योष्णतायाश्च विद्रावणायापनोदाय द्रविणौघवर्षैर्धनसमूहवृष्टिभिः वर्षन् त्वम् अद्य प्रावृषि वर्षासु प्रवर्षतो मेघान् न्यक्कुरुषे अधः करोषि ।

79 दारिद्र्येति । दारिद्र्यं दावानलो वनाग्निरिव तस्य दाहेन दुःखेन प्लोषेण च दूना उपतप्ता ये दोषज्ञाः पंडिताः तेभ्यो दत्ता द्रविणस्य धनस्य उद्यन्तोऽद्रयो येन दृप्ता ये अतिदुर्हृदः शत्रव द्रुमा इव तेषां दारणे नाशने उद्यन् दन्तावलो गज इव द्योतितं शोभितं दोर्द्वयं भुजयुग्मं यस्य तादृशस्त्वमसि ।

80 प्रत्युच्चैरिति । विहस्तं व्याकुलं उल्लसन्ती वैरिश्रीः शत्रुसम्पदेव नलिनीवनं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कमलिनीवनं यस्मात् दिशामवनो रक्षणः दानसंबंधिमदरूपं चांबुपूरं जलप्रवाहं स्रवन् पद्मायाया लक्ष्म्याः सद्मस्थानभूता रुक् कान्तिर्यासां तासां नायिकानां कुचान्तरस्य परिस्पर्द्धालवः कुंभा येषान्तान् इभान् गजान् हेलात्तो लीलयैव प्रकिरन् क्षिपन् कुंभशब्देनापि कुंभान्तरमेव ग्राह्यम्. दिग्दन्तिनां दिग्गजानामपि मदं हरन् सन् अत्युच्चैः परेषां शत्रूणां वारणस्य निवारकस्य श्रेष्ठहस्तिनश्च भवतो हस्तः पाणिः शुंडा च मोदते शोभते ।

81 दाने इति । हे देव राजन्. युष्माभिर्दानीयं देय द्रव्यं तत्संबंधिपानीयं संकल्पजलम् तस्य च यः समूहस्तस्य व्ययेनापगमेन नदीनां नेतरि स्वामिनि समुद्र दीने शुष्के पति सशंकाथिताः शंकायुक्तवदाचरितवन्तो यातुधाना राक्षसा यस्यां सा लंका भूयो नरैर्मनुष्यैः सुग्रहा सुखेन ग्राह्या लक्षणया सुगमा वा भविष्यति किम् इति संभावयाम इत्यर्थः ।

82 अवितुरिति । जगतीं लोकमवितु रक्षितुः प्रभवितुः प्रभोस्तव द्रविणस्य देयद्रव्यस्य उल्लसत् वरपृषत्कानां संकल्पजानां द्रविणरूपाणामुल्लसतां वराणां श्रेष्ठानां पृषत्कानां बाणानां च भरात् समूहात् अतिचकिता भीता सुदरिद्रता सुचिरं परभूमिभृतः शत्रुनृपान् शत्रूरूपपर्वतांश्च शरणीकरोति बलवताभिभूतो हि पर्वतमाश्रयति आर्या गोति आर्याद्धद्वयन्तेगुरुयुक्तमिति लक्षणम् ।

83 विलिखसीति । हे लेखेषु देवेषु लेखकेषु च ज्येष्ठ वृद्ध ब्रह्मन्, इह लोके अनुदिनं दिने दिने अतिसंख्यान् संख्यामतिक्रान्तान् दारिद्र्यद्योतकवर्णान् संख्यावतां पंडितानां संख्यावेदिनां च ललाटे किमु किमर्थं विलिखसि लिखसि ननु हेतौ रविकुले रत्नं नृषु वीरो दानवीरः शत्रुशल्यः इमान् दारिद्र्यवर्णान् प्रसह्य संख्यावतां ललाटेऽसंख्यदारिद्र्यवर्णलेख रूपानौचित्यात् बलात्कारेण वितरण जलपूरैः संकल्पजलसमूहैः प्रोंच्छत्यपनयति ।

84 तुरासहमिति । स्वस्यविभवैरैश्वर्यैः साहंकृति अभिमानसहितं यथास्यात्तथा तुरासाहमिन्द्रं विजयमानोऽभिभवन् भवान् जगति दातृषु वितथं व्यर्थमेवमतोऽङ्गीकृतः यतः अद्य अवद्यां निन्द्यां दशां गताः क्लान्ताः खिन्नास्तव वैरिणां सुदृशः स्त्रियः पुरि पुरि प्रतिनगरं धान्यकणकान् विचिन्वन्ति यदि त्वं दानी अभविष्यस्तर्हि ताः किमिति कणान् व्यचेष्यन् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

85 उष्णीषमिति । हे शत्रुशल्य [नृपते चित्रमाश्चर्यं कवीनां स्त्रियः त्वद्दानस्य लीलायितात्, लीलावदाचरणात्, पूर्ववत् क्यङन्ताद् भावेक्तः, इन्द्राभान् इन्द्रतुल्यतां गतान् निजपतीन् कस्माद् चिह्नात् प्रत्यभिजानताम् इमे इति निश्चिन्वन्तु यतः पुराणमुष्णीषं शिरोवेष्टनम् नास्ति मलिनः ग्रन्थिमान् बहुधाग्रथितः कंचुको वस्त्रविशेषः नो अस्ति खर्वो ह्रस्वस्तुरगोऽश्वोपि नास्ति दारिद्र्यनामा सखापि सहगस्सहचरो नास्ति ।

86 अशेषमिति । त्वं अशेषं समग्रं पातालमधोभुवनमसि अथ च अलमत्यर्थंसमग्रं लोकं पाता पालनशीलः, ताच्छील्ये तृन्, असि सविशेषं सातिशयं विजयसे उत्कर्षेण वर्त्तसि समस्तजनस्य आशाया अभिलाषस्य स्थानमभिलषणीयं त्वमसि सर्वदिक्स्थानं सविशेषं विजयसे इति वा समस्ते यदाशानां दिशां स्थानं तद्रूपस्त्वमसि च निजगुणैर्धारणादिभिरुदारतादिभिश्च.नंदिता जना येन तादृशोऽसि. पृथिवी त्वं च द्योतयम्, बुधानां पंडितानां पूर्ववद्देवानां चाधारो रक्षकोधिकरणं चेति स्वर्गत्वम् इन्द्रत्वं च भुवनेषु वरवीरः श्रेष्ठशूरश्चास्ति ततो हेतो विभूरिति विदितं प्रसिद्धं भवतो नामस्थाने योग्यमिति मन्ये, विभुशब्दप्रवृत्तिहेतुव्यापकतायाः सर्वलोकतत्स्वामित्वोभयबोधकश्लेषेण दर्शितत्वापित्यलम् ।

87 वक्ष इति । हे त्रिभुवनं त्रैलोक्यमेव भवनं गृहं तस्यालोकप्रकाशक सूर्यरूप च हे लोकेशमूर्ते स्वयंभूमूर्तिभूत हे श्रीशत्रुशल्य, पृथुर्विशालः राजविशेषश्च ते वक्षोदेशः उरस्थलं जयत्युत्कर्षं प्राप्नोति, अयं तव यशसां राशिरर्जुनो धवलः हैहयराजश्चास्ति वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनं चेत्याद्येकवाक्यात्— आस्ये मुखे-भारती सरस्वती श्रीर्लक्ष्मीश्च भरतस्य शाकुंतले यस्य श्रीः शोभा च भाति, जितः कलिः कलहो युगविशेषश्च येन वीराणां सेनाया अवतंसो भूषणं वीरसेन-राज्ञः कुलस्य अवतंसो नलश्च त्वमसि, ते शुद्धांतेऽन्तःपुरे त्रिविधा रामाः स्त्रियः पाणिगृहीत्योभुजिस्या दास्यश्च अत्रेः मुने रामा अनसूया चास्ति, अतस्तं सर्वस्म(र)णीय रूपभूतांगं त्वां यो जनो मनसि स्मरति तस्य लाभो जयश्च भवति । पृथ्वादीनां स्मरणेन जयप्राप्तेः शास्त्रोक्तत्वात् ।

88 एवमिति । एवं पूर्वोक्तया वंदितानां श्रेष्ठानां सत्कृतानां वंदिनां वृन्दस्य मृदुलया ललितया स्तुत्या आशुनिद्रां संत्यजितः समुद्रेण मुद्रिताया वेष्टिताया

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मह्या भर्त्ता द्विषां प्रहर्त्ता शत्रुशल्यः जृम्भाया आरभणस्य विभ्रमेण विलासेन अलसे समुन्मीलन्ती उन्मिषन्ती विशाले ईक्षणे नेत्रे यत्र कर्म्मणि तथा मांगल्यं मंगलकरं क्षामांग्याः श्यामाया वदनमरविंदमिवालोकत अपश्यत्, जृंभेत्यादि-वदनारविंदविशेषणं वा ।

89 जृम्भेति । अस्य शत्रुशल्यस्येक्षणं नेत्रं तत् क्षणं तस्मिन् समये जृम्भाया आरम्भेण विभुग्ने वक्रीभूते ये बाहुलतिके इव ताभ्यां प्रव्यक्तौ स्फुटदर्शनौ वक्षोजनीस्तनौ यस्या दरेषत् दन्तुरंतौ निम्नोन्नतौ भवन्ती या कुवलयानां श्रेणी तद्वत् विघूर्णन्ती दृशौ यस्यास्तस्याः प्रेयस्याः श्यामाया लीलया लोलतां चपलीभवतां व्यतीक्रमानां ललाटगतानामलकानां चूर्णं कुंतलानां व्याजात्क-लंकाकुलस्य लांछनयुक्तस्य आस्यरूपेन्दो मृदु कोमलं यथास्यात्तथा सौखसोप्ति-कम् सुखसुप्तं पृच्छतीति तादृशं अभूत्, पृच्छतौ सुस्नातादिभ्य इति ठक् ।

90 सदिति । सतीनां कीर्तीनां प्रकराः समूहा एव अमला निर्म्मलाः अमरसरितो गंगाया निष्पारा अनंताः पूराः प्रवाहास्तैः परमत्यर्थं अंबुरुहालयाया लक्ष्म्याः सह लसत् सहचारितां व्रजत् चांचल्यरूपपंकस्य अंकनं चिह्नं धुन्वानः दूरी-कुर्वाणः, स्वकीर्त्या लक्ष्म्याश्चाञ्चल्यदोषमपनयन्नित्यर्थः, निर्मन्दैर्बहुभि-रानकैर्मेदुरं वृद्धमुदरं येषां बैरवैः शब्दैः दिग्रूपादरीरापूरयन् सन्, शब्दाना-मुदरासंभवेपि पुष्टानामुदरवर्द्धनवत्स्वरूपे लाक्षणिकः, अयं शत्रुशल्यः तया श्यामया सह वंदितां श्रेष्ठां वृन्दावतीं मंदम्मन्दमयात् अगच्छत् ।

91 द्वे इति । अयं शत्रुशल्यः चालुक्यपरपर्यायसौलंकिकुलोद्भवे द्वे कन्ये पाणौ अगृह्णात्, उपमेये इति सर्वत्रान्वेति, ईडरसंज्ञनगरपालकात् कल्याणमल्लात् तन्नाम्नः सकाशादुभे द्वे राष्ट्रवरान्वयाद्राठोडवंशात्तिस्रः कन्याः, तथा कमठजां कच्छपवंशजां चांद्रीं चंद्रावतवंशजाम्, तथा यादवीं यदुवंशजाम्, गौडीं गौडवंशजां मल्लनहंसजां तन्नामकस्य पुत्रीम्, अथ सिसोदीयान्तन्नामक-वंशजां कुल्यां सत्कुलजामिति सर्वासां विशेषणम्, प्रामारीं प्रमारवंशजाम्, अथ राणोपनाम्नः कर्णसंज्ञस्य तनुजां पुत्रीं पाणावगृह्णात् इति पंचदश-विवाहाः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

92 योन्तर्वाणीति । श्रीरामसिंहनृपतेर्बुन्दीभर्त्तुर्निदेशेन गङ्गासहायशिशुकोऽपूरयदष्टादशे टीकाम् ।। इति श्रीचाहुवानकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्टगङ्गासहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायामष्टादशः सर्गः ।।१८।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ एकोनविंशः सर्गः ॥

1 अवरोधेति । धृतम्मध्यं तारुण्याख्यं विदग्ध चातुर्यशालि वयो येन स धराधिपती राजा शत्रुशल्यः रतिकेलौ सुरतक्रीडायां कुशलां मधुरा सुन्दर्योऽवरोधस्यान्तःपुरस्य वधूः रमयन् बन्धूनां स्वजातीयवर्गाणां मुदः आनंदात् हेतोः अमंदं बहुलं शं सुखमविन्दत लेभे ।

2 स इति । अवन्याः भूमे रमणः पतिः नरेन्द्रेषु राजसु वरः शत्रुशल्यः वरेण श्रेष्ठेन हरिणीनयनानां स्त्रीणां निकरेण सह रह एकान्ते विहरन्, लक्षणहेत्वोः क्रियाया इति हेतौ शता, प्रमदानंदात् रमणीयतरामतिरमणीयां निजकेलिसाधनं वनीमगमत् ।

3 सुरेति । तदा सुरराजस्येन्द्रस्य पराजयेन शोभातिरस्करणेन राजते तच्छीला रुक् कान्तिर्यस्य वनीं केल्युद्यानं व्रजतो गच्छतोऽस्यावनीकमितुः भूमिभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य अवरोधगतवधूनां नयनाय प्रापणाय जनेन परिचारकलोकेन विमानानां शिविकानां निकरः समनायि समानीतः ।

4 हृतेति । वराः श्रेष्ठा ये वाहनराः शिविकावाहजनाः अरं शीघ्रं हृतो निरस्तः दिव्यपुरन्ध्रीणां देवाङ्गनानाम्मदो याभिः प्रमदाभिर्नारीभिः कलितं युक्तं ललितं शिविकानां निकरं न चिरात् त्वरितमहवन् प्रापयन् ।

5 अथेति । अथ कौतुकेन शिविकादर्शनकुतूहलेन पातुवाः परितः आगमनशीला ये लोकास्तेषां कुलस्य समूहस्य प्रतिषेधे विशेषिताः प्रभुणा विशेषेण गणिता अधिकृता इत्यर्थः, णिजन्तात्कर्मणि क्तः, तैर्वर्षवरैः क्लीबलोकैः, षण्ढो वर्षवर इत्यमरः, परितः सर्वतः त्वरितं भृशमाकुलिता व्याप्ता रक्षिता इत्यर्थः ललितावनितानां शिविकाः प्रययुः ।

6 स्वेति । कुसुमेषुः कन्दर्पइवैष धरणीरमणः शत्रुशल्यः स्वस्य रुचा कान्त्या कृता नन्दनस्य इन्द्रोद्यानस्य निन्दा येन रमणीयं मनोहरं वपुर्यासां तासां रमणीनां गणेन युक् युक्तम् इदं बुद्धया प्रत्यक्षायमाणं विलासहेतुकं वनं प्रमदानंदादविशत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

7 मरुदिति । अहो विलासवनी प्रविशन्तमेतं शत्रुशल्यं पिकानां कोकिलानामावलिभिः सहितैः मरुता व युना उत्तरलानां चंचलानां व्रततीनां लतानां ततिषु पंक्तिषु गतैरतलिनैः अविरलैर्बहुभिरित्यर्थः, तलिनं विरले स्वच्छे स्तोके इति हैमः, अलीनां भ्रमराणां कुलैः करणैः अशंकितं यथास्यात्तथा मुहुः आह्वयति स्म आकारयत् ।

8 विशतीति । क्षिति भूमि आदिशति शासति इहाऽस्मिन् विभौ प्रभौ शत्रुशल्ये रतेः कंदर्पस्त्रिया रूपस्य विजित्वरैर्जयशीलै दाराणां गणैः सह उद्यानं विशति सति स्वस्य सुहृद्वरो मित्रवरो यः मन्मथः कामः तच्छंकि मत्सखः काम एवायमिति शंकाशीलं मनो यस्य स प्रमनाः प्रहृष्टमनाः, प्रमना हृष्टमान स इत्यमरः, सुरभिर्वसन्तः रभसाद्वेगात् उदयात् प्रादुरभूत् ।

9 अमलेति । अमले मलयदेशे भवं अमलमलयद्देश्यं, दिगादित्वाद्यत्, यद्यपि प्रत्ययविधौ तदन्तविधिर्नास्ति, तथापि निद्रां विहाय वनजातवनायुदेश्या इति रघुवंशदर्शनात् कविभिः क्वापि प्रयुज्यते गंधवाहं पवनं वाहयन् अश्वीकुर्वन्, वाहशब्दात् करोतीति णिजन्तात्छत्रा स्फुटं विकसितं सितं श्वेतं यच्छतपत्रं तद्रूपच्छत्रेण चित्रीयमाणः आश्चर्यकारी, नमोवरिवसिति क्यङ्, पटहितः मधुरध्वनित्वात् पटहीकृतः पिकलोकः कोकिलजनो येन चूतस्याम्रस्य गुच्छैश्चामरी चामरवान् ऋतुराजो वसन्तस्तं नृराजं शत्रुशल्यं पूजयन्, हेतौ शता, उदगमत् आविरभूत् स्वविषयागतस्य राज्ञो राजान्तरेण पूजनमुचितमेव ।

10 उन्मीलदिति । च्छदः पत्रं करशिफा हस्तमूलमिव च्छदसदृशी करशिफा च यस्याः कोरकः कलिका उरोजौ स्तनाविव कोरकाविवोरोजौ च ताभ्यां राजते तच्छीला उच्चैश्चंचत् दीप्यमानं सत्सरसिजं कमलं मुखमिव सरसिजमिव मुखं च यस्याः सा बन्धुजीवं पुष्पविशेषोऽधरइव बंधुजीवमिवाधरश्च तेन श्रीः शोभा यस्याः कुसुमिता पुष्पिता पुष्पयुक्ता लता वल्ली लक्षणया वेणी च यस्यास्सा वेल्लिता वायुना सात्त्विकभावेन च कम्पयुक्ता सा, वेल्लित गमने वलीवं कुटिले विद्युते त्रिष्विति मेदिनी केलिवाटी उच्चैः कामार्त्ता इव परिवृढस्य स्वामिनः शत्रुशल्यस्य स्वकान्तस्य चालोकतो दर्शनात् उन्मीलन्ती स्फुटीभवन्ती लीला शोभा शृंगारचेष्टा हाराख्या च यत्र कर्मणि तथा उरु महत् सिस्मिये विचकास ईषज्जहास ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

11 उत्तुङ्गेति। ऋतुपतिना वसन्तेन उत्तुंगा मंगलार्थमृदङ्गाः अक्रियन्त इति मृदङ्गिता, तत्करोतीति णिजन्तात्कर्मणि क्तः, भृंगानां गुंजाः गुंजनानि यस्मिन् माकंदानामाम्राणां वृन्देषु विलसतां शोभमानानां पिकानां नाद एव नांदी आशीर्वादादिरूपो मङ्गलपाठः मन्देनानिलेन उत्तरलाभिश्चंचलाभिर्वल्लिभिः कृता अभिनीतिरभिनयो यस्मिन् तादृशं रतिनाथस्य नाट्यम् दृश्यकाव्यरूपं व्यावर्त्यत, प्रवर्तितम् णिजन्तात्कर्म्मणि लङ्।

12 आलिङ्गन्निति। अथ पटु यथास्यात्तथा लता अबला नायिका इव तासां भुजमिव विटपं शाखां जात्यैकता आलिंगन् स्पृशन् आश्लिष्यंश्च उत्कंपेन सहित सदधरमिव पल्लवं चुम्बन् च किंचासां लतावलानां स्तबकः कुच इव तं अशंकं निश्शंकं यथास्यात्तथा स्पृशन् दाक्षिणात्यो दक्षिणदिग्भवः दक्षिणदेशजश्च, दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्, अनिलो वायुः कामीवालसदशोभत।

13 लंकेति। लंकासमीपशैलस्य तटीषु ये पटीराश्चन्दनवृक्षास्तेषां पटल्याः पंक्तेर्वाटीषु वाटिकासु मुहुरटित्वा लाटीलोकानां लाटदेशोद्भवस्त्रीजनानां विशंकटेभ्यो विशालेभ्यः स्तनतटेभ्यो भ्रष्टाः पतिताः वेल्लालच्छंकटचो अतएव अणष्टौजसो निर्बला मन्दीभूता इत्यर्थः कावेरीनदी तटगतानां व्रततीनां लतानां ततिः पंक्तिस्तासामयं नटनारंभः नृत्यप्रारम्भस्तत्र प्रगल्भाः समर्था, खिन्ने खेदे सुष्ठु दक्षिणादक्षिणदेशजा नायकविशेषाश्चापि बिरहवतीषु रामासु स्त्रीषु वामायिताः प्रतिकूलाचरणाः वाता वबुः, दक्षिणचाराणां वामाचारत्वमित्यपि ध्वन्यते।

14 विधुरेति। सतत विधुरा महत्यो या विरहाग्नेर्ज्वालास्तासां जालेन समूहेन आतुरा इव विमला ये मलयी वा मलयसंबंधिन उदक्षोदाःजलपिष्टचंदनचूर्णास्तैश्चिरादतिचर्चिताः संपृक्ताः पुनश्चन्दनसंगादेव धृत आमोदः सुगंधो यैः पुनर्गोदाया गोदावर्यास्सुतुङ्गैस्तरंगकै रचितो नलिनीसंगो यैस्ते धृता गोदा इत्यत्राप्यन्वेति मृदु वायवो मन्दवाताः नृत्यानि अधुर्धृतवन्तः।

15 अविरतेति। अविरतं रतेन खिन्ना या आशीविषा सर्पाङ्गना तस्या भुक्तशेषः सर्पाणां वायुभोजित्वात् अतः विषएा दवेन वनाग्निना च युक्त इवोच्चैश्चंद-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नेनोद्वर्तितं संसृष्टं लिप्तं चांगं येन रसेन माधुर्येण सहितं सरसं यत्सुष्ठु पंपा-यास्सरोविशेषस्य नीरं तस्य संपातः संयोगस्तेन शीतो दक्षिणात्यो दक्षिण-देशजः समीरः उच्चैर्म्मुदं प्रीतिं उदवहत् अजनयत् प्रथमपादेन मन्दता विवक्षिता ।

16 सत्यान्येति । सतां पांथानां पथिकानां सार्थस्य संघस्य प्रमदानां स्त्रीणां स्मरः कामस्तद्रूपाग्नेरारंभका उत्पादका येऽणवः परमाणवः तत्प्रतिमानि सदृशानि परमाणवो हि कार्यद्रव्यमारभंत इति तार्किकाः अणूनि सूक्ष्माणि सुष्ठु सूक्ष्माणि सुष्ठु गंधवान् गन्धवहः पवनस्तेनोद्धतानि प्रापितानि राजीवराजिः पद्मपंक्तिस्तत्संबंधीनि रजांसि परागा रेजुः ।

17 अध्वनीनेति । अध्वनीनजनानाम्पथिकलोकानां चित्तरूपस्य वारणस्य गजस्य उद्धुर्यं प्रबलं यद्धैर्यं तदेव गुरुर्महान् कुम्भः शिरोगतपिंडाकारभागस्तस्य दारणः भेदकः अतएव तस्य कुंभस्य विभेदेन संलग्नरुधिरेणेवारुणो रक्तवर्णः अंकुशस्तदाकारत्वात् । सुष्ठु पलाशस्य कोरकः कलिका प्रोल्ललास शुशुभे ।

18 कलिका इति । धृतम्मालिन्यं कृष्णत्वं याभिः विलोहिते रक्तवर्णः प्रान्तो यासां ताः किंशुकानां पलाशानां या वनी तस्याः कलिकाः पथिकवधूनां विरह-रूपाग्नेर्धूमयुक्तज्वालाया धियं भ्रान्तिं विदधुः मालिन्याद् धूमसाम्यं रक्तप्रांत-त्वाज्ज्वालासाम्यम् यद्वा कलिकासु धृतं मालिन्यं याभिस्तादृश्यः किंशुकानां वन्या वनसमूहा इति समूहे यः इति योज्यम् ।

19 रसालेति । सुगंधस्य भारे समूहे सालंबैः स्वकर्त्तृकालं वनयुवतै रोलंबैर्भ्रमरैर्विचुंबितमग्रं यस्यास्सा रसालसालस्याम्रवृक्षस्य, अनोकहः कुटः साल इत्यमरः, नवानां मंजरीणां वल्लरीणां राजी पंक्तिः लिप्तं विषं यस्याः सा स्मरस्य बाणानामावली व्यराजीत्—इव शब्दलोपाद् गम्योत्प्रेक्षा ।

20 रसालेति । जहती त्यजन्ती दया(अमुं) स निर्दय इत्यर्थः एष प्रसिद्धोऽनंगः कंदर्प्पः रसालानामाम्राणां जालस्य जालकै क्षारकापरपर्यायैर्नवकलिकावृंदैः उन्मी-लन्ती या मिलिन्दानां भ्रमराणां मंडली तस्याः सुमंजु मधुरं यद् गुंजितं ध्वनि-स्तेनांजिते व्याप्ते, णिजन्तात् क्तः, ये श्रवः पुटे कर्णपुटे तयोः स्फुटं ज्वरैर्दुःखैः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अध्वगानां पथिकानामंगनाः स्त्रियो निहंतुं कोकिलानां पिकानां कलापस्य समूहस्य काकल्या मधुरा स्फुटसूक्ष्मध्वनेः छलात् मनुस्मारणमंत्रमजपत् - (पंचचामर)च्छन्दः ।

21 नवेति । नवा नवीना दलानां पत्राणां माला यस्य स्रुतः क्षरितो मकरन्दः पुष्परस यस्य, कलं मधुरध्वनि पिकानां वृन्दं यत्र लसन्ती अलिनाम्भ्रमराणां लीला यत्र स सरसः सुन्दरो रसालः आम्रः अध्वगानां पथिकानां धृतेर्धैर्यस्य कीलोपमं काष्ठधात्वादिकीलकवदंतःप्रविश्य भेदकं सुष्ठु मुकुलानां कुड्मलानां भारं अरं शीघ्रं अधृत दधार, कुसुमविचित्रा छंदः नयसहितौ न्यौ कुसुम विचित्रा ।

22 यदपीति । यदपि यद्यपि विरहिणां दुरन्ते दुःखेन गमनीये इह वसन्ते वन्या वनसमूहः सर्वापि वन्या धन्यां श्रेष्ठां रुचिं कान्तिं समधृत दधार तदपि तथापि कुसुमैर्विचित्रा चित्रा आश्चर्यंकरी रसालानामाम्राणामावलिः पंक्तिरेवालि-मालां भ्रमरपंक्ति मदयति आनंदयति, कुसुमविचित्रैव छन्दः ।

23 विकचेति । विकचा विकसिताः विचकिलाः मल्ल्यः किल अमलानि उज्ज्व-लानि न उत्तमा येषान्तानीति न शब्देन समासः, सुरभिर्वसन्त एव नरपति-स्तस्य प्रवेशकाले प्रकटितो मङ्गलार्थकलाजानां विभ्रमो यैस्तानि कुसुमानि पुष्पाणि प्रदधुः, असौ निदर्शना उत्प्रेक्षात्वेन परिणता, विचकिलो दमनके मल्ल्यामिति हैमः ।

24 फुल्लदिति । फुल्लतां विकसतां मल्लीकुसुमानां मरंदे मकरंदे लीना स्थिताऽ-तोऽतिमत्ता अलीनां भ्रमराणान्ततिः स्मरस्य कदर्पस्य यशोरूपे इन्दौ पांथानां स्त्रैणं स्त्रीसमूहस्तस्य ग्लपनं दुःखीकरणं तदेव कलंकं धत्ते इति शके मत्तव छन्दः ज्ञेया मत्ता मभसगयुक्ता ।

25 चार्विति । कांचनी यस्य स्वर्णं संबंधिनः काञ्चनी हरिद्रा तत्संबंधिनो वा रसस्य कान्तेः कम्पकैस्तिरस्कारकैः चारुणा मन्देन मारुतेन संकम्पैः कम्पितैः चंपकैः कर्तृभिः विप्रयुक्तासु वियोगिनीषु वनितासु स्त्रीषु द्रुतं पातुका पतन-शीला अकाडेनासमयेन चंडा प्रचण्डा या चपला विद्युत् तद्वदाचरितं, आचार-क्यङन्ताद् भावे क्तः, काण्डं नाले तरुस्कंधे वाणेवसतीरयोरिति विश्वः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

26 चञ्चदिति । चञ्चतः कांचनस्य लक्ष्मण्या तच्छोभाया चौर्यं करोति तादृशी रुचिर्यस्यास्तादृश्यपि सुष्ठु आमोदेन सुगधेन रम्याप्यसौ अंचतां शोभमानानां च पंकजानां राजिः पंक्तिः अलिना भ्रमरेण हीना अतएवाधिना मनोव्यथया दूना उपतप्ता असहा दुःखं सोढुमशक्ता च सती तत् क्षणात् उद्यत्य उत्पद्यमाना या गंधफल्यः कलिकास्तासां मिषात् निर्धूमं धूमरहितं ज्वलतः विरहस्य व्यूहस्समूहस्तद्रूपस्यानलस्याग्नेरुच्चैः ज्वालानामावलीं अवलयद्दधार, गंधफली तु प्रियङ्गौ चंपकस्य चकोरके इति हैमः ।

27 ललनेति । मधुपैर्भ्रमरैः मद्यपैश्च अतिमुक्तस्य वासन्त्याः मुक्तजनस्य च संसर्गात्, अतिमुक्तस्तु निष्कले वासन्तीकायामिति हैमः । ललना या स्त्रियः कपोलपालीवत् शालीना लक्ष्मण्या शोभा आभा यस्याः सौरभ्यैः सौगंध्यैः भृता पूर्णापि चंपककलिका न पपे न पीता ।

28 इहेति । अभितो लसन्त्यो लताया यत्र तादृशे इह सुरभौ वसन्ते रभसेन वेगेन विसृत्वरं प्रसरणशीलं यत्सौरभं सुगंधस्तेनोद्धता सम्पन्ना मालती समदा मत्ता या मधुव्रतानां भ्रमराणां संसत् तस्या मुदे नंदाय श्रियं शोभां उररीकुरुते स्म अंगीचकार, मालती छन्दः भवति नजावथ मालती जरौ ।

29 इतीति । लोकपतिः राजा शत्रुशल्यः ललनाभिस्सह इति पूर्वोक्तप्रकारेण कंपितानि नीपानां कदंबानां वनानि यैस्तैः पवनैः परितो नर्तिताः वल्लयो यत्र कुसुमाकरतो वसन्तात् हेतोः सुषमां शोभां कलयत् प्राप्नुवत् विलासहेतुकं वनमलोकत अपश्यत् ।

30 लसदिति । लसन्त्या उप(व)नगोप्या उद्यानपालिकया पाणिना निर्दिश्यमाना इयममुकजातीयेत्यादि कथ्यमाना मधुनः पुष्परसस्य मधुरिम्णि माधुर्ये धावद्भिः भृंगैर्दष्टाः च्छदाः पत्राण्योष्ठा इव छदा इवोष्ठाश्च यासां ताः फुल्लवल्ल्यः प्रगल्भाः कुशलाः युवतयस्तरुण्य इव तत्क्षणादस्य राज्ञः चक्षुः जह्रुः हृतवत्यः तासाम्मनोहरतया तत्रैव राज्ञ चक्षुर्लग्नमित्यर्थः ।

31 हासेति । हासस्य विलासेन स्फूर्जिताऽऽभा यासान्तास्सुन्दरवेषा नूतनयोषा नवांगनाः, अणौकर्त्र्यः, समस्तास्ताः पूर्वोक्ताः पुष्पयुक्ता लताः कर्म्माणि, दर्शयमानः दृशेश्चेत्यणौ कर्त्तुः कर्म्मत्वम्, अमानो परिमितगुणः एष शत्रुशल्यः अतुष्यत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

32 आलोकेति । तदा समये आलोकस्य दर्शनस्य कौतुकेन कुतूहलेन सम्भ्रमिताभिरावेगयुक्तीकृताभिराभिरंगनाभिः विपिनस्योद्यानस्य भूयान् अतिशयेन बहुरुपकारः अकारि कृतः पदा स्पृष्टः अशोकतरुः विशोकः पुष्पित इत्यर्थः वक्त्रस्यासवैः मद्यैः सिक्तः मुकुलैस्सह वर्त्तमानः बकुलोपि विशोकोभवदित्यनुषङ्गः स्त्रीणां पादाघातादशोको मुखमद्यैर्बकुलो विकसतीति कविप्रसिद्धिः ।

33 आस्येति । आस्यं मुखं तस्य य श्वासानिलस्तस्य परिमले सौगन्ध्ये जातस्तर्षस्य तृष्णायाः प्रकर्षो यस्याः हर्षस्योत्कर्षात्तस्य राजस्त्रैणस्य यदधरसंबंधि उद्धुर्यं बहुलं माधुर्यं तत्र लुब्धा साभिलाषा जंगमानां चलन्तीनां लतानां भूरि भ्रान्त्या इमा जंगमा लता इति भ्रान्त्येत्यर्थः प्रचुरितो बहुलीभूतो जवो वेगो यस्यास्सा माद्यन्ती चासाविन्दिन्दिराणां भ्रमराणामालिः पंक्तिः तद्राजस्त्रैणं राज्ञः स्त्रीणां समूहं अभिववृते सर्वतोवर्तत ।

34 दर्शनीयेति । कांचिद्वधुम् दर्शनीया मनोहरा श्रीर्यस्याः तां माधवीं लता विशेषं दर्शयन् असौ भुवः पृथिव्या धवः पतिः असौ शत्रुशल्यः ऊचे अर्थात्तामेव वश्या चित्तानुवर्तिनी प्रिया यस्य स प्रियादित्वान्न पुम्वत् सन्मधुपुष्प रसं मद्यं च धित्सतः पातुमिच्छतः, धेटः सन्नन्ताच्छता सनिमीमाघु-इत्यादिना इस् अभ्यासलोपः, अलिनो भ्रमरस्य अस्या माधव्यास्सुमं पुष्पं रौप्यपात्रवत् आचरति ।

35 भवदिति । भवत्यास्तव स्मितस्येषद्धासस्य प्रभया जितैः प्रसूनैः पुष्पैर्दूनमुपतप्तं मानसं यस्याः विवक्षितविवेकेन प्रसूनजयेनैव दूनमानसा भवदिति सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुम्वद्भावः, असौ लता मरंदस्य मकरन्दस्य बिन्दूनां कैतवाद् दगम्बु अश्रु मुंचति ।

36 असाविति । (अ)सौ शत्रुशल्यः कयाचिदंगनया सह सरंगां रक्तिमयुक्तां नारङ्गस्य लतामुपेत्य सहसा जहास तथाहि हे बाले किल संभावने तावकीनं त्वदीयं यत्स्तनद्वयं तत्स्पर्द्धि अस्या लतायाः फलं समालोकय पश्य ।

37 ऊचे इति । स शत्रुशल्यः कांचिद्वधूमित्यूचे तदाह तरलानां चंचलानां दलानां पत्राणां छद्मना कम्पमाना मानम्परिमाणमतीता बहवः सुताः मधुनो मकरन्दस्य कणा एव स्वेदबिन्दवस्तैरंचितं शोभितमंगं यस्याः मंदम्मंदं सरसेन शीतलेना-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सक्तेन च मरुता पवनेन नायकेन च चुंबिता स्पृष्टा कृतचुम्बना नव्या नवीनाऽसौ मल्लिका दिव्याद्भुतामभिनववध्वाः केलिमङ्गीकरोति ।

38 अपेयेति । स शत्रुशल्यः मधुपैर्भ्रमरैरपेयम्पातुमशक्यं सकंटकलताद्यावृतत्वात् मधु यस्य तच्चाम्पेयं चंपकं समुपेत्य तस्या एणीदृशः पाणिं पाणावादाय गृहीत्वा एणीदृशं वधूमभाषत ।

39 रुषेति । रुषा कोपेन विशेषात्परुषी भवन्त्या दयामुज्झन्त्या भवत्याः कपोलपाली मया इव नलिनीं गतेन अलिना भ्रमरेण इयं चंपकस्य सूनानां पुष्पाणां राजी पंक्तिश्चुंबितुं न शक्या ।

40 सदिति । एष शत्रुशल्यः स्तबकानां गुच्छानां भरेणावनतां नम्रां सतीं मल्लीमुपेत्य अन्यां कांचित्स्वां योषितं हसितेन सहितं यथास्यात्तथा प्राह हे प्रिये पृथुभ्यां स्तनाभ्यामवनम्रा त्वमिव स्तबकभरानता इयं मल्ली ममेव कम्रस्य कामुकस्यालेर्भ्रमरस्य सदा मुदे भवति ।

41 स इति । स शत्रुशल्यः आताम्रदलमारक्तपत्रमाम्रं प्रदर्श्य पिकवन्मंजुवाणीं परामन्यां योषितं अभाणीत् अकथयत् रसालस्य वन्या कर्त्र्या रतिश्च प्रसूनेषुः कामश्चैतयोर्धिया भ्रान्त्या नौ आवयोः अंकुरैरर्चा अंकुरार्चा चटु प्रियं यथास्यात्तथा रच्यते क्रियते कामरती हि आम्रांकुरैः पूज्येते ।

42 उचितेति । कोकिलकः उचितो योग्यो यः परस्परं प्रथमसङ्गमस्तत्र सम्प्रसरत् उद्भिद्यमानं यत्पुलककुलं रोमांचौघस्तत्तुल्या ये उल्लसन्तो रुचिराः कोरकाः पुलककुलं उल्लसद्रुचिरकोरका इव च तैश्चारु रुक् कान्तिर्ययोस्तयोः सरसः सुन्दरो रसालक आम्रः स्मितेन विकसनेन मंदहासेन च लसन्ती नवमल्लिका च तयोः परिणयस्य मेलस्य विवाहस्य च मंगलं पठति किम्, समासोक्तिः, कोकिलकश्छन्दः यदि भवतो नजौ भजजलागुरुनकुंठकम् मुनिगृहकार्णवैः कृतयतिं वदकोकिलकमिति ।

43 अवंददिति । मुदा सहितः स शत्रुशल्यः प्रमदां स्त्रियमवदत् तदाह तव वदनांसवतो मुखमद्यात् मुदिते कृतदोहदे अत्र कुले वृक्षविशेषे मुकुलं कुड्मलं इह कुड्मले च कलगुंजितं मधुरध्वनि अलिकुल भ्रमरसमूहं च मुहुराकलय पश्य स्त्रीमुखमद्याद्बकुलपुष्पोद्गम इति कविप्रसिद्धिः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

44 अस्तोके इति । अस्तोको महान्संमद आनन्दो यस्य स एव शत्रुशल्यः अशोकं नाम वृक्षमुपेत्य जवाद्वेगात् कांचित् स्तोकोदरीं कृशोदरीं गिरमुदैरयत् अकथितं चेति द्विकर्मता हे उन्निद्रचन्द्रमुखि पूर्णचन्द्रवदने आगस्करोऽपराधी, अतः कृकसीति सत्त्वम्, अहमिव एष अशोकस्ते पदं पद्ममिव तस्य घातादाघातात् तूर्णं फुल्लति, एषापि कविप्रसिद्धिः ।

45 पीनेति । अमुना शत्रुशल्येन पीनौ यौ स्तनौ श्रोणिश्च तद्भरेणालसानां अतः मरालस्य हंसस्य या लीला गतिस्तत्र लालसाऽत्यभिलाषो यासां निश्वासैः संवासिता दिशो दर्यं इव याभिस्तासां सुन्दरीणां श्रमोऽमन्यत तास्तु स्तनश्रोणि-भरादलसा हंसवद् गच्छंति स्म राज्ञा तु स्नेहात् तासां श्रमोऽमन्यत ।

46 अथेति । अथ श्रमबोधानंतरं उल्लसंतो ये तालाः तमालाश्च तेषां मालाभिः पंक्तिभिः क्षतो निरस्तः अतः अपतापे अपगततापः ईदृशोऽर्कस्य महसां तेजसां कलापस्समूहो यत्र तस्मिन् वने विशंकमातपादिशंकारहितं यथास्यात्तथा विहरन्नवनीशो राजा विमले कर्करादिरहितेऽशोकस्य मूले विवेश उपविवेश ।

47 विहरणेति । विहरणस्य विहारस्य खेदेन यः स्वेदस्तस्य निर्म्मन्दा महान्तो ये बिन्दवस्तेषां छलेन विलसिताः शोभितास्तारा यत्र तादृशः स्फार शोभः प्रवृद्ध-शोभः आस्यरूपश्चन्द्रो यासां ताः कलितो गृहीतो ललितः कंपस्सात्त्विकभाव-विशेषो याभिः पीनाभ्यां वक्षोजभ्यां स्तनाभ्यां दूना भाराक्रान्तास्ता योषित-स्तम्मनुजनाथं शत्रुशल्यमनुपश्चान्निषेदुः उपविविशुः ।

48 अश्रान्तेति । अश्रान्तं सन्ततं श्रान्तिः श्रमः तया तान्तिर्ग्लानिः तया स्रुतानां जलकणिकानां स्वेदबिन्दूनां कैतवात्कपटात् निर्म्मदैः बहुभिर्माकरंदैर्मकरन्द-जातैस्सीकराणां जलकणानामोघैः व्याप्तं वपुर्यासां ताः कंपिता उरोजा स्तना गुच्छा इव उरोजा इव गुच्छाश्च या ताः रज्यन्ती रक्ताया राजीवानां कमलानां राजि पंक्तिस्तद्वद्रुचिरा करशिफा हस्तमूलानि स्फारसत्पल्लवा इव करशिफा इव स्फारसत्पल्लवाश्च यासां अतिधन्याः सीमन्तिन्यः स्त्रियोऽशोकस्य मूले व्रततीनां वल्लीनां रुचिं सादृश्यमधुर्धृतवत्यः ।

49 श्रममिति । तदा मनीषिणा गुणज्ञेन सुराधिपस्येन्द्रस्येव श्रीर्यस्य तेन श्रमं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पर्यटनखेदं शमन्निनीषुणा परिजिहीर्षुणाऽमुना शत्रुशल्येन कामिनीजनैः सह सुरा अपायि पीता ।

50 सविधेति । सविधे समीपे विविधा भोगा भोगास्वादनशक्तयो यस्याः कामिनीनां वक्त्रयोगान्मुखसंबंधात् प्रसृमरतरोऽतिप्रसरणशीलो यो गंधस्तेनाहूतानां भृंगानामनुबंधस्सम्बन्धो यस्यां सरसतरा अतिस्वादवः रसाला स्वकारणीभूता इक्षवो यस्याः सा, रसालश्चेक्षुचूतयोरिति मेदिनी वारुणी सुरा अस्य शत्रुशल्यस्य श्रान्तेः श्रमस्य तान्ति ग्लानिं निरस्य चारुलीलायाः श्रेष्ठविलासस्य मुदमानन्दमुदवहत् प्रापयत् ।

51 प्रेयसीति । मधुरां महीधुरां पृथ्वीभारमुद्वहन् सः शत्रुशल्यः प्रेयस्याः अतिप्रियाया मधुरेण दन्तवाससा ओष्ठेन वासितां सुगन्धितामिव लसन् यस्यां तां मधुरां सुरां सन्निपीय बकुलवृक्षवल्ललास प्रसन्नः पुष्पितश्चाभूत् ।

52 नवकुवलयेति । नवानां कुवलयानां कुमुदानामिव उन्मीलन् प्रकटीभवन् यो लीलाकलापः शोभासमूहो विलाससमूहो वा तस्य कलया रचनया उत्कला उद्भूतपरवशीकरणकौशलाः प्रचुरं बहुला चपलाश्च ये स्वीया अपाङ्गास्तेषां प्रतिबिंबितैः हेतुभिः परिमले सुगंधे मिलन्ती या भृङ्गश्रेणी भ्रमरपंक्तिस्तया युतामिव संमन्वाना जानत्यस्ता मदिराणि पीतमद्यानीव मत्तानि नयनानि यासान्ताः स्त्रियः, मदिरा शब्दाद् अच्, तदा मदिराम्पपुः उत्प्रेक्षाभ्रान्तिमतोः सन्देहः ।

53 वपुरिति । अनुपमा अत्युत्तमा शोभा कर्त्री तासां स्त्रीणां वपुः शरीरं कर्म्म भूषयामास भूयः पुनस्तां शोभामपि तरुणं वयस्तारुण्यं शोभयामास तत्तारुण्यं अपि रुचिरो हावः शृंगारचेष्टा सद्यः पावयामास शोभयामास मधुरं मधु मद्यं अशेषान् सर्वान् तान् पूर्वोक्तान् शोभादीन् विशेषान् दीप्तिमाधुर्यादीन् अनैषीत् नयतिर्द्विकर्मा ।

54 या इति । या अवियाता अप्रगल्भाः, धृष्टे धृष्णुर्वियातश्चेत्यमरः, सलज्जा इत्यर्थः प्राक्पूर्वं सुहृत्सुस्निग्धजनेषु उपयातां जातां रक्ति आसक्ति रक्तिमाणं च लज्जया हृत्स्वेवाऽगोप्सुः रक्षितवत्यो गोपयन्ति स्मेत्यर्थः आसवस्य मद्यस्य

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पानात् उत्सवभाजां प्रागल्भ्यजुषामासां चक्षुषि सैव रक्तिरेव जज्ञे किम् रागस्य रक्तो वर्णः कविप्रसिद्धेर्विषयः ।

55 पीतेति । पीता प्रसन्ना मदिरा याभिस्ताः, गंधोत्तमा प्रसन्नेत्यमरः, प्रसन्नाः प्रीताः अपि समुच्चये प्रसन्ना अपीति भिन्नक्रमो वा प्रह्लन्नं विकसितं यत्कह्लारं जलपुष्पभेदः तद्वद्विभासि शोभनशीलं मुखं यासान्ताः ,प्रह्लन्नेति ह्लादी सुखे चेति, ततः क्तः ह्लादो निष्ठायामिति ह्रस्वः श्वीदितो निष्ठायामितीण् निषेधः, रदाभ्यामिति तकार दकारयोर्नौ, राजरामा राज्ञ्यः सुष्ठुभूमा महत्त्वं यस्य तादृशो भामः कोपो यासां तादृश्य इव क्षणेन शोणौ रक्तौ अक्षिकोणौ यासां तादृश्योऽभवन् यद्यपि कोणशब्दः सुभूम शब्दं विरुणद्धि तथापि तासाम्महत्यपि कोपे कोणमेव शोण भवतीत्युत्तमत्वप्रदर्शनाय भवेत् ।

56 अपाङ्गेति । चलश्चंचलोदृशस्तरङ्गो गमनं अपाङ्गयोर्नेत्रयोस्संगी गिरां वाचां भङ्गो रचना च भावप्राधान्येन गद्गदत्ववक्रत्वाभ्यां रम्या गद्गदा वक्रा रम्या चेति विशेषणसमासो वा इत्थं लोलदृशां स्त्रीणां तारुण्यवारुणीभ्यां यौवनमदिराभ्यां उदितः प्रकटितो विलासो मिथोऽन्योन्यं समोऽभूत्, मीलितं यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते इति मीलितम् ।

57 स इति । स प्राणेश्वरः शत्रुशल्यः यां प्रियतमां प्रेमपूर्वकमासवं मद्यं अपाययत् प्रत्यवसानार्थत्वादणौ कर्त्तुः कर्म्मता, अथ यावत् सा पूर्वोक्ता नायिका दृशो रागं न वहति तावत् परस्यास्तत्सपत्न्याः कान्ते शत्रुशल्यईर्ष्यावशात् पटलितः पाटलवर्णो जातः कटाक्षः जुवुर्ण बभ्राम असंगतिरलंकारः ।

58 येति । या नायिका अतिमौग्ध्याद्धेतो रतिविधौ दयितेन कान्तेन सह अवलेपस्य गर्वस्य लवं लेशमपि नादधौ स.ऽधुना मदकाले निजं शिरो विधुनाना कम्पयन्ती वक्रा कुटिला वाग्यस्या अरुणे चक्षुषी यस्याः तादृशी संकोपा अलक्षि लक्षिता मदकार्यस्य गर्वकार्यतया वर्णितम् ।

59 परीति । तस्या नायिकाया विलासैर्वश्ये नाथे कान्ते शत्रुशल्ये सत् श्रेष्ठो योऽवश्यायकरो हिमकरश्चन्द्रस्तद्वदाननं यस्यास्तां चंद्रमुखीं परिपश्यति सति पीतम्मद्यं यया सा प्रमदा स्त्री न ममाद इति न अपि तु माद्यति स्म, द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः, हि यतः सम्मदेष्वानन्देषु मदः अर शीघ्रमुद्यात्युदेति

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अर्थान्तरन्यासः ।। बसन्तमालिका छंदः विषमे ससजागुरु समेचेत्सभरायश्च वसन्तमालिका सा ।

60 ययेति । यया नायिकयाऽतिशालीनतया अधाष्ट्र्येन हेतुना, शालीनकौपीनावधृष्टाकार्ययोरिति खः लज्जाहेतुकावगुंठेन पिधानपटेन सरंगमंगरागयुक्तमंगं व्यधायि पिहितम् मदेन स्रस्तं पतितं लसदुतरीयं यस्मादीदृशं तस्या नायिकाया वपुरस्य शत्रुशल्यस्य मुखेनावलोको यस्य तादृशं जज्ञे जातम् ।

61 मद्येति । मद्यस्यास्वादेनोन्मेदुरो व्याप्तो यः श्वासस्तस्य वासे सुगंधे भ्राम्यतां भृङ्गाणामुत्सारणे निरसने लोलश्चंचलः पाणिर्हस्तो यस्याः अतः प्रसवलन अव्यक्तीभवन् वर्णोक्षरं यत्र कर्म्मणि तथा पापाहीति पाहि पाहीति इत्यत्र हिकारस्खलनात्पापाहीति संजल्पन्ती अन्या नायिका तेन शत्रुशल्येन तूर्णं चुचुंबे चुंबितललाटः सिपि यङ्लुङन्त पिबतेरपि पापाहि इति रूपात् ।

62 सरोषेति । मदाद्धेतोः क्षणेन रोषतोषाभ्यां सह वर्तमानासु तासु योषासु स्त्रीषु तस्य क्षितिपस्य शत्रुशल्यस्य सुतीव्रं गोत्रस्खलनं सपत्नीनामोच्चारणं ज्ञात्वापि सुराया मदेन हेतुना अह्नाय शीघ्रं न्यह्नूयत अपाह्नूयत स्त्रीभिरिति कर्तृ पदमध्याहार्यम् सुरा हि उद्दीपकत्वात्कान्तस्यापराधमपि न्यक्कारयति ।

63 इत्थमिति । एष शत्रुशल्यः इत्थं प्रकारेण सविशेषो बहुलो मदो यासां तासां प्रमदानां स्त्रीणां मनसो रंजनाय उपवने हारी सुंदरो यो हासस्तेन मनोहरै रमणीयैर्होलाकाया उत्सवैः प्रसिद्धैर्वक्ष्यमाणैर्विजहार विहारं कृतवान् ।

64 स इति । स शत्रुशल्यः सुगन्धेन दिशः समधिवासयद्भिः सुगन्धिकुर्वद्भिः मरुता वायुना चला विकस्वरा विकसिता च या अंबुजानां पद्मानां वली तस्या रजः परागस्तद्वत् पिंजरैः शोणै रक्तैः पटवासकैः प्रकरणानुरोधात् गुलाल इति प्रसिद्धैः, पिष्टातः पटवासक इत्यमरः, प्रपूर्णं पूरितं घुसृणं कुंकुममिश्रं जलं येषु तैर्म्मणिभ्यः सुवर्णाच्च जातैरुत्क्षेपकैः पिचकारीति प्रसिद्धैरपि मन्मथेन रस आसक्तिस्तेन सह यथास्यात्तथा युवतिभिर्विजह्रे तमाम् अतिशयेन विजहार ।

65 मदिरेति । मदिराया मदेन मुदिता मदिराक्ष्यः स्त्रियस्तं शत्रुशल्यं तरुणं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

फुल्लमरुणं च यदम्बुजं कमलं तस्य रजसः परागस्य प्रतिपक्षैः सादृश्यात्स्पर्द्धिभिः रोषेण रोहिततरैरतिरक्तैः स्वकटाक्षैरिव अरुणैः रक्तैः पटवासैः पिष्टातैः समताडयन् ।

66 मुष्टीति । संभ्रान्ताभिर्हर्षवेगयुक्ताभिस्ताभिः स्त्रीभिः कर्त्रीभिः मुष्टिभिः क्षिप्तैः शोणानां रक्तानां पिष्टातानां पटवासकानां वर्षैः करणैरभ्याहतस्ताडितोऽसौ शत्रुशल्यः मुहूर्त्तमात्रं साभिलाषं सरागं यथास्यात्तथा अंगेषु आसां स्त्रीणां मूर्त्तं मूर्तिमत् रागकर्म्मकमालेपं अंगीचक्रे किलेवार्थे ।

67 अरुणेति । यद्यपि अरुणेन पटवासेन जुष्टः अस्य शत्रुशल्यस्य तासां स्त्रीणां च मुष्टिक्षेपः समः समानः तदपि स पिष्टातः आयतं दीर्घमासां स्त्रीणां चक्षुर्नेत्रं कष्टायते स्म कष्टाय क्रमते स्म कष्टायत्रमणे इति क्यङ् ।

68 भृङ्गैरिति । नृपस्य शत्रुशल्यस्य रतिरसादिति हेतौ पंचमी इति रतिहेतुकासु क्रीडास्वित्यर्थः अंबुजपरागधिया कमलरजोबुद्ध्या सरागैर्भृङ्गैर्वृतः अथ च बालातपोऽयमिति भ्रमेण युतैश्चक्रवाकैः आलोकितो दृष्टः स शोणपटवासवरो श्रेष्ठपिष्टातः सहसा डिड्ये उड्डीनः रतिरसादिति चक्रवाकैरित्यस्याग्रे वा योज्यम्, चक्रवाकानां दिने एव रत्युदयात् बहुभिर्गृह्यमाण एकः पलायते हि ।

69 प्रगुणेति । स्वभासा अनवद्यां श्रेष्ठां द्यामाकाशं प्रगुणं सातिशय अरुणयन्ती रक्तीकुर्वती सततं अहितानां शत्रूणां कीर्त्तय एव स्फारा बहुलास्तारा हरन्ती अभिभवन्ती रभसभरेण वेगातिशयेन विधूता क्षिप्ता शोणा पिष्टातानां राजी पंक्तिः उदयन् प्रकटीभवन् य एतस्य शत्रुशल्यस्य सन् प्रताप एवार्कस्तस्य संध्या इव व्यलसत् शुशुभे, उत्प्रेक्षा गम्या ।

70 पटवासेति । स शठः छली शत्रुशल्यः पटवासप्रवेशेन विदूने खिन्ने नेत्रे पद्मे इव यस्यास्तामतिमुग्धां कांचिन्नायिकां नेत्रपीडापगमाय मुखस्य वाष्पस्य ऊष्मयुक्तश्वासस्य यद्दानं तस्य दंभात् मिषात् तूर्णं शीघ्रं सविधं समीपं समुपेत्य उच्चैरविलंबात् शैघ्र्यात् चुचुंब, पर्यायोक्तं तदप्याहुर्यद्व्याजेनेष्टसाधनम् ।

71 बंधूकेति । सः शत्रुशल्यः बंधूको रक्तपुष्पविशेषस्तस्य बंधूभवद्भिरंशुचूर्णैः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सूक्ष्मपटवासचूर्णैरन्धीभवद्भूचां नेत्राभ्यां निरुद्धौ पाणी यस्यास्तस्याः परस्या अन्यस्याः संभ्रमतः आवेगात् कूर्प्पासकं चोलं निरस्य उग्रौजो स्तनौ कुम्भाविमाश्लिष्यत्, अंशु सूत्रादि सूक्ष्मांशे किरणे चण्डदीधिताविति हैमः ।

72 जघानेति । स शत्रुशल्यः यां घनस्तनीं निविडकुचां प्रियां अरुणचूर्णकै रक्तपिष्टातैः जघान प्रहतवान् सा तु प्रमदेन नंदेन यो हासस्तेन भास्वत्कान्तिमन्मुखं यस्यास्तादृशी सती किमपि न विव्यथे अहो प्रकोपे सुष्ठु परायणाः परास्तानि निष्प्रभाणि आननानि यासां ताः परा अन्याः प्रसभं लब्धो घातः प्रहारो याभिस्ता इव मुहुः प्रमुमुहुः मुमूर्च्छुः असङ्गतिरलंकारः ।

73 अयमिति । अयं शत्रुशल्यः [निजे विलासहेतुके वने इति प्रकारेण हुतासन्यां होलाकापूर्णिमायां आनंदात् वृन्दावने वने व्रजस्य यौवतैः युवतीसमूहैः सह यदुपतिः कृष्ण इव वधूजनैः सह विकलिता व्रीडा लज्जा यत्र तां धन्यां प्रशस्यां क्रीडां विधाय हृदये मनसि सीमाया अवधेर्भूमानं बाहुल्यमतीत्य गच्छतीति तां मुदमानंदमलभततमामतिशयेन प्रापत् ।

अथ ग्रीष्मवर्णनम्

74 पत्येति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण ऋतूनां पत्या वसंतेन जगत्या नाथं तं शत्रुशल्यमत्यादरेण अर्चितं सत्कृतं एक्ष्य दृष्ट्वा, आङ्पूर्वादीक्षतेः क्त्वो ल्यप्, स्फुटं स्फुटन्ति विकसन्ति यानि पाटलानि पाटलपुष्पाणि तान्येव हासस्य भासो यस्य तेन तपेन ग्रीष्मेण तं शत्रुशल्यमर्च्चयितुं समुज्जजृम्भे उद्भूतम्, भावे लिट्, पत्या ऋतूनामिति संहिताया अविवक्षणं न संधिः ।

75 हृदयेति । तपेन ग्रीष्मेण महाशयं गंभीरमनसमपि तं शत्रुशल्यं हृदयहारिभिर्मनोहरैर्विहारैर्हृतं अंतरम्मनो यस्य तादृशं चिरतरमुदीक्ष्य विचार्य अहो हर्षे प्रचुराः केलिमहाः क्रीडोत्सवा यत्र तानि अहानि दिनानि द्रुतं शीघ्रमेव महान्ति दीर्घाणि वितेनिरे कृतानि ।

76 नवेति । अमुना ग्रीष्मेण कर्त्रा कामुकैः कामिभिरिव मधुकरैर्भ्रमरैः प्रणयात् प्रीतेर्मृदु यथास्यात्तथा चुंबितैर्नववधूनां वदनैरिव विकचानि शीर्षाण्युपरिभागा यस्य शिरीषस्य सुमोत्करैः पुष्पसमूहैः (करणैः) नरपते राज्ञोऽग्रेंजलिर्विदधे कृतः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

77 प्रस्फुटेति । प्रस्फुटानां विकसितानां पाटलानां पटल्याः पंक्तेः केसराणि किंजल्का एव पटवासाः वस्त्रसुगन्धीकरणद्रव्याणि तैर्वासिताः वाताः तुङ्गेना-तपेन विधुरांगाः तप्तशरीरा इवेति गम्योत्प्रेक्षा सहसा सरसीमसेवन्त वायो-र्मान्द्यसौगंध्यशैत्यबोधनायेदम् ।

78 सलिलेति । अजस्रं सलिले कलिता गृहीता लीला स्थितिर्याभिस्ता अपि नलिन्यः पद्मिन्यः ग्रीष्मकाले प्रसृमरः प्रसरणशीलो यो मकरंदस्तस्यामंदा अनल्पा ये बिंदवस्तेषां छलेन प्रचुरो यो मिहिरस्य सूर्यस्य तापस्तेनोन्मेदुरो व्याप्तः स्वेदस्य पूरः समूहस्तस्य प्रचुराणां बहूनां पृषतानां बिन्दूनां लक्ष्मीं समूहः ।

79 पूर्वमिति । पूर्वं मीनस्य राशिविशेषस्य मत्स्यस्य चपलानां घटीषष्टिभाग-मितावयवानां मांसानां चाशनादतिक्रमाद्भोजनाश्च रसानां जलानां मांसानां चाधिगत आस्वादः शोषणं भोगश्च येन करुणाया लेशेनापि संवर्जित क्रव्या-द्वत् राक्षसवद्दारुणः एष तपनः सूर्यः परं केवलं अशेषं समयं मेष राशिं उरभ्रं च भुक्त्वा भीष्मे भीषणेऽमुत्रास्मिन् ग्रीष्म ऋतौ जवाद्वेगान्नृमिथुनं मिथुन-राशिं मत्स्यो घटीनृमिथुनमिति वृहज्जातकोक्तेः मनुष्ययुग्मं च भोक्तुं समुत्कंठितः सन् गोराशिं वृषाख्यराशिं गवां राशिं समूहं च बुभुजे ।

80 निदाघर्त्ताविति । निदाघर्तौ ग्रीष्मे दाहे प्रवणः उत्मुखो यस्तरणिस्सूर्यस्तस्य प्रौढैर्म्महद्भिः किरणैरुद्धतो महानपायो दुःखं यस्य स को वा पदार्थः मनसि छायान्नाचकमत नेष्टवान् अपितु सर्वोपि इष्टवान् यद्यतोऽस्मिन् ग्रीष्मे सलि-लानां जलानां गणोपि उद्दामः प्रचंडो यो द्युमणिः सूर्यः तस्य करैः संशोषितानि गलन्ति पतन्ति च यानि दलानि तीरतरुपत्राणि तेषामुच्छ्रायस्य समूहस्य च्छायां श्रयति उदश्रयतीति घञ् विभाषा सेनेत्यादिना छायाशब्दस्य क्लीबता ।

81 विरहीति । विरहिणीनां वनितानामायासस्य दुःखस्य श्वासैरिव उल्लसन् वर्द्धमान ऊष्मा येषु तैः तपवासरैर्ग्रीष्मदिनैः सपदि शीघ्रं च परमुत्कृष्टं द्राघीयस्त्वं दीर्घत्वं दध्रे धृतम् ईयसुनि प्रियस्थिरेति द्राघादेश; मुकुलित-कुचां उद्भिन्नस्तनीं स्वकीयां सपत्निकां पश्यन्त्या चलदृशा नायिकयेवान्वहं नित्यं निशया रात्र्या भृशं कार्श्यं कृशत्वं दध्रे धृतम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

82 अमुष्मिन्निति। पिशुनानां दुष्टानां वचसीव अविद्यमानः सहः सोढा यस्य तस्मिन् अत्यसह्ये असहतमे जहती त्यजन्ती सीमा यं तस्मिन् निर्म्मर्याद इत्यर्थः आमेऽपक्वे रसे रसाख्यधाताविव जनस्य ज्वरस्य दुःखस्य रोगविशेषस्य च कारकेऽमुष्मिन् ग्रीष्मर्त्तौ जडो मूर्ख इव ललाटंतपतरोऽतितापकः बोधयितुमशक्यश्च जडो हि बोधयितुमशक्यत्वाद्बहुकथनेन शिरः पीडयति इव प्रचंडो मार्त्तण्डः सूर्यः गुरोरुपदेष्टुर्गलमिवधीरम्महान्तमपि जलाधारं सर आर्दिअरं शीघ्रमशोषयत् तापेन बहुकथननेवेत्यर्थः ।

83 इहेति । अग्रभाभिः प्रचंडतेजोभिर्मिहिररुग्भिस्सूर्यकान्तिभिः संततप्ररुग्णे दुःखिते रोगिणि च गरीयसि महति इह जगति प्रथमं पूर्वभागे पानकाले च अतिकटूनि तापकानि अस्वादूनि च पाकेऽन्ते परिणतौ च रचितं सुखमुष्माभाव आरोग्यं च यैस्तान्यहानि दिनानि यथा औषधानि तथा रेजुः ।

84 इतीति। इति प्रकारेण निदाघजनितदारुणदाहतो हेतोर्विधुराः खिन्ना या राजवध्वस्तासां मधुरे श्रेष्ठे उरसि वक्षसि विनिहितैः लिप्तैः सान्द्रतरैर्घनैर्द्रवैः सजलैर्मलयजैश्चंदनैः तत्क्षणात् शीघ्रं समशुष्यत शुष्कम्, भावे लङ् ।

85 तपेति। कयापि स्त्रिया तपे ग्रीष्मे सन्तपन् यस्तपनस्सूर्यस्तज्जनिततापनिवृत्त्यै किल संभावने मृणालं बिसम् वलयीकृतम् अहो तन्मृणालं तदैव वलयीकरणसमय एव सुकुमारा कोमला या तस्या भुजरूपलता तस्यास्त्रपया लज्जयेव सुनितांत अताम्यत् म्लायति स्म, हेतूत्प्रेक्षा ।

86 कस्याश्चिदेति। अहो हर्षे दिवसकृतस्सूर्यस्य अदीनो महान् यो दाहस्तेन रोहदुत्पद्यमानं यद्धर्म्माम्भः स्वेदस्तस्य कणैर्निचितं व्याप्तमुरो वक्षो यस्यास्तस्याः कस्याश्चित्सुदरया नायिकाया उरोरुहौ स्तनौ रम्यां रमणीयां मरंदो मकरन्दस्तत्समूहो मारंदस्तस्यादुदितैः पृषद्भिर्बिन्दुभिरच्छः शोभनो यो गुच्छः स्तबकस्तस्य लक्ष्मीं नो दधतुः किम् अपितु दधतुः, निदर्शना ।

87 प्रगुणेति। नृपेण शत्रुशल्येन प्रगुणमतिशयितमरुणाः पाणिजानां नखानां व्रणा यत्र तादृशयो स्तनयोरुपरि स्वेदजलैर्विशेषेण संक्तः संश्लिष्टः सोऽतिशोभनः सुदृशो नायिकायाश्चं नः चोलः सूक्ष्मकूर्पासकः कुरुविन्दैः पद्मरागैर्निर्मित इव ददृशे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

88 प्रेंखदिति । प्रेंखत् प्रकाशमानं नखैर्म्मर्मं नखव्रणं तस्य वदः सूक्ष्मावस्त्रान्तर्वस्तु प्रकाशकत्वात् सूचकः इति पश्चादचच् तादृशेन घर्म्मजलेनार्द्रो यश्चीनचोलस्तेनावृतापि कापि भीरुर्नायिका तु तथा न ततापन तप्ताऽभूत् यथा इमां वालां ईर्ष्यया कषायीभूते नयने यत्र कर्म्मणि तथा विनिभालयन्ती पश्यन्ती सपत्नी आशु शीघ्रमतपत् तप्ताऽभूत् ।

89 इतीति । क्षितिपतिः शत्रुशल्यः इति प्रकारेण विषमतरोऽतिकष्टः ऊष्मा औषम्यं यस्य तेन ग्रीष्मेण सन्तप्तं वर्ष्म शरीरं यस्य तदेणाभनेत्रं मृगनयनं स्त्रीसमूहं पश्यन् सन् गाथमतिशयितं गंभीरं नीरं जलं यस्य शीतमिति भावः सलिलरुहैः कमलैर्मनोज्ञं सुन्दरं तं जयत्सागरं जैतसागरं नाम सरो विगाढुम् अवगाहनकर्म्मीकर्त्तुमचकमत ऐच्छत् ।

90 अथ सरो वर्णयति ।। सुधाया इति । सुधाया अमृतस्य सध्रीचीं सहचरीं तुल्यां उच्चैः खेलन्तीं चलन्तीं क्रीडन्तीं च प्रणयिनीं प्रियामिव मधुरां जलवीचीं प्रेक्षितुं द्रष्टुं रणरणकेन उत्कंठया सहितः इव, औत्सुक्यं रणरणकोत्कण्ठे इति हैमः, समुन्मीलतां विकसतां नीलोत्पलानां मिषेण सुविस्फारे निर्निमेषे नयने यस्य स यः जयत्सागरस्तडागः विलासीवानबरतं वहलं प्रचुरमुल्लासं शोभाविशेषयाह्लादं च वहति ।

91 वृन्दावतीति । यस्तडागः वृन्दावत्याः बुन्द्याः परिसरस्थाः पर्यन्तभूमिस्था महान्तो महीपर्वतास्तेषां प्रोत्तुंगानि यानि शृंगाणि तेषां तरलैश्चंचलैः प्रतिबिंवितैः भावे क्तः, प्रतिबिंबनैः नाकेश्वरस्येन्द्रस्याशनेर्वज्रस्य निशातस्तीव्रो यो निपातः प्रहारस्तस्माद्द्रूनो भीतो यो मैनाकः पर्वतविशेषन्तद्धारिणो जलधेस्समुद्रस्य तुलनां बिभर्ति तरंगचंचलप्रतिबिंबानां कम्पमानमैनाकपक्षैः सादृश्यात् इति विभाव्यम् ।

92 य इति । हंसैर्मरालैर्हंसेन परमात्मना चोल्लसितः शोभितो योऽमलो निर्म्मल आशयो मध्यमन्तःकरणं च तेन युतो व्याकोशा विकसिताः कोशाः कुड्मला येषां ते अंबुजानां पद्मानामामोदेन सौगन्ध्येनामंदो वहुलो मदो येषां तेषामलीनां भ्रमराणां जालं समूहो ललिता आलोला निश्चला च अक्षमाला जपमाला इव अलिजालसदृशी ललिता लोलाक्षमाला च तस्याधरो धरकः वस्तडागस्सन्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मर्षिरिव द्विजराजस्य चंद्रस्य श्रेष्ठब्राह्मणस्य च भर्त्सनमभिभवस्तत्कारिणं प्रचंडौजसं सूर्यं क्रूरस्वभावं जनं च अदरिद्रा महान्तो ये विटपिनः तेषां व्याकीर्णानि विस्तृतानि पर्णानि अंगुलय इव तादृशपर्णसदृशांगुलयश्च तासां श्रेणिभिः पंक्तिभिः रुन्धे ।

93 तपेति । मथने असमर्थैर्विबुधैः देवैः अलुंठितः अनपहृतरत्नो यस्तडागः तटगतशुक्तिषु मुक्तायोनिजन्तुषु तपस्य ग्रीष्मस्य तापेन तान्ततरेभ्य, अतिम्लानेभ्यः वृन्तेभ्यः लक्षणया पद्मादिपुष्पेभ्यः, वृन्तम्प्रसवबंधने इत्यमरः, पातुकैः पतनशीलैः उज्ज्वलैर्मरन्दस्य मकरंदस्य बिंदुभिः स्फुटमेव मौक्तिकमणीन् बिभर्त्ति, समुद्रसादृश्यं गम्यम् ।

94 सम्पुष्पितेति । नृषु सारः श्रेष्ठोऽसौ शत्रुशल्यः सम्पुष्पितानाम्फुल्लानां अनोकहानां वृक्षाणां सर्वधिभिगन्धवाहैः पवनैर्हेतुभिः सन्तं श्रेष्ठं गन्धं वहन्ति इति तादृशैः तरलैश्चञ्चलैर्भुजैरिव तरंगैराह्वानकरमाहूयन्तं सखायम्मित्रमिव कासारं तडागं ससार ययौ ।

95 श्रोणीति । श्रोणीनां कटीनां भारात्कलिता गृहीता ललिता रमणीया आंदोलस्य लीला येन तादृशः स्वीयो मध्यो यत्र कर्म्मणि तथा अलसं यथास्यात्तथा विलसन्न्यासः स्थापनं तेन धन्यं शोभनमंघ्रिपद्मं यत्र कर्म्मणि तथा गच्छन्तीनां वामाक्षीणां स्त्रीणां समाजे राजमानः असौ क्षितिपतिः शत्रुशल्यः अनुगतोऽनुगामी यो वशानां करिणीनां वशः समूहस्तस्य वश्योऽधीनो यो द्विपो हस्ती तस्याभिख्यां शोभां, अभिख्यानामशोभयोरित्यमर, भेजे, करिणी धेनुकावशा इत्यमरः, निदर्शना ।

96 आपीनेति । असौ शत्रुशल्यः एतस्य तडागस्य तीरे आपीनं पृथु यत् स्तनजघनं तेनाऽतिमन्दगत्या हेतुना रम्यायाः श्रेष्ठायाः वरटानां हंसीनां ततेः पंक्तेस्साधर्म्यं सादृश्य गतानां कान्तानां सुंदरीणां निवहैः मदकलस्य मदेनाव्यक्तकूजितस्य. मदकलो मदद्विपे मदेनाव्यक्तवचने इति हैमः, राजहंसस्य लक्ष्मीं शोभां उवाह वहति स्म ।

97 अत्युज्ज्वलेति । अत्र सरसि तासां स्त्रीणां अंघ्रिद्वयं अत्युज्ज्वला अनणवो महान्तो ये मणयस्तेषां स्फुरत् प्रसरदंशुजालं किरणसमूहो यत्र तादृशानां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीराणां नूपुराणां मंजुतरेण शिंजितेन राजन्ते इति तादृशैः पुंजै समूहैः लीलया अलसाया स्वस्य गतिः तस्यां लालसा यस्य तं हंसानां संघं द्रुतमतर्ज्ज-यत् तिरश्चकार ।

98 विजिहीर्षुरिति । अस्मिन् जलाशये तडागे भीमतीनां भीतानां सुदतीनां स्त्रीणां निकरेषु मध्ये विजिहिर्षु विहर्त्तुमिच्छुरसौ भूरमणः भूपतिः शत्रुशल्यः वीतानि दूरीकृतानि शस्त्राण्याभरणानि च येन तादृशस्सन् तासां भयनिवृत्तये प्रथमं स्वयमेव द्रुतं विवेश ।

99 प्रौढेति । प्रौढो महान् यः प्रालेयशैलो हिमालस्तस्यातिमहिमा बहुतरा या हिमिका हिमं तां वहति तच्छीला या वात्या वातसमूहस्तया समुद्यद् उद्भव-त्साधर्म्यं साम्यम् अर्थात्प्रालेयशैलेन तस्माद्धेतोः यस्य पद्माकरस्य जैतसागर-स्य नाम वर्णान्नामाक्षरादपि हंत खेदे शैत्येन भयेन च त्रिभुवनमेव भवनं गृहं लक्षणया तद्वासिजनः कंपते तदा काले यत् द्रुतं शीघ्रमवनिभुजा शत्रुशल्येन गाढं दृढं गाढस्य विलोडितस्य, गाह् विलोडने क्तः, तस्यैतस्य पद्माकरस्यायं पद्मानां कमलानामाकरस्समूहः सपदि बहुतरं कम्पमापत्तत् स्थाने युक्तमेव, आकरो निवहे खनौ इति हैमः, युक्ते द्वेसाम्प्रतं स्थाने इत्यमरः, यद्भयादन्ये कम्पंते तत्संबंधिनोऽपि कस्यचित्कम्पे लोकाहृष्यन्त्येव ।

100 आकारिता इति । कान्तेन शत्रुशल्येन लोलतरा अतिचंचला अङ्गुल्यो यत्र कर्मणि तथा अतिचटुपूर्वं प्रियवचनपूर्वकमाकारिता आहूताः ताः कान्ताः स्त्रियः जलस्य अंके मध्ये सशंकं शंकासहितं यथास्यात्तथा चरणमरविन्दमिव मंद मंदं निदधुः ।

101 शंकेति । शंकाजलमध्ये स्वविश्लेष जातद्रूपादातंकात् खेदात् आसां स्त्रीणां मन्दं विन्यस्तेषु पादेषु आसक्ता लग्ना अलक्तस्य यावकस्य आभा कर्त्री शंका-तंकादिति स्त्रीजनविष्टतया मन्दविन्यासे वा हेतुः अंभसः भयेन तस्यालक्त-कस्य प्रभया पद्मरागीभूतेभ्यः अश्मभ्यः उत्थे उत्पन्ने चारौ सोपाने अवरोहण एव स्थिता आसीत् किम् अलक्ताभायाः सोपानाश्मसु सक्रमणात्तथोत्प्रेक्ष्यते ।

102 किं दघ्नमिति । इदं सलिलं किन्दघ्न किम्परिमाणमिति प्रिय शत्रुशल्यं मुहु पृच्छत्य. अमुना शत्रुशल्येन स्वमात्रं स्वपरिमाणमित्युदिता उक्ताः ततः धवस्य

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पत्युः शत्रुशल्यस्य करेणाधार्यमाणो हरतो यासां ताः प्रियाः सा शंकं विन्यस्तान्यतिमृदूनि पदानि विक्रमाः यत्र कर्म्मणि तथा अंभो जलं जगाहिरे सस्तुः परिमाणोदघ्नच्मात्रचो ।

103 तत्रेति। तत्र तासु एका काचिद्वामनेत्राऽतित्रासतः कथंचित्कष्टेन जानुदघ्नं जानुपरिमाणं नीरं जलं गत्वा तुंगैरुच्चैर्भङ्गैस्तरंगैः अन्तर्म्मध्यम्प्रत्याकृष्यमाणा मज्जंती दूरीभवन्ती लज्जा यत्र कर्म्मणि तथा कान्तमेव आजुहाव मामवलंबस्वेत्याकारयामास ।

104 नेति। साध्वसतो भयाद्धेतोः रोधसः तटात् अन्तर्जलं जलस्य मध्य न व्रजन्त्या अवस्साध्वस त् प्राणेशस्य शत्रुशल्यस्य कंठेऽर्पिता बाहुवल्ली यया तस्याः परस्या कस्याश्चिल्लोलदृश नायिकायाः अंबुलीला सद्यःफलैवाऽभवत् प्रियालिंगनस्य सम्पन्नत्वात् ।

105 स्फुरदिति। स्वसपत्न्यालिङ्गनात् स्फुरतः कोपस्याटोपावृद्धेः सरभसं सवेगमपास्तसननुमतमालेः सख्याः वचनं यया अमलायां सरस्यां विहरणं नीरस्यन्त्यास्त्यजन्त्याः कस्याश्चिन्नायिकाया हृदयं मनःकतृं प्रियेण शत्रुशल्येन प्रक्षिप्तैः सलिलपृषतैर्जलबिन्दुभिः क्षालितमिव अतएव मानमेव पंकं त्यजतस्तत् अचिरात् अच्छं निर्म्मलं मानरहितमभूत्, भावशान्तिः ।

106 नियंत्रिताया इत्ति। त्रपया लज्जयाऽतिमात्रमत्यर्थं नियंत्रिताया यस्याः स्पर्शोपि अतिदुर्लभोऽभूत् तस्या नवाया नवोढायास्तरंगैः शिथिला नीवीवस्त्रग्रंथिः प्रियेण शत्रुशल्येन सुखमेव अनुनयादिकं विनैव दध्रे धृता ।

107 कापीति। सत्करभसदृशौ ऊरू यस्याः चंचलया शफर्या मत्स्या स्पृष्टतरौ अतिपृष्टौ ऊरू यस्याः अतः किंचिदुदस्तं दूरीभूत श्रोणिगतं वासो यस्यास्सा कापि सुभीरुर्भीतिमती नायिका परासामन्यासां हासस्य विकासाय वृद्धय आस बभूव ।

108 ललितेति। गंभीरोऽगाधः महाशयश्चापि एष कासारस्तडागः हृतं चित्तं यस्य तादृशो विलासी कामीव इति ललितैर्ललनानां विहारैः क्षणतः क्षोभं उच्छलनादिं रागं चाऽवाप्त् ।

109 नीवीमिति। चला वीचयस्तरंगा हस्ता इव वीचिसदृशा हस्ताश्च तैर्नीवीं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मुहुर्म्मुहुशिशथिलयन् अतिपृथूनां स्तनानां सीम्नोन्तस्य भूमिं स्थानम्मंदं स्पृशन् किं च परिचुंबितं स्पृष्टं चुंबनकर्म्मंकृतं च दंतवास ओष्ठो येन स तासां स्त्रीणां रागस्यानुरक्तेः पात्रं सरः पतिस्तडागराजः कामीवाऽराजत ।

110 गम्भीरेति । तस्य तडागस्याम्भो जलं पुरा पूर्वं आसां स्त्रीणां गम्भीरेषु नाभीनां कुहरेषु छिद्रेषु आवर्तितं आवर्त्तयुक्तं जातं ततो निम्नासु नतासु वलीषु लीनं ततः अतिमन्देऽल्पे तुन्दे उदरे प्रसृतं ततः स्तनेषु अचलेष्विव प्रतिघातं आपत् भीतस्यापि वृत्तान्तोऽत्र वोध्यते इति समासोक्तिरभीष्टा ।

111 मृणालेति । इमाः स्त्रियः रसेन जलक्रीडारागेण मृणालानि विभुजतोऽभिभवत इति, तौमुलविभुजादित्वात्कः, भुजौ सुचपलौ चंचलौ विधाय रणेन शब्देन उद्धता शोभिता मणयो ययोस्तौ चरणौ प्रसार्य सरसे प्रशस्तजले तरङ्गैर्बहुले महति सरसि समतरन् तरन्ति स्म, जलोद्धतगतिश्छंदः रसैर्जसजसा जलोद्धतगतिः ।

112 कुचैरिति । तदा तरणसमये कुचैः प्रतिहता घनैर्निविडैर्जघनैश्च हता प्रहारविषयीकृताः तनूनां शरीराणां स्फुरितकैः चलनैश्चिता व्याप्ता तनुर्यस्या तासां स्त्रीणां अंगरजसा अंगरागेण अंजसा अनायासेन अंचितं शोभितं जलं यस्यां सा जलस्योद्धता गतिः व्यशोभत अशोभत, अंचितेति अंचतेः क्तः अंचेः पूजायामितीट् जलोद्धतगतिरेव छन्दः ।

113 तासामिति । तासां स्त्रीणां अगानां क्षोभेण लोला चपला ऊर्म्मिमाला तरंगपंक्तिस्तस्या दोला लीलाया आन्दोलनक्रीडाया आडलंबका आधारस्तम्भभूता आमूलं मूलपर्यन्तं नालादंडा येषान्ते श्रियाः सद्मानि स्थानभूताः अपि पद्माः तूर्णं शीघ्रं तासाम्मुखरूपेन्दोर्भिया इव आशु प्रकंपं प्रापुः ।

114 अथेति । रचितो यः ग्लहस्य द्यूते पराजितेन देयस्यात्र चुंबनादेर्बंधो नियमः तेन बंधुरा सुन्दरा रभसेन विलासिताः शोभिता भव्याः श्रेष्ठा विभ्रमाः शृंगारचेष्टाः यस्याः सा युवतीनां ततिः अंजलिगतकुंकुमादिरागेण पिंजरवर्णैर्जलैः हृदयेश्वरं शत्रुशल्यं समसिचत् सिंचतेर्लुङ् लिपि सिचिह्वश्चेतिच्लेरङ् ।

115 वारीति । तदा वारिणा जलेन उक्षणं सेचनं तदर्थमुन्नमिताभिर्बाहुवल्लरी-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भिर्व्यक्तास्तनानामुन्नते रुचो यासां तासाम्मृगीदृशां आलोलानां चपलानां कंकणानां झणत्कृतिर्झणदितिशब्दः लीलार्थकग्लहेषु कलहायसे स्म कलहमकरोत् किम् द्यूतं हि कलहकारि भवति, ललिताच्छंदः धीरैरभाणि ललिता तभौ जरौ ।

116 प्राणेशेति । तदानीं समये प्राणेशस्य शत्रुशल्यस्य पाणिना हस्तेन परितो मुक्तैः पयःकणौघैर्जलबिन्दुसमूहैः निषिक्तं तासां स्त्रीणां वदनं, जात्यैकत्वम् राकायाः पूर्णेन्दुपौर्णमास्याः अविशंकितो घनानाच्छन्नो यः शशांकः सुपंकजं च तयोः श्रिया शोभायाः साम्राज्यस्य पट्टसमये राज्यप्राप्तिकाले कलितो गृहीतोऽभिषेकः संस्कार विशेषो येन तदिव अलसत् अशोभत, गम्योत्प्रेक्षा ।

117 सदिति । प्रियस्य शत्रुशल्यस्य करेण परिकीर्णैः क्षिप्तैरर्णसां जलानां कणैः उद्गजन्त्या खेदं प्राप्नुवत्या निवृत्तप्रेरणं सता, सन्तं श्रेष्ठमुपाधि प्रियकर्तृ सेचननिवृत्त्यर्थकच्छलमविदत्या अजानत्या कयाचित् कुन्ददन्त्या नायिकया वलितं संवृतं वदनम्पद्ममिव पत्रकर्म्मणि तथा रुचिरं यथास्यात्तथा सेचनस्य च्छद्मना वल्लभायोच्चैरंजलिर्व्यरचि रचितः, कपटोऽस्त्रीव्याजदम्भोपधयश्छद्म कैतवे इत्यमरः ।

118 कराग्रेति । काचिन्नायिका कराग्राणां नखानाम्प्रत्यग्रो नवीनो व्रण एव तरुणा स्फुटा जाग्रती दृश्यमाना शशिकला यस्य तं प्रतिकूलाया मृगदृशः सपत्न्याः कुचमेव शम्भुं स्नापिततरमतिशयेन स्नापितं मुहुर्दर्शं दर्शं दृष्ट्वा प्रचुरा लसन्ती जायमाना ईर्ष्या यत्रकर्मणि तथा स्वं स्वकीयं स्तनरूपमीशं शिवं नयनरूपसरसीभवैः वारिपृषतैर्जलबिन्दुभिः समसिचत् रुरोदेत्यर्थः इयं बाला नायिका ।

119 व्युत्युक्षीति । व्यत्युक्षी परस्परसेचनक्रीडा तस्या रभसस्य वेगस्य भरादतिशयात् प्राणेशे शत्रुशल्ये परस्याः सपत्न्याः कुचं कलशमिवाशंकं निर्भयं स्पृशति सति तस्या सपत्न्याः सेचनेन धौतस्य मृगदर्पस्य कस्तूर्याः कालिमा कार्ष्ण्यम् अन्यस्यास्सेर्ष्यं पश्यन्त्या वक्त्रं मुखमुच्चैः शरणीचकार ईर्ष्यावशान्मुखमलिनमभूत्, व्यत्युक्षी कर्म्मव्यतिहारबोधक व्यत्युपसर्गपूर्वादुक्षेरिकक् इषादिभ्य इतीक् कृदिकारादिति ङीष् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

120 लोलदिति। ललिता आननस्य मुखस्य श्रीर्यासां तासां नतभ्रुवां स्त्रीणां लोलद्भिः चलद्भिस्तरंगैः शिथिलानि यान्यंशुकानि तैरुल्लसन् नाभिरूपह्रदेषु मज्जन् नृपस्य शत्रुशल्यस्य नयन स्तनावेवोद्भटौ दृढौ घटौ तरणहेतू अलभतेति दिष्ट्या भद्रं जातम् अन्यथा तत्र मज्जनं स्यात् ।

121 तैरिति। ताश्च स च तै, पुमान् स्त्रियेत्येकशेषः, अन्योन्येषामपरस्परेषां आनने मुखे क्षिप्यमाणाः, कर्म्मव्यतिहारे द्विर्वचनात् बाहुलकादन्यशब्दस्यासमासवद्भावात्पूर्वपदस्य सुपः सुः, स्वच्छभास उज्ज्वलकान्तयः साराः श्रेष्ठा वारिण जलस्य आसारा धारासम्पाताः सम्फुल्लानामम्भोजानां श्रेणेः पंक्तेर्या जैत्रश्रीर्जयलक्ष्मीस्तया उच्चैर्मुक्ता निक्षिप्ता मुक्तानां राजयो विरेजुः किम् उत्प्रेक्षा। वैश्वदेवी छंदः पंचाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।

122 कान्तानामिति। कान्तानां स्त्रीणां कबरीषु केशपाशेषु तूर्णं शीघ्रं कौसुभां श्रियं पुष्पशोभामुररीकृत्य नेत्ररूपेन्दीवरस्य पक्ष्मणोरेव पत्त्रयोर्मरिन्दबिन्दूनां मकरंदबिन्दूनां त्विषं कांतिं दधतो धारयन् बिंबसदृशं ओष्ठे रदानां दंतानां या चन्द्रिका तस्या रुचिरतां दधतः कंठे च मुक्तानामिव प्रभां दधतः पीने कुचे एव शंभौ अक्षततंडुलानामिव रुचं दधतः पयसां जलानां बिन्दवो रेजुः ।

123 अविरलेति। अविरला घना लुलन्ती शिथिलतां गच्छन्ती या धम्मिल्लस्य संयतकचवृन्दस्य श्रीः तया विराजीनि शोभितानि मुखांबुजानि यासां सुबहुलमत्यर्थं गलन्ती बिंबसदृशानामोष्ठानामाभा तांबूलादिरागजा यासां विलुप्तं दृगामञ्जनं यासां विपुलं पुलको रोमांच एवालंकाराणामोघो यासां प्रकम्पिन्यः रुका वपुर्लता यासां ताः एताः प्रत्यक्षायमाणाः कान्ताः जलविलसितैर्जलंक्रीडाभिःरतान्तस्य सुरतावसानस्य रुचिं दधुः ।

124 वारीति। स नृपालः शत्रुशल्यः मृगेक्षणानां स्त्रीणां कुलं वृन्दम् वार्युक्षणेन जलसेचनेन शीतालुषु शीतासहेषु, शीतोष्णतृप्तेभ्य इत्यसहने आलुच्, शालते तादृशं पुलकं यस्य तादृशं वीक्ष्य धेनुकाभिर्हस्तिनीभिः सह इभराट् हस्तिराज इव तेनैव मृगेक्षणानां कुलेनैव सार्द्धं सुमन्दमन्दम् कासारस्य तडागस्य तीरं उदयाय प्राप ।

125 अङ्ग इति। ताभिः स्त्रीभिस्तरलितकरं चंचलहस्तं यथास्यात्तथा यानि

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दुकूलानि अंगे धत्तुं परिधातुमगृह्यन्त गृहीतानि तैर्दुकूलैर्वस्त्रैः संप्रीतैरङ्गसङ्ग-लाभेन प्रमुदितैरिव संपुफुल्ले शुशुभे, भावे लिट्. यानि तु दृढतरमार्द्रतया अङ्ग-ष्वासक्तान्यपि ताभिः अपास्यन्त अत्यजन्त स्नानस्य वारि स्रवद्भिः तैर्वासो-भिस्तु रुरुदे रुदितम्, वारि स्रवणे रोदनोत्प्रेक्षा ।

126 पीनेति । कान्तानां वारिणा लुप्तो विभवः प्रसाधनविधिः पीनासु श्रोणित-टीषु कटितटीषु सूक्ष्माश्च विलसन्त्यः कान्तीनां छटा यासां ताश्च शाटिकाः वक्षसां सीमसु स्थलेषु सान्द्रा घनाश्चन्दनरसाः कंठेषु मुक्तानां स्रजो हाराः बिम्बसदृशेष्वोष्ठेषु भुजगवल्लीनां लक्षणया तांबूलानां रुचयो नेत्रेषु नव्यं नूतनमंजनं इत्येवं पुनस्खम्पदं लेभे ।

127 सुरेति । रसेन शृङ्गारेण युक्तः स शत्रुशल्य सुरकामिनीभिस्समा धुरा शोभाभारो यासां ताः मधुरास्सुन्दरीः विलसद्भिर्विलासैः सुष्ठु तन्वो यासां ताः सुतनूः रमयन् सन् सरसस्तडागात् प्रमोदस्य निजं स्वीयं सदनं स्थानं सौधं जगाम ।

128 उशीरेति । निराकृता उत्सारिता उत्पतन्तो राजस्त्रीदशनायापतन्तो जना यैस्तैर्जनैः कर्तृभिः उशीरस्य नलदस्य कायमानिकाभिः ह्रस्वकुटीभि स्तज्जवनिकाभिरित्यर्थः निकाममतिशयितं संवृत्ताः, कायमानं तृणौकसीति हैमः, स्त्री स्यात्काचिन्मृणाल्यादिर्विवक्षापचये यदीत्यमरः, नितंबिनीजनै-स्स्त्रीलोकैर्वृता अमानिका अनंता विमानिका स्त्रीयोग्यनरयानानि भृताः पूर्णा उरूणां महतां भोगानां विभ्रमा विलासा यत्र तमस्य भूभृतो राज्ञो निकायं गृहम् ससम्भ्रमं सावेग निन्यिरे नीता, मुख्यकर्मणि लिट् ।

अथ वर्षाः

129 विशन्निति । अथ स्वस्य वेश्मनः प्रतिहारभूमिं द्वारदेशं विशन् स शत्रुशल्यः पीनाः महान्तः पयोधरा मेघा यस्यां तां पृथुस्तनीं च चिरं चिरंकालं वियोगात् अंतरायाद्विरहाच्च मलिनं मेघाच्छन्नत्वाद् धौतत्वाच्चांबरमाकाशं वस्त्रं च यस्यां यस्याश्चेति तां कांताम्मनोहरां प्रियां च प्रावृषं समीपत एवोच्चैरैक्षत अपश्यत् समासोक्तिः ।

130 सपदीति । सपदि जिष्णुं शत्रुजेतारमिन्द्रं चोच्चकैः प्रियममुं शत्रुशल्यमुपगतं समवेक्ष्य मुदा आनन्देन कुटजस्य पुष्पाणां मिषात् स्मयमानया मन्दं हसन्त्या

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तया प्रावृषा समदानां मदयुक्तानां केकिना मयूराणां कलध्वनिर्म्मधुरा स्फुट-ध्वनिराददे गृहीता ।

131 लसदिति । लसता उरुणा महता मरुता वातेन उद्धुतं कंपितमतिनीलं यदंबर-माकाशं दुकूलं च तत्र मधुरा रमणीया स्फुटा च विद्युत् तदेव तद्वच्चोद्यत् स्फुटीभवदङ्गं यस्यास्सा प्रावृट् दयितस्य शत्रुशल्यस्य पुरोग्रे प्रसृमरस्य प्रसरणशीलस्य तिमिरस्यान्धकारस्याभिसारिका नायिकाविशेष इव विलासं शृङ्गारचेष्टां व्यधित अकरोत् मरुदुद्धुतेति नीलांबरेति मेघकम्पनादाकाशे कम्पनारोप:, अत्र राज्ञ सर्वलोकप्रियत्वात्प्रावृड् दयितत्वेन व्यपदेश: ।

132 प्रावृषीति । इह प्रावृषि वर्षासु मदशीला यो बलाकालोक: विसकंठिकाख्य-पक्षिजन: बलाका मेघसमये गर्भङ्गृह्णन्ति तस्य मंजुलो मनोहरो रव कूजित-मेवोद्धृता श्रेष्ठागीतिर्यस्या: सा नीला ये नीरधरा मेघास्त एव तुङ्गा मृदङ्गा यस्यास्सा विद्युद्रूपा नर्त्तकी व्योमाकाश एव रंगभूस्तत्रानृत्यत् ।

133 विपदिति । इह वर्षासमये वि यदाकाशं जलदैर्मेघैरानमितन्नीचै कृतमिव, चातकस्य पक्षिविशेषस्य कुलमुच्चै: जलस्य दानमितं प्राप्तम्, रुचिरं यथास्या-त्तथा गलता पतता पयसा जलेन अतिवृद्धा रुचिर्यस्या सा सरितां नदीना-मंगलता रेजे शुशुभे ।

134 भूय इति । भूयो भूय: पुन: पुनरम्भोधराणाम्मेघानां धाराभिर्हृता धूलि: रेणुर्यत्र तत्र लीलाशैले एव रंगतले नाट्यभूमौ नृत्यंतो मत्ता: मयूरा: मंजुलो रागोऽनुरक्तिर्गीतं वा यत्र कर्म्मणि तथा कामस्य क्रीडाया अभिनीयकं यन्नाटकं दृश्यकाव्यविशेषं: तस्य नान्दीं आशीर्वादियुक्तं पाठविशेषं समगायन् मत्त-मयूरमेव च्छंद: वेदैरंध्रै र्मौयसगामत्तमयूरम् ।

135 देवीति । सारै: श्रेष्ठै: जलधरमाला या मेघपंक्तेरासारैर्द्धारासम्पातै: भिवता विशिष्टो भ्राणो ध्वनिर्येषान्तान् अंबुदा मेघा: एव पटहा- तान् विभ्राणा धार-यन्ति, यमके वबयोरभेदाद् विभ्राणान् बिभ्राणानिति न दोष:, प्रसभेन वेगेन धृतं छत्राकं कबकापरपर्यायो भूम्यूष्मजश्छत्राकार शाकविशेष एव छत्रं यया सा देवी शोभमाना भूमिरचिरात्कस्यधैर्यं नो अहरत् अपितु सर्वस्य, शृंखलय-मकम् जलधरमालैव छन्द: । अब्ध्यष्टाभिर्जलधरमालाम्भौ स्मौ । अणशब्दे-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इत्यतोघजाभ्राण,शब्दः भूम्यामेघानां आधारणेऽपि तत्काले सम्भवमात्रेण तथा प्रयोग. ।

136 उपचित इति । पुनर्वसुना वर्षासु रविभुज्यमाननक्षत्रविशेषेण तद्युक्तकालेन वा पुनर्भूयः वसुना धनेन चोपचितो वृद्धोपि भृशं मित्रकलाधरौ सूर्यविधू सुहृद्विद्यावन्तौ च परिहरन्नाच्छादयन् त्यजंश्च रचित मजितस्य कैतवन लोकतर्जनं येन रचितानि गर्जितं कैतवं तर्जनं चेति त्रीण्येव येनेति च मलिनः श्यामवर्णः अनुज्ज्वलश्चांबुदो मेघः कृपणवदलसत् अशोभत ।

137 कलुषेति । सरितो नदीः कलुष आशयो मध्यमन्तःकरणं च यासान्तादृशी रचयता कुर्वता अपि च परितः सर्वतः सत् श्रेष्ठान् पथो मार्गान् रीतीश्च हरता विकुर्वता तेन मलिनेन जलदेन मेघेन सरोषाया मानिन्याः सुदृशो नायिकाया हृदयं शुचि मानरहितमुज्ज्वलं च विदधे चक्र. विरुद्धात्कार्यसम्पत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना ।

138 व्यातन्वन्निति । दिव्यं धन्व इन्द्रधनुर्व्यातन्वन् विरतारयन्नाकर्षंश्च, कोदण्ड धन्वकार्मुकम् इति हैमः, विद्युदेव उत्पतन्ती कम्पमाना पताका ध्वजो यस्य धारारूपाणां नाराचानां बाणानां वर्षी घनो निविडो घनसमयो बर्षर्तुरूपो धन्वीयं भीष्मं भीषणं मद्ग्रीष्मर्तुजन्यं वह्निमभितोऽभिनत् भिनत्ति स्म तस्यैव वह्नेर्धूमव्रततिर्धूमलता तस्यास्तते. पंक्ते रुचा व्योमाकाशं श्यामवर्णमभूत् किम् च पुनः शीर्णाश्च ते अवशेषाश्च ये चूर्णास्ते भुवि इन्द्रगोपानां रक्तोपरिभागकीटविशेषाणामपदेशान्मिषादपतन् किम् ।

139 अलीति । अलीनां भ्रमराणां निकेतनं स्थानभूता या केतकानां सन्ततिस्तस्याः स्फुटितरागाः उद्भूतपिंजरवर्णा ये परागा रेणवस्तैस्सुगंधिभिः सुष्ठुगंधयुक्तैरनिलैर्वातैः वधूनां सभा वधूसभं तस्य चेतसां दर्प्यरूपा लता प्रसभमेवाकम्प्यत उद्दीपकत्वात्, अशाला चेति सभान्तस्य क्लीबता, गन्धस्येदुत्पूतीतीत् ।

140 आपीयेति । स्फुटितानां विकसितानां कदम्बपुष्पाणां सीधुं पुष्परसं मद्यञ्चापीय मृदुलस्य मनोहरस्य कलस्य मधुरा स्फुटगुञ्जितस्य च्छलाच्चटूनि प्रियानुनायकवचांसि कुर्वद्भिः रोलंबैः भ्रमरैः गोराङ्गया नायिकाया विपुलौ विपुल-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शोभौ यौ कपोलौ तद्वच्छालते शोभते तच्छीला लीला सौन्दर्यं यस्य तत्केतकी-जातं कुसुमं पुष्पमचुंबि चुंबितम् ।

141 मैत्रेति । यत्र यस्मिन् आषाढे मुक्तसंगनिरस्तकामादिसंबंधं मेघवत् श्यामं तद्-धाम विष्णवाख्यमपि लक्ष्म्या सहोच्चैः शेषे नागराजे शेते अस्मिन्नाषाढे मासि अतिकामोद्दीपकेपि व्रतानि चातुर्मास्यव्रतानि ब्रह्मचर्यादीनि आचरिष्णो-र्जनस्य असौ हस्तगतो दण्ड एवाषाढो व्रतिदंडः, आषाढो मलयगिरौ व्रतिदण्डे च मासि चेति हैमः, तस्य यदृच्छया हस्तगतोपि दडो व्रतिदंडतुल्यः यः आषा-ढेपि व्रतान्याचरति सोन्यत्र तदनाचरणेपि व्रतितुल्य इति भावः ।

142 धीरेति । स शत्रुशल्यो नृपतिः इति प्रकारेण धीराणां गम्भीरध्वनीनां वारि-धराणाम्मेघानां धुर्यो महान् विलासः शोभाविशेषो यत्र तां प्रावृषः वर्षर्तोः सुषमां परमशोभां पश्यन् सन् विभ्रमैर्विलासैरभिमताभिरिष्टाभिर्वनिताभि-स्सहारमत ।

143 साटोपमिति । तरलया चचलया तडितो विद्युतश्छटया कान्त्या कडारे कपिले नभसि साटोपं ससंरभं मेघानां शब्दं निशम्य संभ्रांता त्रस्ता कापि नवोढा दरस्य भयस्य भरतोऽतिशयात् विततौ भुजौ यत्र कर्मणि तथा तं वोढारं शत्रुशल्यम्परमुत्कृष्टमालिलिंग आलिङ्गितवती ।

144 मध्ये सपत्नीति । वामा प्रतिकूलाः स्त्रियः सपत्नीनां सभाया मध्ये इति मध्ये सपत्नी सभमास्थिताया उपविष्टायाः कस्याश्चिन्नायिकाया अंगे प्रियस्य शत्रुशल्यस्य दर्शनेन सात्त्विकभावोदयाज्जातानि सीत्कारो रोमोद्गमो रोमांचः कम्पनं चेत्येतानि जलदागमेन मेघागमनेन तद्धेतुकशैत्येनेत्यर्थः अजानन् असूयया तथा कल्पयन्ति स्मेत्यर्थः ।

145 वयसेति । अभिनवेन वयसा यौवनेन चिरं भासमाना भुवनत्रये असमाना अनुपमा च पुनस्स्तनभारस्य रुचा काशमाना दीप्यमाना, सशयोरभेदः, अनेन शत्रुशल्येन सहेरिरंसमाना रन्तुमिच्छन्ती अन्या काचित् चिरं शुशुभे ।

146 शीतालोरिति । प्रबलो यो बलाहकनाम्मेघानामनिलो वायुस्तेन शीतालोः सोतासहाया: कस्याश्चित्प्रेयस्या उरसि शीतनिवारकतयालिप्तः कुरङ्गदर्पः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कस्तूरी अंबुदस्य मेघस्यैव विषभिषजो जांगुलिकस्य नादैरेव सन्मंत्रैः करणै बंहिरायातो मानरूपः कालसर्पः कृष्णसर्प इव बभौ, अत्रोत्प्रेक्षया माननिवृत्ति-र्ध्वन्यते ।

147 अथ शरद्वर्णनम् । अथ वर्षानन्तरं मदकला मदेन मधुरकूजिता ये कलहंसा-स्तेषां चारुयानं प्रचारो यत्र तादृणहंसानामिव चारुयानं गतिर्यस्याश्च सा हसितैर्विकसितैः सरोजैर्विराजिनी शोभनशीलादिङ्मुखानां श्रीर्यस्यां हसित-सरोजैरिव विराजिन्यो दिशो यया तादृशी मुखश्रीर्यस्याः सा च विमलेन निर्मलेन विलसता अंबरेणाकाशेन वस्त्रेण चाभिरामा सुन्दरा शरत् तस्य शत्रुशल्यस्य दृशं भृशं जहार, समासोक्तिः ।

148 सुमलिनेति । सुमलिनो यो घनो मेघस्तस्य संगात् सुमलिनानां यो घनो महान्संगः सन्निकर्षस्तस्माच्च हेतोरुत्पथे स्वप्रवाहप्रदेशे दुराचारे च स्थितानां चलितानां निम्नगानां नदीनं निम्नं नीचं गच्छन्तीनां स्त्रीणां च कलुषभावं आविलत्वम् कलुषं व्यभिचाराद्यनुरक्तं भावमाशयं च निघ्नती दूरीकुर्वती इयमनवद्या निर्दोषा शरत् सच्चरित्रा सद्वृत्ता नारीव निरपायं नाशरहितं यथास्यात्तथा उच्चैः मित्रस्य सूर्यस्य लक्षणया कान्तस्य च माहात्म्यं घनाना-च्छन्नत्वं सती पतित्वरूपप्रशंसां व्यतनुत ।

149 कामक्रीडेति । कामक्रीडायां सुरतादौ तरलाश्चंचला हंसा हंस्यश्च पक्षिविशेषा-स्तेषां तत्र मदोदयात् कामक्रीडा तरला ललिताश्च ये हंसास्तद्वत् श्येनी श्वेत-वर्णा इति भिन्नपद, वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न इति ङीप् नश्च व्रीहीणां धान्यानां दीयमानानां च व्रातैः सुचिररचितलोकप्रीतिश्च चन्द्रेण चन्द्रवच्चोदारा उरुभिर्महद्भिः शरैस्तृणविशेषैर्बाणैश्च पुष्पन्ती विकसन्ती सम्पत् शोभा यस्याः सा शरत् गोपीनाथैः शत्रुशल्यस्य कीर्तिञ्चिरमनुविदधे अनुकरोति स्म । वदनचन्द्रोत्तंसश्छन्द म्भौ न्यौ गौ चेद्भवति वदनचन्द्रोत्तंसः ।

150 नित्यमिति । वर्षाणां ऋतुविशेषस्य द्योतयनायिकाविशेषस्य च वशेनामुना राज्ञा शत्रुशल्येन मुखे प्रारम्भे वदने च अतीव जपानां पुष्पितवृक्षविशेषाणां रुचिं कान्ति कोपादारुण्यं च दधाना व्याकोशं फुल्लं यत्कोकनदं रक्तकमलं तेन तद्वच्च सुंदरं दर्शनं यस्यास्सा अच्छाः श्वेता ये घनसारा मेघश्रेष्ठास्तैः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अच्छेन घनसारेण कर्पूरेण च विभूषितांगी इयं शरत् खंडिता प्रातरागतान्य-सम्भोगचिह्नितपतिकनायिकाविशेष इव समदृश्यत, सारोमज्जास्थिरांसत्योः बले श्रेष्ठे चेति हैमः, मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठनिस्सरणा तयोरिति हैमः ।

151 परिणतेति । पुण्यवता सपुण्येन तल्लक्षितभाग्ययुक्तेन च राजहंस इव तेन परिणतैः पुष्पितैः केतकैः परिणतकेतकवच्च गौरी फलिता फलवती पुत्रादि-मती च धात्री आमलकी उपमाता च यस्याः, स्वापत्यजीवनाय जीवत्पुत्रादि-मती धात्री क्रियते फलबर्हाभ्यामिनच् राजकुमारी येयं शरत् अलंभि प्राप्तेति दिष्ट्या भद्रं जातम् ।

152 विलसदिति । सुमनोभिः पुष्पैर्देवैश्च विलसन् कलहंसानां साधुर्वादः कूजनं यस्यां विलसन् कलहंसेन संयोजकहंसविशेषस्य साधुवादस्तुतिर्यस्याः सा च नलानां तृणविशेषाणां नले राजविशेषेवोल्लसन् विलासो यस्यां यस्यश्च शुचिः शुद्धः शृङ्गाराख्यश्च यः सन् रसो जलं पूर्णावस्थो रतिभावश्च तेन शोभनशीला सा शरत् दमयन्तीव चिरमादरेण भेजे सेविता लक्षणया प्राप्तु-मिष्टा च ।

153 पर्जन्येति । शोणं रक्तवर्णं पिंडपुष्पस्य जपायाः पुष्प, पिण्डपुष्पं जपाय स्याद शोके सरसीरुहे इत्यमरः, श्रावणेन मासविशेषेण पर्जन्यास्त्रे अवकीर्णे प्रयुक्ते सति रोषस्यावेशातुद्भावात् ऊर्जमासेन कार्तिकमासेन राज्ञा तूर्णम् आविष्कृ-तम् प्रकटितम् आग्नेयास्त्रमेव रेजे हिम् ।

154 विकचेति । मधुव्रतैर्भ्रमरैः विकचः फुल्लो यश्चंपकस्तस्य कांकरी अभिभूति-करी छविर्यस्याः वरं मद्रजः परागस्तदेव पटवासः पिष्टातस्तेन सुवासिता सुगंधीकृता उदंचिता उत्पन्नाः कंटकाः प्रसिद्धाः पुलकाश्च यस्याः सेयं सहचरी लताविशेषः अनवरलं समचुंबि समासोक्तिः, कंटकः क्षुद्रवैरिणि वेणौ द्रुमांगे रोमांचे इति हैमः ।

155 यैरिति । यैर्द्धाराणां महतां मेघानां धाराधराणाम् या वारिधारा जलधारा-ताभ्यस्त्रासादिव अंभोरुहिणीषु कमलिनीषु लिल्ये लीनं भावे लिट् तैस्समीरेण वातेन धूतैं चलितैः परागैः पुष्परजोभिः आशु अर्कस्य तेजोभिरिव डिड्ये विहायसागतम् प्रकृतोपमा उत्प्रेक्षा वा ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

156 कालेति । कालेन वर्षासमयेन उत्करालितं उत्कटकरालीकृतं यन्नभस्य भाद्रस्य तमोंधकारमेव तमो राहुः तस्य प्रचडं यत्तुंडं मुखं तस्य प्रवेशेन धृतोरंकुर्मृग एव कलंकलस्तस्य चंद्रस्य तेन शीतांशुना चंद्रण मुखस्य रुचं कान्ति शोभां दधानां शरदं पश्यन्नगस्त्यविटपी मुनिवृक्षः विटवज्जहास विकसति स्म हसति स्म ।

157 कर्कंधूफलेति । कर्कंध्वा बदर्याः फलैर्म्मधुरा श्रेष्ठा स्तनश्रीर्यस्याः तस्याः शरदो ललितेन वयसा समयेन तारुण्यप्रारम्भेण च कृतं लावण्य सौन्दर्यं विलोक्य लक्षणया प्राप्य दृष्ट्वा च अतनून् बहून् शरान् स्वतूलिका भजतीति तादृशे सति श्रेष्ठे काशे शुपविशेषे मंजरीणां मंजर्याकारपुष्पाणां व्याजेन उच्चकैः स्मितस्य रुचिश्चकाशे शुशुभे विलोकनशरभजनयोरेककर्तृकता ।

158 स्तनभरेति । अन्तिकग. समीपवर्ती मृगो हरिणः स्तनभरेणेव स्तनभरेण च विनतां नम्रां सुष्ठु दर्शनीयाम्, नवस्तत्कालकृतो य. कनकस्य स्वर्णस्य द्रवः रसः तद्वद्गौरं चारु गात्रं यस्याः, अंगगात्रकंठेभ्य इति ङीष्. वरां श्रेष्ठां कलमानां शालिविशेषाणां तति तदीयां कलमसंबंधिनीं गोप्त्रीं रक्षित्रीमपि पृथङ् न विवेद न जानाति स्म, मीलितम् ।

159 समाक्षिपदिति । जनैः माक्षिकं मधु समाक्षिपदभिभवत् सुष्ठु स्वादो यस्य तदिक्षोः कांड नालं अमन्दं यथास्यात्तथा सुधां मुधाकरोतीति सुधामुधाकृद्-भावप्राधान्येन मुधात्वकृत् इति वा यत् दयिताया अधरीयमोष्टसंबंधि माधुर्यं मधुरता तस्य माधुर्यं सौष्ठवमवैतुमेवास्वादि एवकार इवार्थे ।

160 शरदेति । सा रसिका सारसस्त्री शरदा ऋतुना समुदारः महान् सम्मद आनंदो यस्य स्फुरता अंभोरुहेण कमलेन संलसन्मदः कामोद्दीप्तिर्यस्य तेन रसता कूजता सारसेन सह सरसीषु आशु व्यहरत् विजहार ।

161 कृतमिति । कृतो वहुषु धान्येषु अन्नेषु कृतो बहुधा अन्येषु जनेषु च प्रणयः प्रेम यया मुखे चंचौ मुखेन मुख्यतया च धृतो रागो रक्तिमाऽनुरागश्च यया सुमंजुलः कोमल आलापः कूजनं वचनं च यस्यास्सा विलसंतः पक्षाः गरुतः सहायाश्च यस्याश्च यस्यास्सा शुकानां श्रेणी सज्जनानां ततिः पंक्तिरिव रेजे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

162 इतीति । स विशाम्पतिः शत्रुशल्यः इति पूर्वोक्तां शारदीं शरदृतुजां इन्दिरां शोभां मुदा विलोक्य वार्षिकीं प्रतिवर्षं करणीयां उमायाः पार्वत्याः अर्चनां समाचरत् ।

163 अयमिति । अयं शत्रुशल्यः शर्वाण्याः पार्वत्याः उच्चैः प्रीणनाय तर्पणाय कुण्ठितो जम्भारेरिन्द्रस्य दम्भोलिर्वज्रो येन तमपि लुलायम्महिषं एकस्मिन् करे धृतया कृपाण्या ह्रस्वखड्गेन अलुनीत चिच्छेद, लुनातेर्लङ् ।

164 सरभसेति । अनेन महीभृता शत्रुशल्येन सरभसं वेगेन प्रसरत् यत् बलि-संबंधिना सैरिभस्य महिषस्य क्षतजं रक्तं तेन धौतं महितायाः पूजितायाः हैमवत्याश्चरणमबुजमिव तत् तरुणेन ज्येष्ठाख्येन प्रथमेन यावकेन लाक्षार-सेन मंडितमिवोद्वभौ, गम्योत्प्रेक्षा ।

165 सुपूजितेति । सुष्ठु पूजिता अपराजिता दुर्गा येन जयश्रिया विराजितः नृपा-सने सिंहासने स्थितोऽसौ शत्रुशल्यः दिगीश्वरैः तत्तद्दिङ्नृपैरवंद्यत प्रणाम--कर्म क्रियतेत्यर्थः ।

166 राकेति । राकाया पूर्णेन्दु पूर्णिमाया यः सुधाकरश्चन्द्र स एव तद्वच्च विशद--मुज्ज्वलमातपत्रं यस्य सः सतः काशस्य तृणविशेषस्य मृदव गुच्छा इव त एव च चामराणि तैर्वीज्यमानः ऋतुगणैर्विकसितसुमनस्त्वादिभिरिवान्यैर्नृपै--सेव्यमान अयं शत्रुशल्यः आकृतिमान् मूर्त्तः शरत्समय एवेव रेजे ।

167 अधिविजयदशमीति । अधिविजयदशमि विजयदशम्यां द्रुतगामिनी शीघ्रगतिः हयानामश्वानां चतुरयुती चतुर्णामयुतानां समाहारः पुनर्मदकलानां मदोत्क-ण्ठानां करिणां हस्तिनां परमुत्कृष्टं सहस्रं युधि पदा पादेन चरतां च पदातीनां परार्द्धमात्रम् परार्द्धपरिमाणम् अमुं शत्रुशल्यं सिषेवे ।

168 मेघेति । एष विशामधिपालो राजा शत्रुशल्यः मेघानां व्यपायेन दूरीभावेन सुष्ठु निशातो लक्षणया पूर्णप्रकाशो निशाधिनाथश्चन्द्रो यस्यां तां राकाया निशामनुलक्ष्यीकृत्य अतिशायितमुल्लसता मंडपेन मंडनीयं शोभनीयं वसुदेव-सूनोः श्रीकृष्णस्य रासोत्सवं नाट्यद्वारा रासाभिनयं प्रविदधे । अन्तर्भावि-तण्यर्थत्वात्कारयति स्म ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

169 लब्धेति। लब्ध उत्कर्षः पूर्णता येन तादृशस्य तुषारदीधितेश्चन्द्रस्य महस्तेज स्तदेव पीयूषं तेन पूतः शीतीकृतो योऽनिलो वायुस्तेनोद्धूता कम्पिता मौरभेण सुगंधेन यः संभ्रमस्तेन उल्लसतामलीनां भ्रमराणां प्रोद्गीतं गुंजितमेव गीत-ध्वनिर्यस्याः रासलीलार्थे मंडिता भूषित्ता पुष्पावली कर्त्री भक्त्येव रासस्यो-ल्लासेन चमत्कारेण विभासिनः प्रकाशशीला ये विभ्रमा विलासास्तैर्भृताः पूर्णाया आभीर्यः गोप्यस्तासां नरीनर्त्तनम् पुनः पुनर्नर्त्तनमनुविदधौ अनुचकार, नृपतेर्यङ्लुङ्ताल्लुट् उक्तविशेषणविशिष्टमंडपगतपुष्पराजी गोपीनर्तनमनु-करोति स्म।

170 पीनेति। पीनयो श्श्रोणिस्तनतटयोर्भरान्मंथरो मंदो यो न्यासः भूमौ धरणं तेन राजतोः पादांभोजयोर्भ्रमणेन विरणन्तीभिः किंकिणीभिर्नूपुरगतिक्षु द्रघंटिकाभिर्दत्तस्तालः कालक्रियामानद्योतकः शब्दविशेष यत्र श्रेणी पंक्तिस्त-स्या बंधेन बधनेन प्रसभं बलेन कलितं गृहीतमन्योन्यं याभिस्ताः शोणा अंगुलयो यत्र स शार्ङ्गिणा कृष्णेनानुकृतः अनुकृतः गोपिकानां लास्यनतनस्यो-ल्लासः अलसत् अशोभत।

171 अतंद्रेति। सत् श्रेष्ठं पथ्यं विलासयोग्यं यन्नेपथ्यमलंकारादि तस्य धरो धारकः सुधावदच्छा कीर्तिर्यस्य स शत्रुशल्यः सौधे स्वसदने चन्द्रेणोज्ज्वलासु क्षणदासु रात्रिषु अतंद्रः पूर्णो यश्चन्द्रस्तद्वदाननमंडलं यासां ताभिस्स्त्रीभिः सार्द्धं विहारं विदधे।

172 अमलेति। अमलान्युज्ज्वलानि सकलानि भूषणानि यासां तास्तरुण्यः रुचि-रेण चंद्रिकापानकुशलेन चकोरेण निपीता चंद्रिका यस्य तस्य सुधांशोः चंद्रस्य निजानां स्वीयानां दशनानां छव्या कान्त्या निर्म्मलं यत् स्मितं तेन उपचयं पूर्णतामिव चक्रिरे, चकोराश्चन्द्रिकां पिबंतीति कविप्रसिद्धिः।

173 य इति। यः नासामणिः नीलपद्मेन समे ये नेत्रे नवस्य प्रवालस्य पल्लवस्य विद्रुमस्य वा लीलाया धरो धारको योऽधरश्च तयो रुचा नीलरक्तकान्त्या काकणन्ती गुंजा अरचि स तासां नासामणिः नासाभूषणमणिः शारदः शरदृतुभवो य सितांशुश्चन्द्रस्तस्य सिता श्वेता येंशवः किरणास्तेषां जाले पुनर्म्मौक्तिकत्वमनीयत, पुनः स्वगुणसम्प्राप्तिः पूर्वरूपमुदा हृतम्।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

174 पक्ष्माणीति । शशांकस्य चन्द्रस्य कान्तीनां छटाभिरुल्लासविशेषैः च्छुरितानि व्याप्तानि सन्ति सान्द्राणि पक्ष्माणि यासु तादृश्यो दृशो यासां तासां पक्ष्माणि नेत्रप्रावरणानि प्रियस्य शत्रुशल्यस्याननमेवेन्दुस्तस्य यत्पानं मुहुर्निरीक्षण-रूपं तस्य योगात्सम्बन्धात् सजन् लगन् सुधाया बिन्दूनां गणो यत्र तादृशानि इव रेजुः, सजदिति षञ्जसङ्गे शत्रन्तम् दंशसंजस्वंजांशपि इति नलोपः ४

175 सञ्जहदिति । संजहती तन्द्रा अप्रकाशोऽय स चासौ चन्द्रः पूर्णचन्द्र इत्यर्थः तस्य प्रभैव कंचुकश्चोलो यस्याः अतो वर्णसाम्यादह्नाय शीघ्रं सन्नह्नुतोपलपित आश्लेषस्सङ्गो यस्य तादृशं हृद्गतं चन्दनं यस्याः यद्वा तादृश चन्द्र-प्रभारूपकंचुकेनाह्नाय संनिह्नुत आश्लेषो यस्येत्यादि अतोऽस्तः अदृश्याः कूर्पासको यस्याः यामिनीशश्चन्द्रस्तद्वदाननं यस्या स्वयमपि चन्द्रप्रभया तिरो-भूतेत्यर्थः ईदृशी कापि कामिनी हृद्गतचदनस्य सौरभेणोद्भावनीया आस अन्यथाऽन्तर्हिता स्यात्, उन्मीलितम् भेदवैशिष्ट्योः स्फूर्त्ताबुन्मीलित-विशेषकौ ।

176 काचिदिति । काचिन्मुग्धा बाला मुग्धवन्मुग्धान् सुन्दरान्, मुग्धः सुन्दर-मूढयोरिति कोषः, प्रांशून् महतः कर्णस्य सीम्नि उत्पत्तिष्णूनूर्ध्वदेशे प्राप्ति-शीलान् सुधांशोश्चन्द्रस्यांशून् किरणान् अवबुद्ध्य श्वेताम्भोजस्य य उत्तंसः कर्णपूरस्तस्य शंकया विहस्ता व्याकुला सती अनुपन्यस्त एवोत्तंसः कुत आगतः इति शंकाकुला सतीत्यर्थ तूर्णं स्वं स्वीयं हस्तं श्रोत्र कर्णं आवर्त्तयत् पुनः पुनरयोजयत् ।

177 इतीति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण ललितेषु मनोहरेषु विलासेषु स्फुटो यो मुखस्य हासः हसनं प्रकाशो वा तस्यच्छलं यस्य स चासौ शशी चन्द्रस्तस्य भासः चन्द्रिकायाः प्रचुरादृराद्भयादिव सुष्ठु वलीनामुदरस्य सन्निवेशविशे-षाणां या त्रिभंगी, त्रयाणां भङ्गानां भुग्नतानां समाहारः द्विगोरिति ङीप् तत्र या तनुरुहाणां लोम्नां भंगी स्थितिविशेषः तस्या मिषेण लसत् अंगीकृतं पाल्यतया स्वीकृतं तिमिरमंधकारं याभिस्ताः पीवरौ पीनौ सुष्ठु नितंबौ यासां सन् अधरो बिंबफलमिव यासां ताः गुरुतरम्महत्तरं यत्तुबं तद्वदाभा ययो-स्ताभ्यां कुचाभ्यां नताः भारेण नम्रा अभिनन्द्याः प्रशस्याः अतिबंधा

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रणमनीयाः स्मरस्य कंदर्पस्य वशविद्या वशीकरणविद्या इव वनिताः नृपमनु-
लक्ष्यीकृत्य बभुः शुशुभिरे त्रिभङ्गयेव छन्दः त्वरितप्रयत्नोच्चारणेत्रीत्यत्र
संयोगानंगीकारान्न छंदोभंगः । प्राप्तनाभिह्रदेति माघः ।

अथ हेमन्तः

178 तमिति । अथानंतरं हैमनी हेमन्तजा, सर्वत्राण् च तलोपश्चेत्यण् तलोपौ अण् लक्षणोङीश्च ऋतो रुची शोभा, संहिताया अविवक्षणान्न संधिः, तं शत्रुशल्यं लसत् अंबुजं कमलमेव मुखं यस्यास्तस्य सख्या अव्यवधानस्थितितया सखी सदृश्याः शरदः वश्यमधीनं आशु विलोक्य बतेत्युत्प्रेक्षणे मलिनमप्रसन्नं निष्प्रभं चाननं पद्ममिव आननमिव पद्मं च यस्यास्सा मानिनी रुष्टा इव रुरुचे ।

179 इहेति । इह हेमन्ते हि वाक्यालंकारे उच्चैः आलिंगिता अधिष्ठिता आश्लिष्टा च दक्षिणा दिक् कुशलनायिका च येन स सूर्यः मानिन्या इव प्रबलाया हिमान्याः हिमसंहतेः, हिमारण्ययोर्महत्त्व इत्यानुक्ङीषौ विलोकनाद् भीत इव सन् तूर्णमेवापसरति अपगच्छति अस्तं यातीत्यर्थः, दिनानां लघुत्वात् ।

180 गिरिजेति । धुनी नदी गिरिजायाः पार्वत्या गुरोः हिमाचलात् क्षितिभृतः पर्वताद्राज्ञश्च उपसर्पणेन सम्बन्धेन समीपगमनेन च आप्तो हिमं सन् विभवः ऐश्वर्यमिव येन तं गंधवहं पवनं परिरभ्य संयुज्याश्लिष्य च गृहिणीव आशु हंत खेदे जडतां शैत्यमानन्दातिशयेन वचनाशक्तिञ्चागमत् कस्माच्चिद्राज्ञो धनं लब्ध्वाऽऽगतस्य पत्युराश्लेषेण गृहिण्या आनंदातिशयोदयात् ।

181 पृषदश्वेति । पृषदश्वः पवनः तद्गतैस्तस्य च पृषद्भिरेव पृषत्कैः, स्वार्थे कन्, जलबिन्दुभिर्बाणैश्च भीषिताः त्रासिताश्चातः अलसन् अनुत्कटीभवन् ऊष्मा औष्ण्यं यासां ताः मन इति निषेधान्न ङीष्, इन सूर्य अनलोग्निस्तयोस्त्विषः कठिनौ स्तनावेव दुर्गे ताभ्यां दुर्गमे गंतुमशक्ये नितंबिन्याः स्त्रिया हृदि समलीयन्त लीना अभूवन् अन्योपि भीतो दुर्गे लीयते लसन् जनसेव्यतया शोभमान इति वा भीषिता इति बाणानां हेतु कर्तृत्वविवक्षणाद् भियो हेतु भये इति षुक् ।

182 द्रुतमिति । द्रुतं शतपत्रे कमले अपगतानि पत्राणि यस्य तादृशे सति पथिक-
जने च भृतं मुहुः कलत्रं येन तादृशे सति धीरे मन्दे तुहिनेन हिमेन युते समीरे

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रवहति सति अन्यजने च घनं निविडं वलनं संवरणं यत्र तादृशे कुटीरे अल्प-कुट्यां वसति सति, कुटीशमीशुण्डाभ्यो र इति अल्पार्थे रः, प्रचुरितः बहुलीकृतो दंभश्छलं मानापनयनहेतू रसान्तरं येन, सामदानभेदनत्युपेक्षारसान्तराणि मानापनोपाय क्रियन्ते, रसान्तरन्नापरुष्टां प्रियां विलोक्य च्छलेन विद्युद्भया-दिदर्शनम् येन भीता सती विस्मृतया न स्वयमालिङ्गेत्, अतः कृतो दृढं परि-रम्भो येन शभः शंः सुखमस्यास्तीति शम्भः, प्रभुः शत्रुशल्यः इह ऋतौ मुरयुव तभिर्देवांगनाभिस्समाना अपहृतो मानः प्रियं प्रति कोपो या सान्ताः सपदि स्तनयोर्भरतो भारं द्वितीयार्थे तसिल् सपदि धुनानाः कम्पयन्तीस्ताः स्त्री समभजत असेवत ।

183 समुदीक्ष्येति । इतरा काचित् स्त्री प्रतियोषितः सपत्न्या अधरे सहसा मार्ग-शीर्षेण मासेन, शीतो यो मरुत् वायुः तेन सहसा विशीर्यमाणं विशीर्णतां प्राप्नुवत् मरुः प्रियदशनव्रणं, व्रणो स्त्रियामीर्म्मं मरु इत्यमरः, सहसा समुदीक्ष्य सा इतरा सहसा हसेन हासेन सह वर्त्तमाना सती स्वसखीभिः सह मुमुदे जहर्ष अहो शीतमरुता सम्पादिताधरव्रणा इयं प्रियदशनव्रणतया-ख्यापयतीति हास्यं इतरयापि प्रियदशनव्रणत्वेन न ज्ञातं तत इति ज्ञेयम् । अन्यथा बहिर्हास सम्भवेपि मोदानुत्पत्तिः ।

।। अथ शिशिरः ।।

184 परिमलेति । अथ हिमर्त्वनन्तर परिमले सुगंधे मिलत् अलीनां वृन्दं यत्र तत् कुन्दं माध्यं पुष्पं जात आनन्दो यत्र कर्म्मणि तथा जात आनंदो यस्मादिति कुन्दविशेषणं वा विभिन्दती विकासयन्ती कौतुकाद्रसेन विकासयन्ती च शिशरर्त्तोः श्रीः शोभा कान्ता नायिके वामुं महीकान्तं राजानं भेजे सिषेवे ।

185 वातीति । रतिपतेः कंदर्पस्य उन्मादने जनोन्मादहेतौ अस्त्रे अस्मिन् शिशिर-स्यानिले वायौ परमुत्कृष्टं वाति सति यत चललोचनाः स्त्रियो नवनवं कामुकं वांच्छंति तत् किं चित्रं न किमपीत्यर्थः अहो यद्यतो हेतोः या स्वप्नेऽपि नला-दन्यं प्रियं नेच्छत् सा चारित्रव्रतस्य पातिव्रत्यनियमस्य देवता इव मुख्या-नुष्ठात्री दमयन्ती भीमसुतापि चिरेण अनले नलभिन्ने शीतापनोदार्थके स्पृहामङ्गीकरोति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

186 यदिति । यत् मौलौ मूर्द्धनि तुषारमहसः चंद्रस्य कलनं धारणं यत्र दिगंबरत्वात् वाससां वर्जनम् यच्च तुहिनाचले हिमाचले स्थानं स्थितिः, यच्च शिरसि त्रिस्रोतसो गंगाया धारणं तत्सर्वं चंद्रधारणादि त्रिपुरारिः शिव एव तापसो बटुर्ब्रह्मचारी तस्य दम्भस्य लोकानुरंजनार्थकर्म्मानुष्ठानस्यैव विस्फूर्जित यद्यत. शिशिरस्य त्रासात् इव शब्द एवार्थे व्याख्येयः दृशि नेत्रे लीनं गुप्तमुषर्बुधमग्निं बिभर्ति ।

187 चित्रेति । चित्रैर्नाना विधैरंबरैर्वस्त्रैरतिपूज्यमानापि अगण्यैरनन्तैः स्नेहैस्तैलादिभिः प्रेमभिश्चापि सेव्यमाना मानवानामङ्गं यष्टिरिव सा खलानां सभा इव रुक्षत्वं चिक्कणताभावं पारुष्यं चैवावहत् ।

188 कान्तामिति । शीतेनाकुलो व्याप्तः शिशिरी यः शिशिरसबंधी वायुः अतनुभिर्बहुभिः शिलीमुखैर्भ्रमरैः पुष्पगंधेन श्वासगंधेन चागतै राजमानां स्मेराननां विकसितोपरिभागां स्मितमुखीं च स्तवकौ पीनकुचाविव स्तवकाविव पीनकुचौ च ताभ्यामवनम्राम् आमोदेनातिनिर्हारिगंधेन सुंदरा तनुर्यस्यास्तां कान्तां रमणीयां लतामिति शेषः । प्रियां च अभिकः कामुक इव द्रुत शीघ्रमालिलिङ्ग ।

189 कलितेति । अनेन शत्रुशल्येन कलितः केशसंस्कारार्थं गृहीतोऽगुरोः काष्ठविशेषस्य धूपो येन सुन्दरं रूपं यस्य विलसन्ती सुगहना गंभीरा नाभिर्यस्य तत् सुष्ठु मुखं सुनवीनं तरुणं स्वरेण जिता वीणा येन तेन राजित. शोभितो मृगनाभिः कस्तूरी यस्य अभिरामं मनोहरं प्रकटितः कामः कन्दर्प्पो येन दृढमाश्लिष्टमालिङ्गितं जडिम्नः जाड्याच्छैत्याच्च निवृत्तं असंबद्धं यौवत युवतीसमूहः, अनुदात्तादेरञ् इति अञ्, कविना मरहट्ठाख्यं वृत्तमिव रसेनासक्त्या ऐषि इष्टम्, इदमपि मरट्ठावृत्तम् ।

190 विलसदिति । अयं शत्रुशल्यः विलसत् सुचरित्र हावादि यस्मिन् मनसिजस्य कामस्य मित्रे विचित्रे नानाक्रीडे वयसि तारुण्ये रचिता मंडिता रुक् कान्तिर्याभिः पृथुना जघनेन समेता युक्ताः शिशिरात्सुभीता अतः सविधं स्वसमीपमुपेता आगता मानमुचः त्यक्तमानाः विपुलः स्तनभारो यासां मुखेन जितं ताराधिपस्य चंद्रस्य मदसारोऽभिमानदार्ढ्यं याभि. अबलाः तन्वंगीत्वात्बल-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रहिता अबला: स्त्रिय: विलसन्ननंग: कामो यत्र कर्म्मणि तथा दृढमालिंगन् सन् सुखरंगमानंदहेतुं रंगमहल इति प्रसिद्धं स्थानं भेजे सिषेवे ।

191 इतीति । रचित आनन्दो येन तत् किंकरस्य भृत्यस्येव रूपं यस्य तत् षड्ऋतूनां वृन्दम् कर्त्तृ उदारम्महान्तम् प्रमुदिता दारा राज्ञ्यो यस्य त्रिभुवने वीरं क्षितिपतिषु राजसु हीरं रत्नभूतं भूपं शत्रुशल्यम् भेजे सिषेवे छंद: (पादाकुलकम्) ।

192 योन्तर्वाणीति । वर्या श्रेष्टा आर्त्तवी ऋतुसम्बंधिनी चर्या विहार: ।।१९२।।
श्रीरामसिंहनृपतेर्बुंदीभर्त्तुर्निदेशेन रचितोनविंशसर्गे टीका गंगासहायेन ।।
इति श्रीचौहाणकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्टगंगासहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां एकोनविंश: सर्ग: ।।१९।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ विंशः सर्गः ॥

1 श्रियतीति । अद्य इह लोके बत वितर्के परस्यान्यस्य करेण भागधेयेन हस्तेन चारुपृष्टा हृष्टा सदावशवर्त्तिन्यधीना मही सती पतिव्रता स्त्री निजं कान्तमिव यं अश्रांतं सततं श्रयति तं सुखींचिसंज्ञककुलोद्भवं श्रीगोपालनान्यं मथितुं विजेतुम् अयं शत्रुशल्यः पितामहस्य श्रीरत्नस्य वाक्यतः चित्रां यात्रां व्यरचयत् ।

2 असमेति । यत् शिशुरपि स शत्रुशल्यः असमे अनुपमे समरे युद्धे उत्सर्पन् प्रवर्द्धमानो दर्पो येषान्तेषां द्विषतां गणस्य दारणे नाशनार्थं धृतोऽमर्षस्य पराभिभवेच्छाया उत्कर्षो येन तादृशः सन् समनह्यत संनद्धोऽभूत असौ शत्रुनाशाय संनहनरूप इह लोके अभिनवो नूतन एव यो महसां तेजसां व्यूहस्समूहस्तेन इन्द्रदिशः पूर्वस्याः जठरान्मध्यादूदराच्च उद्गतिरुदयो जननं च तस्याः क्षणे एव हतः तमस्तोमोऽन्धकारचयो येन तस्य रवेः कुलस्थितिर्वंश-मर्यादैव चित्रमित्यर्थः हि वाक्यालंकारे ।

3 त्रिभुवनेति । श्रीमान् रत्नः त्रिभुवनसहायस्य त्रैलोक्यरक्षकस्य समित्सु युद्धेषु अरीन् शत्रून् सुरित्सतः निनाशयिषतः, राधोहिंसायां सनीस् वाच्य इति आकारस्य इस् अभ्यासलोपः, अस्य शत्रुशल्यस्य सुमहत्तममतिबहुलं द्विषद्भिरसहनं असह्यं महस्तेजः बुद्ध्या जानन्नपि रणे उत्कटान् भटान् भृशं न्यदिशत आज्ञापयत् तथाहि अहो गुरुणां वृद्धानां वृत्तयः अलंकर्म्मणि कर्म्मणि समर्थेपि स्वपौत्रादौ धृता शिशुरयमिति धीर्वृद्धियाभिस्तादृश्यस्सन्तीति वत्स-लत्वात्, अषउक्षाशितंग्वलं कर्म्मेति खः ।

4 अनिशेति । अनिशं विषमोऽतितप्तः यो ग्रीष्मकालिक उष्णांशुः सूर्यस्तद्वत् प्रभीमेति भीषणो भुजयोरुष्मा लक्षणया विक्रमो येषां तेषां असुहृदां शत्रूणां समूहं भृशं उद्भृज्जन्तः दहन्तो नाशयन्त इत्यर्थः, भ्रस्जपाकेशता ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, अहंयवों लक्षणयाऽहंकारजनकां, अहं शुभमोर्युस्, घना निविडा या घनानां मेघानां घटा घटना तया घोरं वहुलं यथास्यात्तथा आघ्नातो

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

लक्षणयांऽगीकृतः अर्घः पूजा यस्य तादृशं, मेघशब्दादप्यधिकमित्यर्थः घर्घरेति घोरणं शब्दो येषां ते चंडाः प्रचंडा क्रीडा शत्रुत्रासनरूपा येषान्ते विकटाः पटहा वाद्यविशेषाः पटु यथास्यात्तथा प्रपुस्फुटिरे अवाद्यन्त अर्थाद्वादकैः ।

5 प्रतिगजेति । बतोत्प्रेक्षायाम्, अष्ट संख्या हरिता दिशोदर्यस्तासां कुहरेषु मध्येषु विहरद्भिर्भू भृत्सिहैर्नृ पतिसिंहैः प्रतिकूलस्संमुखवर्ती यो गजरिपुः सिंहस्तस्य ध्वानो नादस्तस्य भ्रांत्या भयेनोत्सुकेन भावप्रधानतयौत्सुक्येन सहितं यथास्यात्तथा श्रुतः भीरुभिर्भयेन वीरैरौत्सुक्येन चेत्यर्थः रणरूपे मखे यज्ञे आह्वानार्थं प्रैषो निमंत्रणमंत्रोच्चारणविधिर्यादृशः ढक्काया यशःपटहस्य आरावः रभसाद्वेगाद् गाढं दृढं यथास्यात्तथा नभस्याकाशे अढौकत अचरत् ।

6 द्रुतमिति । नानाविधानां स्वपक्षवर्तिवीराणां भुजानलं भुजशब्देन लक्षणया तत्पराक्रमस्तद्रूपमग्निं द्रुतं शीघ्रमिवैत्यार्थे योज्यः समिन्धाना अंतर्भावितत्तया दीपयन्तः द्विषतां उरोर्महत्यास्ततेः पंक्तेः प्रतापरूपं हुताशनं निर्मध्नन्तो निर्वापयन्तः रिपूणां कुले कृतः स्तम्भस्य गतिविघातस्यारंभो यैः प्रचडं यथास्यात्तथा अकुंठिता न प्रतिहता स्वभटानां गतिर्यैस्ते तस्य शत्रुशल्यस्यानका वाद्य भेदास्तदा चित्रीयन्ते स्म आश्चर्यमकुर्वत, नमो वरिवश्चित्रङः क्यच्, अग्निदीपननिर्वापणयोर्गतिविघातप्रसारयोश्च विरुद्धयोरपि हेतुत्वात् ।

7 रिप्विति । रिपुकुलस्य बल सैन्यं तस्य ग्रासो ग्रसमं तस्य व्यसे विस्तारे प्रसक्त आसक्तो यः परेतराड् यमस्तस्य जिह्वारूपा तथा आजौ संग्रामार्थे ह्वाने आह्वाने सम्भृतः धृतः सम्भ्रम आवेगो यया सा नृपस्य शत्रुशल्यस्य पताकिका एष्यन्तीनां प्राप्स्यन्तीनां वराणां श्रेष्ठानां जयरुचां जयलक्ष्मीनां युद्धेषु सर्वत्र जयलाभाद् बहुत्वम् स्वयंम्वरद्योतिका चंपकस्य स्रगिव मध्ये सैन्यं सैन्यस्य मध्ये ददृशे लोकैरदृश्यत ।

8 अथेति । अथ चंचत् दीप्यमानं छत्रं यस्य चामराभ्यां वीजितश्च अतुलविक्रमः नृपः शत्रुशल्यः गलन् नश्यन्मोहो भ्रमो येषां तैर्मौहूर्तिकैर्ज्योतिर्विद्भिर्गदिते उक्ते जयिनि जयफलके सुष्ठु मुहूर्त्तके अहिताः शत्रव एव महितः पूजितो महानित्यर्थः उद्वेलल उत्सृष्टमर्यादः उद्वेल्लन् सर्वतः सम्पतन् यः सरित्पतिः समुद्रस्त-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्य सेतुभिः भटगणैः सह सक्षणात् अभिक्रमत् रिपून् प्रतिययौ अहितान् प्रत्यभीतस्य रणेयानमभिक्रमः इत्यमरः ।

9 रिपुकुलेति । रिपुकुलस्य लयस्य शंसतीत्याशंसुः, सनाशंसेत्युः शंशुप्रांशुरुच्चैः स्फुटन्ती विकसंती या तडित् विद्युत् तस्या उद्भट अतिद्वंद्वीव यो ध्वजस्तेन विजयिनी उत्कृष्टशोभा माही यवनपतिना गौरवबोधनाय दत्तो स्वर्णमयो मत्स्यः नेजा झंडा इति प्रसिद्धश्चेत्यादिभिः प्रभुचिह्नैर्युक्ता हरेर्विष्णोर्भुजलता इव चंचता सुदर्शनेन चक्रेण स्वपरं परागतजयफलकैकादशसर्गगविपक्षकुलसंक्षयमिति श्लोकोक्तसुदर्शननामचक्रेण च दारुणा भयदा घना अपरिमिता अस्य महीपतेः शत्रुशल्यस्य सेना अवनीं भूमिमनमयत् भरातिशयात् । माहीनेजाशब्दौ प्रसिद्धिबोधनाय यवनभाषया लिखितौ ।

10 अविरतेति । त शत्रुशल्यमनु पश्चात् अविरत ततो विस्तारितो यः श्रेणीबंधः पंक्तिरूपतयाऽवस्थानं तस्य च्छलात् अभिपातुका सम्मुखं पतंती या अमतानां शत्रूणां जयरमात्तत्कर्म्मकजयलक्ष्मीस्तस्याः सश्लेषाय प्रसारिता दोर्लता भुजवल्ली येन रसेन जयलक्ष्मीविषयकशृङ्गारेण भृतः पूर्ण इव अभीक्ष्णं सुष्ठु कण्टान् कवचान्येव तद्गतान् वा कंटकान् तीक्ष्णावयवान् पुलकान् च बिभ्रत् धारयत् दुरुहः दुर्वितर्कः पराक्रमो यस्य स मनुजानां भटानां व्यूहः अयासीत् अगमत्, कंटकक्षुद्रवैरिणि वेणौ द्रुमाङ्गे रोमांचे इति हैमः ।

11 रणेति । रणविषये यो रस आसक्तिरतज्जन्यमदेन आसीदद्भिरारूढैः सादिभिरश्वारोहैः प्रणोदितानां प्रेरितानां बाजिनां खरैस्तीक्ष्णैः खुरपुटैरुद्धूता ऊर्ध्वं च लिता भृशं पिशंगा पिङ्गा रुचिर्यस्यास्सा रभसाद्वेगान्नभस्याकाशे भान्ती शोभमाना भूष्णुर्भवनशीला धूलिः प्रतीपानां शत्रूणां महानिशायाः कालरात्रेः प्रसरस्य पिशुनां सूचित्रां अतो भयावहां संध्यां आविश्चकार, संध्याया रात्रेः सूचकत्वात्, सन्ध्या पितृप्रसूरित्यमरः ।

12 सुमसृणेति । सुष्ठु मसृणा श्लक्ष्णा या श्रृणिरंकुशस्तस्या प्रीणन् सुखस्पर्शेन ससुखीभवन् पाणिर्येषांते च ते प्रवीणाश्च निषादिनो हस्त्यारोहास्तेषां दृढामपि यंत्रणामंकुशतोदम् बत वितर्के बहुतृणम् तृणतुल्यां समन्वाना, सुपो बहुच् पुरस्तात्तु इति बहुच् ... .लिङ्गता महस्य कटु यज्जलं तरया-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मोदेन गंधेन अमंदं बहुलं उद्विजन्ती निजा जातिर्गजसमूहो येभ्यस्ते गजाः कटकस्य सेनाया निकटं त्यक्त्वा मेदेन मंथरं मंदं यथास्यात्तथा जग्मुः, कटकस्तु नितम्बे बाहुभूषणे सेनायामिति हैमः ।

13 अविरलेति । अविरलं गलद्भि क्षरद्भिर्दानस्य मदस्यांभोभिर्जलैः निषिक्तम्महीतलं यैस्तादृशा अपि,सौम्या विनीतचेष्टिताः अतएव निषादिनां हस्त्यारोहाणां वशे स्थिताः विपुलं विलसच्छोभमानं यत् पृष्ठं तत्रोदञ्चता उन्नतेन नृपासनेन राजोपवेशनयोग्येन अंबाबारी हौदा इत्यादिख्यातेन मंडिताः केचित्करटिनो गजाः कलिता गृहीता गतिश्चलनं यैस्तादृशा वर्य्याः श्रेष्ठाः अहार्याः पर्वता इव अनुप्रभु प्रभोः पश्चात् ईयुः अहार्यधरपर्वता इत्यमरः. उत्प्रेक्षा ।

14 दृढेति । तदा समये सम्यक्कशाया अश्वादिताडन्याः त्रयस्य उत्तममध्याधमेष्वश्वेषु मृदुसमनिष्ठुरैकद्वित्रिरूपस्य या चातुरी चातुर्य्यम् मृदुनैकेन घातेन दंडकालेषु ताडयेत् तीक्ष्णाम्मध्यं पुनर्द्वाभ्यां जघन्यं निष्ठुरैस्त्रिभिरित्याद्युक्ता दंडकालवर्णना तया वित्ता सुष्ठुगतिर्यस्य तेन, तेन वित्तश्चुचुश्चरणपाविति चणप्, यन्त्रा सादिना जात्यैकत्वम् दृढं यथास्यात्तथा नियमिता नानादेश्याः नानादेशेषु भवाः प्रभंजनस्य वायोर्गञ्जनाः तिरस्कर्तारः तुरगाणामश्वानां निकरा लीलया उत्क्षिप्तैरग्रपादैः पादाग्रैः, राजदन्तादि, मनोहरां रमणीयां चित्रां नानाभेदां अर्द्धपुलायितान्नामगतिमुच्चैरकलयन् अगृह्णन् शतार्द्धार्द्धक्रमादूनैर्मंडलायितवलितैः उन्मुखस्याश्वमुखस्य गतिरर्द्धपुलायितमिति ।

15 अनडुदिति । अनडुहां वृषभाणामयुतैर्वाह्याः वहनीया अरीणां दुर्गकैः प्राकारादिसम्पन्नस्थानविशेषैर्जातु कदाचिदपि न सह्याः सोढुं शक्याः विषमं यद्यमुना यास्सोदर्यस्य यमस्य आस्यं मुखं तद्वत्स्फुटत् विकसत् यत् कुहरं नालच्छिद्रन्तेनोद्धुरा उत्कटाः प्रभीषणाः नालिकाः तोपाख्याग्निशस्त्राणि क्षोणीं भूमिं अतिभरेण अभितोऽञ्चंतः चलन्तः न्यञ्चन्तो नीचीभवंतः विशंकटाः पृथुलाश्च ये शाकटाः शकटसंबन्धिनः प्रधयो नेमयस्तैः समधिकं क्षुण्णां जातनिम्नदेशां व्यधुः चक्रुः, वेशालच्छंकटचौ इति शंकटच्, विशंकटं पृथुबृहत् इत्यमरः ।

16 रिप्विति । जनः प्रेक्षकजनः द्रुतं शीघ्रं रिपूणां हतौ धृत आटोप उत्कर्षो येन

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तं चायं प्रेंखन्तश्चलन्तः पुंखा ज्यासंयोज्यांगविशेषा येषान्तैः सुष्ठु मर्म्मसु कृतमोर्म्म व्रणं यैस्तैर्निशितविशिखैस्तीक्ष्णशरैः सनाथयतः संयोजयतः लसन्त्योऽसिलताः खड्गवल्ल्यो येषां तान् चञ्जन्तः दीप्यमानाः कुन्ता येषाम् द्विषद्भटानां शत्रुशूराणां दोर्म्मदं भुजबलाभिमानं लुनतः छिन्दतः अस्य शत्रुशल्यस्य पत्तीन् पदातीन् कृतांतस्य कालस्य गणान् अनुचरान् अमनुत समभावयत् ।

17 कनकेति । कनकेन खचिताः संस्कृताः अमाना विपुला विमानिकाः नरयान विशेषान् अध्यारूढा आरूढवत्यः अवधिं सीमाभूतं प्रपदं पादाग्रं यावत् पादाग्रपर्यन्तमित्यर्थः ततो अन्यत्रापि दृश्यत इति द्वितीया, लंबैर्लम्बमानैरंबरैर्वस्त्रैर्निगीर्णाश्छन्ना रुचः कान्तयो यासां द्रुतं दर्शनायाऽभिपततामागच्छतां लोकानां त्रासप्रदान्युद्यतानि वेत्राणि यैस्तैः स्थापत्यानां सौविदल्लानामोघैः संघैः दृढं परिवृताः नृपयोषितो राजदाराः ययुः, सौविदल्ला कंचुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्चले इति हैमः ।

18 प्रपिहितेति । ननु वाक्यालंकारे अन्तःपुरशब्देन तद्वासिन्यो राज्ञ्य उच्यन्ते तासाम्पश्चादित्यन्वन्तः पुरं रुचिराणि वपूंषि यासां तासां प्रभीरुकाणां भयशीलानां योषितां गणः कर्त्ता, अन्तःपुरयोषितामवीक्ष्यत्वात् प्रकृष्टं पिहिते दृशौ यस्य तेन यंत्रा महामात्रेण यत्नात् सुखमासिता उपवेशिताः महन्ति विपुले पृष्ठे ज्यात्येकत्वम् चित्रान्नानाविधान् दारवान् काष्ठरचितान् गृहान् दधतीर्धारयन्तीः वशा हस्तिनीः कर्म्माणि, करिणी धेनुका वशा इत्यमरः । करेण नियमिता आरोहणाय गाढं गृहीता अभीषवो लक्षणया बंधनरज्जवो यत्र कर्म्मणि तथा आरुह्य समगात् अगच्छत् ।

19 रिप्विति । एतस्य शत्रुशल्यस्य नासीरे सेनाग्रे स्थितैः उद्धतैर्बलिभिर्दन्तिभिर्गजैः रिपूणां कुले इव सतः श्रेष्ठस्याध्वनो मार्गस्याचारस्य च निरोधनि प्रतिबन्धके विटपिनां वृक्षाणां पटले समूहे लीलयोत्खाते उत्पाटिते नाशिते च सति विश्वगंचतीति विष्वद्रीची सर्वतो विसृत्वरी, विश्वगंचतीति विग्रहे ऋत्विगादिनाक्विन् विश्वग्देवयोश्च टेरद्रचञ्चतावप्रत्यय इति टेरद्र्यादेशः उगितश्चेति ङीप् उच्चैरुन्नतेन चंचता दीप्यमानेन ध्वजानां व्रजेन समूहेन शोभन-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शीला सा नरपतेः शत्रुशल्यस्य चमूः सेना चतुराणां दक्षाणां या मतिर्बुद्धिस्तद्वत् क्वचिदपि न चुकुंठ कुंठिता नाऽभूत ।

20 प्रचलतीति । अमुत्रामुष्मिन् महत्तमेऽतिमहति गोपीनाथेः शत्रुशल्यस्य बले सैन्ये प्रचलति सति वाजिनामश्वानां ह्रेषारवस्तज्जातिशब्दः जनानां कलकलं कोलाहलं अभ्यभवत्तमाम् अतिशयेन तिरश्चकार, क्रामतां चलतां गजानां व्रजस्य संघस्य बृंहितं गर्जितं कर्तृ तं ह्रेषारवमपि निरयांचक्रे चटुलं मनोहरं रटितं शब्दो यासान्ताः प्रौढा महत्यो ढक्कास्तद्बृंहितमपि अप्यधुश्छादयांचक्रुः बृंहितं करिगर्जितमित्यमरः, एकावली (अलङ्कारः) ।

21 सरणीति । सरणेर्मार्गस्य धरणी भूमिः एतस्य शत्रुशल्यस्य यश एव फलं तस्य वृद्धये पुरा प्रथमं धारतां मुद्गाशिनां मुद्गभक्षणशीलानामश्वानामित्यर्थः खुरक्षतैरचन्द्रकैः पदचिह्नैः क्षणेन विदलितानि चूर्णितानि लोष्टानि मृत्पिडाः यस्यां तादृशी मृदुः सुखेन कर्षणीया अकारि कृता अथाचिरात् शीघ्रं रथानां चलद्भिश्चक्रैः रथांगैः सुकृष्टतरा अतिशयेन कृष्टा चक्रे कृता गजानां मदजलैरासेचि आसिक्ता ।

22 वरेति । वरस्य श्रेष्ठस्य नरपते राज्ञोऽस्य शत्रुशल्यस्य वलैस्सैन्यैः पथि मार्गे आगत सरितां कुलं समूहः अनेका नद्य इत्यर्थः रिपुस्त्रीणां मन इव आकुलं स्वस्थित्या व्याप्तं व्याकुलं च निर्ममे कृतम् अथ तदनन्तरं एतासां रिपुस्त्रीणां वपुरिव आसादितं प्राप्तं अमितं बहुल लाघवं स्वल्पजलता संस्काराभावश्च येन तादृशन्निर्म्ममे इत्यनुषज्यते, ततो न चिराच्छीघ्रमेव तासां रिपुस्त्रीणामास्यं मुखमिव क्षणात् अंचन् प्राप्नुवन् शेषः निर्जलीभावः कृशतादिकं च यत्र तादृशं व्यरचि मार्गसरितः पूर्वन्तत्सैन्येन व्याप्तास्ततः स्वल्पजलास्ततः शुष्कजला आसन् ।

23 चटुलेति । पथि मार्गे हयरुहोऽश्वारूढाः चटुलानां चंचलानां वडवानाम् घोटकीनामवेक्षा दर्शनं तज्जातक्षोभेण चित्तचांचल्येनोल्लसन् वर्द्धमानो जवो वेगो येषां तेषां वाजिनामश्वानां प्लुता प्लवनात्मिका या गतिस्तस्या भरादतिशयाल्लब्धो य आस्फालः अश्वपृष्ठाघातस्तेन उच्छलता जघनेन श्रीः शोभा यासा ताः लोकैः विवलितं शब्दश्रवणाद्विपर्यस्तं मुखं यत्र कर्म्मणि तथा दृष्टाः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विलोलुन्तौ उरोरुहौ स्तनौ यासान्ता: परा: काश्चित्कान्ता: पुरुषायितं विपरीतरतबंधविशेषं पेठु: शिशिक्षिरे, पुरुषायिते जघनस्तनयोश्चलनात् ।

24 गुरुणीति । पृष्ठे गुरुणि महति भारे न्यस्ते सति श्रुतिखक्कटं कर्णपरुषं शब्दं रटत् निष्ठुर:, खक्कट: क्रूर इति हैम:, सुविपुला महती ललती लम्बमाना जिह्वा यस्य तत् विलोले विलोचने नेत्रे यत्र कर्म्मणि तथा पश्यत्तत् नरैर्मनुष्यैरपि तोत्रैस्ताडनदंडैर्दन्नुन्नं प्रेरितम् निबद्धा रचिता मिथोन्योन्यं तति: पंक्तिर्यस्य प्लवो मंडूकस्तद्वत्प्लुतिमुत् प्लवनमंगीकुर्वत् औष्ट्रकमुष्ट्रसमूहो द्रुतमुपययौ स्वभावोक्ति: भेके मंडूकवर्षाभूशालुरप्लवदर्दु रा इत्यमर: औष्ट्रकमित्यत्र गोत्र.क्षोश्टोरभ्रराजराजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्या जाद्वुञ् इति वुञ्, भावेन ण कचिद्भ्योन्ये समूहे भावकर्म्मणो: इत्यमरात् क्लीबता ।

25 प्रसृमरेति । प्रसृमर: प्रसरणशीलो यो मदोमत्तता तस्मादुद्यती गर्जिर्गर्जनं यस्य स चासौ द्विपेन्द्रो हस्तिश्रेष्ठ: तस्य ये पुरस्सरा च अग्रेसरा जनास्तेषां यत्प्रकृष्टं परुषं कठोरं वचो उच्चैर्गजभर्त्सनात्मकम् स्वाग्रे प्रचलद्रथयन्तृप्रेरणात्मकं वा तस्माद्वचसस्त्रसन् बिभ्यत् यो यन्ता सारथिस्तेन प्रमुक्तो भयादुत्सृष्टो गुणो नासारज्जुर्यस्य तादृशमौक्षकम् उक्षणां वृषाणां समूहो यस्य तस्मात्, गोत्रोक्षेत्यादिना वुञ्, सुविषमाणां निम्नोन्नतानां दृषदां मार्गपाषाणानां घातेन उद्घूर्णत् इतस्तत: भ्रमद्रथांगयुगं चक्रयुग्मं यस्य तस्माद्रथात् स्खलनेन पतनेन विगलत् यद्वासो वस्त्रं यस्य तद्वैश्यं वेश्यासमूह:, तस्य समूह इत्यण्, जनान् समहास यत् हासयति स्म ।

26 उपलेति । रथिभी रथारोहै: कर्तृभि: उपलानां पाषाणानां पटलैस्समूहै दुस्संचारं दु:खेन संचारो यत्र अतो मुहु स्खलनप्रदं अयनं मार्ग: नेदीय: अतिनिकटमपि, अंतिकबाढयोर्नेदसाधौ इति नेदादेश:, दूरत एव व्यमुच्यत मुक्तं अथ तैरथिभि: सुखेन गतिर्यस्यां सा वंद्या श्रेष्ठा पद्यामार्ग: दवीयसी अतिदूरापि न्यषेवि सेविता हि यत: साधव: कुटिला दु:खप्रदा निंदिताश्च ये पंथानस्तान् कदापि न संसेवंते, अयनं वर्त्म मार्गेति सरणि: पद्धति: पद्येति चामर: ।

27 त्वरितेति । त्वरितं निपतंत: स्खलंतो व्यायामेन परिश्रमेण उद्यती बुभुक्षा क्षुधा येषां तादृशा ये चमूजना: सेना: लोकास्तेषां व्रजेन समूहेन परिवृतैरतएव

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्रेतृजनबाहुल्यात् अतीवात्यंतं जात आनंदो येषान्तैर्वणिग्जनैः कंदूकारादिभिः सपदि पुरतोऽग्रे गत्वा छायाभिः सुशीतं जलं यत्र तादृशे स्थले विततं विस्तारितं विलसच्च यत्सद्यः स्वाद्यं पक्वत्वात्संस्कारांतरनिरपेक्षत्वेन शीघ्रं भोजनयोग्यं लड्डुकादिकं महार्घं बहुमूल्यं यथा स्यात्तथा अपण्यत व्यक्रीयत ।

28 गिरीति । पथि मार्गे तता विस्तारिताः शक्तयशस्त्रविशेषा यैस्तैः तरलिता वेगेन चालिताः हया अश्वा यैस्तैः अश्वारोहैस्सादिभिः गिरिवरस्य पर्वतश्रेष्टस्य दर्यां गुहायां स्थतः पराक्रमोद्धतस्य सिंहस्य योध्वनिर्गर्जनम् तस्य प्रतियोगिनः प्रतिद्वंद्विनो ये तस्य शत्रुशल्यस्य विकटा महान्तः पटहा वाद्यविशेषास्तेभ्यस्त्रासात् द्रवद्धावत् पोत्रिणां वराहाणां यूथं अहमहमिकापूर्वं अहं पूर्वं हन्मित्यादि परस्पराहंकारपूर्वकं विमुक्तं न म हयशीघ्रगमने शिथिलं धृतं खलीनकमश्वनियमनं य ं यत्रकर्म्मणि तथा द्रुतं शीघ्रं जघ्ने हतम् ।

29 असहेति । अविद्यमानः सहः सोढा यस्य तादृशं महस्तेजो येषान्तेषाम् अथ च अतिशयितां गहनतां गभीरतां सुष्ठु विवृण्वतीं प्रकटयन्तीं नाव्यां नावातार्यां, नौ वयौ धर्म्मेत्यादिना यत् चर्मण्वतीन्नाम नदीं जवेन वेगेन तितीर्षतान्ततुमिच्छता म द्रुतं शीघ्रं युगपदेककाले एव तरिषु नौषु स्व स्वं भारं परिक्षिपतां तस्य शत्रु ल्यस्य सैन्यानां प्रपूरितानि दिशाम्मुखानि येन सकलकलभरः कोलाहलातिशयः प्रादुर्जज्ञे प्रकटो जातः ।

30 जघनेति । नियामकोऽत्र कर्णधारः, नियामको नियन्तरि पोतवाहे कर्णधारे इति हैमः जघनस्य भरतो भारात् मन्दमुत्क्षिप्त उत्थापितो योंऽघ्रिश्चरणस्तद्गतस्य हंसकस्य नूपुरस्य शिंजितेन प्रगुणं प्रशस्तं यथास्यात्तथा तरीनौंका अधिरोहन्तीनां पुरयोषितां पुरस्त्रीणां विपुलमुच्चं यत्तरण्या नावः काष्ठं भित्तिरूपं तस्यावलंब आलंबनम् तदर्थमुन्नमन्ती उच्चैर्भ्र न्ती या भुजवल्लरी तया हेतुभूतया प्रकटितस्य कुचस्य आलो ं दर्श ामेवातरं तरपण्य मेने, आतरस्तरपण्यं स्यादित्यमरः ।

31 सहेति । भूपतिः शत्रुशल्यः बलस्य सैन्यस्य गणैस्सह रणक्षोण्यां युद्धभूमौ क्षीबा मत्ता ये द्विषन्तः शत्रवस्तेषां क्षयो नाश एव लक्षण स्वरूपं यस्य तं पणं प्रतिज्ञामिव तां चर्मण्वतीमिति प्रकारेण तीर्त्वा प्रविष्टं रटन्तीनां वादन

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विषयीभवन्तीनां भेरीणां सुष्ठु भांकृतया तच्छब्देनाभीषणं भयंकरं प्रसृमरतरमतिप्रसारशालि स्कंधावारं सैन्यनिवेशं विधानतो यथारीति व्यधत्त अकृत ।

32 अथेति । अथ सरभसं सवेगं वह्यानां शकटादीनामोघेभ्यः, वह्यं करणमिति यदन्तो निपातः, निरस्तो भरो भारो यैस्तैः स्वीयैर्नरैः प्रदर्शितं पौरुषं यत्र कर्मणि तथा शंकून् वस्त्रगृहाधारभूतान् कीलान् निचिखनिषुभिः आरोपेच्छुभिः विकस्वरैरत्युच्चैः सुस्वर आह्वानशब्दो यत्र कर्म्मणि तथा द्रुततरं समाहूता आत्मीयाः स्ववर्ग्याः यैस्तैः क्षणात् सौधवदुत्तुंगा नृपस्य पटगृहाः तंबू इत्याख्याः अतानिषत तताः, कर्म्मणि लुङ् ।

33 अरुणेति । लोकः प्रेक्षकजनः क्वचित् अरुणानां वसनावासानां पटगृहाणां उद्भासा कान्त्या छुरिताः रूषिताच्छविर्येषान्तान् सततं विततान् विस्तृतान् ऊर्जस्य कार्तिकस्य ऊर्जस्वी पूर्णो यो द्विजाधिपश्चन्द्रस्तद्वन्निर्म्मलान् वस्त्रावासान् पटगृहान् प्रतापस्य मिषः कपटो येषां ते च तेऽरुणच्छवयो रक्तप्रभामणयस्तैर्लसन्तः सानवः समभागा येषां तान् अवनि पृथ्वीरक्षितुरक्षणशीलस्य शत्रुशल्यस्य यशोरूपानचलान् पर्वतान् न्यमंस्त, स्नुःप्रस्थास्सानुरस्त्रियामित्यमरः, अवनिमित्यत्र न लोकेति षष्ठीनिषेधः ।

34 उपरीति । अथ शिविरस्योपरीत्युपरि, शिविरं अव्ययमिति योग विभागात्समासः, बद्धैः अभ्रंकषैरत्युच्चैः, सर्वकूलाभ्रेत्यादिना कषेः खच् मुमागमः, केतुभिर्ध्वजैः प्रविदिताः प्रत्यभिज्ञाता निजा स्वीयाः आवासा निवासस्थानानि यैस्तैः असादितः प्राप्तोऽमितो बहुलं सम्मद आनन्दो यैस्ते सुदृढम् गाढम् अचिराच्छीघ्रं नुन्नानि चालितानि अनूनेन महता श्रमेणालसानि यानानि अश्वादीनि यैस्ते स्वस्वपतिभिः सेनास्वामिभिः रचिता अवेक्षा प्रतीक्षणं येषां ते पृतनाचरास्सेनाचारिणः क्षिप्रं ययुः स्वस्वावासमिति शेषः ।

35 व्रजति इति । यावदिति यावत् कालप्रमाणेन इयत्तया वर्जिता पृतना सेना नैव व्रजति तावदेव अतिजवात्वेगात्स्वयमग्रे गत्वा ततानि विस्तारितानि अंबरमंदिराणि पटगृहाणि यैस्तैः करेषु धृतास्तुला तोलनयंत्राणि यैस्तैः पण्याजीव्यैर्वणिग्भिः त्वरितं वितर्तैर्विस्तारितैः क्रय्यैः क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्धया स्थापितैर्द्रव्यैरसक्रांता व्याप्ताः लसन् क्रमो यासान्ताः पंक्तयो येषान्ते आपणाः हट्टाः अयतानिषत वितताः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

36 द्रुतमिति । द्रुतं शीघ्रमभिपतन्तो प्रेक्षणायागच्छन्ती या लोकानां श्रेणी पंक्तिस्तस्या निषेधनाय रोषणैः षंढैः क्लीबैर्लघु शीघ्रं विरचित उत्तारो वाहनादुत्तारणं येषां तेऽवरोधस्यान्तःपुरस्य वधूजनाः, वष्टि भागुरिरल्लोपम् इत्यकारलोपः अग्रेगतैः अतः कलितो गृहीतः ललितः सुखसपादक आवसो यैस्तैरनुजीविभिर्भृत्यैः सुविहिताः सुष्ठु रचिता आकल्याः पुष्पादिशोभा येषु तान् तल्पान् शय्याः श्रमाद्धेतोरधि शिश्यिरे तत्र शेरते स्मेत्यर्थः, अधिशीङ्स्थासां-कर्म्मेत्याधारस्य कर्म्मता, तल्पं शय्या ट्टदारेषुस्तम्बेपि विटपोऽस्त्रियामित्यमरः, वक्ष्यमाणमस्त्रियामिति कशिपुतल्याभ्यामपि संवध्यते इत्यमरटीकाव्याख्यासुधा ।

37 द्रुतमिति । जनेन सार्थलोकेन कर्त्रा सुष्ठु मंडपैः पटगृहैर्मंडितं स्वं स्वं आवासं स्थानं द्रुतं शीघ्रमुपगतं प्राप्तम् ततो निजांगतः स्वशरीरात् श्रमजनितं जलं स्वेदस्तेन क्लिन्नमार्द्रं वासः वस्त्रं अपनीय ततः अभिनवरीत्या धृतमाकल्यो वस्त्रादिसंनिवेशो येन ततः तल्पं शय्यां श्रितं तदनु समुदंचित उद्भावितः यः स्वरो रागावयवविशेषस्तेन सुमधुरम् शोभनं सत् श्रेष्ठं गाणिक्यं गणिकासमूहः, गणिकाया यञ् इति वक्तव्यमिति समूहे यञ्, निरैक्ष्यत दृष्टम् कर्म्मणि लङ् ।

38 गजेति । अथ द्रुतमभ्युद्यातैः निवाससन्निवेशादिकं प्रथममेव विधाय सम्मुखागतैरनुचरैःमुहुर्वीजितै मगधैस्तावकविशेषै रचितानि स्तोत्राणि येषां तैः सभ्यैं राजसभाजनैः गजरथहयादिभ्यो वाहनेभ्योऽवतीर्य, वष्टि भागुरिरित्यकारलोपः, आदिशब्देन नरयानभेदानां ग्रहणम् च पुनः प्रहरणानां शस्त्राणां गणं विनीय यथास्थानं स्थापयित्वा ततो मार्गधूलीभिर्धूम्रं मुखं जलैर्निषिच्य प्रक्षाल्यमंचेषु सुखासिका सुखेन स्थितिः, धात्वर्थनिर्देशेण्वुल्, अलम्भि प्राप्ता, लभेः कर्म्मणि लुङ् विभाषा चिण्णमुलेरिति नुम् ।

39 गहनेति । जनता जनसमूहः, ग्रामजनबंधुभ्यस्तल् इति समूहे तल्, गहनं पयो जलं यस्यास्तस्याश्चर्म्मण्वत्यास्तोयेषु जलेषु मेकलकन्यका या नर्म्मदाया भ्रमेण विवशितान् वशीकृतान् नर्म्मदेयमिति भ्रान्तानित्यर्थः अतस्तत्र चिरादभिषुण्वतः स्नानं कुर्वतः तुंगान् नागान् गजान् सुमलिनाः शिला येषां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तान् अंतरीपवत् जलगततटवत् समुन्नतान् अगस्त्यम्य मुनेरादेशात् यावदहं नागच्छामि तावत्त्वया तथैव स्थेयमिति रूपाद्वशंवदोऽधीनो यो भूभृत् पर्वतो विन्ध्याचलस्तस्य सानून् प्रस्थान् मनसि मेने संभावयति स्म चर्म्मण्वतीसमीपवर्त्ति विंध्यभागसानुसंभावना जातेत्यर्थः गजानामुच्चता च व्यंग्या, रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका इति, द्वीपेऽस्त्रियामंतरीपं यदंतर्वारिणस्तटमिति चामरः ।

40 प्रतिगजेति । प्रतिकूलगजस्य यो मदस्तस्यामोदेन गंधेन अमंदो महान् अनघः जातिस्वभावाच्छोभनो यः प्रतिघः क्रोधस्तेनोद्धतैः प्रचंडैर्निविडानि दृढान्यपि निगडानि पादबंधनलौहशृंखलानुच्चैरुन्मूल्योत्पाट्य च्छित्वा इतस्ततो व्रजद्भिः धृतमदतया मत्ततया अवज्ञाता अनादृता उद्यतीं प्रवलीभवतीं निषादिनां महामात्राणां नियंत्रणा यस्तैस्सेनाया नागैर्हस्तिभिर्वाहिनी सेना अगाह्यत व्यलोड्यतेत्यर्थः ।

41 वदनेति । वरा श्रेष्ठा वल्लवाः लक्षणया अश्वरक्षकाः दविष्ठोऽतिदूरो यः पंथास्तस्य श्रमात् खेदात् स्थूलदूरेत्यादिना रलोपगुणौ ऋक्पूरिति समासान्तः, वदने मुखे विलसन् शोभमानो डिण्डीरस्य लक्षणया फेनस्य ओघस्समूहो येषाम् अभीक्ष्णशः वारं वारं दन्तालिकाभिर्वल्गाभिः उच्चैर्नियमितं मुखं येषाम् मुहुर्द्दतिवाहिभिः शक्वा इति ख्यातेः चर्म्ममयपात्रेण जलानेतृभिर्वक्त्रे मुखे विमलैः सलिलैः सिक्तान् हयान् भूयोपि सुमृदु गमयामासुः श्रमकुपितवायोरानुलोम्याय शनैश्चालयति स्म ।

42 अनिमिषेति । पुरः स्थितां वामीं वडवां अनिमिषया निमेषरहितया दृशा विलोक्य खुरैः अवनिं भूमिं खनन् सन् चिरं विरचिता अमर्षेण स्वबंधनासहिष्णुतया ह्रेषा येन स कश्चित् कामी हयोऽश्वः लोकैरश्वरक्षकैः पिहिते आच्छन्ने नयने यस्य तादृशः सन् क्षमां शान्तिम् जहाय प्राप, हयगतौ भ्वादिः, ह्रियतः नृणां पुंव्यक्तीनां जीवानामिति वा, अखिलस्सर्वोपि चित्तस्योन्मादः दृशोनेत्राद्दुद्भवो यस्य तादृशो भवति ।

43 शिविरेति । अहो आश्चर्यं शिविरस्य पटगृहादेः विततौ वितनने व्यग्रैरासक्तैर्नरैस्सद्यो निरस्त उत्तारितो भरो भारो यस्मात्तत् व्याप्तं व्यादितमाननं मुख येन अतः क्षणं क्षणमात्रं श्रमेण निरुपमं बहुलं श्वासनिश्वासं समुत्सजत्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मयानामुष्ट्राणां कुलं यूथम्, मयादैत्योष्ट्रवेसरा इति हैमः, लसंति दलानि येषु तान् दूरस्थान् पीलून् त्यक्त्वा निकटगतान् कटुतरान् तरून् जघास भक्षयतिस्म, तथाहि क्षुद्रो लोको मिष्ठं स्वादु वस्तु नापेक्षते नेच्छति ।

44 अपहृतेति । अपहृतो निरस्तो लसन् गोणीनां धान्यावपनानां भारो यस्मात् तत्, जानपदकुंडगोणेति ङीष्, द्रुतं शीघ्रं श्रितः शाद्वलो हरिततृणयुक्तो देशो येन तत्, शाद्वलः शादहरिते इत्यमरः, असकृद्भूयो भूयो रोमंथं चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणं विदधत् कुर्वंत्ततः श्रमापगमात् सन्निमीलिते लोचने येत तत् अधिगतं प्राप्तं सुखं येन तत् अनडुहां वृषभाणां कुलं सद्यः प्रोद्यत उद्भवतो मदात् हेतोः तुंगैरुच्चैः शृंगैः गुरून् महस्तटिन्या नद्यास्तटान् असकृत् व्यलिखित् भिनत्ति स्म ।

45 अयमिति । समरेषु युद्धेषु विजयी विजयशाली अयं शत्रुशल्यः इत्यमुना प्रकारेण उच्चैर्दुंहूंदा शत्रूणां प्रमाथिनी नाशिनी या वरूथिनी सेना तां पारे तीरे परस्मिस्तटे पारावारे, परार्वाची तीरे इत्यमरः, तरंगवत्याश्चर्म्मण्वत्या ह्रदे तज्जलजनितागाधजलाशये, तत्रागाधजलो ह्रद इत्यमरः तत्समीपे निवेश्य स्थापयित्वा क्रमेण कालक्रमेण परिगलत् नश्यत् तारुण्यं प्रवलतेजस्कता यौवनं च यस्य तादृशेपि तरणौ सूर्ये द्रुतं शीघ्रं वरुणस्य रमणीं स्त्रीतुल्याम् स्त्रियं च दिशं पश्चिमां उच्चैश्चुंबति सति अस्तं गच्छति सतीत्यर्थः, विहर्त्तुंमना अंतःपुरक्रीडेच्छावानभूत्, यत्र वृद्धोऽपि सूर्यः परांगनानुरक्तो ऽभूत्तत्रकाले स्वांगनाविहारे काऽनौचिती ।

46 सुवितेति । अथ एषाऽनंतरोक्ता धुनो नदी चर्म्मण्वती सुष्ठु विततं प्रसारितं आनायं जालमानीय, जालमानाय इति घञन्तो निपातः, विगाढा अवगाहनकर्म्मीकृता दृढा महान्तो ह्रदा यैस्तैः निविडानि दृढानि वडिशानि मत्स्यवेधनानि येषां तैर्दासीभवद्भिश्चर्म्मण्वत्या अनुचरभूतैर्दाशैर्धीवरैः अभीक्ष्णशः मुहुर्मुहुर्धृतानां गृहीतानां झषाणां मत्स्यानां मिषात् अशेषां समस्तामपि स्विकां संपदम् तिथयेऽस्मै राज्ञे शत्रुशल्याय द्रुतं समुपाहरत् उपहारत्वेनार्पयत्, अन्योपि महान् महतेऽतिथये स्वानुचरद्वारोपहारमर्प्पयतीति, वडिशं मत्स्यवेधनमिति, कैवर्ते दाशधीवरो इति चामरः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

47 अपि इति । शुद्धांतस्त्रीजनस्यान्तःपुरांगनालोकस्य दृशां नेत्राणां मीनसदृशीनाम् स्मरन् सन्, अधीगर्थदयेशां कर्म्मणीति षष्ठी, अयं नरपतिः शत्रुशल्यः कैवर्त्तकैर्धीवरैः सुष्ठु विषमा दुर्गमा आवर्त्ता जलभ्रमदेशा यस्य तस्मादपि सरितश्चर्म्मण्वत्या ह्रदात् बहिरुपहृतानानीतान् ऋच्छन्ती प्राप्नुवती मूर्च्छा यान् विधूनितानि पुच्छानि यैस्तान् प्रेष्ठान् स्त्रीनयनतुल्यत्वेन प्रीतिविषयान् प्रोष्ठीगणान्मत्सीसमूहान् करुणावशात् दयातः पयसि जले विजहौ तत्याज, आवर्त्तो ह्यंभसां भ्रम इति, प्रोष्ठी तु सफरीद्वयोरिति चामरः ।

48 प्लुततरमिति । अथ विविधैर्मगधानां स्तोत्रैः प्रवर्णितो विक्रमो यस्य सः नियता बद्धा अंजलयो यत्र कर्मणि तथा वरैः श्रेष्ठैः रसवत्याः पाकशालाया लोकैरधिकारिभिस्तूर्णं प्रविज्ञापितः कृतभोजनार्थविज्ञप्तिः शत्रुशल्य प्लुततरमत्युच्चस्वरं यथास्यात्तथा द्रुतं शीघ्रं अमेयान् अनंतान् बहून् श्रेष्ठान् बाहुजान् क्षत्रियान् आहूय तैः सह प्राज्यं नानाप्रकारतया बहुलं प्राधान्यतो भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्यभेदात् चतुर्विधं भोज्यमन्नम् आदरात् बुभुजे किल वाक्यालंकारे ।

49 रुचिरेति । रुचिराःश्रेष्ठा विलसन्तो ये तालाः कालक्रियामानानि तेषामुत्कृष्टाया लीलाया विलासस्य कलापेन रचनया कलो मधुरः स्वरो ध्वनिर्यत्र कर्म्मणि तथा श्रवणयोर्म्मधुरं यथास्यात्तथा सविस्तृति द्विगुणादिमात्राप्रमाणेन नानाविधान् तानान् गीतप्रयोगविस्तारकोल्लापान् गायताम् निजगुणाना गणैर्मधुरस्वरत्वादिभिर्हाहाहूहूवोः प्रहासकृताम् तदधिकगुणानाम् नृणां गीतिं गानं शृण्वन् सन् नृपः रह एकान्ते प्रमदाजनं स्त्रीवर्गं अभजत असेवत ।

50 अथेति । अथ पुनः प्रगे प्रातः, प्रगे प्रातरहर्मुखे इति हैमः, प्रस्थं पर्वतसानुमतिक्रान्ता अतिप्रस्था महान्त इत्यर्थः ये प्रास्थानिका प्रस्थानकालभवाः कालाद्वञ् यथा कथंचित्कालवाचकादप्यंगीकारात्, आनका वाद्यविशेषास्तेषां गंजितैर्वादनशब्दैः अपहृतो यो निशाभवः स्वापो निद्रा तेन स्वापं सुखेनाप्तुं शक्यम् गतनिद्रत्वात्, ईषद्दुःसुषु इति खल्, गुरुर्महान् यो भरो भारस्तस्य धृत्या धरणेन क्रूरमुत्कटं क्रंदद्भिः क्रमेलकैरुष्ट्रैः वार्षभैर्वृषभसमूहैश्चै स्फुटः कलकलः कोलाहलो यत्र सता श्रेष्ठेन नासीरेणाऽग्रभागेणाचितं युक्तं प्रबलं बलं सैन्यं दुरमायत आगच्छत् आङ्पूर्वाद्यतेर्लुङ् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

51 निधुवनेति । निधुवनस्य सुरतस्य परोखेदेन श्रमेण उपसर्गे घञ् मनुष्ये बहुलमिति दीर्घः अमंदायितो बहुलीभूतः अध्वनो मार्गस्य श्रमो यासां चिरतरं लसन्ती ये निद्रातंद्रे ताभ्यां अलसायिते लोचने यासान्ताः उभयत्र भृशादिकल्पनया क्यङ् पश्चाद्रक्षैः सार्थे व्रजति पश्चाद् भागं रक्षन्ति तै कथंचन महता प्रयत्नेन बोधिता अतो भयाद् द्रुतमपसरन्तो जारा विटा याभ्यस्ता वारांगना वेश्या अपि निर्ययुर्ययुः ।

52 रिपुकुलेति । रिपुकुलस्य महाकल्पो महाप्रलयः तत्कालजैरनल्पैर्बहुभिरंबुभृद्भिर्मेघैरिवोद्भटैः उत्कटैः विकटा ये करटाः कपोलास्तेभ्यः स्फेष्ठः अतिस्फिरः अतिबहुलः अतिशायने इष्ठनि प्रियस्थिरेत्यादिना फिरस्य स्फश्च्योतन् क्षरन् मदो येषान्तैर्द्विरदानां व्रजैः समूहैः विरचितं लसन्नासीरं सैन्याग्रम् यस्य रटन्तो वाद्यमानाः पटवः श्रेष्ठा डिण्डिमा वाद्यभेदा यस्य सः कट्वी शत्रुभीषणा या भटानां घटा घटना तया घोरः संव्रजन् सन् असौ वीरः शत्रुशल्यः व्यरोचत प्रादीप्यत ।

53 पवनेति । पवनस्य लवनश्छेदनेऽभिभावुक आसमंताद्वेगो येषान्ते च ते त्वङ्गन्तश्चलन्तस्तुरंगा अश्वास्तैस्तरंगवान् तरंगयुक्तः त्वंगदिति त्वगेर्गत्यर्थाच्छता, निशितानां तीक्ष्णानां विलसतां शस्त्राणां ज्वाला चमत्कारः संघर्षजवह्निर्वा सैव समुद्भटो महान् वाडवः वडवाग्निर्यत्र द्विपानां हस्तिनां शतान्येव लसन्तो द्वीपा अहार्याः पर्वताश्च यत्र, अहार्यधरपर्वता इत्यमरः, स क्षितिपस्य राज्ञः पृतनारूपः पारावारस्समुद्रः रिपव एव क्षितिः पृथ्वी तस्याः विप्लवं नाशं अन्तर्भावं च विधातुं कर्तुं अधावत धावति स्म ।

54 भुवनेति । भुवनेषु दयया तापातिशयजन्यकृपया हेतुना त्वष्ट्रा विश्वकर्म्मणा तष्टस्तनूकृतः प्रचंडो मृतांडजो मार्तंडः निजे स्वे कुले भटः शूरश्चासावेष शत्रुशल्यश्च तस्य शाक्तीकानां शक्त्यायुधानां शूराणां, शक्तियष्ट्योरीकमिति प्रहरणार्थे ईकक्, स्फुरन्तः कराः हस्ताः शुक्तय इव निधेयवस्तुपात्रत्वात् तासु सुनिशितास्तीक्ष्णा या लसन्त्यः कोट्योऽग्राणि तासां याः कान्तयो दीप्तयस्तासां छलात् दुराल्लक्ष्यान् ज्ञेयान् जगतोऽचरान् भक्षणशीलान्, सृघस्यदः क्मरच् इति क्मरच्, स्वकीयानां कराणां किरणानां उत्करान् समूहान् विदधे किमु अन्योऽपि बलवताऽपि ह्रियमाणे स्वधने तत्स्थानांतरे स्थापयति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

55 प्रचलतीति । जगत्त्रयस्य जित्वरे जयशीले बुन्दीभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य दले प्रचलति सति सपदि प्रांशु उच्चं यथास्यात्तथा द्रवन्त्यश्चकिता भीताः प्रजा यत्र तादृशाः विमिताः विशेषेण मिताः स्वल्पा न भवन्तीत्य विमितास्ते च ते विमतानां शत्रूणां ग्रामास्तेषां, ग्रामास्समूहा ग्रामो वृन्दे शब्दादिपूर्वकः षड्गदौ संवसथे चेति हैमः, निजस्य स्वीयस्य पत्युःस्वामिनः प्रौढा उदेष्यन्ती आगमिष्यन्ती या दशा वक्ष्यमाणा तस्या अनुजिहीर्षवः अनुकर्त्तुमिच्छवः किमु उत्प्रेक्षायां तादृशा इव शेषषष्ठ्या समासः अविद्यमानम्मानं परिमाणं यस्यास्तां दरिद्रतां दुर्गतिं विभरामासुः धारयामासुः, भीह्रीहुवां श्लुवच्चेत्याम् ।

56 निजेति । निजयोर्भुजयोः पराक्रान्त्या पराक्रमेण विपक्षगणस्य शत्रुसघस्य क्षितिं भूमिमाक्रामन् स्वायत्तां कुर्वन् विकटो यः कटकः सेना तस्य व्यूहेन समूहेन अपोढो निरस्तो द्विषतां शत्रूणां भटानां विक्रमो येन सः नृपः शत्रुशल्यः अद्धा झटिति रिपून् शत्रून् विध्यन् सन् हेतौ शता, समरधरणौ युद्धभूमौ मल्लैः शूरैर्भल्लैर्जातिविशेषैरतीव दुरासदं दुःखेनासादयितुं शक्यम् मऊविषयं मऊनामराजधानीकं देशं न्यविशत, विवेशनेर्विश इत्यामनेपदम्, कटकस्त्वद्विनितम्बे बाहुभूषणे सेनायामिति हैमः ।

57 तमिति । अथानंतरम् मथितोऽरातीनां व्रातो येन तं अशंकितम् निश्शंकं विशन्तं स्वराष्ट्रमाक्रमंततं शत्रुशल्यं श्रवणविषयं कुर्वन् शृण्वन् सन् औवो वाडवाग्निस्तद्वत्प्रचंडः पराक्रमो यस्य नीचीकृतस्तुच्छीकृतोऽमितानामसंख्यजनानां विक्रमो येन प्रपरुषया कठोरया रुषा कोपेन नित्यं नृत्यद्भ्रूकुटीद्वयं यस्य स खींची तन्नामकुलजः नृपः परिकरं युद्धारम्भं अभृत दधार, भवेत् परिकरो व्राते पर्यंकपरिवारयोः प्रगाढगात्रिकाबन्धे विवेकारंभयोरपि इति विश्वः, अभृतेति भृञो लुङ् ह्रस्वादंगादिति सिचो लोपः ।

58 शिखरीति । स खीचीनृपः शिखरि गुरुभिः पर्वतवन् महाशरीरैश्चौडेश्चोलदेशजै, मतंगजैर्हस्तिभिरतीव चंडान् प्रचंडान् पवनवज्जवनैर्वेगभिर्विश्वस्याक्रमे उल्लंघने प्रवणैः उन्मुखैः अश्वैर्वृताम् दृढानि वर्म्माणि कवचानि येषां तैः प्रविकटैर्भटैः शूरैरन्तर्म्मध्ये दृढं गाढं सज्जामधिष्ठितां सशोभां वा महतीं निजां स्वां वरूथिनीं सेनां सपदि व्यूहांचक्रे यथास्थानं हस्त्यादियोजनया सन्नद्धां चक्रे, इजादेश्च गुरुमतोनृच्छ इत्याम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

59 बलेति । अथ स इत्यनुषज्यते प्राजिषु संग्रामेषु अमितैरनंतैः शस्त्राजीवैर्भटैः सुरक्षितं कृतरक्ष अक्षयराजकमक्षयराजनामकं अ तुष्पुत्र, कस्कादिः, बलपतिं सेनापतिं पुरोऽग्रे विदधत् सन् स्वय च वरैः श्रेष्ठैरायुधिकैः शस्त्राजीवैः, आयुधाच्छ चेति चात् ठञ्, वृतो मध्ये सं य सैन्यस्य मध्ये वसन् तिष्ठन् निजस्य बलस्य सैन्यस्य भराद् भारादुर्वीं पृथ्वीं धुन्वन् कम्पयन् रणावरणं कर्त्तुं विनिर्ययौ ।

60 अमुमिति । कर्णान्तं कर्णपर्यंतं कृष्टानि शरासनानि धनूंपि यैः रणेषु अपहृताः परेषां प्राणा यैस्तैर्बाणैः अधियोधिनः अधिकयुद्धशीलाः प्रलयसमये अमेया मातुमशक्याः सर्वतः प्रसृता इति यावत् अधृष्या धर्षयितुमशक्याः ये अन्तकस्य कालस्यानुगाः अनुचरा ईषद्दूनास्त एवेति तद्देश्यकाः, ईषदपरिसमाप्तौ देश्यः तादृशयमदूततुल्या इत्यर्थः मध्ये युद्धे यो रस आसक्तिस्तस्य मदेनोत्फुल्लाः उद्धता, उत्फुल्लसम्फुल्लयोरुपसंख्यानम् कलौ कलहविषये अपलापिनः अपराङ्मुखा भिल्लाः जातिविशेषाः अमुं मउपतिमनुययुः पश्चाज्जग्मुः ।

61 मउनरपतिरिति । अस्य मउनरपतेः प्रस्थाने धनपतिदिशः उत्त तः याम्यां दक्षिणां दिशं याता गताः शिवा शृगाल्य. दिशां देवता इवाशिवमभद्रं जगदुः सूचयामासुः मलिना श्रीः शोभा यासां ताः दिशः पूर्वाद्या अपि तस्य स्त्रिय इव अन्तर्मध्ये भागे मनसि च दाहं दह्यमानाकारं दुःखं च दधुः निजाः स्वीयाः श्रियः सम्पद इव लोलन्त्यश्चलन्त्यस्तास्त्विषः मउपतिकान्तयः लोलत्त्विषो विद्युतो वा लौल्यं चापलं अस्थैर्यमवललंबिरे अवलबितवत्यः, शृङ्खलोपमा एकावली च ।

62 पललेति । पललस्य मांसस्य कवलं ग्रासमपेक्षन्ते इति तैः सुरप्रमदानामप्सरसां करग्रहणस्य विवाहस्य पिशुनां सूचिकाम् युद्धे मरिष्यमाणानामप्सरोभिर्वरणात् सुष्ठु तोरणमालिकां तोरणधार्यवदनमालिकां तत्सादृश्यं आतन्वानैः कुर्वद्भिः प्रलयसमये क्रूरः क्रोधो यस्य तस्यान्तकस्य कालस्य चरैर्दूतैरिव गृध्रै रुपरिदेशे परिवृता खीचीकुलभर्त्तुस्सेना सम्यगशोभत ।

63 भुवनेति । भुवनस्य लोकस्य निधनाय तत्र वाध्माती प्रवृद्धौ ध्माता वादिता उद्गता महान्त आनका वाद्यभेदास्त एव त इव च गर्जितं नाद उच्छूलनशब्द-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्चययोस्तौ प्रहरणगणानां शस्त्रौघानां ज्वालायाः चञ्चनस्य जालं ज्वलन् पटुर्महान् वाडवो वडवानल इव तद्वडवानलश्च उभावतिभीषणौ बलिनोः शत्रुशल्यमहुपत्योर्बलभरौ सैन्यसमूहौ पूर्वापरौ प्राक्पश्चिमदिवस्थौ तोयधी समुद्राविव सपदि समगंसानाम् सङ्गतौ अभूताम्, समोगमृछ्चभ्याम् इत्यात्मनेपदम् आत्मनेपदत्वान्नेट् ।

64 अहमहमिकेति । अस्मिन्सैन्यद्वये अहमहमिका परस्पराहंकारः पूर्वं कारणं यत्र कर्म्मणि तथा संगते अभिमुखीभूते सति, अहमहमिका तु सा स्यात्परस्परं यो भवत्यहंकार इत्यमरः, युद्धरूपे शुल्के विवाहपणे सति वरां श्रेष्ठां जयरुचं जयलक्ष्मीम् वरीतुमुत्सुका इव संवर्मिता परिहितकवचा अंगलता येषां ते केचिद्भटाः स्वं धनुरधुवन् आस्फालयन् अपरेऽन्ये च भटा निलसन्तः सुदृढा मुष्टयः त्सरवो येषान्तान् ऋष्टीन् द्विधारखड्गान् समस्पृशन् ।

65 समरेति । अथ समरस्य युद्धस्य रभसाद्वेगात् संजग्मुष्योः सङ्गतयोः, वसोः संप्रसारणम्, तयोस्सेनयोश्चित्ते यः प्रकोपरूपः हुताशनोग्निश्चिरमुपचितः संचितोऽभूत्, ध्रुवमुत्प्रेक्षायां अमितायाः महत्याः सुष्ठु समितो युद्धस्य अमितानां सुष्ठु समिधां काष्ठानां च स्वीकारेण समेधितः प्रवृद्धः स एव प्रकोपहुताशनः विपुलानाम्महतीनां नलिकानां बंदूकाख्यानां वक्त्रान्मुखाद्भूरिशः बहुशः आविर्बभूव, बस्कल्यार्थच्छस्कारकादन्यतरस्यामिति शस् ।

66 अजगरेति । अजगरस्सर्पभेदस्तद्वद्गुरुणि महति आस्ये मुखे न्यस्तौ द्वौ तुल्यकौ समौ गोलकौ सीसकपिण्डौ यत्र रिपुकुले लसन् रोगो दुःखं येभ्यस्तैर्भोगैः शरीरैः अदभ्रं बहुलं यथास्यातथा भयंकराः तीक्ष्णैर्विषतुल्यैः अग्निकणानामुत्करैस्समूहैः कवलिता जगतां प्राणा जीवनानि कवलितो वायु भोजनत्वात् जगत्प्राणो वायुश्च याभिर्यैश्च ताः मयेषु उष्ट्रेषु स्थिताः नलिका जंम्बूराख्याः फणभृतः सर्पा इव रेजुः जजत् स्थितेति पाठे जजत्सु युद्धचमानेषु स्थिता इति व्याख्येयम्, जज युद्धे शत्रन्तः, निस्तकारपाठे जजेषु योधेषु स्थिता इति जजो योधे इति शब्दार्थचिन्तामणिः ।

67 क्षुधितेति । क्षुधितो बुभुक्षितः, कर्त्तरि क्तः वसतिक्षुधोरितीट्, यः पितृराड् यमस्तस्य डंडवदुच्चण्डान्मारकात् घोराद् भीषणात् अलघूनां महतीनां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नलिकानां संघात्समूहात् त्वरितं शीघ्रमुदित उत्पन्नः इह विषये दृष्यतां दुर्हृदां शत्रूणां समिद्भिर्युद्धैर्द्विषद्भिरेव समिद्भिः काष्ठैश्चैधितः अनूनो महान् तनूनपादग्निः सुरसुभ्रुवां अप्सरसां करनियमने विवाहविषये साक्षात्प्रत्यक्षं साक्षी अभूत् विवाहोप्यग्निसाक्षिकः क्रियते ।

68 विमतेति । विमताः शत्रव एव हविर्होतव्यद्रव्यं तेन द्रुतं विश्ववसर्वतैधितात् प्रवृद्धात् विपुले महत्यौ विलसन्त्यौ यौ द्यावाभूम्यौ रोदसी एकदेशविकृतस्थानन्यत्वाद्दीर्घेपि भूमीशब्दे दिवो द्यावा तयोर्विगाहने अवगाहने साहसं त्वरा यस्य तस्माद्वैश्वानरादग्नेः परमं चकिताः भीताः पूर्वं सुष्ठु कौतुकेन युद्धेक्षणकुतूहलेन पातुकाः समीपागमनशीलाः दिव्या नार्यः द्रुतमुपहृतः स्वस्थानाभिमुखमुपसंहृतः उदंचन् ऊर्ध्वभागे स्फुरन् केतुर्ध्वजो यस्य तादृशं द्युयानं विमानं यत्र कर्म्मणि तथा अदुद्रुवन् शीघ्रं यान्ति स्म ।

69 प्रपरुषेति । प्रकृष्टं परुषया क्रूरया रुषा कोपेन दष्टाः स्वा ओष्ठा यैस्ते वरिष्ठम्महत् भुजयोरोजो बल येषां ते प्रकृष्टं विकटं करालं यथास्यात्तथा रटंत्या शब्दायमानया कोट्यः अटन्या क्रूरं यथास्यात्तथा शरासनकर्षिणः धनुष्कर्षणशीलाः धानुष्काः प्रधनस्य युद्धस्य स्थले इत्यधिप्रधनस्थलम् वहुलं प्रचुरमनलमग्निम् घोरैर्भयंकरैः कीर्णैर्वृष्टैः सुनिशितास्तीक्ष्णा ये शरास्त एवासारा धारासम्पातास्तैः असीमं मर्यादारहितं यथास्यात्तथा अतिशयेनेत्यर्थः अशीशमन् शमयन्ति स्म तोपबंदूकयुद्धानंतरं शरयुद्धमभूदित्यर्थः ।

70 असमेति । ग्लास्नवो ग्लानिशीला स्रस्नवः भीरवो ग्लानि इत्यादिना ग्स्नु, त्रसि गृधिधृर्षीति कुः, नेड्वशीति नेट्, अमुत्रास्मिन् असमे अनुपमे समरे युद्धे तु वाक्यालंकारे प्रवरया श्रेष्टया खुरल्या शस्त्राभ्यासेन प्रेंखन्ती स्फुरन्ती प्रज्ञा येषान्तैर्भटैः शूरैः श्रवणसरण्याः कर्णमार्गस्य पारीणानि पारगामीनि अवारपारात्यंतानुकागंगामीति खः, धनूंष्यरं शीघ्रमाकृष्य दृढं गाढमीरिता. क्षिप्ताः पतत्रिणः बाणाः कवीनां गिरो वाच इव परस्य शत्रुगणस्य श्रोतुश्च हृदि गता कर्मणोऽधिकरणत्वविवक्षया मूर्द्धनः शिरांसि अधुन्वन्नकम्पयन् आद्येपततः शिरोघूर्णनाद्वितीये प्रशंसया शिरःकम्पनात् ।

71 कुचेति । अथ रिपून् मथ्नातीति तेन मथ्नातेः क्विप् प्रभुणा शत्रुशल्येन अमेयो

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

महान् प्रतीपमृगीदृशां शत्रुवधूनां याः कुचमकरिका स्तने क्रियमाणमकरिकाकारास्तासां जलजंतुविशेषाणां च आनायः जालम् वंधव्यापादनेन कुचमकरीणां दूरीकरणात् रतिरसेन सुरतासक्त्या लसन् भावः सात्विकादिर्यत्र तादृशः द्युलोकस्य स्वर्गस्य नतभ्रुवामप्सरसां हावः शृंगारचेष्टा तासां वरलाभात् परिपंथिनां शत्रूणां अमरनगरी स्वर्गः तदर्थं यात्राया घंटापथः महान् मार्गः रोपाणां बाणानां व्रजः समूहः चापे धनुषि आदधे संदधे, घंटापथः संसरणमिति, पत्री-रोपइषुर्द्वयोरिति चामरः, रूपकम् उल्लेखश्च ।

72 समरेति । समरे युद्धे सृमरः प्रसरणशीलः स्थेमा स्थिरता यस्य तादृशं स्थाम बलं यस्य, दृढादिकल्पनया इमनिचि प्रियस्थिरेत्यादिनास्थादेशः प्रकृत्यैकात्र इत्यलोपाभावः, द्रविणं तरः सहोबल शौर्याणि स्थामशुष्मं चेत्यमरः, प्रकृष्टं भीष्मम्भीषणं धनुरस्यास्तीति तस्य प्रभोः शत्रुशल्यस्य य. स्थगितमाच्छादितं भुवनं त्रैलोक्य येन सविस्फारो धनुःशब्दः समजृम्भत आविरभूत् असौ इह युद्धे सुखेन अनूना अरहितां दिव स्वर्गमधिरोहतां यूनां तरुणानां द्विषां शत्रूणां रसेन नरेनाधिक. अधिकशोभः अधिकरस इति वा मंगल्यो मंगलाय हित पटहस्य निनदः एवोल्ललास शुशुभे, रूपकालंकारेण भाविशत्रुमरणरूपवस्तुध्वनिः ।

73 अपीति । हृता जगतां प्राणा यैः हृतो नाशितो जगन् प्राणो वायुर्यैस्ते च वायुविरुद्धा अपीत्यर्थः बुन्दोभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य आशुगाः बाणाः सदृशा तुल्यया अभिधया नाम्ना आशुगनाम्ना अनिलैर्वायुभिस्सह अभीक्ष्णशः वारं वारमुच्चैरभेदं भेदाभावं अभिप्रयान्त इव प्रसभं बलात्कारेण ससंभ्रमं सशैघ्र्यं विमतवनितानां शत्रुस्त्रीणामुरोजक्ष्माभृत्सु स्तनरूपपर्वतेषु पत्रलता पत्रवल्ल्याख्या भंगीः एव वनीः अध्रुवन् अकम्पयन्, वायोरपि वनीकम्पकत्वात् आशुगो मारुते बाणे इति हैमः ।

74 युधीति । युधि युद्धे खरतरः तीक्ष्णतरः वज्रवत् क्रूरः तिरस्कृतानि दुष्कृतानि पापानि येन स्वहतानां स्वर्गप्रापकत्वात् विकर्त्तनस्य सूर्यस्यान्वये वंशे भटेषु शूरेषु मणेः श्रेष्ठस्य शत्रुशल्यस्य बाणानामासारो वर्षणम् असुलभा दुर्लभा या जयश्रीः तस्याः संश्लेष आलिङ्गनं प्राप्तिश्च तस्य स्पृहयेच्छया कलुषायितं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मलिनम् दृप्यतां गर्वं प्राप्नुवतां कुप्यतां च सपत्नमहीभृतां शत्रुभूतनृपाणां हृदयं अदयं दयारहितं यथास्यात्तथा चकर्त्त विच्छेद ।

75 परेति । अथ शत्रुशल्यः परभटानां शत्रुभूतशूराणां ये शरास्तेषामवग्राहे प्रतिबंधे उग्रग्रहैर्भौमादितुल्यैर्महेषुभिर्बाणैः क्षिप्रं शीघ्रं द्विषतां शत्रूणामवनिषु देशेषु प्राणानामसुभिक्षं दुर्भिक्षं तस्य करः कारकस्सन्नपि रिपुवधूनां वैरीस्त्रीणां चक्षुर्देशे नेत्रविषये सुष्ठु महत् वाष्पकानामश्रुजलानां वृष्टिभिः अभीक्षणशः विलसन्त्याः प्रकटीभवन्त्या वैधव्यश्रियः विधवत्वसम्पदः सुभिक्षं व्यधित, विरोधाभासः ।

76 कुलिशेति । स्फुरत् करयोस्तेजो यस्य विजितं जगद्येन तस्यास्य शत्रुशल्यस्य यः सेनानी सेनापतिस्तस्य सेनापतेरेव वा विशेषणद्वयम् सेनानायकत्वात्सेनान्य इत्यपि शत्रुशल्यैव वा विशेषणम् एरनेकाच् इति यण्, बाणैर्भिन्नाः विदीर्णाः बहलं प्रचुरं विगलद्यद्रक्तं रुधिरं तेनाद्राण्यंगानि येषां ते प्रभिन्नमत्तंगजाः मत्तहस्तिनः, प्रभिन्नो गर्जितो मत इत्यमरः, परमत्यर्थं शकलीकृताः खंडिताः धृतागिरिमृद्गैरिकं यैस्तादृशाः त्रौंचस्य पर्वतविशेषस्य प्रस्थाः सानव इव आशु शीघ्रम् विरेजिरे शुशुभिरे ।

77 गुरुतरेति । रणे युद्धे अमुना प्रभुणा शत्रुशल्येन ईरितैः क्षिप्तैः गुरुतरोऽतिमहान् गरस्य विषस्योद्गारो निस्सरणं येभ्यस्तैः सविषत्वादतिक्रूरत्वाद्वा घोरैरिषुभिर्बाणैः उदवृत्तमतिशयितं कृत्ताश्छिन्ना रभसाद्वेगान्नभसि उद्गच्छंत उत्पतन्तः द्विषद्भटानां मौलयः मूर्द्धानः, मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडाकंकेलिमूर्द्धसु इति हैमः, अनूरुणा सूर्यसारथिना सशंकं यथास्यात्तथा हृदि मनसि विरचितो वपुर्व्यूहः कायव्यूहो यैस्ते सिंहीसुता मेनिरे मताः ।

78 तमिति । इति प्रकारेण समिति युद्धे द्विषां संवर्त्तः प्रलय एव व्रतं तस्मै कृत आदरो येन तं कृतांतकाद्यमादप्यतिभीषणं भयंकरं तं शत्रुशल्यं नयनविषयीकुर्वन् पश्यन् अरुणैः ईक्षणैर्नेत्रैः प्रगुणमत्यर्थं रोषस्य कोपस्यार्चींषि ज्वालाः प्रवमन् शक्त्या शस्त्रविशेषेण युक्तोऽक्षयराजकः मऊपतेः सेनापतिः परमुत्कृष्टं समरं युद्धमतनोत् अकरोत् ।

79 अथेति । अत्र मृधस्य युद्धस्य विधा विधानं तद्धेतुकया कंड्वा खर्ज्वा जुष्टे

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

युक्ते प्रवेष्टे बाहौ समुल्लसन्ती स्फुरन्ती निशिता तीक्ष्णा विलसन्ती शोभमाना च या शक्तिः शस्त्रविशेषस्तया उपलक्षिते जगति कृतो विस्मयो येन तस्मिन् मउपतेश्चमूनाथे सेनापतौ जयस्यासक्त्या समुद्यते उद्युक्ते सति अमुना शत्रुशल्येन अधिकरं करेत्यर्थः जयश्रियो जयलक्ष्म्यास्तुला तोलनदंड इव शक्तिः दध्रे धृता, भुजबाहू प्रवेष्टौ दोरित्यमरः ।

80 सुदृढेति । सुदृढं पिहितयोः कृतमुद्रणयोः स्वर्गद्वारस्याररयोः कपाटयोः उत्कटा महती कुंचिका उद्घाटनसाधनम् कपाटमररं तुल्य इत्यमरः, प्रवरायाः खुरली शस्त्राभ्यासस्तस्य या विद्या ज्ञानं तस्या दीक्षा प्रदानस्योपदेशदानस्य शलाकिका शस्त्राभ्यासार्थन्दीयमानो दण्डविशेषः मृध युद्धमेव मखो यज्ञस्तस्य विधौ विधाने दुर्द्दर्दा हविर्भूतानां शत्रूणां पूर्णाहुतेर्म्महती जुहूः स्रुक् ितृपतेर्यमस्य लसन्ती जिह्वा,सा शक्तिः नृपस्य शत्रुशल्यस्य करे बभौ, मालारूपकम् ।

81 कुलिशेति । विकर्त्तनस्य सूर्यस्येव तेजो यस्य तेन समरे विजयिना विजयवताऽनेन शत्रुशल्येन आविद्धः प्रहारकरणीकृतैः कुलिशस्य वज्रस्येव शिमः तीक्ष्णः प्रान्तो येषान्तैः कुन्तैः शस्त्रविशेषैः, ध्रुवं संभावने, वीर्यमम्भोधिरसमुद्र इव तस्य प्रमाणमियत्ता तस्याः परभटततेः शत्रुशूरपंक्तेः आसमन्तादनिन्द्यानि शौर्यवत्त्वात् हृन्दि हृदयानि नपुंसकस्य भल् च इति नुम् कर्म्मभूतानि अतीव विभिदिरे भिन्नानि, फलोत्प्रेक्षा ।

82 समरेति । समरे विलसता कंडूलेन युद्धेच्छावता एतस्य शत्रुशल्यस्य प्रवेष्टेन भुजेन समीरिताः प्रेरिताः खरतरास्तीक्ष्णतरा लसन्ती भा येषान्ते प्रवरंतरो बलं वेगो वा येषां तेषां सपत्नमहीभृताम् शत्रुनृपाणां हृदि हृदये विभिद्य भेदनव्यापार कृत्वा पारं सर्वत्रैवपूर्वकं क्षेप्यदिशोन्ते पृष्ठस्य परत इति वा यान्तः प्रासाः कुन्ताः अपसरन्ती हृदयान्निर्गच्छन्तीव तेषां शत्रूणां धैर्यश्रीस्तस्या विनिर्गमहेतवे निस्सरणाय विलं छिद्रं व्यधुः अकार्षुः हृदि इति भिदेः कर्म्माविवक्षणादधिकरणे सप्तमी ।

83 कवचमिति । मृधे युद्धे नरहरेः नृसिंहस्य नखवत् क्रूरा घोरा भीषणाः क्षरता स्रवता क्षतजेन रुधिरेणारुणा रक्ताः नृपस्य शत्रुशल्यशक्तयः अन्येषां शत्रूणाम्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अमेद्यं भेदयितुमशक्यं कवचं वर्म्मं अचिराच्छीघ्रं सरोरुहपत्रवत् कमलदलवत् भित्वा घनं दृढमपघनमंगं च्छित्वा च अंगं प्रतीकोवयवोपघन इत्यमरः परमुत्कृष्टां प्रलयसमये प्रोद्यती उद्भवन्ती या विद्युत् तस्याः प्रभां दधुः ।

84 शरभुवमिति । परमत्यर्थं कृतः कर्तुमारब्धः, आदिकर्म्मणि क्तः, हठेन समाघातः प्रहारो यैस्ते परिपंथिनां शत्रूणां व्राता समूहाः पाणौ हस्ते विकोषां कोषाद्विनिर्गतां कृपाणिकां ह्रस्वखड्गं धृत्वा शरभुवं कार्तिकेयमिव शक्त्या शस्त्रविशेषेण स्फुरन् शोभमानः करो हस्तो यस्य अरयोंभोधिरिव तस्य मथनाय नाशाय आहवे युद्धे आसक्तं व्यापृतं तं शत्रुशल्यमभिययुः तस्य सम्मुखमाजग्मुः ।

85 असमेति । स शत्रुशल्यः असमे अनुपमे समरे अहंयून् अभिमानवतः अहंशुभमोर्युस्, रुषा क्रोधेन हन्तुं प्रहर्तुं आशु शीघ्रं समुद्यतान् दृढ यथास्यात्तथा असिभिः खड्गैर्लसन्तो दीप्तो भुजा येषां तान् मुखेः पूष्णः सूर्यस्य त्विषं तेजः दधतः अनंतानसंख्यान् विषमान् दुर्जयान् विमतान् शत्रून् हन्त हर्षे अतान्तं ग्लानिरहितं यथास्यात्तथा अवेक्ष्य दृष्ट्वा स्वयमपि करे हस्ते द्विषतां क्षपणे नाशने क्षमं समर्थं खड्गमधार्षीत् ।

86 द्रुतमिति । अथ द्रुतं शीघ्रं जगतीं ये प्राणा जीवनानि तेषां जयत्प्राणानां च श्रेण्या या पानकर्त्री, पाघ्राध्माधेट्दृशः श इति शः, सुष्ठु विषमया क्रूरया रुषा कोपेन कोपादेवनावोर्वल्मीकाद्बहिः समुपेयुषी प्राप्ता अद्भुता पन्नगी भुजगी, अहितानां शत्रूणां यश एव राकायाः पूर्णिमाया अभीकः कामुकः कान्तश्चंद्र इति यावत् तस्यावलोपे क्षयकरणे कुहू-निशा अमावस्याविशेषरात्रि, रिपुकुलस्य महती मारी मारिकाख्योपद्रवः जयरूपस्योन्मददन्तिनो मत्तगजस्य वारी बंधनी वल्मीकं पुन्नपुंसकमिति पूर्णे, राका निशाकरे इति, सा नष्टेन्दुकला कुहूरिति, वारी तु गजबधनीति चामरः, मारी चंड्यां जनक्षये इति हैमः ।

87 बहलेति । बहले प्रचुरे कलहे प्रत्यग्रा नूतना अतएव आर्द्रा अपरिणतास्वभावा सजला च या द्विषतां विशेषणं तस्या इद्धः प्रवृद्धः पराक्रमो दीप्तश्च यस्तस्य शत्रुशल्यस्य सुष्ठु भुज एव हुतभुगग्निस्तस्य या धूमश्रेणी तस्याविडंबनेऽनुकरणे

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पंडिता दक्षा स्त्रियामाजिसमिद्युध इत्यमरः, इध्ममेध समित् स्त्रियामिति च, परभटेषु शत्रुपक्षशूरेषु इत्यधिपरभटम् अभीकाः कामनावत्यो या अनेका अमरप्रमदा अप्सरसस्तासां ये असितांबुजसमा नीलकमलतुल्याः कटाक्षास्तेषामिवाभा यस्यास्सा करवालिका ह्रस्वखङ्गः अस्य शत्रुशल्यस्य करे अभात् स्त्री स्यात्काचिन्मृणाल्यादिर्विवक्षापचये यदि, युग्मम् ।

88 अथेति । अथ परेषां शत्रूणां लसत् गोत्रं कुलं पररूपा ये लसन्तः गोत्रा पर्वतास्तांश्च छिनत्तीत्येवंशीलः अशनिं वज्रमिव तिग्मां कृपाणिकां दधत इन्द्रपक्षे कृपाणिकामिवाशनिमिति योज्यम् तिग्मच्छविस्तीक्ष्णा तेजाः ऊच्चैरुषा परुषायितः परुषीभूतः भृशादि कल्पनयाक्यडन्तात् क्तः, स महीमघवा पृथिवीन्द्रः शत्रुशल्यः पृथिव्यां इन्द्रश्च निजस्य भुजयुगस्य द्राधिष्ठेनातिदीर्घेण ओजसा बलेन अवहेलितमनादृतं विष्टपं लोको येन तत् रिपूणां बलं सैन्यमलं चस्कन्द नाशयामास, विष्टपं भुवनं जगत् अवहेलनमसूर्क्षणमिति ? चामरः ।

89 तपगेति । रणे कोपात् तपं ग्रीष्मं गच्छति प्राप्नोतीति तादृशो ग्रीष्मकालिको यस्तपनस्सूर्यस्तद्वत्तपन् सन्, उपमाने कर्मणि चेति णमुल्, च्युता दूरीभूता कृपा दया यस्यास्तया कृपाण्या उच्चैरुच्चाटितोऽहितानां शत्रूणां दोष्णोर्भुजयोर्मदो येन द्विषतां क्षये लालसा इच्छातिशयो यस्य स नृपः शत्रुशल्यः निजे भुजे नटन् नृत्यन् दंडो यस्य सः चंडः क्रूरः प्रचंडकरः सूर्यस्तस्यात्मजः पुत्रो यम इव रक्षक्षोणौ युद्धभूमौ ऐन्दत् अशोभत, प्रचंडकरात्मज इति यमविशेषणं च तपनवत्तपन्निति शत्रुशल्यविशेषणसाम्याय प्रयुक्तं भवेत् ।

90 अनिशमिति । अनिशं सततं रणे अशनिर्वज्रं तद्वत्क्रूरा घोरा भीषणा द्विगुणिता द्विगुणीभूता समिदर्था युद्धार्था भा यस्य भामेन क्रोधेन श्रीर्यस्य तेन प्रभुणा शत्रुशल्येन ईरिता प्रेरिता करवालिका कृपाणी अद्द्रेकतया शिरआरभ्याधःपर्यन्तकर्त्तनेन पृथक् भवन्त्यङ्गानि येषां तान् अहितान् शत्रून .... म्बकनामकराक्षसरिपोर्भीमसेनस्य भुजाभ्यां छिन्नस्य द्विधाकृतस्य द्वैमातुरस्य जरासंधस्य योवतरोवतारस्तस्य श्रियं शोभां अनयत्, जरासंघं भीम इव द्विधाकरोदित्यर्थः कथा भागवतादावनुसंधेया द्वयोर्मात्रोरपत्यमिति अणि मातुरुत्संख्येति उत्वं रपरत्वम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

91 विमतेति । विमताः शत्रवस्तद्रूपे वने लसन् शोभमानः अकुंठ अप्रतिहतः अस्य शत्रुशल्यस्यासिः खड्ग एव कंठीरवः सिंहः धारारूपैर्नखैः परेषां शत्रूणां ये करटिनो गजास्तेषां कुम्भौ तथा प्रकारेणाभिनद् भिनत्ति स्म यथा इह युद्धे प्रसभं निपतन्तो ये तेषां करटिनां वक्त्रस्यातंर्गता अमला निर्म्मलास्सन्तः श्रेष्ठाः द्विजा दंताः उत्खाता उत्पाटिताः खींचीकुलस्य सुकीर्तेः कुटा गृहाः कोटा इव वा बभुः, कुटः कोटे शिलाकुट्टे गेहे इति हैमः ।

92 क्षितिभृदिति । मृधे युद्धे क्षितिभृतः शत्रुशल्यस्य असिना खङ्गेन भूयः मुहुर्मुहुः भिन्ना विदीर्णा ये प्रभिन्ना मत्ता गजाः, प्रभिन्नो गर्जितो मत्त इत्यमरः, तेष व्रजस्य समूहस्य प्रकर्षेण लसद्भ्य शीर्षेभ्य उत्कर्षेणोत्क्षरन्ती ऊर्ध्वं स्रवन्ती क्षतजस्य रक्तस्य च्छटा सुदृढमतिशयितं कठिनानि यानि एतेषां गजानां कुंभसम्बन्ध्यस्थीनि तान्येव स्थिरा दृढा अरण्योर्निमथनकाष्ठानि तेभ्यः घट्टनात्सवर्णादुदयन्निदंयमुद्यन्ती या वह्निज्वाला तस्या विलासं शोभामधात्. शत्रुशल्यखड्गदीर्णगजकुंभोत्पतद्रक्तधारा कुंभास्थिसंघर्षज वह्निज्वालेवाशोभतेत्युत्प्रेक्षा ।

93 अपतीति । अथ युद्धे तस्य शत्रुशल्यस्य खड्गे सनरे उत्कटान् क्रूरान् भटान् इत्थं प्रकारेण असति सति युधि शस्त्री शस्त्रवान् करे शस्त्रीं कृपाणीं दधन् असौ अक्षयराजकः मउपतेः सेनानी सपदि दतैरोष्ठ कपन् दशन् निकषात्मजो राक्षसः रघुपति राममित्र शत्रूणां क्षये क्षमं समर्थं वुन्दिपं शत्रुशल्य निकषा निकटे प्रायात् याति स्म, निकषान्तिके इत्यमरः, ततोन्यत्रापि दृश्यते इति बुन्दिपमित्यत्र द्वितीया ।

94 अथेति । अथ निजे स्वीये जयिनी जयवत्यौ ये भुजे ते एव वेला शैलौ समुद्रकूलपर्वतौ ताभ्याम् वरुद्धा परे शत्रुरूपा अब्धयः समुद्रा यैस्तै अमले निर्म्मले कुले जाता बुन्दीभर्तुः शत्रुशल्यस्य भटाः शस्त्रा कृपाणो पाणौ यस्य रणाय रणं कर्त्तुं परायणं कुशलं सुभटं शूरं तं अक्षयराजं अणिमा सूक्ष्मीभाव इत्यादयः आदिशब्दात् महिमाद्या सिद्धानां व्रजा मुमुक्षुं मुक्तिमिच्छन्तं मुनिमिव परिवव्रिरे आवृतवंतः यथा मोक्षेच्छोः सिद्धयः प्रतिबंधिकास्तथा शत्रुशल्यसमीरमणास्तस्य ते प्रतिबन्धका अभूवन्नित्यर्थः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

95 रणेति । समरे युद्धे विलसंती तृष्णा येषान्ते पंच षड् वा इति पंचषाः, संख्यययाव्यया सन्नादूराधिकसंख्याः संख्ये य इति समासः बहुव्रीहौ संख्ये ये इति उच्, कृष्णादयः कृष्णादिनामानः ते बुन्दीभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य विकटाः प्रबलाः सुभटाः रणरूपे मखविधौ यज्ञकर्म्मणि तस्याक्षयराजस्य असिसुतया कृपाणिकया एव वरया श्रेष्ठया धाय्यया सामिधेन्या ऋग्विशेषेण इद्धे दीप्ते क्रोधरूपेऽनलेग्नौ भव्यान् श्रेष्ठान् असून् प्राणान् हव्यान् होतव्यपदार्थान् प्रविधाय द्रुतं त्रिदिवं स्वर्गं ययुः ऋक् सामिधेनी धाय्या च यास्यादग्निसमिधने इत्यमरः, पाय्यसान्नाय्यनिकायाधाय्यामानहविर्निवाससामिधेनीष्विति धात्रोण्यत् युगागमश्च ।

97 विदधतीति । मृधे युद्धे तस्मिन् अक्षयराजे विपक्षकुलस्य शत्रुकुलस्य क्षयं विदधति कुर्वति सति विरहितं मिथोऽन्योन्यं वैरं यस्य स्वैरं मदव्यापारं बलद्वयस्य सेनायुग्मस्य राजकं राजसमूहः, कर्त्तृ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्येति वुञ् क्षणं क्षणमात्रम् प्रलयसमये अमेयः प्रचंड आत्मा यस्य तं दिनेशम् सूर्यमिव असहं असह्यं पूर्ववद्व्युत्पत्तिः तं अक्षयराजकम् अनिमिषैर्निमेषरहितैः ईक्षणैर्नेत्रैः करणैः सविस्मयं विस्मययुक्तं यथास्यात्तथा ईक्षां चक्रे ददर्श ।

98 अनिशमिति । अथ स गौपीनाथिः शत्रुशल्यः अनिशं निरन्तरम् अशनया क्षुधयातिक्रूरो योन्तकः कालस्तस्योत्कटां दंष्ट्रिकां दंष्ट्राम् स्वार्थे कन् प्रत्ययस्थादिति इकारः, अहितानां शत्रूणां या हरिणीनेत्रा स्त्रियस्तासां पत्रावल्याः पत्रवल्लीनामकरचनानां सुष्ठु खनित्रिकाम् खननकर्त्रीम् नाशयित्रीम् असहे असह्ये कलहे अमुह्यन्तः सोत्साहा ये दुहृदः शत्रवस्तेषां यशोरूपपटस्य कर्त्तरीं कर्त्तनसाधनम् शस्त्रिकां कृपाणीम् स्वयं करे दधार. छन्दोपि हरिणी ।

99 ओंकार इति । विजयस्य शत्रुकर्म्मकपराभवस्य य आगमस्तस्योंकारः प्रारंभः समररूपे अकूपारे समुद्रे खेलनां भटरूपग्राहाणां निविरीसं निर्विडं, निर्विडंच् विरीसचाविति विरीसच्, चंडं वडिशं लोहयंत्रविशेषः मत्स्यवेधसाधनत्वेपि ग्राहाणामपि तादृशेन महता वेधः सम्भावितः विद्विषाम्मनसो वृश्चिकः; दुखदात्री उत्कटा उद्धरणसमर्था सापत्नाः शत्रवः खीचीकुलजा एवांबुधिस्समुद्रस्तत्र मग्ना तदायत्तीभूता या मउनाम भूखंडरूपा मही तस्याः सद्दंष्ट्रिण

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रेष्ठवराहस्य दंष्ट्रा एतेन मउविषयः पूर्वं बुन्दिनृपाणामेवाभूदित्युक्तं नृपशत्रु-शल्यस्य करगा सा शस्त्री आजिषु युद्धेषु अराजत्तराम् अतिशयितं शुशुभे ।

100 शस्त्रीति । शस्त्र्या कृपाण्या क्रूरः करो यस्य स बुंदीपतिः शत्रुशल्यः शस्त्र्या सहितः सशस्त्रिक तादृशो भुजो यस्य तेन अनेन अक्षयराजेन सह क्रीडन् युद्धक्रीडया व्यवहरन् सन् निपतत आपतत उत्कटान् तस्य अक्षयराजस्य भटान् मर्म्मसु तथा प्रकारेण अच्छेत्सीत् चिच्छेद यथा दृप्यंतः वर्द्धमाना दारुणा ये तेषां भटानां व्रणाः दृप्य दारुणेति तच्छब्दबोध्यानां भटानामेव वा विशेषणे तेषामपहरणाय उद्यत्या उद्भवन्त्या घृणयाऽदयया चारुणा श्रेष्ठेन अतएव तद्व्रणापहरणौषधीयुक्तं द्रोणाद्रिं हरता आनयता हनुमतापि व्रणगणो मोघो निर्व्यथो न जज्ञे न जातः दुश्चिकित्स इत्यर्थः ।

101 एतदितिं । एतेन शत्रुशल्येन कृणाश्छिन्ना ये अहितानां शत्रूणां बले सैन्ये कलहाविष्टाः सन्तः कांडपृष्टाः शस्त्राजीवाः तेषां द्राधिष्ठान्यतिविशालानि उरांसि वक्षांसि तत्संत्रंध्यस्त्रै रक्तैर्मिश्रेणामिषेण मांसेन भृशं विलसन्त्यः जग्धयो भोजनानि यासां ताः यातूनां रक्षसां मुग्धाः स्त्रियो राक्षस्यः कंठे उल्लुठन्ताः परिहिता या नराणां मनुष्याणां अंत्रेषु गुथिताः सुष्ठु नलकाना-मस्थिविशेषाणां स्रजो मालास्तासां क्वणेन ध्वनिना क्वणो वीणायां चेत्यप् उदग्रमुन्नतं यथास्यात्तथाऽग्रे धावन्त्यस्सत्यः स्ववेश्मस्वपि करचरणै स्वाः सपत्नी निजघ्नुः प्रहृतवत्यः रुधिरेणोन्मत्ततातिशयादिति प्रत्येमि ।

102 तत्रेति । तत्र युद्धे त्रिभुवनस्य विलयं नाशमाशंसतीच्छति तच्छीलया शस्त्र्या अरीणां शत्रूणां त्रासकर्त्रा नृभर्त्रा शत्रुशल्येन चित्रीयमाणाः चित्रं कुर्वाणा शात्र-वाणां वैरिणामोघाः समूहास्तथा उच्चैः सपदि चकृत्तिरे छिन्नाः यथा उग्राणि महांति ग्रैवेयकाणि कंठभूषणानि येषां अतिविकटं नटन्त्यौ नृत्यन्त्यौ भ्रुवौ येषां दष्टानि ओष्ठा बिंबानीव येषां तानि चंडानि मुंडानि छिन्नशिरांस्यपि अहहाश्चर्यें……:…………………जहि जहि मारय मारय मेति व्याहरन्ति स्मेति शेषः ।

103 रोषादिति । स्वस्य विमतानां शत्रूणां पृतनां सेनां निश्शेषां शेषरहितां संचि-कीर्षुः सम्यक्कर्त्तुमिच्छुः रोषात् विलसन्ती असिसुता कृपाणी यत्र तेन दोष्णा

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भुजेन परेषां शत्रूणां शीर्षाणि पिषन् च्छिन्दन् एष शत्रुशल्यः गोपालस्य खीचीराजस्य यश्छत्राधारदंडस्तद्वत् उत्कटकठिनौ यौ भुजस्तम्भौ ताभ्यां भीमस्य भीषणस्य रोषणस्य कोपवतस्तस्य विद्विषोऽक्षयराजस्य वक्षसश्छलेन क्षिप्रं शीघ्रं शरैः खीचीश्वरस्य द्वारे राजत् शोभमानं कपाटमेवाच्छिनत् तन्नाशेन शक्तिनाशात् नगरीग्रहणस्य सुकरत्वात् ।

104 कीनाशीयेति। आशु कीनाशीयं यमसंबंधि निशांतं गृहं विशतो म्रियमाणस्येत्यर्थः एतस्याक्षयराजस्य तद् उत्तरार्द्धोक्तं भीषणं चेष्टितं कर्त्तृ लोकस्य प्रेक्षकजनस्य चेतसि अद्भूतहेतवे आश्चर्याय समभवत् तत् किं तदाह यत् उत्कर्षयुक्तो य आहवः संग्रामस्तत्र हर्षेण यस्संभ्रम आवेगस्तस्य भरेणातिशयेन अनृच्छन्ती न प्राप्नुवन्ती प्रमूर्च्छा यस्य सः शस्त्र्या कृपाण्या दारुणः पाणिर्यस्य सोस्याक्षयराजस्य कायः अभ्यरिगणं शत्रुगणसम्मुखं उच्चकैर्दधाव अद्रवदिति म्रियमाणस्येयं चेष्टाश्चर्याऽभूदित्यर्थः ।

105 क्षीणप्राण इति। दारुणे रणे तस्मिश्चमू नेतर्यक्षयराजे स्वर्याते हते सति क्षीणाः प्राणा यस्य तादृश इव विगलित उत्साहः शौर्यं यस्यातो मुहुर्मूर्छित स मउपतिर्गोपालः शोकस्यावेगेन गलत्पतद्यद्विलोचनजलमश्रुतस्य व्याजाग्मिषात् नश्यन्त्या स्वराज्यश्रियः निवापसलिल तर्प्पणजलं विदधे, पितृदानं निवापः स्यात् इत्यमरः, अथ शौर्यंहीनत्वात्सेनापतिनाशाच्च जीवन्नेव मृतः सन् अदुद्रुवत् ।

106 तमिति। चित्रस्तोत्राणां नानास्तुतीनां वदावदैः कथकैर्मगधैस्तावकैर्वंदितः स्तुतः चरित्रतिपतिवदीनां द्वित्वमच्याच्काभ्यासस्येति द्वित्वाकौ, सम्प्राप्तोऽरीणां जयो यैस्तेषामिभानां गजानां बृंहितेन गर्जितेन तद्वद्वा लसन् बंहिष्ठो बहुलो ढक्काया यशःपटहस्य ध्वनिर्यस्य मउपतेर्गोपालस्य भ्रातृव्यं भ्रातुष्पुत्रम् अव्याहतं पूर्वं केनाप्यपराभूतं मउपतेस्सहकारिणं सहायं तं अक्षयराजं हत्वा विपक्षस्य शत्रोर्गोपालस्य धरणीं भूमिं पूर्वं स्वीयामपि संप्रति तदाक्रांतत्त्वात्तस्य भूमिम् विपक्षाक्रांतां भूमिमिति शाकपार्थिवादित्वाद्वा तस्य मउपते राज्यस्य देवीमधिष्ठात्रीमिव स्वाधीनामकरोत् ।

107 योऽन्तर्वाणीति ।।107।। श्रीरामसिंह नृपतेर्बुन्दीभर्त्तुर्निर्देशेन गंगासहाय-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शिशुना विंशे सर्गे समाप्तिता टीका इति श्रीचाहुवानकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्ट मंगरासहायमिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां विंशः सर्गः ॥२०॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ एकविंश: सर्ग: ॥

1 खींचीति । अथ युद्धे न टेभ्योवशेषान् खीचीबंश्यान् खींचीकुलजान् निखनन्निर्मूलयन् शेषस्य अशेषाणि यानि उल्वणा महान्त: फणा येषु तानि शिरांसि तेषु स्थास्नु: स्थितिशीला या भूमी तस्या धुरीण: भारधारक: स शत्रुशल्य: त्रसिन पूर्वमहं गोपालाधीना भूवमधुनाऽयं किं करिष्यतीति न जाने इत्याशंकाजन्येन स्त्रीस्वभावजेन च उत्कंपां कम्पनशीलां नवोढामिव तां मउभुवं तद्देशं लक्षणया तत्प्रजां चित्रैश्चरित्रैरौदार्याद्यैस्सपदि उच्चै: वशयन्नाश्वस्तां कुर्वंस्तत्र मउनगरे आसांचक्रे निवास चकार, दययासश्चेत्याम् ।

2 पादेति । वीराणां व्रजस्य जयरुच तत्कर्म्मकजयलक्ष्म्या कर्त्र्या पाददेशे आनम्रा. प्रणतो येऽरयस्तेषां मुकुटेषु नटतां शोभमानानां रत्नानां या भास: कान्तयस्तासां विलासैर्भङ्गिविशेषै: करणैश्चारु यथास्यात्तथा नीराज्यमान: आरार्तिकविधिना पूज्यमान: स्वस्य भुजयोर्म्महसा तेजसा उत्खाता मूल.दुत्पाटिता अरयो येन स प्रभु: शत्रुशल्य: तां मऊं नामदेशविशेषं नन्दयित्वा आश्वासनपूर्वकं रंजयित्वा अन्त: पुरेण अवरोधवधूजनेन राजितो युक्तस्सन् वंद्यां स्तुत्यां बुन्दीमुपययौ ।

3 खीचीति । बैरिक्षितिभृतां शत्रुनृपाणा असहोऽसह्य: स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषस्तद्वत्स्फायमानै: वर्द्धमानै: आनकानां वाद्यविशेषाणां नादै खींचोकुलस्य यत् नीचोकरणमभिभवस्तज्जन्यं सुयश: ख्यापयन् हृष्ट: प्रसन्न: तां प्रसिद्धां चिरमुपचितो बहुलीभूत आनंदो यत्र तां वृन्दावतीं विष्ट: प्रविष्ट इत्यर्थ: शत्रुशल्य: चारुभिर्लीलाविलासै:, प्रियभूषणाद्यनुकृतिर्लीला प्रियदर्शने आसनस्थानादि विशेषा विलासाश्चेति तैरुपलक्षणतया विच्छितिविभ्रमाद्यैरपि लीलानां हावानां विलासै: शोभाभिश्चेष्टाभिर्वापि परमत्यर्थं अनुपमा: रामा: स्त्रिय: भेजे सिषेवे ।

4 ताभिरिति । निश्शेषिता नाशिता अरयो येन निजानां स्वीयानां सुष्ठु प्रजानां तापत्रितयस्य अध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकरूपस्य दलनो नाशन: एष

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शत्रुशल्यः तारेशस्य चंद्रस्य श्रीः शोभा तस्याः प्रसभे रभसेनातिवेगेन ध्वंसनशीला वक्त्रस्य मुखस्य प्रभा यासान्ताभिः स्त्रीभिः सार्द्धं रहस्येकान्ते विहरन् सन् तस्याः पूर्ववर्णितविवाहोत्सवाया दलपस्य दुहितुः श्यामादेव्या राज्ञ्याः सकाशाद्भावसिंहं नाम तनूजं पुत्रम् प्रापत् ।

5 स्वेति । स्वस्य प्राक् प्रागजन्मजं पुण्यमेव क्षितिरुहो वृक्षस्तस्य फलम् राज्यलक्ष्मीरूपा या पुरंध्री स्त्री तस्याः या सौभाग्यश्रीर्विद्यमानपतिकता तस्याः स्थिरयितृ स्थिरीकारकम् गले प्रोल्लसत् पट्टसूत्रं सुभगाभिरवश्यं निरंतरधार्यम्, कंठभूषणविशेषः, सदासौभाग्यफलकं देवादियन्त्रयुक्तसूत्रं वा, तनूजं पुत्रं भावसिंहं ऐन्द्री इन्द्राधिष्ठातृकाहरित् पूर्वदिक् पूर्णं विधुं चंद्रमिव सुवाना उत्पादयन्ती सा राज्ञी श्यामा राज्ञः शत्रुशल्यस्य प्रमदजलधिमानंदसमुद्रं तुन्दितं वर्द्धमानं व्याततान विस्तारयामास, चन्द्रोत्पत्तौ समुद्रवृद्धिः प्रसिद्धैव ।

6 बाले इति । अथ तस्मिन् बाले भावसिंहे समुदिते जाते सति स्वस्य हृदि मनसि मुदितो हृष्टोऽपि गुरुभ्य श्रीरत्नादिभ्यः अपत्रपिष्णुर्लज्जाशीलश्चिरेण आनतनीचीकृतमास्यं येन तथा श्रीरत्नेन पितामहेन स्वस्य शपथानां शतैः प्रेरितः गोपीनाथिः शत्रुशल्यः वित्तं याचकत्रा कुर्वन् सन्, देयेत्रा चेति त्रा, विधिना पुत्रे जाते जातकर्म्मेत्यादिना वाक्येन समुदितं कर्त्तव्यत्वेन बोधितमस्य पुत्रस्य जातकर्म्मं चक्रे ।

7 एतस्येति । अहो परमकृतिनोऽतिकुशलस्य एतस्य शत्रुशल्यस्य अपत्रपया लज्जया संवृत आच्छन्नोपि सद्यः प्रोद्यन् कोपि अनिर्वाच्यः तनुजेन लक्षणया तज्जन्मना जनितः, जनिशब्दात्तसिल् वा हर्षस्य प्रकर्षः अन्तर्हासेन मनोविकासरूपेण प्रचुरं विलसन्तौ यौ गंडौ ताभ्यां संफुल्ला विकसिताभा यस्य फुल्लं अक्षि यत्र तेन उच्चैः श्रीमता शोभनेन मुखेन प्रसभं हठेन अकथि प्रकटितः ।

8 पारावारेति । यद्यतो हेतोः नामरूपया नान्द्या लक्षणया मंगलेन पारावारेण समुद्रेण प्रमिता परिमिता या धरणी भूमिस्तद्वर्त्तिनो ये संतः श्रेष्ठाश्चक्रवर्तिनो राजानस्तेषां श्रेण्या पंक्त्या मान्यास्य स्वपितुः शत्रुशल्यास्य मनसो रंजनं रागजननमिति सामान्ये नपुंसकम्, अयं विद्वान् स्वैर्विचित्रैः चरित्रैः अरीणां शत्रूणां सिंह इव हिंसकः प्रादुरभवत्, तत्तातो हेतोः अयं नाम्ना भावसिंहेति

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उदभूत् प्रकटीबभूव। भावश्चासौ सिंह सिंहश्चेति भाव इत्यधिकृत्य चेष्टा योन्योर्बुधेजन्तौ इति हैयान्नाट्यादन्यत्रापि विद्वद्वाचको भावशब्दः, कलेनले-तिनास्माकं स्पृशत्याह्वतु जिह्वयेति नैषधायदर्शनान्निर्विभक्तिकमगीतिशब्दात् प्राक् नाम निर्दिश्यते ।

9 गौपीनाथैरिति । गौपीनाथैः प्रवरपृथुकस्य शत्रुशल्यश्रेष्ठपुत्रस्य भावसिंहस्य उच्चकैः श्रेष्ठे ग्रानने इन्दाविव मन्दम्मन्दमुदञ्चन्ती उन्मिषन्ती या स्मित-रुचिर्मन्दहास्यकान्तिः लसन्ती कौमुदीव तया मोदनीया रमणीया प्रतुलिता सदृशीकृताः कलाः चंद्रषोडशांशो पयसा दुग्धेन दुग्धवद्वा मुग्धा मनोहरा रदाली दंतपंक्ति प्रादुर्जज्ञे प्रकटीबभूव ।

10 मातापित्रोरिति । एकीभूतोऽतिदृढः क्रमेण वर्द्धमानः मातापित्रोः श्यामाशत्रु-शल्ययोश्चिरमुपचितः स्नेहरूपः स्नेहस्य वा सन् ग्रंथिः, किल सम्भावने स्नेह-ग्रंथिरिवेत्यर्थः, स पृथुको बालकः रंगेण रागेण प्रचुरं बहुलं यथास्यात्तथा ग्रजिरे ग्रंगने रिंगन् जानुभ्यां चलन्, रिंगणं स्खलनं समे इत्यमरः, स्फाटिकान् स्फटिकनिर्मितपदार्थान् नव्यो नवो राकाराड् चद्रस्तस्य भित्तं खंडम् तस्य या श्रीः शोभा तस्या मुखरैः कथकैः तत्सदृशै रक्तैरित्यर्थः नखरैर्नखैः पद्मरा-गान् रक्तनखकान्तिसंक्रमणान्माणिक्यानि निर्ममे ।

11 ग्रालंब्येति । चारुलीलो मनोहरक्रीडोऽयं बालो भावसिंहः तरणिकुलजैः सूर्यवंशजैः क्षुण्णामभ्यस्तां पद्यां लक्षणया रीतिमिव धात्र्या उपमातुः वरां श्रेष्ठां करशिफां हस्तमूलं जटाकारत्वादंगुलिं वा ग्रालंब्य चचाल किं च स बालः स्मेराननं स्मितयुक्तमुखं यथास्यात्तथा तुष्यता प्रसीदता ग्रम्बाजनेन मातृ-वर्गेण ग्रनुकृतां ग्रनुकरणतया बालवत् कथितां किंचित्प्रकटाः रदना दन्ता यस्यां सा चासावव्यक्तवर्णा ग्रस्फुटाक्षरां च तां वाणीं ग्रवोचत् कथयतिस्म ।

12 सर्वेति । सर्वे ये उर्वीभृतो राजान पर्वताश्च तेषां गुरुतरैर्महद्भिः शिरोभि-र्मस्तकैः शिखरैश्च धार्या या वर्या श्रेष्ठा त्विट् दीप्तिः तया प्रत्यहं पुष्यन् युज्यमानः समुदित उदयं प्राप्तः पूषा रविरिव शात्रुशल्यिः शत्रुशल्यपुत्रः केवलं राजहंसे राजश्रेष्ठे हंसविशेषे च, राजहंसस्तु कादंबे कलहंसे नृपोत्तमे इति हैमः, तस्मिन् स्वपितरि शत्रुशल्ये एव मुदमानन्दन्नाधात् न ग्रकरोत्

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

किन्तु यावत्साकल्येन सद्यः जनताया जनसमूहस्य वक्त्ररूपे पद्मेऽपि तोषमानदं न्यधित अस्थापयत्, सूर्यो हि पद्ममेतत्काव्यानुसारेण हंसं च मोदयति ।

13 युद्धेति । बाल एव सहजमहसा स्वाभाविकतेजसा आरात् दूरादेव युद्धक्रीडायां प्रसभमतिशयितं सुभगं भावुकः शोभनो भवनशीलः, उदारो महान्सारो बलं येषां तान् वीरान् अभिभूष्णुः विजेता स राज्ञः शत्रुशल्यस्य पुत्रो भावसिंहः गुरुणा पुरोहितेन क्षात्रधर्म्मैः क्षत्रियोक्तसंस्कारैः संस्कृतः सन् यंत्रेण शाणेन आकृष्टः अपनीतमलः मणिरिव उच्चैर्भूयसाऽनिमहता तेजसा बभौ किल वाक्यालंकारे ।

14 क्षात्रो धर्म्म इति । वर्णिनां ब्रह्मचारिणां व्रतं मधुमांसांजनादित्यागरूपं तीर्त्वा अथ वृत्तं संपन्नं गोदान केशांताख्यं कर्म्म क्षत्रस्य द्वाविंशे वर्षे कार्यं यस्य सः स्वयं जगद्रक्षितुमवतीर्णः क्षात्रो धर्म्म इव च सः भावसिंहः सुष्ठु गोत्रं यस्य स्तां सकलानां वनितानां स्त्रीणां चारुतायाः सौन्दर्यस्य यो गर्वस्तस्य हन्त्रीं राणावंशे भवो यः क्षितिपतिः भूपः जगत्सिंहस्तन्नामा तस्य पुत्रीं पाणौ चक्रे उदूढवान् ।

15 पुत्रेणेति । इति प्रकारेण पुत्रेण भावसिंहेनोच्चैः प्रकाममत्यर्थं पूर्णकामः सिद्धमनोरथः साम्राज्यं सम्राजो येनेष्टं राजसूयेन मंडलस्येश्वरस्य य शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः सम्राडित्युक्तस्य भावस्तस्य श्रीः सम्पत्तिस्तस्याः स्थिरयितृणि स्थिरीकारकाणि यानि कर्म्माणि प्रजारंजनबलरक्षणादीनि तैर्हेतुभिः शर्म्मणा सुखेन युक्तः सुरपतेरिन्द्रस्यापि स्वप्नकालेप्यनाप्यैरप्राप्यैस्तैस्तैर्भोगैः सुखसाधनैः सेवितः बुन्द्यां इन्दन् ऐश्वर्यम्प्राप्नुवन् सन् भावसिंहस्य पिता शत्रुशल्यः मुदमानन्दमुदवहत् प्रापत् ।

16 अन्योन्येति । असौ शत्रुशल्यः कदाचित्समये आरोहलोकैर्हस्त्यारोहकैः अन्योन्यस्य परस्परस्य य इभो गजस्तस्याभिभवे सुभगः शोभन उत्साहो यत्र कर्म्मणि तथा वारेर्गजबन्धन्या मध्यात् वारिर्वागजबंधन्योः स्त्रीबलीवेम्बुनिवातके इति मेदिनी नुन्नान् प्रेरितान् वृतमदतयोद्भूतमदत्वेन विन्नान् विचारितान्, विन्न विचारिते लब्धे इति हैमः, रदाभ्यान्निष्ठात इत्यादिना नः, उद्ध्वींकृतं पुच्छाग्रं येन तादृशं गजं प्रति त्रुटिताश्छिन्ना निगडाः पादबंधनलोहरज्जवो यत्र कर्म्मणि तथा धावतः कुम्भाकुम्भि कुम्भाभ्यां प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमिति कुम्भाकुम्भि युद्ध्यमानान् सिंधुरान् गजान् प्रैक्षत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

17 सीमातीतेति । जातुचित् कदाचित् संसदि सभायां सीमां अवधिमतीतं यथास्यात्तथा प्रमुदितं हृद्यस्य तस्य क्षोणिभर्तुः शत्रुशल्यस्य कौतुकेन कुतूहलेन योद्धुं सिद्धाः कृताभ्यासाः स्फुटः कलकलो जनकोलाहलो यत्र कर्म्मणि तथाऽन्योन्यं परस्परं शृंगाशृंगि शृंगप्रहारयुक्तं हंतुमुत्का उत्कण्ठिताः समदा मदोन्मत्ताः हरिणा स्वमात्मीयं क्रोधस्यावेशं कथयितुमिव उत्पुच्छयन्ते स्म पुच्छान्युदस्यन्ति स्मेत्यर्थः, पुच्छभांडचीवराणिङ् ङित्त्वात्मनेपदम् ।

18 जातु इति । क्षोणिपालः शत्रुशल्यः जातु कस्मिंश्चित्समये स्फीतो गुणैः प्रवृद्धो योऽमरगुरुर्बृहस्पतिस्तमपि जयन्तीति तेषां शास्त्रस्य पारंगमानाम् वेद्यांशशेषरहितानाम् खच् प्रकरणे गमेः सप्युपसंख्यानात्खच्, विवदिषतां शास्त्रार्थविवरणेच्छूनाम्, इट् सनि वेति सनइट् पंडितानां अन्योन्यस्य परस्परस्य योऽभिभवः पराभवः तस्य रभसेन वेगेन आविर्भवन्ती तर्कयुक्ता चर्चा विचारणा यत्र तत् ते ते प्रसिद्धा ये वेदा वेदनादि तेषामवतरणमभिप्रायाविष्कारः स्वपक्षस्थापनाय प्रामाण्येनोपन्यासो वा तेन लसन्ती संमतिर्यत्र तद् अजर्यम् न जीर्यतीत्यजर्यम् तत्संगतं भेजे सिषेवे अजर्यं संगतमिति निपातः ।

19 चंचदिति । चंचन्तो ये ते ते रसाः शृंगारादयस्तेषु समुचितो यः संदर्भः शृंगारे माधुर्यगुणव्यंजकः मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गारणौ रलघु इत्यादिः वीरे ओजो व्यंजकः परुषाक्षरप्राय इत्यादिः तेन भव्यं श्रेष्ठं उदंचत् सहृदयानां स्फुटीभवद्व्यङ्ग्यम् व्यंजनाख्यव्यापारबोध्यं रसादिरूपं यत्र प्रगुणिता प्रकृष्टा गुणा माधुर्यौजःप्रसादाख्या रसधर्म्मा अलंकृतयश्शब्दार्थचमत्कारप्रयोजका रसोपकारिका उपमादयो यत्र स्फीतानि वस्तूनि अलंकारातिरिक्तवस्तुमात्रव्यंग्यरूपाणि यत्र अचिरात्सांद्रं विगलितवेद्यान्तरत्वाद्धनमानंदरसास्वाद जन्यम् वितरत् ददत् कवीनां नव्यं काव्यं स्वस्य चतुरया धियालंकरिष्णुः लक्षणया बिचारयिता विद्वान् एष शत्रुशल्यः जहर्ष, अलंकृञ् निराकृञ् इत्यादिना इष्णुच्. विशेषकाव्यादिविचारः काव्यग्रंथेष्वनुसंधेयः ।

20 एतेनेति । क्षोणीपालैराजभिः अर्चितेन पूजितेन एतेन शत्रुशल्येन अमितैः अपरिमाणैः अर्थैः सुचिरमर्चिताः संस्कृते देवभाषायां प्राकृते, महाराष्ट्रोद्भवां भाषां त्रिशुद्धं प्राकृतं विदुरित्युक्ते, नाटकादिप्रसिद्धे भाषाविशेषे च चतुर-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मतयः कुशलबुद्धयः कवयः सान्द्रस्यानंदस्य प्रदा दात्री नवा नवीना सुधाऽमृतम् तस्या माधुरीणां माधुर्याणां धुरीणैर्धूर्वहैः शब्दैर्वाचकलाक्षणिकव्यंजकैरर्थैर्वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यैश्चापि एतं शत्रुशल्यं पूजयामासुः अनादेशे एनादेशः ।

21 नानेति । नाना विधानां तानानां विस्तार्यन्ते प्रयोगा यैर्मूर्च्छनाशेषसंश्रयाः तानास्तेऽयूनपञ्चाशत्सप्तस्वरसमुद्भवाः इत्युपलक्षणानाम् अवल्यासु ललिता ये ग्रामाः षड्जमध्यमगांधाराख्याः तथा स्वराणां संदेहो ग्राम इत्यभिधीयत इत्युक्तलक्षणाः तेषु या मूर्च्छा मूर्च्छनाः क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् सा मूर्छेत्युच्यते, ग्राम ग्रामस्थाः सप्तसप्त चेत्युक्तास्तासां विभेदेषु एकविंशति संख्येषु उदञ्चन्त उद्भूता ये ते ते स्वरा निषादादयस्तैः सुमधुरं यथास्यात्तथा चारुरागान् भैरवादीन् गायतम् क्षोणींद्रो राजा चासावेष शत्रुशल्यश्च तस्य भजनविधये भूमिमभ्यागतानामागतानां गंधर्वाणामिव गायकानां समाजः तं शत्रुशल्यम् अभजत् ।

22 काले इति । वैरिणां क्षोण्या भूमेर्जयेन मुदितः प्रसन्नः धरणिमघवान् भूमीन्द्रः, मघवाबहुलमिति तृ आदेशः, एष शत्रुशल्यः कस्मिन्नपि काले कृतः पणो ग्लहः स्वपराजये जयिने देयो यत्र कर्म्मणि तथा दीव्यद्भिः शोभमानैरक्षैः पाशकैः स्वेन अभिप्रेता अभीष्टा ये अंकाः दायापरपर्यायाः पाशकचिह्नसंख्या तेषां पतनेन पाशकेषु आविर्भविन या मुद् आनंदस्तया सारिकाणां फलकसंचार्यकाष्ठवस्तूनामोघे समूहे निघ्नतां मारयतां सखीनां मित्राणां वृन्देन सह खेलन् सन् जयेन अमन्दं यथास्यात्तथा ऐन्दत् अशोभत ।

23 सिंहेति । श्येनैराखेटसाधनपक्षिभिः क्रव्यमपक्वमांसमशनं येषां ते च ते शुनकाः श्वानस्तैर्वागुरा मृगबंधन्यस्ताभिश्च युक्तः, वागुरामृगबंधनीत्यमरः, स्वच्छेन सुन्दरेणाच्छोदने मृगयायां समुचितेन योग्येन वेषेण चर्म्ममयवस्त्रादिना राजन् शोभमानः, आच्छोदनं मृगव्यस्यादाखेटो मृगया स्त्रियामित्यमरः, स एष राजा शत्रुशल्यः सखिभिर्मित्रैः सह आखेटखेलम्मृगयाक्रीडां कर्त्तुम् उच्चैर्महान्तः सिंहः प्रसिद्धः द्वीपिनो व्याघ्राः द्विपा गजाः किरयो वराहाः रुरवो मृगभेदास्तैः क्रान्तमाक्रान्तं कान्तारं बनमव्राजीत् अयायीत् शार्दूल-द्वीपिनौ व्याघ्रे इति, वराहः शूकरो घृष्टिः कोलः पोत्रीकिरिः किठिरिति, कृष्णसार-रुरुन्यंकु इति चामरः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

24 क्वापीति । क्वापि काले अशेषैः सखिभिः सह खातेषु खननेन निष्पादितेषु भूमीगृहेषु गुप्तस्थानेषु तिष्ठन् वीरः व्याघ्रो वीरश्रेष्ठः, स्युरुत्तरपदे व्याघ्रेत्यधिकृत्य पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा इत्यमरः, स एष शत्रुशल्यः व्यापिन्यः प्रतानैस्सर्वत्र व्याप्ता या व्रतत्यो लतास्ताभिर्विषमं दुर्गमं यदरण्यं वनं तस्य पर्यन्ते सीमनि वर्तते तच्छीले सरसि अंबु जलं पातुं प्रयातान् आगतान् व्याघ्रान् आह्वानपूर्वं अरेति तिष्ठ त्वां हन्मि इत्याह्वानशब्दपूर्वकम् मंक्षु शीघ्रं प्रसभं हठेन अभिनत् बाणैर्भिनत्ति स्म ।

25 सर्प्पदिति । अमुना शत्रुशल्येन निकटं स्वसमीपमटतश्चलतोऽमेयान् बहून्सारमेयान् शुनः इति सर्पन् प्रसरन् यो दर्प्पस्तेन प्रमुखरा घुर्घुरशब्दवती घुरीघोणेति कः कः कुत्र न, घुर्घुरायित घुरीतिश्लोकव्याख्याने भैमीकाव्यप्रकाशटीका, तया घोरं यथास्यात्तथाऽभ्युद्धुरन्तः कोपशब्देन भीषयन्तः घृष्टिश्रेष्ठा वराहाः कणपर्यन्तमाकृष्ट्या आकर्षेण प्ररटंती शब्दायमाना याऽटनिः कोटिस्तया क्रूरं कोदंडं धनुस्तस्मान्मुक्तैः काकोलेन विषेणाक्तैर्भावितैः, काको विषं च काकोलाविति त्रिकांडशेषः, इषुभिर्बाणैः उच्चैः सपत्राक्रियन्त बाणप्रवेशनेन पक्षसहिताः कृताः सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने इति डाच् ।

26 धावदिति । नृपेण शत्रुशल्येन तेषां कृष्णसाराणां स्तुतिः अहो एतेषां वेगातिशयः इत्यात्मिका तस्याः स्पर्द्धयेव धावद्भिर्जंघाकरिकैर्वेगवत्तरैः शुनकैः श्वभिः रुद्धा, जंघालोऽतिजवस्तुल्यौ जंघाकरिकजांधिकावित्यमरः दिशि विदिशि च भयेन प्रेक्षमाणाः प्रेम्णा स्त्रैणं स्त्रीसमूहः स्वस्य पृथुकानां बालानां गणश्चाग्रेसरौ अग्रगामिनौ येषां ते कृष्णसारा मृगभेदाः घोरैर्बाणैर्बत वितर्के उच्चैर्दक्षिणभागे ईर्म्मं व्रणं येषां तादृशाः विदधिरे कृताः, दक्षिणेर्म्मालुब्ध योगे इत्यनिर्जंतः, राजनि लुब्धत्वारोपः ।

27 श्यैनम्पातेति । श्येनपातोऽस्यामिति श्यैनंपाता मृगया, घञः सास्यां क्रियेति ञः, श्येनतिलस्य पाते इति मुम्, तद्रूपं यद् व्यसनन्तत्र रसिकेनाऽऽसक्तेन अमुना शत्रुशल्येन हस्तात् संप्रमुक्तः पक्षिग्रहणाय त्यक्तः श्येनः क्रव्याद्पक्षि विशेषः स्वे स्वीये पक्षती पक्षमूले, पक्षातिः, द्राघयन् दीर्घीकुर्वन्, तत्करोतीति णिच् इष्ठवद्भावा दीर्घस्य द्राघः, रभसाद्वेगान्नभस्याकाशे उच्चैः उड्डीय सपदि चकितान् भीतान् अतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कान्दिशीकान् भयेन पलायितान् विहंगान् पक्षिणः हंत खेदे प्रेष्यवत् दासानिव जीवग्राहं गृह्णन् जीवतो गृह्णन् इत्यर्थः प्रभुं शत्रुशल्यमुपययौ, समूलाकृतजीवेष्विति णमुल् ।

28 मुक्ता इति । नरपतेः शत्रुशल्यस्य सखिभिः पित्संतां पक्षिणां आदित्सया ग्रहणेच्छया हस्तात् उच्चैर्दिशं प्रतिमुक्ताः, पित्सन्तो नभसङ्गमाः इत्यमरः, ततो न आसादितः न प्राप्तः खगः पक्षी यत्र कर्म्मणि तथा अभ्रे आकाशे अदभ्रं बहुलं भ्रमन्तः ततश्च नैष्फल्यं पक्षिग्रहणाभावस्तस्य या ह्रीर्लज्जा तद्युक्ता इव सर्वस्य मुखस्य दर्शनास्सम्मुखीनास्तेन भवन्तीत्य सम्मुखीनाः, यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः इति खः, श्येनाः ऊदास्यैः उर्ध्वमुखैः तैर्नरपति-सखैः अचिरात् पिशितं मासं दर्शं दर्शं अभीक्ष्णं दर्शयित्वा आह्वयांचक्रिरे आहूताः श्येनक्रीडकानां तथैव व्यवहारात्, स्वभावोक्तिः ।

29 वन्येति । वन्या वनसंहतिः तस्यां अगण्या ये अवनिरुहा वृक्षास्तेषां लसन्ति यानि पुष्पाणि तासाम्मालैव विभूषा येषाम् शीर्षेषु शिरस्सु उत्तंसीकृताः भूषणत्वेन धृताः खगानां पक्षिणां लसन्तश्चित्राः पक्षा यैस्ते सुष्ठु वेषाः पक्षिणां ग्रहणस्य रभसात् वेगात् धावमाना राज्ञः शत्रुशल्यस्य युवानो भटाः पाणौ हस्ते विषमं भयंकरं विलसन् रोपो बाणो यत्र तं चापं धृत्वा विचेरुः, पत्रीरोपइषुर्द्वयोः इत्यमरः ।

30 क्रीडन्निति । भूर्भूमिर्वियदाकाशं तद्व्यापिनि बंधे अध ऊर्ध्वं च वितते पक्षिमृगग्रहणयोग्ये बंधने भूवियती व्याप्नोतीति तादृशे बंधे स्वाज्ञया वशी-करणे इति वा बद्ध उत्साहो येन धीमान् धर्मज्ञः स अवनीभृद्राजा शत्रुशल्यः सुहृद्भिः सह मृगयया इति क्रीडन् सन् विपिनं वनं जगाहे अवगाढवान् श्वापदान् हिंस्रपशून् कालयन्तं त्रासयंतं एनं शत्रुशल्यम् किमपि हिंसाजनित-मेनः पापं न स्पृशति स्म नाऽस्पृशत्, अथ हिंस्रपशुर्व्याडः श्वापदः शिविरित्यपि इति त्रिकाण्डशेषः, यद्यतः नृपतिभिः षष्ठांशः कुतो न हेयो न त्याज्यः तथा च व्याघ्रादयः स्वभागभूता एव हता इति समर्थनम् ।

31 क्रीडं क्रीडमिति । भव्यमूर्तिश्चारुशरीरः मृगव्ये मृगयायां व्यायामादुत्थस्यो-त्पन्नस्य श्रमजलस्य स्वेदस्य कणैराचांतो धौतश्चारुः अंगरागश्चन्दनादिलेपो

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यस्य मित्रलोकैर्युक्तः असौ क्षितिपतिः शत्रुशल्यः क्रीडंक्रीडम् अभीक्ष्णं क्रीडित्वा उद्यत उत्पद्यमानस्य खेदस्य प्रजयि यद्विजयांभो मद्यं पिबन् सन् आशु शीघ्रं शूलाकृतानि शूलेन पक्वानि उपहृतानां जंतूनां पिशितानि मांसानि अभुक्तभुंक्ते स्म उपहृतानि शस्त्रादिना सूक्ष्मीकृतानि इति वा शूलात्पाके इति डाच्, विजया शब्दो वामतंत्रेषु मद्यपरो बहुस्थले दृष्टः चतुर्मकाराः सत्येव पंचमो विजयारस इत्यादि ।

32 मन्द्रं मन्द्रमिति । अथ आकुले अंधकारखिन्ने पक्षिलोके मन्द्रं मन्द्रं गंभीरं गंभीरं सुष्ठु कुलाय स्ववर्गाय रसति कूजति भासां पत्यौ सूर्ये दुर्नये प्रजापीडनादि-कर्त्तरि राजनीव गलितविभवे नष्टतेजस्के निरैश्वर्ये च सति कामस्य क्रीडायां सुरते तरलहृदये सतृष्णमनसि यौवते युवतीसमूहे नव्यनव्यां नवीनां नवीनां भूषां भूषणं बिभ्रति सति स भूपः शत्रुशल्यः स्वां नगरीं बुंदीमयामास आगत-वान्, दयायासश्चेत्या ।

33 वंद्यामिति । निजया स्वया पृतनया सेनया वंद्यां श्रेष्ठां बुंदीं यास्यतः गमिष्यतः अस्य शत्रुशल्यस्य द्यावाभूम्योः पृथिव्याकाशयोः विवरमवकाशं मुखरयन्ति प्रतिध्वनयन्तीति तैः साधु यथास्यात्तथा शब्दायमानैः शब्दं कुर्वद्भिः आनका-नाम् वाद्यभेदानामोघैर्हेतुभिः एतस्य शत्रुशल्यस्य क्रीडासमये मृगयाकाले यः सिंहनादस्तस्य भ्रमेणाऽऽर्त्ताः अतः भीतिभाजः भयाक्रांता हरिगणाः सिंहसंघाः भूभृतां पर्वतानां या दर्यो गुहास्तासां मध्ये इति मध्ये भूभृद्दरि लिल्पिरे लीनाः, आनकशब्देषु शत्रुशल्यसिंहनादभ्रान्त्या निलीना इत्यर्थः ।

34 आरुढस्येति । प्रवरं करिणं गजमारूढस्य दारुणाभिरनीकिनीभिः सेनाभिः सह सायं समये वंद्यबुंदीम् यास्यतः प्रमुदितहृदः प्रसन्नचित्तस्य भूमीभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य अग्रे इति शेषः रिपुकुलमिव धीरं गाढं ध्वांतमन्धकारं प्रकाममत्यर्थं ध्वंसयन्त्यः भूरिभासो बहुप्रकाशाः नराणां करेषु गता दीपिकाः मशाल इति ख्याताः रेजुः प्रकाममित्यस्य रेजुरित्यत्र वान्वयः ।

35 एतस्येति । स्वैरमेव स्वेच्छयैव न तूत्सवादौ प्रयाणेऽपि एतस्य शत्रुशल्यस्याग्रे अयुतं दशसहस्रसंख्याः शस्त्राजीवाः प्रययुः दशशतमिताः सहस्रमिताः उन्मदा उद्भूतमदा दन्तिनो गजाश्च प्रययुः तेषां शस्त्राजीवानामर्द्धभागे रुचिराणि

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वपूंषि येषान्ते हैमवेत्राः स्वर्णभक्तिचित्रितवेत्राः वेत्रिणः प्रययुः तेषामप्यर्द्धे हैममयेषु स्वर्णमयेषु अमत्रेषु स्थिताः कुसुमजः पुष्पादिवासितः स्नेहो येषु ते दीपाः तद्वन्तः पुरुषा इत्यर्थः प्रययुः ।

36 इत्थं वीर इति । इत्थं किल संभावने विपिनेन वनेन कर्त्रा स्वीयया लक्ष्म्या-उ .... गुरोर्भरस्य धरौ धारकौ उद्भासुरौ प्रकाशशालिनौ उदारौ दीर्घौ बाहू यस्य स्वस्य श्रिया सम्पत्त्या देवानंचति प्राप्नोतीति देवद्रीची, विषग्दे-वयोश्च टेरिति टेरद्रयादेशः, तां अपि श्रियं जयन्नभिभवन् मागधानामोघैः प्रौढं उद्गीता अमला गुणगणा यस्य स वीरः शत्रुशल्यः वंद्यां बुंदीं विवेश ।

37 सौधानिति । सौधान्स्वसदनानि प्रविष्टः मृष्टं स्वस्वायतनगमनायाज्ञप्तं स्व-पदयोर्निपतत् प्रणमत् राजकं राजसमूहो येन सततः क्रीडायाः मृगयायास्समये विहितमंगीकृतं वेषं तूर्णं शीघ्रमुत्तार्य शुद्धान्तस्थोऽन्तः पुरे स्थितः, उत्तारण-रथानयोस्समानकर्तृकता, वर्यः श्रेष्ठः सौधाकराश्चन्द्रसंबंधिनो ये कराः किरणास्तद्वल्लसन्ती कीर्तिर्यस्य सः एषः राजके राजसमूहे इन्द्रः स्वामी शत्रुशल्यः अहो युवतिभिः स्त्रीभिः कर्त्रीभिः स्वैः कटाक्षैर्न्यमन्त्रि निमंत्रितः ईदृशो महाप्रभावोपि स्त्रीभिः कटाक्षैर्निमंत्रित इत्याश्चर्यम्भवेत् ।

38 तासामिति । रात्रौ तासां युवतीनां विलसितस्य विलासस्य यः सुखांभोनिधि-रानंदसमुद्रः तं गाहमानः अन्येद्युर्द्वितीयदिने मणीनां ये घृणय किरणास्तेषां गणैः स्मेरे प्रसृमरशोभे सिंहासने स्थितः सन् मंत्रिणां व्रातैः नानाविधकर्म-सचिवैः नम इति यो वाको वचनं, वक्तेर्भावे घञ् चजोः कुघिण्यतोरिति कुत्वम् तत्पूर्वकम् सदसि गदितो विज्ञापितोऽसौ वीरः शत्रुशल्यः तेषां तेषां लोकानामुदये अभिवृद्धौ समुचितमार्यं श्रेष्ठं कार्यं व्यधत्त अकार्षीत् ।

39 शत्रुमिति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण धर्म्यैर्धर्मादनपेतैः साधुभिर्लोकाविरुद्धै र्नयैर्नीतिभिः सापराधमपराधयुक्तं शत्रुं पुत्रं च समं समानमेव शासत्, जक्षित्यादयः षडिति अभ्यस्तसंज्ञानाभ्यस्ताच्छतुरिति नुमभावः, स्वकुले जाता ये नृपास्तैः क्षुणम् वर्त्म व्यवहारमनुगच्छन् अनुवर्त्तमानः गुर्वीम्महतीं भारवतीं चोर्वीम्पृथ्वीमधिकरं करे दधत् यौवराज्ये राजन्नपि शत्रुशल्यो नृपालो राजा श्रीमतो रत्नस्य स्वपितामहस्य प्रमदमानंदमकरोत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

40 एतस्येति । इत्थं प्रकारेण भुवनभवनं भूर्लोकं गृहमिवानायासेन रक्षतः च पुनः स्वप्रतापैः अरीणां शत्रूणां नामापि प्रसह्य हठेन हरत एतस्य क्षोणिभर्त्तुः शत्रुशल्यस्य स्फुरत् स्पन्दमानं वामं चक्षुः कर्त्तृ रत्नश्चासौ राजा तं स्वपितामहम्, राजाहः सखिभ्यष्टच्, दिवः स्वर्गस्य राजानं स्वर्गं गमिष्यंतमकथयत् वामचक्षुः स्फुरणस्यानिष्टफलकत्त्वात्, अथ द्रुतं शीघ्रं नुदत् स्फुरद् दक्षिणं चक्षुश्च राज्यप्राप्तिमाचचक्षे तस्य शुभफलकत्वादित्यस्तु ।

41 श्रीमद्रत्नेति । मंत्रिणः धीसचिवाः विजितः खुरुमो ब्रघ्ननगरयुद्धेन तस्मिन् श्रीमति रत्ने कीर्तिमात्रमवशेषो यस्य तादृशे स्वर्गते सति शेषेणानंतेनापि प्रणता भारावनताः सुफणा यत्र कर्म्मणि तथा कथंचिन्महता कष्टेन धार्यमाणं भूतधात्र्याः पृथिव्याः संबंधिनं सप्तभिरंभोधिभिस्समुद्रैः स्फुरंश्चासौ उरुर्महान् भरस्तं जयिनि सर्वोत्कृष्टेऽत्र नृपतौ शत्रुशल्ये आधातुं स्थापयितुं अस्य शत्रुशल्यस्य अभिषेकं संस्कारविशेषं चक्रिरे ।

42 लोकत्राणेति । लोकत्राणस्य विष्णोः प्रतिनिधिभूतौ भुजौ यस्य तस्मिन् शत्रुशल्ये राज्ञि बूभूषौ भूमिपाले भवितुमिच्छति सति भारो भूमिरूपः सुष्ठु लघितः लघूकृत इति हेतोः शेषः प्रीतिमापत् लघित, इति तत्करोति तदाचष्टे इति करोत्यर्थे णिजन्ताल्लघियतेः कर्मणि क्तः, सुनाथा श्रेष्ठभर्त्तृका स्यां भवेयमिति भूमिः प्रीतिमापत् अगणितैर्मखैर्यज्ञैर्मे तृप्तिः स्यादितीत्थमाखंडल इन्द्रोपि प्रीतिमापत् परममत्यर्थमुदयोऽभिवृद्धिरस्माकं स्यादिति ज्ञातीनां व्रातः प्रीतिमापत् ।

43 राज्ञ इति । अथास्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य अभिषवस्य लक्षणयाभिषेकस्य समये आनन्दभाग्भिर्हृष्टैस्ताडघानां वादकानामोघैः कर्त्तृभिः, पाणिधताडघौ- शिल्पिनीति टक्, पाणिद्वंद्वेषु येऽतिदृढा लगुडास्तैः करणैः अमन्दं यथास्यात्तथा ताडिता आनका वाद्यभेदाः भूरूपा पुरंध्री सुचरित्रा स्त्री तस्याः पातिव्रत्यं शत्रुशल्यैकाधीनजातेन उदयत् उद्भवद्यत् उरु महद्यशस्तत् उच्चैश्चारु यथास्यात्तथा चक्षाणं कथयन्तं धीरं ध्वानं शब्दं द्रुतमुदगृणन् उद्भावयन् ।

44 श्रोत्रेति । तस्य शत्रुशल्यस्य अभिषवमहे अभिषेकोत्सवे श्रोत्रियस्य भावः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रोत्रं, हायनांतेति सूत्रे श्रोत्रियस्य यलोपश्चेति वार्तिकाद्यलोपाणौ, अर्हतो-भाव आर्हन्ती, गुणवचनेति सूत्रे अर्हतो नुम् चेत्युक्तेनुंम् ष्यञौषित्वान् ङीष् हल इति यलोपः, तयोः श्रोत्रियत्वयोग्यत्वयोर्निहितं न्यस्तं हृदयं यैस्तैर्ध्यान-दृष्ट्या प्रमुष्टा दूरीकृता अनेहा कालो देशश्च ताभ्यां या व्यवहितिर्व्यवधानं तया निष्प्रतिबंधकत्वेन जगति जाता जंघाला प्रसारिणी लीला येषां तेषां ताप-सानां ओघाः चतुरो वेदानधीयते इति चतुर्वेदास्त एव चातुर्वेद्यास्तैः चतुर्वेद-स्योभयपदवृद्धिश्चेति ष्यञ् गुरूणां पदयो रतैर्भक्तैश्चारुशिष्यैरध्येतृभिरुपशिष्यैः श्रोतृभिश्च सार्द्धं प्राययुः आजग्मुः ।

45 अस्रे इति । चंचतां छत्रामावल्या पंक्तया सुललिताः अक्षौहिणीनामीशाः शीर्षेषु उदंचतामूद्ध्वं गच्छत्किरणानां मुकुटानां ये मणयस्तत्संबन्धिनीनां भानां पुंजेन नीराज्यमाना मानातीतां बहवः द्व्यावृत्ता नवाष्टादश ये द्वीपा-स्तेषां भूपाः अस्मै शत्रुशल्याय दातुं बहुविधं उपग्राह्यमुपायनमुद्गृह्य इह बुन्धामायन्नागच्छन्, उपायनमुपग्राह्यमित्यमरः ।

46 दृश्य इति । दृश्येभिनयात्मके नाटकादौ श्रव्ये श्रवणार्हे महाकाव्यचंपूव्रज्यादौ भव्ये दोषरहिते काव्ये प्रवीणाः कुशलाः नानाविधा ये श्लेषाः नानार्थसंश्रय-लक्षणास्सभङ्गा भंगादिरूपाः ध्वनयो व्यंग्यार्थप्रधानरूपोत्तमकाव्यानि गुणाः माधुर्यादयस्तेषां गणः अलंकृतय उपमाद्यास्ताभिः स्फीता सरसा वाग् येषान्ते, श्लेषस्यालंकृतित्वेपि शक्त्यतिशयप्रकाशकत्त्वात्पृथगुक्तिः, निगमैर्वेदैर्मीरस-कर्म्मबहुलैर्विषम दुःस्थानं तत्प्रसिद्धं धातुर्ब्रह्मणो वक्त्ररूपं शृंगाटकं चतुष्पथं मुक्ता प्रचरंन्तीनामिति शेषः मृदुगिरां सरससरस्वतीनां लीलार्थां निवासा इव प्रवरकवयः वंद्यां श्रेष्ठां बुन्दीम् आययुः, शृंगाटकं भवेद्वारिकंटके च चतुष्पथे इति मेदिनी, दृश्यश्रव्यादिलक्षणानि ग्रंथान्तरेभ्योनुसंधेयानि विस्तर-भयान्नेहोच्यन्ते ।

47 इत्थमिति । इत्थं प्रकारेण तस्य शत्रुशल्यस्याभिषवसमयेऽभिषेककाले आस्थानं सभा, आस्थानीक्लीबमास्थानमित्यमरः, सांद्राद् घनादानंदाद् द्रुतमुपगतैः शीघ्रमागतै ब्रह्मणां ब्राह्मणानां राज्ञामृषीणां तपस्विनां च वृन्दैर्व्याप्तमासीत्, ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिरित्यमरः, धरणिपगणस्य राजवृन्दस्य उपायनीभूतः

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तत्कृतो पदाभूता भूरयो वहवो येश्च्योतत् क्षरद्दानं येषांते द्विपाश्चर थाश्च हया अश्वाश्च तैः प्रकीर्णं व्याप्तं चत्वरमंगनं च दीप्तिं प्रापत् ।

48 तत्तत्स्थानेति । तेषु तेषु स्थानेषु केशवस्त्रादिषु स्थितया परिलसन्तो वर्णाः कृष्णादया येषु तानि चैतानि भित्तिषु स्थितानि चित्राणि तेषां व्याजान्मिषा-दासादितो मकरिकाविभ्रमरत्नोपरिलेख्य चित्रविन्यासरतेन अदभ्रा बहुला शोभा यस्याः सा बुन्दीपुरी नवं नवीनं पतिं शत्रुशल्यं विलोक्येव सौधे सौधे प्रतिस्थानं रुचिरं रचितं यदा लेपनं तस्य स्वच्छानामुज्ज्वलानां भासां दम्भात् सिस्मिये स्मितं चकार, सौधोऽ स्त्री राजसदनमित्यमरः ।

49 मुक्तेति । सौधानां राजसदनानां आस्यानां मुखानां द्वाराणामिति यावत् श्रीः शोभा चञ्चद्दीप्यमानं कविदृष्टमूलकरक्तताकं सारस्वतं सरस्वतीजलं ते मिलन्ती या जाह्नवी गंगा तद्वत्पाटलाभिः पाटलवर्णाभिः, श्वेतरक्तस्तु पाटल इत्यमरः, मुक्ताभिर्मौक्तिकैर्युक्तानि यानि आम्रजातानि दलानि पत्राणि तच्चलनेन चलन्त इव ये तोरणास्तेषामंशुच्छटाभिः किरणशोभाभिः पाकेन परिणामेन उदंचत उद्भिद्यमाना ये करकाः दाडिमाः तेषां कणिका एव उदारा दंतास्तेषामुस्त्रैः किरणैर्मिश्रं तोरणादीनां नानापुष्पफलादिभिस्संस्का-र्यत्वाद्दाडिमसंभवः, करकस्तु पुमान्पक्षिविशेषे दाडिमेपि चेति मेदिनी, प्रमदेनानंदेन जनितं हासं स्पष्टमाचष्ट ।

50 अर्घेति । तस्मिन्सदसि सभायां अर्घम्मूल्यमतीतो यः अजिरेंऽगने तदुपरीत्यर्थः परिततो विस्तारितो य उल्लोचो वितानम् तत्र चंचंती दीप्यमाना रुचिर्येषां तत्र लिखितानामित्यर्थः, अंगनं चत्वराजिरे इति, अस्त्रीवितानमुल्लोच इति चामरः, अनिमिषा निमेषरहिता दृशो येषां तेषां चित्रेषु स्थितानां प्राणिनां कैतवेन अमुष्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य योऽभिषवः अभिषेकस्तस्य यत्कुतुकेन कौतूहलेन आलोकनं तस्मै आगतानां देवतानां समाजः सुचिरं रेजे अपह्नुतिः ।

51 प्रासादागेति । बुन्द्याम् अभ्रंलिहा अत्युच्चाः, वहाभ्रेलिह इति खश्, या मणिभिर्हसन्त्यः शोभमाना यष्टयौ दण्डाः एव दीप्ता अंगयष्ट्यो यासांताः लोलन्ति कंपमानानि यानि शैलांचलानि वस्त्रान्तास्तेषां मिषेण विलोला अधरा यासां ता जयन्त्यः उत्कर्षं प्राप्नुवन्त्यो वैजयन्त्यः पताकाः, वैजयन्ती

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

त्वग्निमंथकयोरितिहैमः, अस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्याभिषवकुतुकमभिषेककौतुकं स्वश्चराणां स्वर्गचारिणां वक्तुकामा इव अभुः शुशुभिरे संबंधसामान्ये षष्ठी, उत्प्रेक्षा :

52 सौम्यैरिति । अथ पुरोधाः पुरोहितो मुख्यो येषु ते ब्राह्मणाः सौम्यैः पूर्णचंद्र-बुधशुक्रगुरुभिः उद्यद्भि सूर्यसन्निधावर्तिष्ठद्भिः ग्रहैः केन्द्रप्रणयिभिः लग्न-चतुर्थसप्तमदशमाश्रितैः ख्यातं सूचितं पुष्यत् वर्द्धमानं क्षोणी राज्यं यस्मिन् तथा क्रूरतां वहद्भिस्तैर्ग्रहै रविभौमशनिभिर्व्याख्यात सूचितं अरीणां शत्रूणां प्रकरस्य समूहस्य निधनं यत्र तादृशे जैत्रे जयकरे योगे ग्रहस्थितिविशेषे वीर शत्रुशल्यं शुचिना जलेन भृतैः पूर्णैर्हेमकुंभैः स्वर्णकलशैरसिंचन् ज्योतिर्विषयः प्रसिद्धत्वाद्विस्तरभयाच्च न प्रपंचितः ।

53 द्रागिति । द्राक् शीघ्रं महेन्द्राभिषवमनुभिः महेन्द्रदेवताकैरभिषेकमन्त्रैः सिच्यमानस्याभिषिच्यमानस्य तस्य क्षोणिभर्तुः शत्रुशल्यस्य समीपे विमले विलसन्ती ये दुकूले वस्त्रविशेषौ ताभ्यामावृतान्यंगानि यस्या शुचिकुलभवा शुद्धवंशजा प्रेष्ठा अतिप्रिया ज्येष्ठा प्रथमपरिणीता धर्म्मपत्नी श्यामा एतस्य शत्रुशल्यस्य चरित्रैर्मुदिता मूर्तियुक्ता मनुष्याकारयुक्ता मही पृथ्वीव तस्थौ स्थितवती ।

54 तत्तदिति । युक्ताः क्षिप्ताः सर्वौषध्योऽभिषेकोक्तौषध्यो मास्यादिसर्वौषधि-गणो वा यत्र तस्मात् तेभ्यस्तेभ्यस्तीर्थेभ्यो गंगादिभ्य आहृतादानीताच्छुचि-जलात् प्रादुर्भूतः अमलो निर्मलः परिमलो मनोहरगंधः तथाप्रकारेण दिक्प्र-सारी सर्वदिक्षु प्रसरणशीलोऽभूत् यथा एतस्य परिमलस्य लोभात् मिलत् संगच्छमानं लसन्ती काकली सूक्ष्ममधुरध्वनिर्यस्य तदलिकुलं भ्रमरसमूहः भूदेवानां ब्राह्मणानां मंत्रपाठं उच्चैस्समनुविदधे अनुचकार ।

55 येषामिति । येषां कुंभानां पुत्रोऽगस्त्यः त्रिलोक्यां जलनिधेः समुद्रस्य पयः पानकर्ता, पाघ्राधेट्दृशःश इति शःशित्वादादृभावः, संप्रतीतो विख्यातः चातुर्वैद्याश्चतुर्वेदाध्यायिनो ये द्विजगणास्तत्पठितैर्मंनुभिर्मन्त्रैः उपस्कृताः लक्षणया संस्कृतास्ते कुम्भा समुद्रपानकर्त्तृत्वेन प्रसिद्धस्यागस्त्यस्य पितरोपि त्रिजगतामवितू रक्षकस्यास्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य सेककालेऽभिषेकसमये राज-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्म्याः व्यक्तेरुद्भवस्य हेतूनमृतजलधीन् आविष्कारयामासुः. लक्ष्मीर्हि समुद्राद्रुत्पद्यते अत्र कलशजलाभिषेकजपुण्यसमूहा जलधित्वेनाध्यवसीयंत इति प्रतीमः ।

56 सिक्त इति । भूमिदेवैर्ब्राह्मणैः कर्त्तृभिः सौवस्तिकैः कल्याणजनकैः स्वस्तीत्याहुरिति, सौवस्तिकाः तदाहेति मा शब्दादिभ्य उपसंख्यानमिति ठक् द्वारादित्वादैजागमः, मनुगणैर्मन्त्रसमूहैः करणैः सिक्तः अतो यन्त्रेण शाणयंत्रेण आकृष्टः संस्कृतो मणिरिव भयसीमतिवल्लीं भव्यां श्रेष्ठां शोभां .दधत् स देवः शत्रुशल्यः शरदि जायते इति, शरदिजा जनेर्डः प्रावृट् शरत्काल दिवोजे इति सप्तम्या अलुक, सा चासौ चंद्रिका ज्योत्स्ना तद्वच्चारु चञ्चत् दीप्यमानम् सर्वोत्कृष्टं भव्य श्रेष्ठं लोलं पवनेन कम्प्रं सर्वत्र प्रसरच्च निजं स्वीयं यश इव दुकूलं वस्त्रमुरीचक्रे परिदधे ।

57 चीर्णेति । अथ अतिवर्याः श्रेष्ठाः अचिराच्छीघ्रं विजयमुत्कर्षमाशासाना इच्छन्त्यः कुंकुमेन अक्तैर्युक्तैः रक्षितैः खण्डितण्डुलैः भाले ललाटे अर्था च्छत्रुशल्यस्यैव तिलकं कृत्वा चीर्णा आचरिता स्वस्तिक्रिया स्वस्तिवचनादिर्येभ्य त नृपं शत्रुशल्य नीराजयन्त्यः आरातिककर्मीकुर्वन्त्य कुमार्यः कन्या लीलया कलित गृहीतं वपुश्शरीर याभिस्ता प्रीताः प्रसन्नाः दिग्वृन्दस्य दिशां समूहस्य देव्योऽधिष्ठात्र्यो देवता रेजुः शुशुभिरे, गम्योत्प्रेक्षा ।

58 नानेति । तदानीं नीराजनोत्तरकाले चतुरं मन्त्रपाठकुशलमास्यं यस्य सः ब्रह्मा च द्विजानामोघस्संघः जगत्या भूमेर्भारस्य धारे धारणेऽतिदक्षे चतुरे तस्य क्षोणीजानेः शत्रुशल्यस्य शिरसि तत्प्रसिद्धं सौवर्णं स्वर्णजनितमिव प्रकाशमानमंड ब्रह्माण्डमिव नानारत्नानां प्रसृमरया प्रसरणशीलया रुचा अमानमपरिमितमुद्भासमानं चंचद्दीप्यमानं चामीकरस्य सुष्ठुमुकुटं स्थापयामास सौवर्णाडमिवेत्युत्प्रेक्षया राज्ञः सामर्थ्यातिशयरूपवस्तुध्वनिः ।

59 संवीताङ्ग इति । अथ विमलो विलसन् शोभमानो यः कंचुको जामा इति प्रसिद्धं वस्त्रं तेन संवीतम्परिहितमङ्गं यस्य वीरः शूरः भासं दीप्तिं दधानः बुन्दीनाथः शत्रुशल्यः प्रत्यर्थिनां शत्रुणामयं प्रत्यर्थी यः नामधेयकल्पनया वृद्धाच्छेनस्तद्धित इति टिलोपः यः प्रकरः समूहः तस्य विलये नाशे निष्कृपा-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घोरां सत्कृपाणीं ह्रस्वखड्गां तथा शस्त्रिणां व्रजस्य भुजयोर्मदस्यावग्रहे प्रतिबंधे उग्रां क्रूराम्, अग्र्यां श्रेष्ठां ग्रहवृनिश्चिगमश्चेत्यप्, अग्रहो वृष्टिरोधे प्रतिबंधे गजालिके इति मेदिनी, शस्त्रीं छुरिकां चाधिकटि कट्यामित्यर्थः कल्यामास धारयामास ।

60 चंचदिति । महौजा महातेजा विजयी शत्रुजेता सोदर्यः सहोदरः राजसिंहस्तन्नामा चंचद्दीप्यमानं यत् सिंहासनं तत्रगतस्य नृपतेः शत्रुशल्यस्य उपरिदेशे विचित्रं नानारत्नखचितमातपत्रं छत्रमधात् धारयामास अतिशूरः स्निग्धः प्रीतिमान् अरय एव करिणो गजास्तेषां हरिः सिंह इव नाशकः वैमात्रेयो मातृसपत्नीजातः शुभ्रादित्वाद् ढक्,अस्य शत्रुशल्यस्य भ्रातृणां वर्गस्तु धरणीशब्देन तत्स्वामित्वं गृह्यते तस्य लक्ष्म चिह्नं सच्चामराद्यमुच्चैरधृत धृतवान् ।

61 राज्ञामिति । राज्ञां वर्गः समूहः स्वस्य मुकुटेषु नटन्तीनां स्फुरन्तीनां रत्नसंबंधिनीनां भासां दीप्तीनां विलासान् शोभाविशेषान् चारु यथास्यात्तथा एतस्य शत्रुशल्यस्यांघ्र्योश्चरणयोः पुरतोऽग्रतः उपदामुपायनं रूपयंति निरूपयतीति तच्छीलान् चक्रे उपायनानि चक्रे इत्यर्थः स्पर्शरत्नम् पारस इति प्रसिद्धं स्पर्शादेव लोहस्य स्वर्णत्वापादकम् तद्वदाचरत् एतस्य शत्रुशल्यस्य पादप्रवरं कमलमिवेति तत् स्पर्शादेव नृपतीन् प्रणतभूपतीन् वासवस्येन्द्रस्येवोदारा भूतिरैश्वर्यं यस्य तादृशान् व्यधित अकृत यद्यपि स्पर्शरत्नं लोहस्वर्णत्वकरन्न तु समृद्धिकरं तथापि इदं विलक्षणं स्पर्शरत्नमित्येतदर्थं तथोक्तिः स्पर्शमात्रेण कार्यकारित्वमिति स्पर्शरत्नसाधर्म्यम् ।

62 दिल्लीपाल इति । प्रवरः श्रेष्ठः खुर्रमो नाम दिल्लीपालः दिल्लीपतिर्यवनराजः श्रीजगत्सिंहो नाम राणा उदयपुरेश्वरः श्रीमान् जोध इत्यभिधा नाम यस्य तस्य पुरस्य जोधपुरस्येत्यर्थः पतिः राठोडकुलस्वामी, चन्द्रदुर्गस्य तन्नामकदुर्गोपलक्षितपुरविशेषस्य ईश्वरश्च, स प्रसिद्धः आमेर्याः स्वराजधान्याः इन्द्रः स्वामी कमठे कच्छपवंशे भटः शूरः श्रीजयसिंहराजो जयसिंहः नामा छन्दोनुरोधात्तथोक्तिः एते अमुष्मै राज्ञे शत्रुशल्याय स्फुरन्नुरुर्महान् मदो येषान्तान् यूथनाथान् गजविशेषान् उपादुः उपदारूपेण ददुः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

63 तत्तदिति। लोके विख्यातं वीर्यं बलं येषान्ते अतः शत्रुशल्यात् प्रसादमनुग्रहं लिप्सवः तेभ्यस्तेभ्यो द्वयेभ्य आगता नृपतयो राजानः बद्धान्यंजलिपुटानि यत्र कर्म्मणि तथा नत्वा भुवि स्वस्वदेशे यद्यद्रत्नं जात्युत्कृष्टं वस्तु विश्रुतं ख्यातमभूत् तत् रत्नगर्भाया भूमेरधीशायास्मै शत्रुशल्याय सपदि ददिरे दत्तवंतः, युक्तं हि रत्नगर्भाधीशाय रत्नदानम्, अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे इति, जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयत इति कोषः ।

64 राज्ञामिति। इति प्रकारेण राज्ञां वृन्दैः महितः पूजितः स महीशो राजा शत्रुशल्यः गृहमुपगतान् तान् ब्रह्मर्षीन् तूर्णं शीघ्रं सम्यक् आनर्च्च पूजयति स्म अगाधान् बहून् मागधान् स्तावकान् अपि नानाविधैर्ग्रामैर्द्रविणानां धनानां ततिभिः माद्यद्भिर्दन्तावलैर्गजैः रथैर्हयैश्च अतिचारु यथास्यात्तथा सच्चकार सत्कृतवान्, द्वंद्वश्च प्राणितूर्येत्यादि कविभिर्नाविश्यमंगीक्रियते पर्चस्विहास्यांग्रिकरेष्ठभिख्या इति नैषधीये ।

65 मानेति। अथ प्रमुदितं हृष्टं मनो यस्य स गरीयान् महत्तरः शत्रुशल्यः मानातीतानसंख्यान् नरपान् राज्ञो यथावद्यथायोग्यमर्च्चयित्वा सत्कृत्य पश्चात्तानुत्सृज्य विसृज्य ज्ञातिवर्गं स्वगोत्रजक्षत्रियसमूहं पूजयन् स्वैर्गुणैस्सर्पाद सर्वान् लोकान् वशयन्वशीकुर्वन् सन् सागरान्तां समुद्रावसानां धरणीं भूमिम् तत्क्षणेन अमंदं यथास्यात्तथा आक्रान्तामकृत अकरोत् ।

66 स नृपतिरिति। धरित्र्या भूमेः प्राज्ये महति राज्येऽभिषिक्तः करस्य हस्तस्य कराणां किरणानां च भासा दिशां मुखानि भासयन् प्रसभं अरीणां समाजः समूहो ध्वांतमिव अरिसमाजतुल्यं ध्वांतं च तस्य विध्वंसे धीरः स नृपतिः शत्रुशल्यः रविरिव भूयः पुनः पुनः स्वजनानां हृदयं पद्ममिव स्वजनहृदयतुल्यं पद्मं च नंदयामास मोदयामास विकासयामास च ।

67 सद्धर्म्म इति। मलिनारंभेण पापकर्म्मणा कलिना युगेन खंजीकृतः प्रचाररहितः पादरहितश्च कृतः पश्चात् तेजसां पुंजेन समूहेन विराजिनः शोभनशीलस्यास्य नृपतेः शत्रुशल्यस्य शुभैश्चारित्रं सद्वृत्तं तद्रूपैर्मंत्रैः परमत्यर्थं जत्रालो बहुप्रचारः जंघायुक्तश्च कृतः सद्धर्मः कलेः सखायं दुष्कर्म्म पापं विध्वंसयन् स्वमित्रं सत्कर्म्म यज्ञादिकं प्रथयन् ख्यापयन् क्षितौ भूमौ

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अचिराच्छीघ्रं एधाम्बभूव ववृधे, अन्योपि पूर्वं शत्रुणाभिभूतः पश्चात्केनचित्प्रवृद्धशक्तिकः स्वशत्रुसहायं नाशयति मित्रवर्गं च वर्द्धयतीति ।

योन्तर्वाणीति ।।68।। श्रीरामसिंहनृपतेर्बुन्दीभर्त्तुर्निदेशेन । गंगासहाय शिशुना रचिता टीकैकविंशेऽस्मिन् ।।

इति श्रीचौहानकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहनृपादिष्टगंगासहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यचरितप्रकाशिकाख्यायां राज्याभिषेकोत्सवो नामैकविंशः सर्गः ।।२१।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

।। द्वाविंशः सर्गः ।।

1 त्रिजगदिति । त्रिजगतस्त्रैलोक्यस्य अभयदाने दक्षं समर्थं धाम तेजो दधत् धारयन् क्षितिपेषु राजसु ललाम मुख्यः, ललामवल्ललामाश्वचिह्ने शृंग-पताकयो रम्ये प्रधाने इति नान्तेषु हैमः, विषमा दुर्जया या यमदिक् दक्षिणा तस्या ग्रहे ग्रहणे सचिन्तं चिन्तायुक्तं निजगुरुणा श्रीरत्नेन दत्तं पदं राज्यासनं यस्मै तं दिल्लीपालं खुरमं रिरक्षुः रक्षितुमिच्छुस्स शत्रुशल्यः अभ्यैत् खुरमं प्रति जगाम ।

2 भुवनेति । भुवनगणानां लोकानां शरण्यं रक्षकं धीरं महद्धाम यस्य प्रबलानां रिपूणां क्षपणे नाशने प्रचंडं शत्रुशल्येत्यन्वर्थं नाम यस्य तस्यास्य शत्रुशल्यस्य पृष्ठतः अयुतं दशसहस्राणि तुरंगरोहा अश्ववाराः पंचसंख्यानि द्विरदानां हस्तिनां शतानि च अनुययुः अनुजग्मु ।

3 खुरममिति । स प्रसिद्धः अहीश्वरः शेषः अनुपममुपमारहितं खुरमं रिरक्षितः रक्षितुमिच्छतो जवेन वेगेन भूयः व्रजतः अस्य क्षितिकमितुः शत्रुशल्यस्य द्विपा गजा रथा हया अश्वास्तद्भारतोऽतिगुर्वीं भारयुक्तामुर्वीम्महीं कथंचित् महता यत्नेन अभृत अधार्षीत् अनुपममिति रिरक्षित इति क्रियाविशेषण वा ।

4 प्रविकटेति । पथि मार्गे प्रणतानि शिरांसि येषान्तैर्जनैः प्रविकटमुत्कटं रटतां वाद्यमानानामानकानां वाद्यभेदानां ओघस्य समूहस्य घोषैर्द्विषद्भटानां शत्रु-शूराणां बधिरितानि बधिरीकृतानि कर्णपुटानि येन स नरैर्महितः पूजितः असौ महीमहेन्द्रः भूमीन्द्रः पुपूजे पूजितः ।

5 अथेति । अथ स पूर्वोक्तः खुरमः पुरस्योपकण्ठे समीपदेशे उपगतम्प्राप्तं त्रिज-गति अकुंठितमप्रतिहतं तेजः पराक्रमो यस्य तम् तं नरेशं शत्रुशल्यम् तारकदैत्यस्य वैरिणं कार्तिकेयं सुरेन्द्र इव सेनया सह द्रुतं शीघ्रमुच्चैरुदियाय लक्षणया संमुखमाजगाम ।

6 त्वरितमिति । तदानीं समये त्वरितं शीघ्रमभिगतेन सम्मुखागतेन तेन खुरमेण सुष्ठु सत्कृत आदृत एष पूर्वोक्तो बुन्द्याः परिवृढः स्वामी अचिरं शीघ्रं सुभव्यां

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रेष्ठाम् विरचितं चारु सुन्दरं सुधर्म्मेण इन्द्रसभाया मर्म्मस्पर्शि नर्म्म हास्यं यया इन्द्रसभाभिबकरामित्यर्थः, डाबुभाभ्यामन्यतरस्यामिति डाप्, सभां समविशत् विशति स्म ।

7 यवनेति । यवनानां गणस्य समूहस्य पत्युः खुरुमन्याद्धासनं परिगच्छत्यधितिष्ठति इति सः, अन्यत्रापि दृश्यत इति डः, परिगीता लोके ख्यापिता दोष्णोः प्रशस्तिर्यशो यस्य स भूभृच्छत्रुशल्यः प्रणये प्रेम्णि समुचितं योग्यं हितं च वाक्यम् समदो जलपूर्णो योम्बुदो मेघस्तस्येव स्वरेण द्रुतमगदत् ।

8 परेति । अंग संबोधने, हे परमह, पर उत्कृष्टो महस्तेज उत्सवो वा यस्य तत्सबुद्धौ, अथ संबोधनार्थकाः स्युः पाट्प्याडंगेत्यमरः, मह उत्सव तेजसोरिति हान्तेषु हैमः. कच्चिदितीष्टप्रश्ने धरण्याः सुतुंगपदे राजाधिराजस्थाने मंगलानां कल्याणानाम् ओघैः एधसे वर्द्धसे, अपीति प्रश्ने, परमत्यर्थमवनीम्भूमिं प्रशासतस्स्वाधीनत्वेन शिक्षयतस्ते चरितं कर्त्तृ इमां भूमिं गौणकर्म्म द्रविणानि धनानि मुख्यकर्म्माणि दोग्धि प्रपूरयतीत्यपि वग्धि कथय, दुहिर्द्विकर्म्मा, वग्धि इति वक्तेर्लोट् हुझल्भ्योहेर्द्धिरिति धिः ।

9 चतुरुदधीति । बंधुता बंधुसमूहः, ग्रामजनबंधुभ्य इति समूहे तल् चतुर्भिरुदधिभिस्समुद्रैर्मितां बद्धसीमां इमां धरित्रीं भूमिं प्रकर्षेण वशयतो वशीकुर्वतस्तव हृदयानुवर्त्तनैस्तत्वदभीष्टानुसरणैः हितानि रचयति किम्. कच्चित्प्रश्ने, च पुनस्त्वमपि एतां बंधुतां अद्य सत्कुरुषे आद्रियसे ।

10 निजेति । अथवाऽन्यत्सर्वं मस्त्येव, किन्तु निजयोः स्वीययोर्भुजयोर्म्महसा सुरेन्द्रस्येन्द्रस्यापि जिष्णुस्त्वं, शेषषष्ठ्या समासः, कम् अहितं शत्रुं विजेतुम् उत्सहसे उत्साहपूर्वकमिच्छसि, वद वदेत्युत्साहे द्विरुक्तिः अहो इति, सावलेपवचने अहं तम् त्वया जिगीषितं स्वकीयस्य दोष्णो भुजस्य महोभिस्तेजोभि स्सद्य विमदं मदहीनं करोमि ।

11 इति इति । इति प्रकारेण अमुना नरपतिना शत्रुशल्येन उक्तः कथितः स यवनपतिः खुर्रमः अमंदां बहुलाम् मुदमानन्दमावहन् धारयन् सन् विकसितं प्रकाशयुक्तं यद्धसितं तस्य प्रभाभिः प्रकाशैः अंतर्गतं तिमिरं शोकजं प्रहरन् सन् एवं शत्रुशल्यमवोचत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

12 त्वयीति । मम राज्यस्य कर्णधारे नाविक इव विपत्समुद्रतारके सति असौ धरणिः पृथ्वी मां कथन्न धिनोतु प्रीणयतु मया प्रणयेन प्रेम्णा वसुना धनेन च उच्चैः पुरस्कृता आदृतास्सुहृदो मित्राण्यपि मे प्रिये अभीष्टे वस्तुनि कथन्न यतन्तामपि तु यतन्तामेव ।

13 त्रिजगदिति । त्रिजगतः अविनयस्यौद्धत्यस्य व्यपोहेऽपनयने धीरे दृढे तव करे हस्ते निष्कृपे निर्दये कृपाणे खड्गे जयति विद्यमाने सति इह भूमौ अद्य त्वं सकलमपीदं राजकं राजसमूहं, समूहे वुञ्‌ मम वशे स्थितं विदांकुरु जानीहि, किलालंकारे सभावनायां च, विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्यामित्याम्, करोत्यनु प्रयोगश्च ।

14 विकटेति । हे शत्रुशल्य, यस्मिन् देवगिरौ विकटा भटानां घटास्समूहाः मम स्वयोर्भुजयोर्मदं चिरेण तृणाय मेनिरे, मन्यकर्म्मण्यनादरे इति चतुर्थी, बत वितर्के सुष्ठु शत्रुशल्येन अंतर्गतबाणफलादिना तुल्यः सप्रसिद्धः सुविषमो दुर्ग्रहः देवगिरिः मां प्रतुदति व्यथयति ।

15 इतीति । अद्य स्वे स्वकीया ये सखायः स्वसखास्ते च ते जना लोकाः स्वसख-जनाः, सखीतिपाठे सखिशब्दस्य जनशब्देन समासं कृत्वा ततः स्वशब्दसमासः, तेषामाधेर्मनोव्यथायाऽवधीरणे तिरस्कारे, वष्टिभागुरिरित्यल्लोपः, एको मुख्यो, धीरः स्थिरचित्तः समरे युद्धे सृमरौ प्रसरणशीलौ चंडौ प्रचंडौ बाहू तयोः कंडूः युद्धेच्छातिशयजन्य उत्सेकविशेषो यस्य स शत्रुशल्यः इति प्रकारेण तेन खुरुमेण उदितं कथितं वाक्यं सम्यक् निशम्य श्रुत्वा स्वयं देवगिरिम्प्रति प्रतस्थे ।

16 निजेति । मिहिरस्सूर्यस्तस्यान्वये वंशे हीरके रत्नतुल्ये इहास्मिन् शत्रुशल्ये महीशे राजनि द्रुतं शीघ्रं निजहृदयरुजं शोकं जिघांसौ अपनिनीषौ सति अतिशयितं प्रफुल्लं विकसितं वक्त्रमस्य स यवनपतिः रणेऽतिचंडान् कोपनान् भटान् शत्रुशल्येन सह निदिदेश आज्ञापयामास ।

17 तानेवाह यवनगणेति । यवनानां गणैर्युतः स प्रसिद्धः खानखानो यवनविशेषः च पुरः रणे जयी विजयी खानजमा इति नामा तस्य खानखानस्य सूनुः पुत्रश्च त्रिभुवने वरः श्रेष्ठः चन्द्रदुर्गस्य राजा भटानां शूराणां तत्या पंक्त्या पूर्णं बलं सैन्यं यस्य स कर्णराजो नाम च ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

18 खुरुमेति । खुरुमस्य सुभटेषु मुख्यो यः खानदौराननामा प्रवरः श्रेष्ठः मुबारिकखानकः, स्वार्थे कः, युवानौ इत्याद्यश्च. असंख्याः बहवः यवनपतेः खुरुमस्य बलस्य सैन्यस्य मुख्याः सेनापतयः अमुना शत्रुशल्येन सह तत्क्षणात् ययुः, युग्मम् ।

19 प्रभुरिति । अयुतत्रयं त्रिंशत् सहस्राणि प्रमाणं येषां तैः निजस्य सुनिदेशस्य आज्ञायाः वशंवदैरधीनैः भटैः समेतो युक्त उग्रः क्रूरो यो दाक्षिणात्यानां दक्षिणादिग्भवानामीश्वरो निजामशाहः, दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्, तस्य वशोऽधीनो यो देवगिरिस्तं गृहीतुकामः खुरुमायत्तं कर्त्तुकामः अयं प्रभुः शत्रुशल्यः त्वरितमगमत् अर्थाद्देवगिरिम्प्रति ।

20 तुरगेति । अस्य शत्रुशल्यस्य तुरगाणामश्वानां खुरपृष्टैरुद्धत उत्पादितः धलीभरो रजस्समूहः अस्य शत्रुशल्यस्य उरवो महान्तः शराः इदमुरुशरास्तेभ्यो भियां भयानां भरादतिशयाद्विशीर्यन् अवयवशिथिलीभावं प्राप्नुवन् यस्सुष्ठु विषम कठिनो देवगिरिस्तस्याणूनां त्रसरेणूनां वर्ग इवेति स्वरूपोत्प्रेक्षा, सद्यः दिशां मुखेषु प्रदेशेषु उदडीयत उड्डीनवान् ।

21 प्रबलेति । प्रबलस्य शौर्यशालिनो बलस्य सैन्यस्य पतिः त्रिभुवनस्य जित्वरो जयशीलः दोष्णोर्भुजयोर्मदस्य प्रसारो यस्य स बुन्दिनाथः शत्रुशल्यः ङ्यापोरिति बहुलकादह्रस्वः, वैदेहिबंधोर्हृदयं विदद्र इति रघुवंशे, भटैः शूरैर्विकटो दुर्जयो यो निजामस्तस्य वश्यमधीनं, अभ्रंकषमत्युच्चं सर्वकूलाभ्रेत्यादिना कषेः खच् शैलं देवगिरिं क्षणेन परितः सर्वतः अरुणत् रुणद्धि स्म ।

22 अचलेति । अथ असहः पूर्ववदसह्यो यो दहनः अग्निस्तस्य तीव्रो यो गोलस्सूर्यादिवत्तेजःपिंडस्तद्वद्रोषो यस्य स निजामो नाम भूमिपालः अचलं पर्वतं समन्ततस्सर्वतोनिरुद्धमवलोक्य समरो युद्धमेव महानुत्सवस्तस्य मंगलमादौ कर्त्तव्यं सेनास्थापनादि ततान, वेषमितिपाठे असह्याग्निवत्तीव्रा ये गोलास्तोपक्षेप्यास्तएव वेषः स्वरूपं यस्य तं तं तोपगोलक्षेपणमेव मंगलाचरणमकरोदित्यर्थः ।

23 अतिविषमेति । महौजा महाबलः अतिविषमो दुर्जयो यो निजामस्तस्य मित्रं यो वद्याख्यपुरस्य धरणीशो राजा दिलेश्वरो नाम सुरगिरिपतेर्निजामस्य

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सहायतां साहाय्यं करिष्यन् सन् घोरं भीषणं वीरं शूरं रणदुलहन्नामभट विशेषं प्रजिघाय प्रहितवान् ।

24 भुवनेति । रणे विजयी यो मुरारिनामा तेनसमेतो युक्तः भुवनेषु महितः पूजितो यो धोंसलानामा अन्वयावायो वंशः, घोंसला भोंसला इति च प्रसिद्धः, स एवाम्बुनिधिः समुद्रस्तत्र कलानिधिश्चन्द्ररूपो यः शाहजीनामा महीन्द्रः राजा निजामभूमिपालम् अवितुं रक्षितुमगमत् ।

25 बलमिति । एष वीरनृपः शत्रुशल्यः नृपतिर्यो निजामस्तस्य सहायतायां प्रवृत्तम् अयुतचतुष्टयं चत्वारिंशत्सहस्रपरिमितं बलं सैन्यं सविधं समीपदेशमुपगतं प्राप्तं विलोक्य रणे परिकरं दवंः तत्रोद्यतोऽभूदित्यर्थः ।

26 अथेति । अथ निजजयस्य गृध्नु अभिलाषुकं हृद्ययोस्ते अदीनौ महान् रोषोययोस्ते बले सैन्ये समरस्य युद्धस्य रसादासक्तेः हेतोर्मिथोऽन्योन्यं कठोरान् पितृपतेर्यमस्य राष्ट्रं देशस्तस्य विवर्द्धने एकहेतून् मुख्यकारणानि मृतानां तत्र गमनात् शरान् बाणानचिराद्ववृषतुः ।

27 प्रकिरतीति । बलयोस्सैन्ययोर्युगले परितः शरौघस्य बाणनिकरस्य समूहं प्रकिरति सति वराः श्रेष्ठा ये भटास्तेषां वरणे स्वप्रियत्वेनांगीकरणे समुद्यतानां कृतोद्यमानां लेखयौवतानां देवाङ्गनासमूहानामप्सरसां मनोजतरुः कंदर्पवृक्षः प्रफुल्ला विकसिताः शाखा यस्य तादृशोऽजनि जातः, बतालंकारे ।

28 धनुरिति । अमर्षेण शत्रुविजयासहनरूपेण विशेषितमधिकतया दर्शितमाजिकर्म्मं युद्धप्रागल्भ्यं येन स अरीणां निधने मारणे उद्यतं धनुः कर्षन् स नृपतिः शत्रुशल्यः अगण्यैरसंख्यैः यमस्य रदना दन्ता उपमा येषां तैर्मार्गणैर्बाणैः परेषां शत्रूणां बलं सैन्यं बहुविधं बहुप्रकारं तिर्यग्वेधसमवेधादिना अवधीत् बहुविधं हस्त्यादिभिर्नानाविधमिति बलविशेषणं वा ।

29 छवि इति । छव्या दीप्त्या लसन् शोभनो योऽसिः खड्गस्तेन भासुरो दीप्तिमान् प्रवेष्टो भुजो यस्य सः, भुजबाहूप्रवेष्टो दोरित्यमरः असौ नृपतिः शत्रुशल्यः भयेन आनतं नम्रं अमरधरणीध्रं विजीयमानं देवगिरिमिव परेषां शत्रूणां करिणां गणं गजसमूहं अधिवसुमति वसुमत्यां भूमावित्यर्थः पातयांचकार, उत्प्रेक्षा ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

30 सुमहतीति । सुमहति प्रवले कलहे प्रवर्त्तमाने सति हृतानि दूरे पातितानि परेषां शत्रूणां शीर्षाणि येभ्यस्तैः कबंधैः क्रियायुक्तशिरोरहितशरीरैर्बंधुरा सुंदरा भूः सपदि प्रलये विलासिनः प्रसरन्तः केतवो ग्रहविशेषा यस्यां तस्या दिव आकाशस्य हतोपमानां अनुपमामित्यर्थः सुषमां शोभां समहृत हरति स्म, प्रलयकालिकाकाशसमाऽभूत् इत्यर्थः, केतूनां कबंधुतुल्यत्त्वात् ।

31 खणखणेति । तदा विकटं कृपाणं बिभ्रतीति तेषां घ्नतां परस्परं प्रहरतां भटानां खणखणेति निनदः शस्त्रपातजः शब्दः सविधं समीपमुपसरन्ती प्राप्नुवती या द्विषत्कर्म्मिका जयश्रीस्तस्याः करपीडनं विवाहः तदर्थं चारुश्चाटुकारः प्रियवचनसन्दर्भः आविरासीत् गम्योत्प्रेक्षा ।

32 प्रहरणेति । रणे युद्धे प्रहरणैः शस्त्रैः परिकृत्तानि यानि शत्रूणां गात्राणि शरीराणि तेभ्यः क्षरता स्रवता असृजा प्रसिक्ता धरणी सुरयुवतीनां देवाङ्गनानां करग्रहे विवाहे सता श्रेष्ठेनारुणचंदनेन रक्तचंदनेन वंदितैश्शोभितैः अंबुपूरैर्जलप्रवाहैस्सिक्तेव चकाशे, गम्योत्प्रेक्षा ।

33 मिथ इति । इति प्रकारेण मिथोऽन्योन्यं कलहायमानं कलहं कुर्वत् यत्सैन्यद्वयं तस्य सुभटेषु शूरेषु रुषा कोपेन समुत्कटेषु प्रबलेषु सत्सु विनता नम्रीभूता विजयिनो जयशालिनो यस्मात्स चन्द्रदुर्गराजः याकुतो याकूतशब्दस्तेन युक्तः खानः याकूतखाँ नामा कश्चिद्यवनश्च निधनं मरणमवाप, हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते इतिवत् ।

34 बलेति । बलयुगस्य सैन्यद्वयस्य भटयोः शूरयोस्तयोश्चन्द्रदुर्गराजयाकूतखानयो क्रमात् स्वपरपक्षभटयोर्विनाशे सति प्रकुपितो यः कालो यमस्तस्य करालं यद्वक्त्रं मुख तस्येव कान्तिर्यस्य सः कृपाणपाणिः खड्गहस्त एष नरपतिश्शत्रुशल्यः रुषात् द्विषां शत्रूणां वलं सैन्यं अभितः सर्वतोऽभिनत् विददार ।

35 तरुणेति । तरुणो यस्तरणिस्सूर्यस्तद्वद्दारुणः प्रतापो यस्य तादृशे तत्र तस्मिन् राजनि शत्रुशल्ये वैरिणां पक्षं क्षपयति सति विकलितो निष्फलीभूतो बाह्वोर्मदो रिपुकर्म्मकपराजयकरणरूपो यस्य स रणतुलहनामा नृपः पूर्वोक्तः मृगप्लवेन हरिणस्येव प्लवनेन रणाद् युद्धादरायादपागच्छत् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

36 विजितेति । विजितं परेषां शत्रूणां बलं सैन्यं येन प्रविलसतामानकानां वाद्यभेदानां गर्जितेन शब्देनोर्जिता स्फुटीभूता श्रीविजयलक्ष्मीर्यस्य स धीरः शूरस्स बुन्दिपालः शत्रुशल्यः पुनरपि अमरगिरिं निरुद्ध्य प्रवरं श्रेष्ठं निजामस्य मनोरथं देवगिरिरक्षणरूपं ममंथ प्रतिजघान ।

37 अपनदिरिति । अपनदिरपोपसर्गपूर्वो नदधातुः, इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ततीक्, बत वितर्के चिणि चिण्भावकर्म्मणोरिति विहिते च्लिस्थानिके आदेशविशेषे परतः परे सति अडुपधावृद्धितलोपैर्यद्रूपमुररीकरोत्यंगीकरोति अपानादि इति तेन तद्रूपार्थभूतेनानपानादि अपानादि जलपानाद्यभावः तेन तान्तो ग्लानः स,, संरुद्धा निजामः संनिजामः प्रादयोगताद्यर्थ प्रथमं वेति समासः, अपीति सम्भावने लुङि भूतसामान्यार्थे लकारे परे निरस्थतेः निपूर्वस्यास्पतेः असु क्षेपणे इति धातोः मुखे प्रथमपुरुष यद् द्विवचनं आत् युक् तामादेशैर्निरास्थतामिति रूपं तदेतत् तदर्थभूतं निर्गता आस्था जयाशा यस्मात् स निरास्थस्तस्य भावं निरास्थतारूपं उवाह दधार शत्रुशल्येन निरुद्धजलान्नादिर्जयाशारहितो ऽभूदित्यर्थः ।

38 प्रतिदिनमिति । प्रतिदिनं नित्यमशनायया बुभुक्षया अतिदीनः दैन्यवान्, सुर्प् इति क्यच् अशनायोदन्येति इत्वाभावः, निजे जीवने प्राणधारणे एकगृध्नुर्मुख्याभिलाषी अविरतः देवगिरिदाने निषेधरहितः सः अमरगिरिपो निजामः जगतो विजेत्रे जयशीलाय बुन्दिभर्त्रे शत्रुशल्याय सुविषमं दुर्गं देवगिरिं व्यतरत् अददत् ।

39 अयमिति । तदा इति प्रकारेण सपदि शीघ्रं सुरशैलं देवगिरिमात्मनो वश्यमधीनं विधाय पुनस्तं निजामं निगृह्य वशीकृत्य पूर्णः सम्पन्नः कामः काम्यमानः पदार्थो यस्य सः, हृदयस्य यवनपतिमनसः मनोरथ इच्छारूप एवायं शत्रुशल्यः यवनानां गणस्य पत्युः दिल्लीशस्य पुरोऽग्रेऽभूत् दिल्लीमाजगामेति । अत्र यवनपतेर्मनोरथ इवाग्रे ऽभूदिति शत्रुशल्ये मनोरथत्वोत्प्रेक्षा ।

40 अथेति । अथ मुदितम्मनो यस्य स दिल्लीपालः स्वीयाया धरणेर्यद्राज्यन्तद्भरस्यातिधुर्यं वोढारं कूर्म्मम् धराधरकच्छपरूपं अजय्यं केनापि जेतुमशक्यं प्रणयेन प्रदत्तं दुर्गं दुर्गविशेषः पारितोषिकरूपेण यस्मै प्रणयेन प्रेम्णा प्रदत्तं

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वशीकृत्य समर्पितं दुर्गं देवगिरिरूपं येनेति वा तं शत्रुशल्यं असकृद्वारं वारं परिष्वजन्नालिङ्गन् अमहयत् अपूजयत्. अपीति वाक्यालंकारे ।

41 अयमिति । जगत्या जये एको मुख्यो दक्षः समर्थोऽयं शत्रुशल्यः इह बुन्द्यां वरतममतिश्रेष्ठं भूमिपदं पृथिवीरूपं स्थानं चिरेण शासत् सन् वरा श्रेष्ठा पुष्पितं ख्यातं अग्रं समूहो यस्याः सा विकसितप्रान्ता च तया अग्रं पुरस्तादुपरि, परिमाणे पलस्य च आलंबने समूहे चेति मेदिनी, गुणेषु शौर्यादिषु रतया संबद्धया रलयोरभेदात् सौरभादिगुणयुक्तवल्लीरूपया च कीर्त्या दिशां मुखानि सुरभयति शोभयति सुगन्धीकरोति च पुष्पिताग्रेव च्छन्दः ।

42 वृन्दावतीति । इति प्रकारेण नयेन नीत्या धरणीं भूमिं शासत् शिक्षयन् सुरराजेनेन्द्रेण तुल्यः प्रत्यर्थिनां शत्रूणां सार्थे समूहे रचितोऽमलस्य स्वधर्म्माविरुद्धस्य तापस्य भूमा बहुत्वम् येन वृन्दावत्या बुन्द्याः पतिः प्रभुशत्रुशल्यः भूमीतले सुतानां बंधूनां च वर्गे विजयते उत्कर्षेण वर्तते ।

43 राज्ञ इति । दारुणे रणे कुलिशायमानं वज्रवत् कठिनतामाचरदपि अस्य राज्ञः आंतरं मनः आशु शीघ्रोत्पन्नं नवनीतं नवीनं घृतमिव महतां कवीनां चंचन् स्फुटतां गच्छन् प्रसादो झटित्यर्थबोधकत्वरूपो गुणो विशेषः सत्यः श्रेष्ठा अलंकृतयश्च तैर्भव्यानि श्रेष्ठानि काव्यानि तैः द्रुततरं शीघ्रतरं शैथिल्यं मार्दवम् प्रयाति ।

44 देवानांप्रियेति । देवानांप्रिया मूर्खाः, षष्ठ्या अलुक्, तेषां यानि विप्रियप्रलपितानि दुर्वचनानि तान्येव प्रत्यग्रस्य नवीनस्य हालाहलस्य विषविशेषस्य कीला ज्वाला हृदयदाहकत्त्वात् तासां कुलेन समूहेन आकुलाद्व्याप्तात् कलिभवाः कलियुगोत्पन्ना ये अन्ये शत्रुशल्यादितरे क्ष्माभृतो राजानस्तेषां आस्थानकात् सभातो भीतानां विदुषाम् उद्दामा महती या आरभटी नाट्यवृत्तिविशेषस्तया पटिष्ठाः पटुतमास्सौन्दर्यशालिनश्चटुलाश्चेतःप्रिया येऽलंकारा उपमादयस्तैः कान्ता कमनीया श्रीर्यासां तासां गिरामावासभूः निवास भूः प्रतिपादनविषय इत्यर्थः अयं वीरः शत्रुशल्यः विजयते अन्यान् राज्ञः त्यक्त्वा कविजना एतमेवाश्रयन्तीत्यर्थः ।

45 उन्मीलदिति । श्रीविश्वनाथो नाम भिषक् वैद्यः उन्मीलन्तो नातिगूढतया

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सहृदयहृदये प्रकाशीभवन्तो ये बहला ध्वनयः न्यग्भावितवाच्यार्थव्यंग्यास्त एव प्रविलसन्तः पीयूषस्य पूराः प्रवाहास्तैरुल्लसन्तो ये स्वादव उद्गारास्तदनुकूलवचनानि तैर्गरीयसीं श्रेष्ठां सज्जनैः संमानितामादृतामिमामात्मीयां गिरं उपकर्त्तुं योग्यनायकवर्णनेन सशोभां कर्त्तुं क्रूरान् दुष्टान् पुरोभागिनो दोषैकदृष्टीन्, दोषैकदृक् पुरोभागीत्यमरः, अर्दितुं निर्दूषणकाव्यनिर्म्माणेन तेषामनवकाशतापादनेन खेदयितुमपि अस्य राज्ञः शत्रुशल्यस्य उद्धतवंदितां प्रगल्भस्तावकरूपतामनटयत् अभिनीतवान् ।

46 विद्यावृन्देति । विद्यानां काव्यतर्कव्याकरणादीनां वृन्देन समूहेन हेतुना वंद्या आदरणीया विलसन्तो वैद्यास्तेषां विलसन् यः सन् श्रेष्ठो वंश एव रत्नाकरः समुद्रः तस्मादुदंचन्नुत्पद्यमानो य कौस्तुभस्तत्संन्निभस्य श्रीविश्वनाथस्य मे अनर्घ्यतराः श्रियः शोभा यासां ता वाग्रूपा भासो दीप्तयः साधारणैस्सामान्यदेवचिह्नैर्देवकैः शत्रुशल्येतरनृपैर्निदायां कन्, इन्द्रादिभिश्च न सुलभाः अत इमाः वाग्भासः पुरुषेषूत्तमं विष्णुं च देवं देवतारूप राजानं चामुं शत्रुशल्यं चिरं भजन्ताम्, यथा कौस्तुभदीप्तीनां हरिरेवावासयोग्या भूस्तथाऽलौकिकचमत्काराणां मम वाचामयमेव योग्यो विषय इति, देवस्तु नृपतौ तोयदेऽसुरे इति हैमः ।

47 श्रीमदिति । द्विषां शत्रूणां वैकल्पदो नाशदस्तत्संबुद्धौ हे शत्रुशल्य, श्रीमन् शौर्यादिसम्पत्त्या पारमेष्ठ्यसम्पत्त्या च युक्तो यः रत्ननामा पितामहः स्वपितुः पिता ब्रह्मा च तस्य चरितमेव उद्यत् स्फुटीभवज्जीवनामत्रं जलपात्रम्, जीवनं भुवनं वनमिति, अमत्रं भाजनं पात्रमिति चामरः, कमण्डलु तस्मात्सम्भूतामुत्पन्नां पुरुषेषूत्तमस्य विष्णुरूपस्य भवतस्तव भव्यं शुभं पदं स्थानं भवद्रूपं स्थानम्, राहोः शिर इति वत् षष्ठी, चरणं च भजन्तीम्, पदं व्यववसितित्राणस्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु इत्यमरः, सुतुङ्गामत्यादरणीयत्वादुच्चदेशस्थत्वाच्च द्यामनु लक्ष्यीकृत्य यान्तीमतिप्रसृमरत्वात् उध्द्र्वलोक एव तत्स्थितेश्च इमां सुष्ठु यशोरूपां गंगाम् धर्त्तुम् काव्येन लोके स्थापयितुं वेगाघातवारणेन ग्रहीतुं च श्रीविश्वनाथात् मत्तः श्रीमहेश्वराच्च परोऽन्यः क उचितः न कोपीत्यर्थः कथारामायणादावनुसंधेया ।

48 अपीति । मामकी मदीया कृतिः काव्यनिर्मितिः यथा लक्ष्मीभर्त्तुः विष्णोस्तुल-

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्या दलं पत्रम् तथा गुणानां विद्यादीनां गणेन अमंदो महान् यः आनंद एवामृतं तेन उम्भितचेतसां पूर्णचित्तानां स्वयं सर्वविद्यासम्पन्नानामपीत्यर्थः परेषामुक्तिषु संततं सहजेन स्वभावेन रचितं असीममपरिमितं प्रेम यैस्तेषां गुणरागिणामित्यर्थः सुचतुरः व्यवहारादिष्वपि कुशला धीर्येषान्तेषान्निस्सं-दिग्धं सन्देहरहितं यथास्यात्तथा अतिशायिनीं मुदं प्रीतिं विधास्यति करिष्यति स्वयं सगुण अपि गुणरागिणोऽत्र प्रशंस्यंतीत्यर्थः ।

49 श्रीमदिति । श्रीमतां सूरसुतानां सूर्यवंशजानामतिशाली शोभनो महिमा यत्र सा श्रीमत्या सूरसुतया यमुनयाऽतिशाली महिमा यस्यास्सा च रत्नः श्रीरत्न एवाकरः प्रादुर्भावस्थानं तं वृण्वती प्रतिपाद्यत्वेनेति शेषः समुद्रं गच्छन्ती च सानन्दमानन्दयुक्तं यथास्यात्तथा चतुराणां विदग्धानामाननेभ्य उद्गताया-स्सरस्वत्या वाण्याः आदरं तत्करणकमादरं गृह्णति विदग्धैस्सानन्दमाद्रिय-माणेत्यर्थः चतुराननो ब्रह्मा तस्मादुद्गता उत्पन्ना या सरस्वती नदीविशेषस्त-स्या आदरं स्वसंगमरूपं सानंद गृह्णति च तयोः सङ्गमे प्रथमं परस्परादरस्य पुराणेषु प्रसिद्धेः सुतुंगा महती गोपीनाथाज्जातो यः शत्रुशल्यस्तस्य सुष्ठु यशोरूपा गंगा वर्तते इति शेषः तया सह कल्याणिनी श्रेष्ठा विश्वनाथस्य मे भणितिः कवितेव कुल्या अल्पा सरिदपि दिष्ट्या भद्रं अयुज्यत युक्ताऽभवत्, तत्संगमेन ख्यातः पवित्रत्वसमुद्रादेश्च लाभात्, कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित् इत्यमरः आनन्देस्तु शुभं दिष्ट्या इत्यव्ययवर्गे त्रिकाणुशेषः ।

50 यद्यपीति । बत वितर्के, भो मन्दा मूर्खा कद्वदा गर्ह्य वाचः, रथवदयोश्चेति कोः कत्, यद्यपि अहं युष्माकं विदद्भिर्विद्वद्भिः सह स्वाभाविकीं निर्हेतुकामेव अरितां द्वेषं विद्न् जानन्नस्मि जानामीत्यर्थः किन्तु तथापीत्यर्थे भवंतः क्षणं मम वचः शृण्वन्तु तदेवाह युष्माभिः सन्तः कोषा अमरादिकृता, ध्वनय उत्तम-काव्यानि शेषभाषितं महाभाष्यं तानि वेत्तीति एतादृशस्य अन्तर्वाणिषु शास्त्र-वित्सु तैर्वा मान्यस्यादरणीयस्य मे अस्मिन् काव्य एष हृदयैकवेद्यः श्रमः स्वीये हृदि मंत्रवत् स्थाप्यताम् ईदृशेन शास्त्रज्ञेन इयत्ता श्रमेणाऽयं ग्रंथः कृतो नास्माभि दूषयितुं शक्य इति चिन्तनेन मन्त्रेण रुद्धशक्तिभिर्भुजगैरिव युष्मा-भिस्तूष्णीं स्थातव्यमित्यर्थः ।

51 सुश्लोकैरिति । सद्भिवृत्तैराचारैः प्रहर्षिण्यादिच्छंदोभिश्च जाता प्रथा

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ख्यातिर्येषान्तैः सुष्ठु श्लोकैर्यशोभिः पद्यैश्च जगतां मनांसि रसयन्नानन्दयन्, वृत्तशब्दमधिकृत्य क्लीबं छंदश्चारित्रवृत्तिषु इति, श्लोकः पद्ये यशस्य पीति च मेदिनी, सुष्ठु ओजो बलम् विकटबन्धात्मा गुणविशेषश्च यस्य यत्र च, सत्सु पुरुषेषु मधुरो रम्यः प्रसादस्यानुग्रहस्य विभवो यस्य सन्, मधुरो समास मृदु-रचनात्ममाधुर्यंगुणवान्स चासौ प्रसादस्य स्फुटार्थबोधकगुणस्य विभव-आधिक्यं यस्य स च, प्रसादोऽनुग्रहस्वास्थ्यप्रसत्तिषु कामगुणे इति हैमः, अलंकारैः स्वर्णादिमयैरुपमादिभिरपि च भूरिर्महती छविर्यस्य सः, अलंकारः कंकणादिषु उपमादाविति हैमः, दोषाणां गद्गदत्वादीनां श्रुतिकटुत्वादीनां च ध्वंसेन गभीरः शौर्यादिद्योतकः कविजनैकवेद्यश्च सन्, ध्वनिः न्यग्भावित-वाच्यो व्यंग्योर्थश्च यत्र तद्भावेन सर्वोत्तमत्वं सर्वाधिकत्वं, इदमुत्तममति-शयिनी व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः इत्युक्तेरुत्तमत्वं च गतः प्राप्तः शत्रुशल्यनृपतिः अयं तस्य काव्यस्य बन्धः तच्चरितकाव्यग्रंथिश्चापि कस्य न मान्योऽपि तु सर्वस्येति शिवम् ।

———

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(टीकाकर्तुः प्रशस्तिः ।)

तीर्णो मया भवदनुग्रहपोतसङ्गा—
च्छ्रीशत्रुशल्यचरिताब्धिरयङ्गभीरः ॥
पर्याप्तमात्तरमशक्नुवता प्रदातुं
त्रैलोक्यपालकनियामक नम्यसे तत् ॥१॥

कैरस्मत्पालनाय प्रचुरतरमरुद्घर्मशीतादि सोढं
कैर्वादुर्मन्तुलक्ष्येऽप्यनतिचटुवचोमात्रतोऽपि प्रसन्नम् ॥
कैर्वास्वार्थानपेक्षं विपुलसुखचयैर्योजिता स्मो दयार्द्रैः
कर्वा शब्द न्यश्मने स्थितिरपि विहितायान्नमस्याम देवान् ॥२॥

विश्वनाथकविवर्णितकीर्तेः शत्रुशल्यनृपतेस्तनुजन्मा ।
भावसिंह उदभूद्गुणपुञ्जैर्यम्प्रजा जनकवन्मनुते स्म ॥३॥

प्रजानुरागैकधनस्य पुण्य—
श्लोकत्वमेतस्य कियद्वदाम ॥
नलादिकानामिव यस्य नाम
स्मरन्ति कल्पेष्वधुनाऽपि लोकाः ॥४॥

तेनौरसीभूतगुणव्रजेन
दत्तः सुतोऽगृह्यत कृष्णसिंहः ॥
रुद्धारिरस्मादनिरुद्धसिंह—
स्तस्यातिबुद्धिर्बुधसिंह आसीत् ॥५॥

उम्मेदसिंहोऽभवदस्य सूनुः
शरच्छशाङ्कोज्ज्वलकीर्तिराशिः ।
बुन्दीं द्विषद्वारिनिधौ निमग्नां
य उज्जहारादिवराहलीलः ॥६॥

जितारिरस्याजितसिंह वर्मा
सूनुस्ततोऽजायत विष्णुसिंहः ॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तस्यात्मजस्सत्य विवेक धैर्य—
तेजो नधी राजति रामसिंहः ।।७।।

गाम्भीर्यकेशवसमाश्रयशुभ्रताद्यैः
श्रीरामसिंहमनसा सममभ्यधास्यम् ।।
हे क्षीरसागर सुधामथने भवन्तं
हालाहलस्य जनकं यदि नास्मरिष्यम् ।।८।।

हे कोपानृतदम्भचापलमदासूयादयः श्रूयताम्
नायं व समयः पराभिभवने तल्लीयतां कुत्रचित् ।।
पूर्वं यो निजघान दूषणबलं बाह्यं पृषत्कोत्करैः
श्रीरामः स निहन्ति सम्प्रति महाशक्त्या दशैवान्तरम् ।।९।।

तेन स्वपूर्वकविचित्रयशोवितान—
व्याख्यानकौतुकितचित्ततयाऽनुशिष्टः ।।
गङ्गासहायशिशुरत्रमिति स्फुटार्थां
श्रीशत्रुशल्यचरिते कुरते स्म टीकाम् ।।१०।।

ये दयाकतकतो व्यशोधय—
न्नाविलामपि सरस्वतीं मम ।।
रामसिहनृपलब्धजीविकां
स्तान्नमामि बहुशो विपश्चितः ।।११।।

ये दोषमेव गणयन्ति गुणे परेषां
ते प्रार्थिता अपि कुतो जहति स्वशीलम् ।।
दोषेऽपि ये गुणधियः करुणावतारा
स्तेऽप्रार्थिता अपि कुतो जहति स्वशीलम् ।।१२।।

बुद्धिः कुतः स्याद्विमलाऽर्भकस्य
निर्दोषटीकारचने समर्था ।।
दृष्ट्वा ममातिश्रममेव सन्तो
गृह्णन्तु कारुण्यमयैः कटाक्षैः ।।१३।।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ये दुर्जनत्वगुरुतः पठितादसूया
शास्त्राद् विविच्य मम दोषगदानशेषान् ॥
दुर्वाक्यभेषजगणैरुपकुर्वते ते
नित्यं परोक्षभिषजः सुखिनो भवन्तु ॥१४॥

वैक्रमे रसदृगङ्कभूमिते
हायने (१९२६) वृषभराशिगे रवौ ॥
राधशुक्लहरिवासरेऽभव—
च्छत्रुशल्यचरितप्रकाशिका ॥१५॥

श्रीरामसिंहनृपतेर्बुन्दीभर्तुर्निदेशेन ॥
गङ्गासहायशिशुना द्वाविंशे निर्मिता टीका ॥१६॥

॥ इति श्रीचौहाणकुलरत्नश्रीमहाराजाधिराजश्रीरामसिंहादिष्टगङ्गा-सहायशिशुकृतायां शत्रुशल्यचरितटीकायां शत्रुशल्यप्रकाशिकायां द्वाविंशः सर्गः । पूर्णश्चायं ग्रन्थः ॥

———

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy